।। श्री जिनचन्द्राय नमः ।।

श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित

श्री पांडव पुराण

[जैन महाभारत]

—: सम्पादक :—

स्व. पं. श्रीनिवासजी जैन शास्त्री

चिरहौली निवासी

—: प्रकाशक :—

नेमीचन्द बाकलीवाल
मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान)

मूल्य ५०) रुपये मात्र

* निवेदन *

पांडव पुराण की एक सुन्दर रचना कविता में स्वनामधन्य कविवर श्री बुलाकीदासजी विरचित मौजूद है तथा उसका एक हिन्दी अनुवाद वीर सं० २४४६ में जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय मुम्बई से प्रकाशित हुआ था। यह अनुवाद स्वर्गीय श्रीमान् पं० घनश्यामदासजी शास्त्री न्यायतीर्थ द्वारा हुआ था किंतु उसको समाप्त हुये आज करीब कई वर्ष हो गये। लोगों की मांग इस ग्रंथ के स्वाध्याय करने की अधिक पाई गई इसलिये हमारे प्रिय भाई नेमीचन्द बाकलीवाल मालिक जैन-ग्रंथ-कार्यालय ने हमसे इस ग्रंथको फिर से लिखने के लिये आग्रह किया। हमने भी उनके कहे अनुसार तथा इस पुनीत पुराणको स्वाध्याय करने की लोगों की अधिक अभिरुचि देखकर इस ग्रन्थ को लिख दिया है। लिखते समय इस बात की कोशिश की कि कहीं संस्कृत की कोई प्रति मिल जाये किन्तु वह प्राप्त नहीं हुई। पीछे एक प्राचीन प्रति उत्तरपाड़ा के श्री दिगम्बर जैन मन्दिर से स्वर्गीय कविवर बुलाकीदासजी विरचित पद्यमय मिली, उसके आधार से इसको लिखा है। इसके लिखने में मुझे श्रीमान् स्वर्गीय विद्वद्वर पं० घनश्यामदासजी शास्त्री न्यायतीर्थ द्वारा अनुवादित प्रति से बहुत कुछ सहायता मिली, इसलिये मैं उन स्वर्गीय महानुभाव का चिर कृतज्ञ हूं।

मेरा ग्रन्थ लिखने का यह प्रथम ही प्रयास है, दूसरे इसके लिखने के लिये समय भी पर्याप्त नहीं मिला, इसलिये भूलों का रह जाना तथा ग्रंथकारके भावों का स्पष्ट विवेचन न होना सम्भव है। विज्ञ पाठकों से निवेदन है कि वे उसको सुधारकर पढ़ेंगे और मुझे इसके लिये क्षमा प्रदान करेंगे।

निवेदक :—

श्रीनिवास जैन शास्त्री "श्रीकर"

(आगरान्तर्गत चिरहौली वास्तव्य)

❋ शास्त्र पढ़ने के पूर्व इस मंगलाचरण को अवश्य पढ़ें ❋
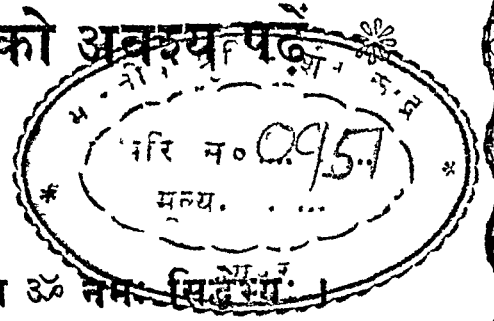
जय ॐ नमः सिद्धेभ्यः । जय ॐ नमः सिद्धेभ्यः । जय ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरल शब्दघनौघप्रक्षालित सकलभूतलमलकलंका ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

परमगुरवे नमः परम्पराचार्य गुरवे नमः । सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म संबंधकं भव्यजीवमनप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं "श्रीपांडवपुराण"❋ नामधेयं अस्य मूलग्रंथकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तत्प्रत्युत्तरग्रंथकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रति-गणधरदेवास्तेषां वचनोऽनुसारतामासाद्य कुन्दकुन्दाम्नायी श्रीमत् शुभचन्द्रा-चार्येण❋ विरचितं श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

---

*जो शास्त्र पढ़ते हो, उसका नाम लेना चाहिए । *जिन आचार्यों का बना हुआ ग्रंथ हो, उनका नामोच्चारण करना चाहिए ।

-: हमारे अन्य प्रकाशन :-

- ❀ श्री वृहज्जिनवाणी संग्रह
- ❀ श्री प्रद्युम्न चरित्र
- ❀ श्री पार्श्व पुराण
- ❀ श्री विमल पुराण
- ❀ चौबीसी पूजा (रामचन्द्र कृत)
- ❀ चौबीसी पूजा (वृन्दावन कृत)
- ❀ तत्वार्थसूत्र भक्तामर स्तोत्र
- ❀ सुकुमाल चरित्र

जैन ग्रन्थ मिलने का पता :—

गुलाबचन्द बाकलीवाल

बाकलीवाल प्रिन्टर्स

मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान)

※ श्री मज्जिनेन्द्राय नमो नमः ※

श्री शुभचन्द्र भट्टारक विरचित

—: पांडव पुराण :—

(जैन - महाभारत)

※ मङ्गलाचरण ※

छप्पय—सेवत सत सुरराय स्वय सिद्ध सिव सिद्धिमय, सिद्धारथ सरवस नय प्रमाण संसिद्धि जय ।
करम कदन करतार करण हरन कारण वरन, असरण सरण अधार मदन दहन साधन सदन ।
इह विधि अनेक गुणगण सहित जगभूषण दूषण रहित, तिहिं नंदलाल बालक नमत सिद्धि हेत सर्वज्ञ नित ।।

श्री सिद्ध भगवानको नमस्कार है, जिनकी कि शत-इन्द्र सेवा करते हैं। जो सिद्धिके दाता और भण्डार हैं। जिनके सभी कार्य सिद्ध हो चुके हैं तथा जो नय प्रमाणसे प्रसिद्ध है, जिन्होंने कर्मोको नष्ट कर दिया है, जो अशरणोंके शरण हैं और कामदेवको नष्ट करनेवाले हैं। इस तरह अनेक गुणोंसे सहित जगतके आभूषण सर्वज्ञ प्रभु मेरे लिए सिद्धि प्रदान करें।

श्री आदि तीर्थंकर प्रभुको नमस्कार है, जो कि धर्मके नायक और धर्म-तीर्थके प्रवर्तन करानेवाले हैं तथा बैलके चिन्हसे चिन्हित हैं एवं कर्मभूमिके प्रारम्भमे सर्व प्रकारकी व्यवस्था बतानेके कारण आदि ब्रह्मा हैं वे मेरे इस कार्य की सिद्धि करें।

चन्द्रमाके समान है शरीरकी कान्ति जिनकी तथा चन्द्रमाके चिन्हसे युक्त मनोहर है चरण कमल जिनके, ऐसे उन चन्द्रप्रभ भगवानका मैं स्तवन करता हूँ।

शान्तिस्वरूप और शान्तिको करनेवाले सोलहवें तीर्थंकर श्रीशान्तिनाथ भगवानकी मैं स्तुति करता हूँ। जो शान्तिनाथ स्वयं पापरहित है, भव्यजीवोंके

कर्मशत्रुओंको शान्त करनेवाले है तथा हिरणके चिन्हसे युक्त हैं, वे शान्तिनाथ प्रभु मुझे शान्ति प्रदान करें।

धर्मरूपी रथकी धुरा, तीनलोकके नाथ और कामदेवको चकनाचूर करनेवाले ऐसे बाईसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ भगवानका मै स्मरण करता हूं।

जो बाल्यावस्थामें ही कामदेवको विजय कर वीर, अतिवीर, महावीर, सन्मति, वर्धमान नामोसे प्रसिद्ध हुए हैं ऐसे अन्तिम तीर्थंकर श्रीवर्धमान मेरी रक्षा करें।

चार ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान) के धारक, संघके नायक और ज्ञानके पुंज ऐसे गौतम गणधरस्वामीके गुणोंका मै स्मरण करता हूं।

जगतके प्राणियोंको यथार्थ बोध करानेवाली, सबको हितकर ऐसी जिनवाणी माताको नमस्कार करता हूं।

जो कर्म शत्रुओके साथ लड़ाईमे स्थिर रहकर आत्मस्वरूपमे दृढ़ रह, जन्मजरारूपी योद्धाओंको जिन्होंने पछाड़ दिया, ऐसे पूज्य युधिष्ठिर मेरे मनोमन्दिरमे विराजे।

जिन्होंने महाभयानक कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेमें विजय प्राप्त की, इसीलिये "भीम" इस संज्ञाको धारण किया ऐसे महामुनि भीमका मै स्मरण करता हूं। वे मेरे कर्मशत्रुओंको नष्ट करे।

जिनकी आत्मा दृष्टिके अगोचर होकर भी अनुभवमें आ रही है। जो अपनी आत्मामें ही रमणशील है, कामदेवसे रहित है ऐसे अर्जुन महामुनि मेरे मनमन्दिरमें विराजे।

जिन्होंने कर्मसमूहको नष्ट कर दिया, जो कलावान हैं, पापोंको नाश करनेवाले हैं, ऐसे नकुल मेरे हृदयमें विराजे।

जो गुणोके पिटारे है तथा देवतागण जिनकी सेवा करते हैं, ऐसे सूर सुभट साहसी सहदेव मेरे मनमन्दिरमे विराजे।

वे श्रुतकेवली भद्रबाहु महाराज जयशील हों, जो महान तपस्वी और कल्याणके पुंज है, जिनकी कीर्ति संसारमें प्रसारित है जिनको संसारके प्राणियों को सहारा देनेके कारण महाबाहु कहते है वे मुझे इस कार्यमें सद्ज्ञान प्रदान करे।

जिनकी शिष्य परम्परा जगत प्रसिद्ध है, जिन्हें सारा संसार नमस्कार करता है वे स्वामी कार्तिकेय मुनि मेरी सहायता करें।

वे जगत्वंश कुन्दकुन्द स्वामी जयवन्त हों, जिन्होंने गिरनार पर्वतपर पाषाण की बनी हुई 'ब्राह्मी' देवीसे यह साक्षी दिलाई कि "दिगम्बर जैनधर्म ही आद्य-धर्म है।"

जिन्होंने देवागम जैसे गंभीर स्तोत्रकी रचना कर युक्तिवादसे आप्तकी परीक्षा कर यह निश्चित कर दिया कि वास्तवमे आप्त-देव जिनेन्द्रभगवान ही हो सकते हैं और नहीं। जिनके सभी कार्य कल्याणमय है जो ज्ञानगुणमें लीन हैं, ऐसे तार्किक महामुनि समंतभद्रस्वामी मुझको कल्याण करें। पूज्य पुरुष भी जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं इसीकारण जिनका नाम "पूज्यपाद" सार्थक हुआ। जो न्याय व्याकरण वैद्यक आदि अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता हैं उन जगत्-पूज्य पूज्यपाद स्वामीको मैं मन-वचन-कायसे नमस्कार करता हूं। वे कलंक रहित अकलंक देव मुझे ज्ञान प्रदान करें, जिन्होंने घड़ेमें बैठी हुई तारादेवीको बातकी बातमें चुप कर दिया और संसारमें जैनधर्मकी ध्वजा फहरा दी। उन जयसेन यतिकी जय हो जो वास्तवमें जिनसेन है अर्थात् सम्यग्दृष्टि आदिकोंमें प्रमुख है और सरस्वतीके मन्दिर हैं; जिनका यश संसारमें प्रसिद्ध हो रहा है। वे गुणभद्र गुरू मेरी सहायता करे जो पुराणरूप पहाड़पर प्रकाश डालनेके लिये सूर्य के समान हैं। उनके पुराणको देखकर तथा अन्य संसारमें प्रसिद्ध कथाके आधार पर यह "पांडव पुराण" नामक ग्रंथ लिखा जाता है। इसका दूसरा नाम भारत अथवा महाभारत भी है। कहां तो इतना गंभीर यह पुराण-समुद्र और कहां इसकी थाह लेनेको सर्वथा असमर्थ मेरी तुच्छ बुद्धि! इन दोनोंकी थोड़ी भी बराबरी नहीं, तो भी मैंने जो इस ग्रन्थके कहनेका साहस किया है वह मेरा अति साहस है। मेरे इस साहसको देखकर लोग हंसेंगे तो अवश्य, परंतु फिर भी पुराण शास्त्र-पारंगत जिनसेन आदि महाकवियोंका स्मरण करनेसे मुझे जो पुण्यलाभ हुआ है उसके बलसे मैं इस ग्रंथ समुद्रमे अवगाहन करता हूं यानी इस ग्रंथके लिखनेका साहस करता हूं। जिसप्रकार बोलनेकी इच्छा करनेवाले गूंगे और अत्यन्त उन्नत सुमेरु पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करनेवाले पंगु पुरुषकी लोग हंसी उड़ाते है उसीतरह मेरे इस अति साहसके लिये वे मेरी भी हंसी उड़ावें तो

इसमें कोई नवीन बात नहीं है।

अथवा जिसप्रकार एक दुबली पतली गाय दूध पिलाकर अपने बच्चेको पालनेका शक्तिभर प्रयत्न करती है वैसे ही यद्यपि मैं अल्पज्ञ हूं तो भी अपनी शक्तिके अनुसार इसके लिखनेका प्रयत्न करता हूं।

इस ग्रंथमे जो भी कुछ लिखा जायगा वह यद्यपि प्राचीन महर्षियोंकी रचनासे कोई नयापन न होगा तो भी इसकी उपादेयतामे कमी नहीं आयेगी जिसप्रकार कि दीपक सूरजके द्वारा प्रकाशित पदार्थोंको ही प्रकाशित करता है तब भी वह उपादेय ग्राह्य है।

यद्यपि जगतमे पलाश आदिके निःसार और निरर्थक वृक्षोंके समान दुष्ट स्वभाववाले कवि बहुत है और आम आदि उत्तम वृक्षोके समान उत्तम स्वभाव वाले कम हैं, तो भी कितने ही सज्जन पुरुष अब तक मौजूद है जो सुवर्णमेसे किट्टि कालिमादि मैलको साफ करनेवाली आगकी भांति कविताके दोषोंको छोड़कर उसके गुणोंपर ही दृष्टि देते है और उसका आदर करते हैं, परन्तु असत्पुरुषोंका—दुष्ट पुरुषोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे सूरजको दोष देनेवाले उल्लू पक्षीकी तरह दूसरोकी कृति रचनाको दोष ही दोष दिया करते हैं, उन्हे उनमे गुण ही नहीं सूझते, उनका स्वभाव ठीक उस आगकी तरह है जो जलाकर दाह पैदा करती है किन्तु सत्पुरुषोंका स्वभाव इससे विपरीत है अर्थात् उन मेघोंके समान है जो निरपेक्षतासे लोगोंको ठंडा और मीठा जल पिलाकर उनकी प्यासको बुझा रहे हैं। दुष्ट पुरुष मतवाले पुरुषके समान होते हैं, उनको हेयोपादेयका कुछ भी ज्ञान नहीं होता, किन्तु अपने दुष्ट स्वभावसे सारे संसारको दुष्ट बना डालनेकी चेष्टामें लगे रहते है। सज्जन पुरुष समयपर बरसनेवाले मेघोके समान होते है वे अपने अमूल्य उपदेशों द्वारा मनुष्योंको हितकी तरफ प्रवृत्ति कराकर सुखी बनानेकी चेष्टा करते है। जिस तरह सर्प विषको और चन्द्रमा अमृतको देता है उसीतरह दुष्ट पुरुष संसारको दुःख और सज्जन पुरुष सुख देते है। इसप्रकार सज्जन-दुर्जनके स्वभावका वर्णन है। इस पर वाचक ध्यान देगे और उससे लाभ उठावेगे।

आचार्योंका मत है कि हरएक कथामे छह बाते—१. मंगल, २. निमित्त, ३. कारण, ४. कर्ता, ५. अभिधान, ६. संख्या अवश्य ही होनी चाहिये, क्योंकि

इसके बिना कथाका मूल्य नहीं। इसलिये इन बातों पर विचार करते है।

१. मंगल—ग्रन्थके प्रारम्भमें जिनेन्द्रदेवका गुणगान किया गया हैं यही इस ग्रन्थमें मंगल है क्योंकि मंगलका मम् अर्थ गालन अर्थात् पापविनाशन अथवा मंग नाम सुखका है, सुखको जो लावे सो मंगल कहलाता है, यह इस ग्रंथमे मौजूद है। इस मंगलके करनेसे भव्य जीवोंका कर्म—मल धुल जाता है।

२. निमित्त—इस ग्रन्थके रचे जानेका निमित्त पापका विनाश और पुण्यकी प्राप्ति माना गया है सो इस ग्रन्थमे मौजूद है क्योंकि इसके प्रणयनसे मेरे और श्रोताओंके पाप-कर्म हल्के होंगे।

३. कारण—इस ग्रन्थके रचनेका कारण भव्यजीवोंके चित्तका समाधान माना गया है क्योंकि यह कथा परमोपकारक प्रसिद्ध श्रोता श्रेणिक राजाके प्रश्न करनेपर उनके चित्तको समाधान करनेके लिये श्री १००८ श्री जगद्वंद्य श्री महावीर स्वामीने कही थी।

४. कर्त्ता—इस ग्रंथके मूल कर्ता तो श्री तीर्थंकर भगवान है और उत्तर-कर्ता श्री गौतमगणधर हैं तथा विष्णुनन्दि, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रबाहु आदि श्रुतकेवली और आचार्य ऋषिगण है।

५. अभिधान—अभिधान नामको कहते है सो इस ग्रंथका नाम "पांडव-पुराण" है, क्योंकि इस ग्रन्थमें पुराण पुरुषोंकी कथा कही गयी है इसलिये तो इसको पुराण कहते हैं और वे पुराण-पुरुष पाण्डव हैं इसलिये इसका नाम पांडवपुराण है।

६. संख्या—अर्थतः तो इस ग्रंथकी संख्या अनन्त है पर अक्षर रचनाके हिसाबसे संख्यात ही है।

इसप्रकार छह बातोंपर विचारकर पुराणकी रचना करनी चाहिये, इस नियमानुसार यहांपर इन बातोंका विचार किया गया है, किन्तु ये छहों ही बातें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावके भेदसे पांच ही हैं। इस तरह विचार कर ही गुणी पुराणकार पुराणको प्रारम्भ करते है तथा श्रोताओंको सम्यग्ज्ञानके लिए ग्रंथकी आदिमें वक्ता और श्रोता आदिके लक्षणोंपर भी विचार करते हैं।

वक्ताका लक्षण—शास्त्रके उपदेश करनेवालेमें नीचे लिखे गुणोंका होना अत्यन्त जरूरी है। प्रथम तो भव्य हो क्योंकि बिना भव्य हुए वह अपना आत्म-

कल्याण ही नहीं कर सकता है, पात्रता भव्यतासे ही आती है। दूसरा गुण वक्तामे शुद्ध और स्पष्ट बोलनेवाला होना चाहिये। कुलीन, विद्वान्, व्याख्याता, धीरवान्, चारित्रवान् और व्यवहार कुशल होना चाहिए तथा शान्तचित्त, निष्पृह मंद कषायी, इंद्रियविजयी शांतमूर्ति, देखनेवालोंको प्रिय होना चाहिए। छहोंमतोंके शास्त्रोंका पूर्णज्ञाता आगमका प्रेमी चतुर और दूसरोंके प्रश्नोंको शांतिपूर्वक सुनकर आगम और युक्ति अनुसार उत्तर देनेवाला होना चाहिए। तथा प्रश्न होनेके पूर्व ही उत्तर जाननेवाला होना चाहिये। कवियों मे उत्तम और दूसरोंकी निन्दा करनेवाला नहीं होना चाहिये आदि गुणों सहित वक्ता प्रशंसनीय कहा गया है।

श्रोताका लक्षण---शास्त्रका उपदेश सुननेवाला वह प्रशंसनीय कहा गया है--जो शीलसे विभूषित हो, शुभदर्शन हो, अच्छे लक्षणोंसे युक्त हो, श्रीमान् हो, सदाचारी हो, चतुर हो, व्रतोंका धारक, दाता, भोक्ता, धर्मात्मा पुरुषोंको आश्रय देनेवाला, चतुर, हेयोपादेयका विचार करनेवाला हो तथा उदार और पवित्रचित्त हो, तर्क-वितर्क द्वारा पदार्थका विचार करनेवाला हो, हठग्राही न हो, जिनमतकी जिसके पक्ष हो, कुलीन हो, प्रवीण हो, गुरुकी आज्ञाका पालक हो, विवेकी और विनयी हो, विधि विधानका यथार्थ ज्ञाता हो, सौम्यमूर्ति सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी हो, दयालु और शांतचित्त हो, धर्मज्ञ और धर्मात्मा हो, मिष्ट और मितभाषी हो, सरलस्वभावी आदि गुणोसे सहित श्रोता प्रशंसनीय कहा गया है।

श्रोताके शुभ अशुभ आदि बहुतसे भेद शास्त्रोंमें बतलाये गये है। उनमें जिन श्रोताओंका स्वभाव हंस और गायके स्वभावके समान है वे श्रोता उत्तम श्रोता है और जिनका स्वभाव मिट्टी तोता आदिके स्वभावके समान है वे मध्यम श्रोता कहे गये है। तथा जिनका स्वभाव बिल्ली, बकरा, शिला, सर्प, कौवा, छिद्रसहित घड़ा, चलनी, डांस, भैसा और जौंकके समान है वे श्रोता अधम कहे गये है।

असत् (अधम) श्रोताओंको उपदेश देना, शास्त्र सुनाना व्यर्थ है जिस प्रकार कि फूटे मिट्टीके घड़ेमे पानी नहीं ठहरता है, उसीप्रकार उनके हृदयपर भी उपदेशका कुछ भी असर नहीं पड़ता है किन्तु जो सत् श्रोता है उनको दिया

हुआ उपदेश उर्वरा भूमि (उपजाऊ जमीन) में बोये हुए बीजकी तरह कई गुणा फलित होता है।

कथा---वाक्योंकी रचनाके द्वारा पदार्थोंके स्वरूप वर्णनको एवं पुराण पुरुषोंके चरित्रवर्णन करनेको कथा कहते हैं। ऐसी कथाके दो भेद हैं एक सत्कथा और दूसरी विकथा।

सत्कथा--उसे कहते है जिसमें जीवादि तत्त्वोंका निरूपण किया गया हो, व्रत, ध्यान, तप, दान, संयम आदिका तथा पुण्य पापका फल और चरमशरीरी पुरुषोंके चरित्रोंका वर्णन हो। इस कथाके कहने और सुननेसे धर्म अर्थकी वृद्धि होती है, सुख मिलता है और पुण्यकी प्राप्ति होती है। इस कथाके चार भेद हैं---१ संवेगिनी, २ निर्वेगिनी, ३ आक्षेपिनी, ४ विक्षेपिनी।

संयोगिनी कथा--उसे कहते है जिसके सुननेसे जीवोंके परिणाम संवेगकी तरफ ऋजु हों।

निर्वेगिनी कथा--वह कहलाती है जिसमें धर्म और धर्मके फलका तथा वैराग्यका कथन हो।

आक्षेपिनी कथा--वह है जिसमें तर्क वितर्कके द्वारा स्याद्वाद अनेकान्त मतका मंडन किया गया हो और दूसरोंके द्वारा कल्पित मिथ्या मतोंका खंडन किया गया हो। इस कथाके कहने और सुननेसे ज्ञानका विकास होता है।

विक्षेपिनी कथा---उसे कहते हैं जिसमें सम्यक्रत्नत्रय, सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका निरूपण हो, मिथ्यादर्शनादिका खंडन किया गया हो। इस कथाके कहने और सुननेसे आत्मीय गुणोंकी वृद्धि होती है। इसप्रकार चार सत्कथाओंका संक्षेपमें निरूपण है।

विकथा---खोटी कथा को कहते हैं। इस कथामें मिथ्यात्वियों द्वारा कपोल कल्पित झूंठी बातें होती हैं। इस कथाके कहने और सुननेसे पापका बंध और मिथ्यात्वकी पुष्टि होती है।

हर एक सत्कथाके प्रारम्भमें नीचे लिखी सात बातोंका होना अत्यंत आवश्यक है---१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ तीर्थ, ६ फल, ७ प्रकृत; इसी नियमके अनुसार यहां पर यह सब निरूपण किया गया है। अब इस पवित्र पुराणका प्रारम्भ किया जाता है। भव्यजन मन स्थिरकर इस पुण्यमयी कथा

को पढे, सुनें और मनन करें।

असंख्याते द्वीपोंके मध्य जम्बूद्वीप एक प्रसिद्ध अनुपम द्वीप है। उस द्वीप में भरतक्षेत्र नामका एक पवित्र मनोहर क्षेत्र है। इसके छह खण्ड है। उनमें एक आर्यखण्ड और पांच म्लेच्छखण्ड है। आर्यखण्डमे धीर वीर और इन्द्र जैसी विशाल विभूतिके अधिपति आर्य पुरुषोंका निवास है। वे आर्यपुरुष परम दयालु अभयदान देनेवाले और धर्मात्मा पुरुष होते है। ऐसे इस आर्यखण्डमें 'विदेह' नामका एक सुन्दर देश है। यह देश भी उत्तम गुणोसे युक्त नरनारियों से विभूषित है। वहांके अधिवासियोंको किसी भी बातकी कमी नहीं है। सब लोग बड़े आनन्दसे अपना समय बिताते है। वहांसे लोग सदा ही विदेह "मुक्त" होते है। मुक्तिका मार्ग सदाकालके लिये वहांसे खुला है। इसीसे इस देशका नाम विदेह पड़ा है।

विदेह देशमे पृथ्वीका भूषण कुंडनपुर नामक एक सुन्दर नगर है। इस नगरमे उत्तमोत्तम गुणोसे युक्त पुरुष निवास करते है। उनसे यह ऐसा जान पड़ता है कि मानों इंद्र आदि देवतागणोंका निवास स्थान अमरपुर ही है। कुंडनपुरके राजा सिद्धार्थ थे। ये नाथवंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके सभी अर्थ सिद्ध थे, किसी भी बातकी कमी नहीं थी। उनकी रानीका नाम त्रिशलादेवी था। रानी त्रिशला रूप और शीलसे अत्यन्त सुन्दर थीं, वे ठीक नदीकी उपमा को धारण करती थीं, जिसप्रकार नदी पहाड़से निकलकर समुद्रमे जाकर गिरती है उसीप्रकार ये भी चेटकरूप पहाड़से उत्पन्न हो सिद्धार्थ समुद्रमें जाकर मिल गई थीं, नदी समुद्रकी प्रिया होती है, वे सिद्धार्थ समुद्रकी प्यारी थीं, इसीसे लोग इनको प्रियकारिणी कहते थे। वे उत्तम गुणोंकी खान थीं, सभी कलाओं मे प्रवीण और हरएक काममे चतुर थीं। भगवान महावीरके गर्भमे आनेके छह मास पूर्व ही से छप्पन देवकुमारियां नाना प्रकारसे सेवा सुश्रूषा करती थीं तथा देवतागण भी अनेक प्रकारकी दिव्य वस्तुये लाकर जिनकी उपासना करते थे, इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर द्वारा जिनके आंगनमे रत्नोंकी वृष्टि की जाती थी, ऐसी वह त्रिशलादेवी एक समय अपने शयनागारमे पलंगपर सुखकी नींद ले रही थीं, रात्रिका पिछला पहर था उससमय वह सोलह स्वप्नोको देखती हुई।

वे स्वप्न ये थे—१ हाथी, २ बैल, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ युगल माला,

६ चन्द्रमा, ७ सूरज, ८ युगल मछली, ९ कलश, १० तालाब, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ व्योमयान (देवताओंका विमान), १४ भूमिगृह (धरणेन्द्रका विमान), १५ रत्नराशि, १६ शुद्ध अग्नि-शिखा।

प्रातःकालीन क्रियाओंसे निवृत्त होकर महारानीने देखे हुए सोलह स्वप्नोंका फल महाराज सिद्धार्थसे पूछा और उन्होंने उन स्वप्नोंका फल कहकर रानीको संतुष्ट किया।

इसी समय कोमलांगी गजगामिनी सुलक्षणा रानी त्रिशलादेवीने स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानसे चयकर आये हुए पुण्यशाली देवको अपने गर्भ-कमलमें धारण किया। यह दिन आषाढ़ सुदी ६ और हस्त नक्षत्र था। इस दिन प्रभुका गर्भ-कल्याणक मनानेके लिए स्वर्गसे इन्द्र और देवतागण मय परिवारके गाजे-बाजों सहित अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर कुण्डनपुर आये और उन्होंने वहां भक्ति-भावसे खूब आनन्दपूर्वक भगवानका गर्भोत्सव मनाया तथा भगवानकी माताकी भक्ति-भावसे पूजाकी। माताको किसी प्रकारका गर्भ-सम्बन्धी कष्ट नहीं हुआ, देवियां नानाप्रकारसे माताकी सेवा करने लगीं। धीरे-धीरे जब गर्भके दिन पूरे हुए, तब चैत्र सुदी तेरसके दिन त्रिशलादेवीने जगद्वंद्य भगवान वीरप्रभुको जन्म दिया, जिसप्रकार कि पूर्व दिशा सूर्यको जन्म देती है, भगवानके जन्म होनेसे दशों दिशायें उज्ज्वल होगई, सारे संसारमें आनन्द-मंगल छा गया। जिन नरकोंमें नारकियोंको सदा ही मार-काट लगी रहती है, उनको भी क्षणिक सुख मिला। चौदशके दिन बड़ी भारी विभूतिके साथ इन्द्र मय अपने परिवारके ऐरावत हाथीपर चढ़कर स्वर्गसे भगवानका जन्मकल्याणक मनानेके लिए कुंडनपुर आये और वहांसे भगवानको सुमेरु पर्वतपर गाजे-बाजेके साथ ले गए। सुमेरु पर्वत पर उन्होंने भगवानका बहुत ठाठ-बाटके साथ क्षीर समुद्रके जलसे एकहजार आठ कलशाओं द्वारा भगवानका महाभिषेक किया और कर्म शत्रुओंपर विजय लाभ करनेवाले भगवान "वर्द्धमान" नाम प्रगट किया और भगवानको स्वर्गीय वस्त्राभूषण पहनाये।

तीस वर्षकी अवस्था तक तो भगवान गृहस्थी (घरमें) रहे, बाद किसी वैराग्यके कारणको पाकर संसारसे विरक्त होगये और सब कुटुम्बको ऐसा दरशाया कि ये भोग विनश्वर हैं।

को पढें, सुनें और मनन करें।

असंख्याते द्वीपोके मध्य जम्बूद्वीप एक प्रसिद्ध अनुपम द्वीप है। उस द्वीप में भरतक्षेत्र नामका एक पवित्र मनोहर क्षेत्र है। इसके छह खण्ड है। उनमे एक आर्यखण्ड और पांच म्लेच्छखण्ड हैं। आर्यखण्डमे धीर वीर और इन्द्र जैसी विशाल विभूतिके अधिपति आर्य पुरुषोंका निवास है। वे आर्यपुरुष परम दयालु अभयदान देनेवाले और धर्मात्मा पुरुष होते है। ऐसे इस आर्यखण्डमें 'विदेह' नामका एक सुन्दर देश है। यह देश भी उत्तम गुणोसे युक्त नरनारियों से विभूषित है। वहांके अधिवासियोंको किसी भी बातकी कमी नहीं है। सब लोग बड़े आनन्दसे अपना समय बिताते है। वहांसे लोग सदा ही विदेह "मुक्त" होते है। मुक्तिका मार्ग सदाकालके लिये वहांसे खुला है। इसीसे इस देशका नाम विदेह पड़ा है।

विदेह देशमे पृथ्वीका भूषण कुंडनपुर नामक एक सुन्दर नगर है। इस नगरमे उत्तमोत्तम गुणोसे युक्त पुरुष निवास करते है। उनसे यह ऐसा जान पड़ता है कि मानो इंद्र आदि देवतागणोंका निवास स्थान अमरपुर ही है। कुंडनपुरके राजा सिद्धार्थ थे। ये नाथवंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके सभी अर्थ सिद्ध थे, किसी भी बातकी कमी नहीं थी। उनकी रानीका नाम त्रिशलादेवी था। रानी त्रिशला रूप और शीलसे अत्यन्त सुन्दर थीं, वे ठीक नदीकी उपमा को धारण करती थीं, जिसप्रकार नदी पहाड़से निकलकर समुद्रमें जाकर गिरती है उसीप्रकार ये भी चेटकरूप पहाड़से उत्पन्न हो सिद्धार्थ समुद्रमे जाकर मिल गई थीं, नदी समुद्रकी प्रिया होती है, वे सिद्धार्थ समुद्रकी प्यारी थीं, इसीसे लोग इनको प्रियकारिणी कहते थे। वे उत्तम गुणोकी खान थीं, सभी कलाओं मे प्रवीण और हरएक काममे चतुर थीं। भगवान महावीरके गर्भमे आनेके छह मास पूर्व ही से छप्पन देवकुमारियां नाना प्रकारसे सेवा सुश्रूषा करती थीं तथा देवतागण भी अनेक प्रकारकी दिव्य वस्तुये लाकर जिनकी उपासना करते थे, इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर द्वारा जिनके आंगनमे रत्नोंकी वृष्टि की जाती थी, ऐसी वह त्रिशलादेवी एक समय अपने शयनागारमे पलंगपर सुखकी नींद ले रही थीं, रात्रिका पिछला पहर था उससमय वह सोलह स्वप्नोको देखती हुई।

वे स्वप्न ये थे—१ हाथी, २ बैल, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ युगल माला,

६ चन्द्रमा, ७ सूरज, ८ युगल मछली, ९ कलश, १० तालाब, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ व्योमयान (देवताओंका विमान), १४ भूमिगृह (धरणेन्द्रका विमान), १५ रत्नराशि, १६ शुद्ध अग्नि-शिखा।

प्रातःकालीन क्रियाओंसे निवृत्त होकर महारानीने देखे हुए सोलह स्वप्नोंका फल महाराज सिद्धार्थसे पूछा और उन्होंने उन स्वप्नोंका फल कहकर रानीको संतुष्ट किया।

इसी समय कोमलांगी गजगामिनी सुलक्षणा रानी त्रिशलादेवीने स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानसे चयकर आये हुए पुण्यशाली देवको अपने गर्भ-कमलमें धारण किया। यह दिन आषाढ़ सुदी ६ और हस्त नक्षत्र था। इस दिन प्रभुका गर्भ-कल्याणक मनानेके लिए स्वर्गसे इन्द्र और देवतागण मय परिवारके गाजे-बाजों सहित अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर कुण्डनपुर आये और उन्होंने वहां भक्ति-भावसे खूब आनन्दपूर्वक भगवानका गर्भोत्सव मनाया तथा भगवानकी माताकी भक्ति-भावसे पूजाकी। माताको किसी प्रकारका गर्भ-सम्बन्धी कष्ट नहीं हुआ, देवियां नानाप्रकारसे माताकी सेवा करने लगीं। धीरे-धीरे जब गर्भके दिन पूरे हुए, तब चैत्र सुदी तेरसके दिन त्रिशलादेवीने जगद्वंद्य भगवान वीरप्रभुको जन्म दिया, जिसप्रकार कि पूर्व दिशा सूर्यको जन्म देती है, भगवानके जन्म होनेसे दशों दिशायें उज्ज्वल होगई, सारे संसारमें आनन्द-मंगल छा गया। जिन नरकोंमें नारकियोंको सदा ही मार-काट लगी रहता है, उनको भी क्षणिक सुख मिला। चौदशके दिन बड़ी भारी विभूतिके साथ इन्द्र मय अपने परिवारके ऐरावत हाथीपर चढ़कर स्वर्गसे भगवानका जन्मकल्याणक मनानेके लिए कुंडनपुर आये और वहांसे भगवानको सुमेरु पर्वतपर गाजे-बाजेके साथ ले गए। सुमेरु पर्वत पर उन्होंने भगवानका बहुत ठाठ-बाटके साथ क्षीर समुद्रके जलसे एकहजार आठ कलशाओं द्वारा भगवानका महाभिषेक किया और कर्म शत्रुओंपर विजय लाभ करनेवाले भगवान "वर्द्धमान" नाम प्रगट किया और भगवानको स्वर्गीय वस्त्राभूषण पहनाये।

तीस वर्षकी अवस्था तक तो भगवान गृहस्थी (घरमें) रहे, बाद किसी वैराग्यके कारणको पाकर संसारसे विरक्त होगये और मय कुटुम्बको ऐसा दरशाया कि ये भोग विनश्वर हैं।

इसके पश्चात् भगवानको विरक्त हुआ जानकर अपना नियोग पूरा करनेके लिये पांचवे ब्रह्म स्वर्गसे लौकांतिक देव उनकी सेवामें आए और उनके इस कार्यकी प्रशंसा करने लगे तथा भक्ति प्रदर्शित कर चले गये। पीछे स्वर्गके इंद्र आदि देवतागण आये और उन्होंने प्रभुको भक्ति-भावसे नमस्कार किया, स्तुतिकी, पूजाकी। बाद भगवानको स्नान कराकर दिव्य वस्त्र-आभूषण पहिनाये और भक्ति-भावसे विनम्र हो जगतके भूषण भगवानकी फिर पूजा स्तुति की तथा मुक्तकण्ठसे उनके इस वैराग्यरूप कार्यकी प्रशंसा की। इसके बाद वे भांति-भांतिके चित्रोंसे चित्र-विचित्र चन्द्रप्रभा नामकी सुन्दर पालकीमें श्रीवीर-प्रभुको चढ़ाकर नगरसे बाहर उद्यानकी तरफ ले गये। वहां लोकोत्तम वीर भगवानने मगसिर बदी दशमीके दिन हस्त नक्षत्रमें षष्ट योगके बाद दोपहरके समय जिनदीक्षा—दिगम्बरी दीक्षा धारण की, जिस दीक्षामें शरीर भी हेय समझा जाता है। उसीसमय भगवान महावीर चार ज्ञान—मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्ययज्ञानके* धारक होगये अर्थात् उन्हें मनःपर्ययज्ञान हो गया।

इसके बाद वीरप्रभुने सब देशोंमें मौनावलम्बन धारणकर विहार किया और बारह वर्ष तक घोर तप किया। उनका जहां-जहां भी विहार होता था, वहां-वहांके लोग उनको बड़ी भक्ति-भावसे पारणा कराते थे। विहार करते-करते कुछ दिनोंके बाद भगवान ज्रंभक गांवमे पहुंचे, वहां बहनेवाली ऋजुकूला नामकी नदीके किनारे सालवृक्षका एक सघन जंगल था। भगवान उस जंगलमें एक वृक्षके नीचे स्थित पवित्र शिलापर ध्यानमे मग्न होगये। इसके बाद भगवान वैशाख सुदी दशमीके दिन दोपहरके समय षष्ट योग और हस्त नक्षत्रमे क्षपक श्रेणीपर आरूढ़ हुए और अन्तर्मुहूर्तमे ही उन्होंने दुष्ट घातिया कर्मोंकी सैतालीस प्रकृति, आयुकर्मकी तीन और नामकर्मकी तेरह कुल तिरेसठ कर्म-प्रकृतियोंका नाश कर सम्पूर्ण द्रव्य और उन द्रव्योंकी अनन्तपर्यायोंको एक साथ जाननेवाले पंचमज्ञान—केवलज्ञानको प्राप्त किया।

इसके पश्चात् जगत्वंद्य वीर भगवान सारे संसारमें धर्मका उपदेश करते हुए समवशरण सहित विपुलाचल पर्वतपर पहुंचे। समवशरणकी विभूतिका

* भगवान मति, श्रुति और अवधि-ज्ञानके धारी जन्मसे ही पैदा होते है, मन पर्ययज्ञान दीक्षा लेनेके बाद होता है।

कोई ठिकाना नहीं था। अष्ट प्रातिहार्यों—१ अशोकवृक्ष, २ सिंहासन, ३ छत्र-त्रय, ४ भामण्डल, ५ दिव्यध्वनि, ६ पुष्पवृष्टि, ७ चौंसठचमर, ८ दुन्दुभि-बाजों का बजना इन आठों प्रातिहार्योंसे वह विशेष शोभाको प्राप्त होरहा था। समव-शरणमें आने-जानेवाले लोगोंके शब्दोंसे दशों दिशायें गूंज रही थीं, देवतागण द्वारा लाये गये गौतमादि गणधरदेव भी वहां भगवान्की सेवामें उपस्थित थे। उससमय की शोभा अनुपम थी।

उत्तम गुणोंसे परिपूर्ण मगध नामका वहां उत्तमदेश है, जहांकि धर्मात्मा सज्जन पुरुषोंका निवास है, वह देश ऐसा जान पड़ता है कि मानों देवताओंके रहनेका निवास स्थान स्वर्ग ही है। उस देशमें राजगृह नामका एक सुन्दर धन-धान्यादिसे पूर्ण नगर है। उस नगरमें मनोहारी विशाल राज-मन्दिर बने हुए हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं, मानों इन्द्रके रहनेका पुर ही हो। उस नगरके श्रेणिक राजा थे। वे उत्तम कोटिके नरपुंगव थे, गुणोंके भण्डार थे और सम्यग्-दृष्टि थे, उदार थे, प्रतापशाली और ऐश्वर्यवान थे, नृपगणोंमें शिरोमणि थे। उनके चेलना नामकी महारानी थी, जो कि अत्यन्त सुन्दर और स्त्रियोचित गुणोंसे पूर्ण थी। महाराजका चेलिनीपर अत्यन्त अनुराग था।

एक समय महाराज श्रेणिकको वनपालने यह शुभ संवाद दिया कि विपुलाचल पर्वतपर वीरप्रभुका समवशरण आया है। राजा इस शुभ समाचार से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वनपालको यथोचित पुरस्कार दिया और उसी-समय वीरप्रभुकी वन्दना करनेको गये, जिसप्रकार कि भगवान आदिनाथके शुभ आगमनको सुनकर भरतचक्रवर्ती हर्षित हो वन्दना करनेको गए थे। महा-राज श्रेणिकके साथ चार प्रकारकी सेना थी, हिनहिनाहट करते हुए घोड़े, मदोन्मत्त हाथी, नानाप्रकार वस्तुओंसे सजे हुए मनोरथ रथ, नृत्य करते हुए पयादे, और गुणावली बखान करते हुए भाट साथमें थे। भांति-भांतिके बाजों की ध्वनिसे सब दिशायें गूंज रही थीं बन्दीजन महाराजके यशोगान करते हुए जारहे थे, मतलब यह था कि इस समयकी शोभा अपूर्व थी। थोड़े ही समय बाद महाराज वीरप्रभुका जहां समवशरण विराजमान था उसके पास पहुंचे। पहुंचते ही वे वहां हाथी परसे उतर पड़े और छत्र चमर आदि राजचिन्होंको वहीं छोड़कर भगवानकी सभामें पहुंचे। वहां पहुंचकर उन्होंने तीन लोकके

नाथ भगवान वीरप्रभुको एक मनोहर सिंहासनपर विराजे हुए देखा। जिनके तीन छत्र सिरपर शोभायमान होरहे हैं, देवतागण नानाप्रकारसे जिनके तपश्चरण आदि कार्योंकी प्रशंसा कर रहे हैं, राजा-महाराजा, देवता, इन्द्र आदि जिनके चरणोंकी धूलिको अपने मस्तक पर चढ़ा रहे है, उनकी भक्तिभावसे स्तुति पूजन कर रहे है। इसप्रकार वीरप्रभुके समवशरणकी अनुपम महिमाको देखकर महाराजने भगवानकी वन्दना की और भक्तिभावसे उन्हे नमस्कार किया।

इसके बाद महाराज श्रेणिकने स्तुत्य—स्तवन करने योग्य स्तोता, स्तवन करनेवाला, स्तुति—गुणगान और उसका फल इन चार बातोंको जानकर भगवानकी मन, वचन, कायसे नीचे लिखे अनुसार स्तुति करना प्रारम्भ किया:—

हे तीन लोकके नाथ, देवोके देव, परमदेव वीरप्रभु ! आपके गुण अपार है, इसलिये उन गुणोंको गानेके लिए शक्तिशाली इन्द्र जब असमर्थ है तब मुझ जैसे अल्पशक्तिवाले मन्द बुद्धियोकी तो ताकत ही क्या है जो आपके गुणोंका गान कर सकूं। देवाधिदेव भगवान् ! आप चित्त रहित होकर भी चैतन्य स्वरूप है, इंद्रियोंसे रहित है तो भी निर्मल रूपवाले है, रूप, रस, गंध आदिसे रहित होकर भी उसके जाननेवाले है, कर्म-मलसे रहित निर्मल है, तीन लोकके अधिपति है। हे वीरनाथ प्रभु ! मै आपकी वन्दना कर आपको नमस्कार करता हूं। आपने इस विपुलाचलको सुशोभित कर लोकालोकको प्रकाशित किया है इसलिये आप प्राणी मात्रको पापसे बचानेवाले एक रक्षक है। हे नाथ ! मै आपकी कहां तक प्रशंसा करूं, आपने बालकपनमे ही काम जैसे योद्धाको अपने वशमे कर लिया और खेल-कूदके वक्त सांपोका भेष बनाकर जो देवतागण आपके पास आये थे उन्हे तथा और शत्रुओको जीतकर आपने अपने "वीर" नामको सार्थक कर दिखाया। हे तीन लोकके स्वामी ! एक दिन आप बालक अवस्थामे खेल रहे थे और उसी समय वहां आकाशगामी दो मुनि आये, उन्होंने आपको खेलते हुए देखा और देखते ही उनका संदेह दूर होगया जो कि उनके हृदयको कीलकी भांति व्यथित कर रहा था। इसलिए उन्होंने आपको "सन्मति" कहा और भक्तिभावसे आपकी स्तुति पूजा की। इसीप्रकार हे नाथ ! एकदिन आप मुनि अवस्थामे ध्यानस्थ थे उस वक्त आपके ऊपर शंकरकी दृष्टि जा पड़ी। उसने क्रोधमे आकर आपको भारी उपसर्ग किया किंतु आपको वह रंच-

मात्र भी विचलित नहीं कर सका तब उसने आपको "महावीर" कहा और आपकी भक्ति भावसे स्तुति की। हे भगवान्! आपका ज्ञानचन्द्र पूर्ण वृद्धिगत है इसलिये आपको "वर्द्धमान" कहते हैं। इसतरह महाराज श्रेणिक वीरनाथ भगवानका भक्तिभावसे गद्गद हो स्तवन कर मनुष्योंके कोठे में बैठ गया। पश्चात् भगवान वीरप्रभुने कण्ठ तालु आदिकी क्रियाके बिना ही निरक्षरी दिव्य ध्वनिके द्वारा धर्मोपदेश करना प्रारम्भ किया।

वे कहने लगे कि हे राजन्! धर्ममें मन लगाओ। धर्म करुणा—दयाको कहते हैं। वह धर्म दो प्रकारका है। एक मुनिधर्म और दूसरा श्रावकधर्म। मुनिधर्म वह कहलाता है जहां तिलतुष मात्र भी परिग्रह नहीं रहता, यहां निर्ग्रंथता ही प्रधान है। ग्रन्थ नाम परिग्रहका है और परिग्रह ममत्वबुद्धि-ममता को कहते है। जहां ममत्वबुद्धि अर्थात् ममताका अभाव है वहीं वास्तविक निर्ग्रंथता है और वही मुनियोंका सर्वस्व है। वही दुर्द्धर तप है, वही ध्यान है वही निर्मल ज्ञान और गुण है। उसके बिना मुनि, मुनि ही नहीं कहला सकता है इसलिये इसका—मुनिधर्मका धारण करना अत्यन्त ही कठिन है।

दूसरा श्रावकधर्म है। इसके शील, दान, तप और भावना ये चारभेद हैं। इसधर्मके पालन करनेसे प्राणियोंको स्वर्गादिक उत्तम सुख मिलते है। ऊपर जो चार भेद बतलाए गए हैं उनका संक्षेपमे स्वरूप इसप्रकार है।

शील—ब्रह्मचर्यको कहते है, वह एक देशरूप और सर्वदेशरूपसे पालन किया जाता हैं। जो एक देशरूप पालन किया जाता है उसको "स्वदार संतोष" कहते है अर्थात् अपनी विवाहिता स्त्रीको छोड़कर बाकी स्त्रियोंको माता बहिन और पुत्रीके समान देखना। इसीप्रकार स्त्री स्वकीय पतिको छोड़कर बाकी पुरुषोको पिता, भाई और पुत्रवत् देखे। सर्वदेश ब्रह्मचर्य वह कहलाता है कि मात्र स्त्रियोंका त्याग कर देना। यह शीलव्रत आत्माका वास्तविक स्वभाव है। इस गुणके पालन करनेसे ही अन्य व्रतोंकी रक्षा हो सकती है। शीलव्रतके अभावमे अन्य गुणोकी कुछ भी कीमत नहीं। एक शीलव्रतके होनेपर अन्य गुण अनायास प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए इस शीलगुणको अवश्य ही पालन करना चाहिए।

दान—देना भी श्रावकका आद्य कर्तव्य है। मन, वचन, कायकी शुद्धता-

पूर्वक उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रमें न्यायोपात्त धन खर्च करना, उनको यथा-विधि भक्तिपूर्वक आहारादि कराना सो दान कहलाता है। इस दानके आहार, औषधि, ज्ञान और अभय ये चार भेद है। जहां जिस दानकी आवश्यकता हो वहां वह दान देना चाहिए। इसदानका फल भोग भूमि और स्वर्गादिकी प्राप्ति है। इतना विशेष है कि विधि द्रव्य, दाता और पात्रकी विशेषतासे दानके फल में भी कमी-बेशी हो जाती है।

तप—विषय कषायोंसे इंद्रियोंको हटाकर अनशनादि तप करना, रसोंका परित्याग करना, शरीरको वशमे करना सो तप है। वह तप बाह्य और अभ्यन्तर भेदसे छह २ प्रकार है।

भावना—जिनधर्मके मनन करनेको और चैतन्य स्वरूप आत्माकी या हृदयकी शुद्धि करने को भावना कहते हैं। इस भावनासे आत्म-बलकी वृद्धि होती है।

इसप्रकार वीर प्रभुने धर्मामृतकी वर्षा की, जिसको सुनकर भव्य जीव बहुत ही सुखी हुए। इसके पश्चात् महाराज श्रेणिकको नगर जानेकी इच्छा हुई और भगवानको नमस्कार कर वापिस अपने घर चले गए। पश्चात् इंद्र नरेन्द्रों द्वारा सेवनीय वीरप्रभुने भी और देशोमे भव्य जीवोंके भाग्यवश विहार किया और उनको धर्मका उपदेश दिया। महाराज श्रेणिक घर पहुंचकर रानी चेलनाके साथ आमोद-प्रमोदसे काल व्यतीत करने लगे। रानी चेलना उदार चित्त थी, भगवान् वीरप्रभुका सदा ही ध्यान किया करती थी। इधर श्रेणिक दीन दुखियोको सुखी बनानेके लिए दान देते थे और उधर भगवान वीरनाथ संसारतापसे संतप्त जीवोको शांति पहुंचानेके लिए अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा धर्मका उपदेश करते थे। भगवान महावीरने बहुतसे आर्य देशोमे विहार कर संसारके दुःखोसे संत्रस्त प्राणियोको धर्मका उपदेश दिया और उन्हे शांतिका मार्ग बतलाया, भगवानने जिन देशोमें विहार किया उनके नाम ये है :—

अंग, बंग, कुरुजांगल, कौशल, कलिंग, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, भेदपाट, सुभोटक, मालवा, करनाटक, कर्णकौशल, पराभीर, सुगंभीर और विराट। इसके पश्चात् मगधदेशको पुनः प्रतिबोध करनेके लिए भगवान दुबारा विपुलाचल पर्वतपर आये और वहां वे ऐसे सुशोभित होते हुए मानों पूर्व दिशासे

उदयाचल पर्वतपर सूर्य ही उदय हुआ है। इसके बाद इधर-उधर घूमता हुआ वनपाल वहां आया और वहां वीरप्रभुकी वचन अगोचर विभूतिको देखकर आश्चर्यमें पड़ गया। और विचार करने लगा कि यह बात क्या है ? थोड़ी देर में सब बातें समझ गया और वह सब ऋतुओंके फल-फूल लेकर महाराजके राजमन्दिरमें गया। वहां महाराज एक मनोहर सिंहासन पर विराजमान थे, ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था जो धूपकी बाधाको दूर करता था। महाराजका मस्तक मुकुटसे शोभायमान होरहा था, जिस मुकुटकी किरणें चारों तरफ फैल रही थीं, वे ऐसे जान पड़ती थीं मानों महाराज उनके द्वारा आकाश पट पर अपना चित्र ही अंकित कर रहे हैं। उनकी लम्बी और सशक्त भुजायें उनके पराक्रमको बतलाती थीं। गायक संगीत द्वारा उनका गुणगान करते थे। अनेक राजा महाराजा हाथमें तलवार ले लेकर उनका यशोगान करते थे। महाराज के कानोंमे रत्न जड़ित कुंडल ऐसे मालुम देते थे मानों वे चांद और सूरज ही है। उनके गलेके मनोहर हारकी कांति चारो तरफ विस्तृत होरही थी वह ऐसी जान पड़ती थी मानों दूसरे लोगोंकी हंसी उड़ा रही है। महाराज के कड़े, अगद और बाजूबंदकी कांति अंधकारको दूर करती थी। महाराज अपने दांतों की उज्ज्वल किरणोंसे भूतलको उज्ज्वल करते थे। इसप्रकार अनेक शोभा-युक्त महाराज राजमन्दिरमें बैठे हुए थे, इतनेमें द्वारपालने वनपालके आनेकी सूचना महाराजको दी। महाराजकी आज्ञासे वनपाल अन्दर आया और सब ऋतुओंके फल-फूल महाराजकी भेंटकर तथा उन्हें नमस्कार कर हर्षके साथ बोला कि हे नाथ ! आज विपुलाचल पर्वतपर नाथ वंशके दीपक श्रीवीरप्रभु आए है। हे राजन् ! यह उन्हींका माहात्म्य है कि जो आज वनमें जाति विरोधी दुष्टचित्त व्याघ्री भी अपने बच्चेकी इच्छासे गायके बछड़ेपर प्रेम करती है तथा सिंह और हाथीके बच्चे वैरभावको भूलकर सुखकी इच्छासे एक जगह खेलते हैं। सर्प और नेवला एक स्थानपर रहते हैं। बिल्ली और चूहे एकसाथ प्रेमसे खेलते हैं। जो ताल-तलैया वर्षोसे सूखी पड़ी थीं वे आज जलसे लबालब भर रही हैं, जिनमें कोक, हंस आदि पक्षी सुन्दर शब्द कर रहे हैं। तथा जो सालवृक्ष, ताल-वृक्ष बहुत दिनोंसे सूखे हुए थे वे फल, फूल और पत्तोंसे लहलहा उठे है, फल-फूलोंके भारसे वे पृथ्वी तक नीचे झुक गए है सो ऐसे जान पड़ते है, कि मानों

वे नीचे पृथ्वी तक झुककर भगवानको नमस्कार ही करते हैं। इसके सिवा हे राजन्! यह जो असमयमें ही वृक्षोंपर फल-फूल आगए हैं इससे जान पड़ता है कि ये वृक्ष अपनेको अहमिन्द्र समझ फल, पुष्प ले भगवानकी सेवा और भक्ति करनेको ही उपस्थित हुए है। स्वामिन्! प्रथम तो मुझे सब ऋतुओंके फल पुष्पोंको एक साथ आया देखकर अचम्भा हुआ पीछे प्रभुका माहात्म्य समझ सब ऋतुओंके फल-फूलोंको लेकर आपकी सेवामें आया हूं। इस समाचारको सुनकर महाराजको बहुत हर्ष हुआ, जिसप्रकार कि तृषातुर पुरुषको जलसे पूर्ण कुओंको देखकर प्रसन्नता होती है। महाराजने प्रसन्न हो वनपालको बहुत धन-सम्पत्ति दी और उसे मालामाल बना दिया, बाद महाराज सिंहासन छोड़कर जिस दिशा में वीरभगवान विराजे थे उस ओर सात पेंड आगे गए और उन्होंने भगवानको भक्तिभावसे नमस्कार किया पीछे अपने स्थानपर आ बैठे। इस वक्त महाराज वीरप्रभुकी वन्दना करनेके लिए बहुत ही उत्सुक होरहे थे।

वीरनाथप्रभु गुणोंके आश्रय है, गुणोंने उनको आश्रय इसीलिए बनाया है कि जिससे वे सारे संसारमे प्रसिद्ध हो जाएं। वीरप्रभुने व्रतोंका उपदेश दिया है, धर्म-तीर्थको चलाया है, संसारके रक्षक और सर्वसिद्धिके दाता है एवं संसारी जीवोके मोह-मदको नष्ट करनेवाले है ऐसे उन वीरप्रभुके लिए नमस्कार हो, वे हमारे लिये मंगलमय बने।

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

अथ द्वितीय अध्याय।

उन परमपवित्र वीरनाथ भगवानको नमस्कार हो; जो अनन्त बलके धारी है, जिन्होने कर्ममलको नष्ट कर दिया है तथा जिनके सेवन करनेसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है।

इसके बाद महाराज श्रेणिकने संसारको आनन्द प्रदान करनेवाली आनन्द भेरी बजवाई, जिसको सुनकर पुरवासियोको अत्यन्त आनन्द हुआ और वे सब वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो यात्रा करनेके लिए उद्यत हुए। सईसोंने हर्षित होकर सुन्दर किसवारवाले.....घोड़ोंपर मनोहर पलान--कांटी रखी, महा-वतोंने मदोन्मत्त हाथियोपर सुन्दर झूलें डालीं एवं सारथीगण मनोहर रथोंमें

सुन्दर घोड़ोंको जोतकर राजमन्दिरके सामने लेआये। पयादेगण में कोई पालकी पर कोई बैलोंपर कोई ऊंटोंपर सवार होकर रजवाड़ेके चौकमें आ उपस्थित हुए। किन्हींके हाथोंमें ढाल, किन्हींके पास तलवार, किन्हींके पास बरछी थीं। नर्तकीगण नटोंको साथ लिए नृत्य करनेको तैयार होकर आये और महाराजके सामने आकर नृत्य करने लगे। इसप्रकार महाराजके सभी सामग्री सुलभ थी। उनका पराक्रम अद्भुत था, लक्ष्मीके स्वामी थे, ऐसा जान पड़ता था कि वे दूसरे कुबेर ही है। इसप्रकार सज-धजकर राजा श्रेणिक अपने पुत्र निर्भय अभयकुमार और पवित्र वारिषेणको साथ लेकर वीरभगवानकी वंदना करनेको गए। जिनधर्म परायणा रानी चेलना भी उनके साथ थीं। जिस वक्त उद्यान पासमें आगया वहीं वे हाथीपरसे उतर पड़े और वीरप्रभुके समवशरणमें जा पहुंचे। वहां उन्होंने वीरप्रभुको बारंबार नमस्कार किया बाद सबके साथ अपने योग्य स्थानमें स्थिर चित्त हो बैठ गए और सबोंने शांतिपूर्वक धर्मका उपदेश श्रवण किया।

इसके बाद राजा उठ खड़ हुए और उन्होंने ज्ञानी गणनायक गौतमगुरु को नमस्कार किया पीछे उनकी नीचे लिखे अनुसार स्तुति की——

भगवान्! आप महाभूति है, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती आदि सभी आपकी पूजा और स्तुति करते है। आपके दिव्य ज्ञानमे सभी पदार्थ एक साथ दर्पणवत् झलकते हैं। आपके लिए कोई भी वस्तु अगम्य नहीं है। हे नाथ! आपके पास वह ज्ञान है जो सारे संसारमे सूर्यकी तरह प्रकाश डालता है। हे महर्षि! आप बहुतसे ऋषियोंके स्वामी है, बीजऋद्धिसे युक्त चतुरज्ञानके— मनःपर्ययज्ञानके धारी है तथा पादानुसारिणी ऋद्धिसे युक्त परमावधि ज्ञानके धारक है। संसारके सभी प्राणियोंके सभी रोगोंको दूर करनेवाली जो सर्वौषधिऋद्धि है उसके आप स्वामी है तथा चरणऋद्धिके बलसे आप आकाशमार्ग मे चलते हैं जिससे किसी भी प्राणिको पीड़ा नहीं पहुंचती है इसलिये आप परम दयालु कहलाते हैं। अक्षीणऋद्धिने भी आपको अपना स्वामी बना लिया है। भगवन्! आपके गुण कहां तक कहे आप कृपाके सिंधु है, गुणोंके आगार है। हे नाथ! मुझे एक सन्देह है। मुझे आशा है और पूर्ण विश्वास है कि वह मेरा संदेह आपके प्रसादसे अवश्य ही दूर हो जायेगा। हे प्रभो! मैं आपसे

बहुत कुछ जानना चाहता हूं, जिससे और लोगोंको भी हित होगा और मुझको भी होगा, इसलिए हे स्वामिन् ! प्रसन्न होवो और मुझ पर दया करो। हे पुरुषोत्तम ! मै कुरुवंशके दीपक पांडवोका पुनीत चरित्र सुनना चाहता हूं। पांडव लोग किस वंशमे पैदा हुए थे, कुरुवंश किस युगमे चला था। इस वंशमे किन-किन प्रसिद्ध पुरुषोने जन्म धारण किया है एवं कौन-कौन धर्म तीर्थके प्रवर्तक तथा चक्रवर्ती उत्पन्न हुये। हे नाथ ! अन्य शास्त्रोमें जो पांडवोका चरित्र पाया जाता है वह तो बन्ध्या स्त्रीके पुत्रकी सुन्दरताके वर्णनके माफिक है, मिथ्या है, कपोल कल्पित है। यथा:---

एकसमय काशीका शांतनु राजा युद्धके लिये गया था। वहां उसे अपने स्त्रीके ऋतु समयकी याद आ गई और उसने रतिदान देनेके लिये अपना वीर्य अपनी प्रियाके पास भेजनेका विचार किया। इसी विचारसे उसने एक तांबेका बर्तन मंगवाया और उसमे अपना वीर्य रखकर उसके ऊपर अपने नामकी मुहर सील लगाकर उसको एक श्येन पक्षीके गलेमें बांधकर अपनी प्रियाके पास काशी भेज दिया। वह पक्षी थोड़ी ही देरमें गंगा नदीके किनारे आ पहुंचा। उस नवीन पक्षीको देखकर एक दूसरा श्येन पक्षी उसपर झपटा और आपसमे उन दोनोंकी नोचानांची होने लगी। इस नोंचानांचीसे उस पक्षीके गलेसे वह बर्तन टूटकर गंगा नदीमे गिर पड़ा, गिर जानेसे वह फूट गया और दैवयोगसे उस बर्तनका वीर्य एक मछलीके पेटमें चला गया। वहां पहुंचकर वह गर्भरूप मे परिणत होगया। गर्भके महीने पूर्ण हो चुके थे कि दैवयोगसे उस मछलीपर एक धीवरकी निगाह पड़ी और उसको पकड़कर चीर डाला। उसके गर्भसे एक लड़की पैदा हुई जो कि संसारमें मत्स्यगंधाके नामसे प्रख्यात है। उस लड़की के शरीरसे बहुत ही दुर्गंध निकलती थी जो कि किसीको सहन नहीं होती थी। इस कारणसे उस धीवरने मत्स्यगंधाको अपने घर न रखकर गंगानदीके किनारे पर ही उसको बसा दिया। मत्स्यगंधा वंहा रहती थी और नौका चला-चलाकर अपनी उदरपूर्णा करती थी। धीरे २ वह लड़की नवयौवना हुई। भाग्यवश एकदिन नौकामे जाते हुए पराशर ऋषिके साथ उसका समागम होगया और उससे उसके व्यास जैसे चारों वेदके ज्ञाता पुत्रका जन्म हुआ। व्यास बाल्यावस्था मे ही अपने पिता पराशर ऋषिके पास तपस्या तपनेके लिए चला गया और

उसने तपस्या धारण करली।

इतनेमें एकदिन राजा शांतनु गंगा नदीके किनारे आया जहांकि मत्स्य-
ती थी। मत्स्यगंधाको देखकर वह कामसे बंधा गया और उसने धीवर
र उसके साथ विवाह कर लिया। कुछ दिन बाद राजा शांतनुके समा-
सके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमेंसे एकका नाम चित्र और दूसरेका विचित्र
ा। काल पाकर दोनों पुत्र युवा हुए और उनका विवाह क्रमसे अम्बा
म्बिकाके साथ कर दिया गया। इन दोनोंकी एक अम्बालिका नामकी
। भाग्यवशसे थोड़े ही समय बाद राजा शांतनुका स्वर्गवास होगया
चित्र-विचित्र दोनों भाई राज्यके अधिकारी हुए। कर्मकी गति बड़ी
है, उसके सामने किसीकी भी ताकत काम नहीं देती है। आयुकर्म जब
होजाता है तो फिर कोई भी इस जीवको नहीं बचा सकता। इस नियमा-
चत्र-विचित्रका भी समय आगया अर्थात् दुष्ट कालने इन दोनोंको भी
ग्रास बना लिया। इनके कोई सन्तान नहीं हुई थी इसलिए राजपाट
ायकके होगया, ऐसी अवस्था देखकर मत्स्यगंधाने राज-कार्य करनेके लिए
को बुलाया। वे वहां आगए और राजपाट संभालने लगे। व्यासजीने
ाकर अत्यन्त निन्दित कुकर्म—खोटे कर्म किये।

वे कहने लगे कि हे गन्धिके! तुम मेरी बात सुनो, मैं जो कहता हूं वह
ाये हितकारी है। वह बात यह है कि यदि तुम्हारी दोनों पुत्र वधुएं
ाकी दासी मेरे सामने नंगी होकर निकल जांय तो वे निश्चयसे गर्भ
करेंगी। गंधिकाने व्यासकी बातको स्वीकार कर वैसा ही किया फलतः
गर्भवती हो गई। धीरे २ जब गर्भके दिन पूरे होगए तो अम्बाने अंध
को तथा अम्बिकाने कुष्ट रोगी पांडुको जन्म दिया एवं अम्बालिका
विदुरको पैदा किया। भगवन्! बतलाइये यह जो अन्य मतमें कथा कही
ह कहां तक सत्य एवं उपादेय है?

दूसरी बात यह है कि गांधारीका सौ अज आदि राजाओंके साथ विवाह
भी वह सती शीलवान कहलाई। यह बात भी कहां तक ठीक कही
ी है।

तीसरी बात सुननेमें यह भी आती है कि अज आदिको उनके पिता

राजा भोजकवृष्टिने मार डाला और मरकर वे भूत-प्रेत हुए और उन्होने उस अवस्थामें ही गांधारीके साथ संभोग किया और उस संभोगरूप क्रियासे दुर्योधन आदि कौरवोंकी उत्पत्ति हुई। यह बात भी अत्यन्त आश्चर्यको पैदा करनेवाली है कि देव भी मनुष्यनीके साथ संभोग करने लगे और उससे मनुष्यनीके गर्भ धारण होने लगा। उसपर भी विशेष आश्चर्य यह है कि गर्भ पूरा न होकर गिर पड़ा और उसको कपासमे रखकर बढ़ाया गया। पीछे गांधारीका पुर्नविवाह विधवासे उत्पन्न हुए जारपुत्र धृतराष्ट्रके साथ होगया। हे देव! यह बात भी आकाशके पुष्पके समान निराधार और असंगत है किन्तु न जाने मूढ लोग कैसे इस मनगढंत कथा पर विश्वास करते है?

सफेद कुष्टवाले गोलक-जारपुत्र पांडुका विवाह कुंती और माद्रीके साथ हुआ बतलाते हैं। एक समयकी बात है कि राजा पांडु अपनी दोनों प्रियाओंके साथ वनमे शिकार खेलनेके लिए गया था। वहां उसने हिरण जैसे दीन-हीन पशुओंको मारनेका संकल्प किया। स्वामिन्! यह बात भी खटकने लायक है कि कौरव लोग अत्यन्त दयालु परोपकारी और धार्मिक पुरुष थे। वे भला किस तरह दीन-हीन पशुओको मारनेका इरादा कर सकते है? यह काम उनका कहां तक उचित कहा जा सकता है, और भी बात है कि उसी वनमे दो तापस हिरण का रूप धारण करके रति-क्रियामें आसक्त थे। पांडुकी दृष्टि इनपर पड़ी, दृष्टि पड़ते ही क्रोधित होकर पांडुने अपना बाण उनपर छोड़ा। बाण लगते ही हिरण मर गया, हिरणके मर जानेसे मृगीको भारी दुःख हुआ और दुःखसे दुःखित होकर उसने राजाको यह शाप दिया कि मेरे पतिकी ही तरह तुम भी अपनी प्रियाके साथ कामसेवन करते हुए यमराजके मुंहमे जाओगे। राजा यह शाप सुनकर बहुत दुःखी हुआ और उसने उसीसमय प्रतिज्ञा की कि आजसे ही आजन्म स्त्रीके साथ समागम नहीं करूंगा। भगवन्! इस कथनसे यह शंका पैदा होती है कि क्या मनुष्य भी हिरणका रूप धारण करके रति-क्रिया करते हैं? तथा एक धर्मपरायण परम दयालु राजा मृग जैसे जो कि दातोंके नीचे तृण दबाये रहते हैं उन पर बाणोका प्रहार करे यह कैसे संघटित हो सकता है?

यह भी सुननेमे आता है कि सूरजके साथ कुन्तीने संभोग किया था, उससे कुन्तीके कानसे कर्णकी उत्पत्ति हुई। नाथ! आज तक यह बात सुननेमे

नहीं आई कि कानसे मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई हो। तब आप ही कहिए कि यह बात उनकी कहां तक सम्भवित हो सकती है ?

इसके बाद कुन्तीका सधर्मके साथ समागम हुआ, जिससे उसने युधिष्ठिर जैसे वीर पुत्रको जन्म दिया तथा पवनके संयोगसे निर्भय भीमको एवं इंद्रके समागमसे अर्जुन–चांदीके समान शरीरकी कांतिको धारण करनेवाले बलशाली अर्जुन पुत्रको जन्म दिया। इसीप्रकार माद्रीने भी आश्विनेय सुरके समागमसे नकुल और सहदेव पुत्रको जन्म दिया। हे नाथ ! इस कथानकसे जान पड़ता है कि पांडव लोग कुंड थे–जार पुत्र थे। कहिये कि ऐसे पूज्य मोक्षगामी पुरुषों को जार पुत्र कहना क्या संगत है ? भीम महाबलवान पुण्यवान और विद्वान योद्धा था, उसका आहार भी बहुत कम था, किन्तु न जाने लोग क्यों भीमको दस मानी प्रतिदिन अन्न खानेवाला कहते है यह कैसा आश्चर्य है ? लोग यह भी कहते हैं कि गांगेय ऋषि गंगा नदीसे पैदा हुए है। हे नाथ ! यह बात भी कैसी है। यदि नदियोंसे ही मनुष्योंकी उत्पत्ति होने लगे, तो फिर विवाह करने की आवश्यकता ही क्या रह जाती है ?

यह भी कहा जाता है कि द्रोपदी अत्यन्त सुन्दर परम सती अखण्ड शीलको पालन करनेवाली थी, उसीको वे पंच भरतारी भी कहते है। हे नाथ ! कहिये जब कि उसके पांच भर्ता है अर्थात् पांचोंके साथ रति क्रीड़ा करती है तो वह सती कहां रही ? यह बात परस्पर विरुद्ध है। दूसरी बात यह है कि जब वह ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरके साथ रमण करती थी तब बाकी पांडव उसके देवर हुए, जो कि पुत्रके समान माने जाते है, फिर वह कैसे उनके साथ रमती थी ? और जब वह लघु भ्राता और पांडवोंके साथ रमती थी उस वक्त युधिष्ठिर द्रोपदीके जेठ हुए, जो कि पिताके समान माने जाते हैं। ऐसी अवस्थामें वह कैसे उनको भोगती थी ? यह बात बड़े आश्चर्यमें डालने वाली है। द्रोपदी जैसी सतियोंके परम पवित्र आदर्श–चरित्रके ऊपर हमला करनेवाली है। हे नाथ ! ऐसी कपोल–कल्पित–असंगत कथाओंको सुनकर उनसे फल प्राप्तिकी आशा करना बालूसे तेल निकालनेके बराबर है। या नीरमंथनसे घृत निकालने के बराबर है। अथवा यों कहिये कि शिलापर बीज बोनेके बराबर है ऐसी कथाको मनोरथ सिद्धिकी लालसासे अथवा पुण्य-प्राप्तिकी वांछासे कहना या

सुनना या दूसरोंको सुनाना व्यर्थ है, कुछ लाभ नहीं। लाभकी जगह पापास्रव को पैदा करनेवाली है।

हे नाथ! मेरे मनमें और भी कई तरहके नीचे लिखे संदेह उठ रहे है इसलिये कृपाकर मेरे संदेहोंको दूर कीजिये, जिससे मुझे सद्ज्ञानकी प्राप्ति हो, संसारका हित हो।

गंगाजलके समान निर्मल चरित्रवाले गांगेय ऋषिका माहात्म्य, द्रोणाचार्यका पराक्रम, भीमकी वीरता, हरिवंशकी उत्पत्ति, श्रीकृष्ण और भगवान नेमिनाथका बल, द्वारिकापुरीकी रचना, जरासिंधुका विनाश, कौरव पांडवोंका बैर और उनके बैरका कारण, पांडवोका विदेश गमन और वापिस आगमन, द्रोपदीका हरण, दक्षिण मथुराकी अवस्था, कृष्णका मरण होनेपर पांडवोंका भगवान नेमिनाथके पास आना, पांडवोके पूर्वभव, द्रोपदीके ऊपर पंचभरतारी होनेका कलंक, पांडवोकी दीक्षा, पांडवोंका शत्रुंजय पर्वतपर जाना और वहां घोर परीषहोंका सहन करना, तीन पांडवोंका केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जाना और दो पांडवोका अनुत्तर विमानमें अहमिन्द्रपद प्राप्त करना।

हे नाथ! ऊपर किये प्रश्नोंका समाधान कीजिये। इनके समाधान होने से सब जीवोको सुख होगा। हे देव! आपके सिवा इन प्रश्नोंका समाधान करनेवाला दूसरा नहीं है। इसप्रकार राजा श्रेणिकने श्री गौतम गणधर स्वामीसे निवेदन किया। इसके पश्चात् परमदयालु गौतम गुरु उत्तरमे बोलने लगे। भव्य जीवोंको उनकी दिव्यवाणी सुनकर बहुत आनन्द हुआ और हर्षसे रोमांचित हो गये। जिसतरह मेघोंके शब्द सुनकर मयूर नृत्य करने लगते है उसी प्रकार शिष्यगण भी उनके संतापको दूर करनेवाली पवित्र वाणीको सुनकर नाचने लगे—हर्षके मारे फूले न समाये।

इस प्रकार गौतमस्वामीके चारो तरफ जितने भी शिष्यगण बैठे थे, वे महाराज श्रेणिकके प्रश्नोको सुनकर बहुत ही आनन्दित हुए और हर्षयुक्त हो कहने लगे कि हमें पांडवोका चरित्र सुननेका अच्छा सुयोग मिला। हमे बहुत दिनोसे इस चरित्रको सुननेकी अभिलाषा लगी हुई थी। वह हमारी अभिलाषा अब जरूर पूरी हो जायगी। हे राजन्! आपने मगधदेशके तमाम शत्रुओंको जीत लिया है, आप मिष्ठभाषी और सम्यग्दृष्टि हो। आपने हमारे संदेहरूप

अन्धकारको हटा दिया है इसलिए आप सूर्यके समान हो। हम आपकी ही कृपासे इस पुराणको सुन रहे हैं। आप हमारे सच्चे हितकारी और वैद्य हो, हम आपकी कहां तक प्रशंसा करे, वास्तवमे आप हमारे परमोपकारी हितैषी गुरु है।

इस भारतवर्षमें पहले भरत आदि बहुतसे इसके स्वामी हो गए हैं। उन्होंने पुराणको सुनकर देशावधि नामका ज्ञान प्राप्त किया था। कृष्णनारायणने भगवान नेमिनाथ स्वामीकी सभामे पुराण पुरुषोंके पवित्र चरित्रोंको सुनकर उसी समय तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया था, जिसकी वजहसे वे आगे धर्मतीर्थको चलानेवाले जगतके उद्धारक तीर्थंकर भगवान होंगे। हे राजन्! इसीप्रकार आप भी आज १००८ श्री वीरप्रभुकी सभामे आगममें कही हुई पुण्य-पुरुषोंकी सत्कथाओंको सुन रहे है इसलिए आप भी उत्सर्पिणीकालमें महापद्म नामके आदि तीर्थंकर होंगे। आपके द्वारा जगत जीवोका कल्याण होगा। हे राजन्! हमको जो अभिलाषित सिद्धि हुई है वह आपकी कृपासे हुई है सो ठीक ही है, गुणी पुरुषोंके समागमसे गुणोंका लाभ होता ही है। हे राजन्! आप सच्चे धर्मात्मा और धर्मात्माओंके साथ सच्चा प्रेम करनेवाले है। आपकी जिनागममें परम श्रद्धा है आपमें राजोचित सभी गुण विद्यमान है। आपके समान धर्मभीरु प्रजापालक सच्चरित्र सम्यग्दृष्टि राजा न तो हुआ और न वर्तमानमे दीखता ही है। इसप्रकार सब सभ्य और ऋषि महर्षियोंने राजा श्रेणिक की बहुत प्रशंसा की।

इसके बाद परमविद्वान जगतके वंदनीय गुरु गौतमगणधरस्वामी अपनी पवित्र गंभीर ध्वनिसे कहने लगे कि हे श्रेणिक महाराज! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। इस बातके सुननेसे जितने भी पाप हैं वे सब नष्ट होंगे और सम्यग्ज्ञानकी वृद्धि होगी। हे राजन्! तुमने जो संसार प्रसिद्ध बात पूछी है उसको अब मैं संक्षेपमे वर्णन करता हूं। तुम स्वस्थचित्त होकर ध्यानसे सुनो।

इस भरतक्षेत्रमे पहले भोग-भूमि थी। भोग-भूमिमें रहनेवाले जीव कल्पवृक्षों द्वारा मनमानी वस्तुओंको प्राप्त करते थे और अपने समयको आरामके साथ बिताते थे। पर जब धीरे-धीरे भोग-भूमिका क्षय होने लगा और जब तीसरे कालका पल्यका आठवां भाग शेष रह गया था तब चौदह कुलकर हुए।

तेरह कुलकरोंतक राजा-प्रजाका कोई संबंध नहीं था किन्तु लोग उनको अपनेमे मुख्य समझते थे। इन कुलकरोंने अनेक कुलोंकी व्यवस्था की इसलिए इनकी कुलकर संज्ञा पड़ी। चौदह कुलकर हुए उनके नाम ये थे—१ प्रतिश्रुति, २ सन्मति, ३ क्षेमंकर, ४ क्षेमंधर, ५ सीमंकर, ६ सीमंधर, ७ विपुलबाहन, ८ चक्षुष्मान्, ९ यशस्वी, १० अभिचन्द, ११ चन्द्राभ, १२ मरुदेव, १३ प्रसेनजित, १४ नाभिराज। इन्होंने हा, मा, धिक् ये तीन दंड नियत किये थे। इन्हीं दंडों के द्वारा ये दोषी व्यक्तियोको दंड देते थे। उस समय मे हा, मा, धिक् ये तीन दंड बड़े जबरदस्त दंड माने जाते थे। चौदहवें कुलकर नाभिराजका विवाह सुलक्षणा मरुदेवीके साथ हुआ था। मरुदेवी रूप गुणोंकी खानि थी, मिष्ट-भाषिणी होनेसे राजाको अत्यन्त प्रिय थी। इनके रहनेके लिए इंद्रने आकर अयोध्या नगरीकी रचना की और अपने खजांची कुबेरको आज्ञा दी कि तुम अयोध्या नगरी जाओ और वहां अभी रत्नोंकी वृष्टि करो क्योंकि वहां तीन लोकके नाथ भगवान आदिनाथ स्वामी जन्म लेंगे। कुबेरने इंद्रकी आज्ञा मान-कर अयोध्यामे पन्द्रह महीने रत्नोकी वर्षा की तथा देवियोने माताके गर्भशोधन आदिकी क्रियाये कीं। इसी समय सर्वार्थसिद्धि नामक विमानसे एक देव चयकर आषाढ़ बदी दोजके दिन माता मरुदेवीके गर्भमें आया। भगवानको गर्भमें धारण किये हुए मरुदेवी ऐसी मालूम पड़ती थीं मानो रत्नोंको धारण किये हुए पृथ्वी वसुंधरा ही है। भगवानकी माता मरुदेवीकी छप्पन कुमारिकायें सदा ही सेवा करनेमे तत्पर खड़ी रहती थीं। माताको किसी प्रकारका कष्ट न हो, मनमें थोड़ा भी खेद न हो सदाकाल प्रसन्न रहे इसके लिए वे देवियां नाना प्रकारकी क्रियायें करती थीं, अनेक प्रश्न पूछती थीं और माता उनका एक ही शब्दमें उत्तर देती थीं। इसप्रकार उनका समय आनन्दसे बीतता था। जब नौ मास पूर्ण हो गये तब माता मरुदेवीने चैत्र बदी नौमीके दिन तीन लोकके आभूषण भगवान आदिनाथ प्रभुको जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही इन्द्र का आसन....सिंहासन कम्पायमान हुआ और उसने अवधिज्ञान द्वारा भगवानका जन्म जाना। यह बात जानते ही वह सिंहासनसे उठा और सात पैंड आगे चल-कर जिस दिशामे भगवानका जन्म हुआ था उधर भगवानको परोक्ष नमस्कार किया तथा देवतागणोको भगवान आदिनाथ स्वामीका जन्म कल्याणक करनेके

लिये अयोध्या नगरी पहुंचनेकी आज्ञा करी। इन्द्र सदलबल सहित स्वयं ऐरावत हाथी पर चढ़कर अयोध्या नगरीमें आ पहुंचा। वहां आकर वह अन्य देवतागण सहित नाभिराजके महलके द्वार पर खड़ा रह गया और अनुपम रूपवाली अपनी शची इन्द्राणीको मनोहर प्रसूति-गृहमे भगवानको लेने के लिए भेजा। इन्द्राणी भक्तिभावसे विनम्र होती हुई गुप्तरीतिसे प्रसूतिगृहमे गई। वहां उसने दिव्य शरीरके धारी गुणोंके भंडार आदिनाथ स्वामीको एक मनोहर शय्यापर लेटे हुए देखा। देखते ही उसने उन्हें माता सहित नमस्कार किया और भगवानके तेजयुक्त शरीरको देखकर बहुत हर्षित हुई। पश्चात् भगवानकी माताको माया-मयी निद्रामें सुलाकर उनके पास मायामयी बालक सुलाकर भगवानको गोदमें लेकर बाहर हो गई और बाहर लाकर भगवानको इन्द्रके हाथोंमें सौंप दिया। उस समय भगवान ऐसे मालूम पड़ते थे कि जिसप्रकार पूर्व दिशामें उदयाचल पर्वतसे उदीयमान सूर्य शोभाको प्राप्त होता है। इंद्र भगवानके तेजोमय सर्वांग-सुन्दर दिव्य शरीरको देखकर तृप्त-अघाता नहीं है। तब अत्यन्त हर्षित होकर सहस्र लोचनों द्वारा भगवानके पुनीत शरीरको देखता है, उस समय इन्द्रके हर्ष का पारावार नहीं रहता।

इसके बाद इन्द्र अन्य देवतागणके साथ गाजे-बाजेपूर्वक जय-जय शब्दों के साथ सुमेरु पर्वतके शिखर पर पहुंचा और वहां अनादिनिधन अर्धचन्द्राकार पांडुकवनकी पांडुकशिलापर पूर्वकी तरफ मुख कर शिशु भगवानको विराजमान किया इसके बाद भगवानका अभिषेक करनेके लिए देवतागण क्षीरसमुद्रसे जल लानेके लिए गए वहांसे सोनेके एक हजार आठ कलशोंको क्षीरसमुद्रके जलसे पूर्णकर हाथोंहाथ लाये और उन कलशों द्वारा भगवानको स्नान कराया और उन्हें दिव्य वस्त्राभूषण पहिनाकर उनकी भक्तिभावसे स्तुति की और भगवान का 'ऋषभ' (वृषभ) नाम रखा। पश्चात् इन्द्र प्रभुको ऐरावत हस्तीपर बैठाकर उसीप्रकार गाजे-बाजे सहित अयोध्यामें ले आया और वहां आकर उसने मायामयी निद्रासे रहित नाभिराजाके निकट बैठी हुई माताको बड़ी भक्तिभावसे देखा और नाभिराजाको नमस्कार कर बालसूरजके समान भगवान आदिनाथको माताकी गोदमे दिया तथा सुमेरु पर्वतकी सारी कथा उन्हें कह सुनाई एवं भगवानका जो नाम प्रसिद्ध किया था सो भी बतलाया। इसके

पश्चात् नृत्यकला–विशारद हजारों नट-नटनीसे भी उत्तम नृत्य हर्षित होकर इंद्रने इंद्राणी सहित किया जिसको कि 'तांडव नृत्य कहते है। पश्चात् भगवान की सेवा सुश्रुषा करनेके लिए चतुर देवताओको नियुक्त कर नाभिराजाकी आज्ञा लेकर आप स्वर्गको चला गया। भगवानकी सेवामे देवतागण सदा ही नियुक्त रहते थे। भगवान तीन ज्ञानके धारी थे। धीरे-धीरे कुछ समय बीतने-पर भगवानने शिशु अवस्थाको त्यागकर कुमार अवस्थामें प्रवेश किया एवं कमार अवस्था छोड़कर यौवन अवस्थामें पदार्पण किया। उस समय भगवानके तेजसे दशों दिशायें प्रकाशमान हो गई।

इसके बाद प्रभुने इन्द्र और नाभिराजाकी प्रेरणासे यशस्वी और सुनन्दा के साथ ब्याह किया। इसप्रकार प्रभुका समय बड़े आनन्दसे बीतने लगा। इसी समय प्रजापर भारी कष्ट उपस्थित हो गया। धीरे-धीरे सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गए। यह देख पुरवासी लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे आजीविकाके बिना दुःखी होकर नाभिराजाके पास आये और उनसे निवेदन करने लगे कि—हे राजन्! इस समय हम क्षुधासे पीड़ित हो दुःखी हो रहे हैं, इस तरह हम कितने दिन जीवित रह सकते है? हे नाथ! हम सब आपसे प्रार्थना करते है कि आप हमारे दुःखोंको दूर कर हमें सुखी बनाइये। हे राजन्! जो कल्पवृक्ष हमे पिता के समान पालन-पोषण करते थे, वे न जाने क्यों हमारे देखते-देखते ही विलीन हो गए, उनके न रहनेसे हम लोग बड़े दुःखी है, हमे आजीविकाका कोई साधन ही नहीं सूझ रहा है। इस प्रकार उन दीन-हीन जीवोंकी करुण पुकारको सुन-कर बुद्धिमान नाभिराजाने उन्हे बहुत कुछ समझाया–बुझाया और पीछे आदि-नाथ भगवानके पास भेज दिया। वहां जाकर उन्होंने भगवानको अपनी सारी कथा विनम्र शब्दोंमे कह सुनाई कि नाथ! जिस वक्त आप गर्भमे पधारे थे उसके छह मास पहिले ही देवताओने जलकी वर्षाकी तरह रत्नोंकी वृष्टि की थी उससे हम मालोमाल थे। उस वक्त हमको अपनी दरिद्रताका कुछ भान ही नहीं था, अब न जाने वह सम्पत्ति कहां चली गई। हे स्वामिन्! इस समय आप हमे कोई उपाय बताइये कि जिससे हमारी भूख शांत हो जाय और हम सब सुखी हो जांय। हे नाथ! पुण्यशाली देवतागण भी जब आपकी आज्ञाको शिरोधार्य करते है तब फिर आपको इस समय दुर्लभ क्या चीज है? आप

चाहें तो हमें क्षण भरमें सम्पत्तिशाली बना कर सुखी कर सकते हैं। हे देव ! यदि आपके होते हुए भी हम भूखों मर गये तो आपकी दयालुता फिर कहां रहेगी ? इसलिए हे दयालु पवित्रात्मा! हमारी रक्षा करो, हमें मरनेसे बचाओ। इस प्रकार आगत जीवोंके दीन-हीन करुण वचनोंको सुनकर भगवानका हृदय दयासे ओतप्रोत होगया सो ठीक ही है दयालु स्वामियोंका हृदय आश्रित दुःखी जीवोंको देखकर पिघलता ही है इसप्रकार तीनज्ञानके धारी भगवानने उत्तरमें कहा कि इस पृथ्वी पर नाना जातिके वृक्ष है और उनके नाना प्रकारके ही गुण हैं। उनमे कई एक तो भक्ष्य—खाने योग्य हैं और कई एक अभक्ष्य—खाने योग्य नहीं है इसलिए तुम लोग उन वृक्षोंका आदर करो और जो भक्ष्य चीज है उसको उनसे ग्रहण करो।

वृक्ष, बेल और तृण ये तीन वनस्पति हैं और इन्हींके खाद्य और अखाद्य इसप्रकार दो भेद है इनमें कौन खाने योग्य है सो कहते हैं—आम, नारियल, नींबू, जांबू, केला, नारंगी, कमरख कैथ बेर, आंवला आदि वनस्पति तथा दाख कुष्मांडी और चिर्भटा आदि लतायें एवं चांवल, उड़द, मूंग, गेहूं, सरसों, कोदों राजभाष मसूर, चना, मोठ, जौ, तूअर, बाजरा आदि अन्न इन चीजोंको भूख दूर करनेके लिए काममें लेना चाहिए। इसप्रकार अन्नके भेद बतलाकर उनके पकानेकी विधि बतलाई तथा मिट्टीके बर्तन काममें लेना बताकर उनके नाम और भेद बतलाये। असि, मषि, कृषि, वाणिज्य और पशुपालन इन षट् कर्मोका उपदेश भी भगवानने दिया। इसके पश्चात् भगवानने अपने भरत आदि एक सौ पुत्रोंको शिक्षा दी तथा ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनों पुत्रियोंको भी अनेक प्रकारकी कलाएं सिखलाई। इसके बाद शुभ मूहूर्त शुभ बेलामें नाभिराजाने प्रभुको प्रजाके कल्याणके लिए उत्तम राज-सिंहासन पर बिठाकर उनका राज्याभिषेक किया। राज्यका भार संभालते ही स्वामीने इन्द्रको आज्ञा दी कि तुम विदेहक्षेत्रकी तरह यहां भी देशोंकी रचना करो। इन्द्रने प्रभुकी आज्ञा पाते ही कौशल आदि देशोंकी रचना की और उनकी नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था की।

जिसके चारों तरफ (मैंड़) हो वह गांव और जिसके चारों तरफ पर-कोटा हो वह पुर तथा नदी और पहाड़के बीचमे जो हो सो खेट कहलाता है।

जो चारों तरफ पर्वतोंसे घिरा हो सो कर्वट कहलाता है तथा जिसके पांचसौ गांव लगते हों उसे पत्तन कहते है। इसप्रकार नगरोंकी रचना करके प्रभुने तीन वर्णोंकी-क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी स्थापना की जिनके आचरण उत्तम थे, उच्च आजीविका थी उनको तो क्षत्रिय और वैश्य कहा तथा जिनके आचरण निंद्य थे नीचे आजीविका थी उनको शूद्र कहा। इसप्रकार वर्ण व्यवस्था करके प्रभुने चार भेद–इक्ष्वाकु, कौरव, हरिवंश और नाथवंश किये। इसके सिवा प्रभुने कौरववंशमें उत्तम लक्षणोंके धारक सोम और श्रेयांस इन दो श्रेष्ठ राजाओंकी स्थापना की।

कुरुजांगल नामका एक प्रसिद्ध मनोहर देश है। यह देश पृथ्वीका भूषण और उत्तम गुणोंसे युक्त है। अन्य देशोंसे उसमे विशेषता यह है कि इसमे बिना बोये जोते ही धान्य पैदा होते हैं इसलिए गुणोंका खजाना है। वहांके खेतोंमें अन्नके ढेर ही सदा लगे रहते हैं जिनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वे अन्नसे परिपूर्ण राजाके कोठे ही हैं। अकालका तो इस देशमें नाम ही सुनने में नहीं आता है वहांके वनकी शोभा एक उत्तम महारानीके साथ तुलना करती है। जिसप्रकार महारानी कुलीन–श्रेष्ठ कुलमे पैदा हुई और रूपादिसे सुन्दर होती है उसीप्रकार यह वनश्री भी कुपृथ्वीमें लीन–मिली हुई है और सुहावनी है। महारानी जैसे सफला और निर्मला होती है अर्थात् बच्चेवाली और शरीरादिक मैलसे रहित अथवा निर्मल चारित्रवाली होती है उसीप्रकार यह भी ऋतु अनुसार अच्छे मधुर फलोंको देनेवाली निर्मला है। जिसप्रकार महारानी राजाकी मनोभिलाषाको तृप्त करती है और उसे नानाप्रकारसे सुख पहुंचाती है उसीप्रकार यह वनश्री भी वहां रहनेवाले सभी मनुष्योंके भोगोंको साधती है अर्थात् उन्हे इच्छित सरस फलोंको देती है। वहांके गांव दूर-दूर नहीं हैं। उनमें श्रेष्ठ-श्रेष्ठ सज्जन पुरुषोंका निवास है वहांके मकान एक लाइनमे बने हुए है और बहुत ऊंचे हैं। वहांके तालाब स्वच्छ जलसे भरे हुए बड़े ही सुहावने मालूम देते है। ऐसे मनोहर देशमें पुण्योदयसे स्वर्गसे च्युत होकर देवता आकर जन्म लेते है जो कि मद, मात्सर्य, क्रोध, मान, माया, लोभादि विकारोंसे रहित त्यागी सरीखे मालूम होते है। वहांके वृक्ष कल्पवृक्षोंकी समानता करनेमें जरा भी संकोच नहीं करते है अर्थात् जिसप्रकार कल्पवृक्ष इच्छित फलोंको देते हैं

उसी तरह ये वृक्ष भी सबोंको मनमाने फल देते हैं। वहांके जिनमन्दिर बहुत ही उन्नत मनोज्ञ और चित्ताकर्षक हैं, जिनके ऊपर ध्वजायें फहरा रही हैं, वे ऐसी मालूम देती हैं कि मानों दर्शनार्थी पुरुषोंको तीनलोकके नाथका दर्शन करनेके लिए बुला रही हों। वहांकी ललनायें अपने रूप लावण्यसे स्वर्गीय देवांगनाओंको भी जीतनेकी इच्छा करती हैं। यहांके बाग-बगीचे इतने सुन्दर है कि वे स्त्रियोंकी तुलनाको धारण किये हैं। जिसप्रकार स्त्रियां सुन्दर और कामोद्दीपक हैं तथा ललाटपर सौभाग्य सूचक तिलक लगाये रहती हैं उसी-प्रकार वहांके बगीचे भी देखनेवालोंके नेत्रोंको आनन्द पहुंचानेवाले कामोद्दीपक और तिलक जातिके वृक्षोंसे युक्त हैं। स्त्रियां जिसप्रकार सपुष्पा रजोधर्मयुक्त और सफला बच्चोंवाली होती हैं वे भी ऋतुअनुसार पुष्प और फल देनेवाले है। मतलब यह है कि यह देश अपनी विभूति शोभा और कलाकौशलादिसे स्वर्गको भी तिरस्कृत कर रहा है। यहां को भूमि देवकुरु और उत्तरकुरु भोग-भूमिके समान है, इसलिए उसे कुरुजांगल देशके नामसे कहते हैं। इस देशको देखने से ही जितने भी कला-कौशलादिमें कुशल मनुष्य हैं उनके हृदय-पटलपर एक बार बिना इसका चित्र खिंचे नहीं रहता है। मतलब यह है कि यह देश अपनी शान–शौकत वैभव और अनुपम शोभासे सब देशोंका अधिपति–स्वामी है।

ऐसे समृद्धिशाली कुरुजांगल देशमें हाथियोंके यूथों–समूहसे भरा हुआ एक हस्तिनागपुर नामका नगर है। जो कि अत्यन्त मनोहर और समृद्धिशाली है। इस नगरका कोट बहुत ही उन्नत है इसलिए कोटपरके तारागण ऐसे जान पड़ते हैं मानों कोटमें जड़े हुए मुक्ता ही हों। कोटके दरवाजों पर छोटी-छोटी गुमटियां बनी हुई है उनपर आकर चन्द्रमा सुवर्ण कलश सरीखा दीखने लगता है। जलसे परिपूर्ण और मणियोंसे जड़ी हुई वहांकी गहरी परिखा-खाई ऐसी मालूम देती है मानों सूर्य द्वारा छोड़ी हुई कांचली ही हो। वहां सज्जन पुरुषों के रहनेके लिए सुन्दर अटारियां बनी हुई हैं, जिनकी जमीन अत्यन्त सुन्दर और मनमोहक है। जिनपर चढ़ने उतरनेसे ऐसा मालूम देता है कि मानों स्वर्ग जाने का रास्ता ही बताती हों। वहांके जिनमन्दिर बहुत ही उन्नत और तीन जगत् के प्राणियोंके चित्तको मोहित करनेवाले हैं, जिनकी शिखरों पर ध्वजाये लगी हुई हैं और क्षुद्र-घंटिकाये लगी है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे ध्वजारूपी

हाथों द्वारा एवं घंटिकायोंके मधुर शब्दोंसे भव्य जीवोंको भगवानके पुनीत दर्शन करनेके लिये ही बुलाती हैं और कहती हैं कि हे पुण्यात्माओं ! पुण्यका संचय करो जिससे कि तुम भी हमारे बराबर उन्नत बन जाओ। वहांके सभी लोग दानी, धनी और ज्ञानी है। अहंकार मत्सरादि रहित उत्तम गुणसे सहित है गाय जिस तरह अपने बछड़ेसे प्रेम करती है उसीप्रकार धर्मात्माओंसे प्रीति रखनेवाले हैं। वहां टेढ़ापन सिर्फ बालोंमे ही देखा जाता है वहांके अधिवासी नर-नारियोंमे टेढ़ापन--वक्रता नहीं देखी जाती है। चांचल्य केवल उत्तम नवोढ़ा स्त्रियोंमे ही है और किसीमे नहीं है। वहां वालोंके नेत्र ही नवीन वधूके मुखारविन्दको देखनेकी याचना करते है और कोई वहां पर याचना करनेवाला-भिखमंगा नहीं है। केवल वहां पर मृदंग ही ताड़े जाते है-बजाये जाते है और कोई अपराध करके ताड़ा नहीं जाता है। वहां पर मदन जातिके वृक्ष तो पाये जाते है किन्तु कोई भी मदन-कामदेवके आसक्त नहीं है। पतन केवल वृक्षोंके पत्तोंका ही होता है और कोई भी उन्नत अवस्थासे नीचे नहीं गिरता है। वहां केवल व्याकरणके ग्रन्थोंमें ही क्विप प्रत्ययके लोपका विधान है और कहीं भी लोप-विनाशका योग ही नहीं है। वहांके नर-नारियोमें दान देनेमें ही चढ़ा ऊपरी दीखती है और कामोंमे नहीं। वहांके कामी पुरुषोंके चित्तको ही स्त्रियां चुराती है इसके सिवा वहां और कोई चीज चुराई जानेका नाम भी नहीं सुनाई देता। वह नीचता-गहराई सिर्फ नाभिमंडल-सुंडीमे ही है और कोई पुरुष नीच नहीं है। वहांके पत्थरोमे ही रूखापन है और कोई पुरुष वहां रूखे स्वभाववाला नहीं है। वहांके सभी पुरुष ज्ञानी है, कोई भी मूर्ख नहीं है वहांकी सभी स्त्रियें शीलवती और पतिसेवा करनेवाली है। वहांके वृक्ष हमेशा ही फल-फूलोसे लदे रहते हैं। वहांके सभी धनिक धीर वीर और योग्याचरण करनेवाले है, उन्हे पुण्यका पूर्ण लाभ प्राप्त है वे सदा ही त्रिवर्ण-धर्म, अर्थ और कामका निराबाध सेवन करते है अर्थात् वे धर्म साधनके समयमे धर्म-सेवन, अर्थोपार्जनके समयमें अर्थ-धन-उपार्जन और काम वनके समयमे काम सेवन करते है। वे सदा ही दान, पूजा, अतिथिसत्कार, दया आदि सत्कार्योंसे पाप कर्मोंका नाश किया करते हैं इसलिए पाप कर्मोसे उपार्जित रोग-शोक, आदि-व्याधि उनको होती ही नहीं है, सदा ही घरोंमे मंगलीक कार्य होते रहते और सदा स्वस्थ रहते है,

वहांके लोग कल्याण और मंगलकी प्राप्तिके लिए जिनेंद्र भगवानकी नित्य और अष्टाह्निका आदि पर्वोके दिनोंमें पूजा किया करते हैं। वहांकी ललनाओंके मुख चन्द्रमाकी तुलना करते हैं और उन्हींसे रात्रिमें अन्धेरा दूर हो जाता है, रात्रिमें जो दीपक जलते हैं वे तो सिर्फ मंगल-कार्य समझ कर ही जलाये जाते हैं। वहांके स्त्री-पुरुषोंको पान खानेका भारी शौक है इसीलिए वहांके बाजारों में पानोंकी पीकोंसे इतना कीचड़ दलदल हो जाता है कि जिसमें लोगोंका चलना भी दूभर हो जाता है अर्थात् वहांसे निकलना ही कठिन हो जाता है। वहांकी स्त्रियां पैरोंमे इतनी गहरी कस्तूरीका लेप करती हैं कि जिसकी सुगन्धि से उनके पास भौंरोंके समूहके समूह ही उड़े चले आते हैं और गुन-गुन शब्दोंके द्वारा कामीजनोंको पुकार-पुकारके कहते हैं कि जिस तरह हम कामिनियोंके चारुचरण-कमलोंकी सेवा करते हुए सुखी हैं यदि तुम भी सुख चाहते हो तो हमारी तरह तुम भी इनके चरण कमलोंकी सेवा करो। इसप्रकार हस्तिनापुर नगर बहुत ही शोभायुक्त और विशाल नगर है। ऐसे नगरमें श्रीआदिनाथ प्रभु ने कुरु वंशके भूषण पुरुषोत्तम दो राजाओंकी स्थापना की जिनका नाम सोम-प्रभ और श्रेयांस था, ये दोनों भाई-भाई थे, आपसमें बड़ा भारी प्रेम था। सोमप्रभकी रानीका नाम लक्ष्मीमती था। वह चन्द्रमा जैसे मुखवाली सर्वांग सुन्दरी थी। स्त्रियोचित गुणोंसे युक्त थी, पतिभक्त और शीलवान् थी। राजा सोमप्रभको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी। लोग उसको सरस्वतीकी उपमा देते थे सो ठीक ही था क्योंकि जिसप्रकार सरस्वतीमें प्रशस्त-मनोहर पदोंका विन्यास होता है और अलंकारादि होते हैं उसी तरह वह रानी भी मनोहर पदोंका विन्यास करती हुई चलती थी और नाना तरहके आभूषणोंसे अलंकृत थी। सरस्वतीमें जिसप्रकार गूढ़ और उत्तम गुण होते हैं उसीप्रकार यह भी गूढ़ अभिप्रायवाली थी और उत्तम गुणोंसे युक्त थी। सरस्वती निर्दोष और बुद्धि-मान मनुष्योंको रमानेवाली होती है उसीप्रकार यह भी दोष रहित और लोगों को सुख देनेवाली थी। उसका शरीर स्वभावसे ही सुन्दर और चमकीला था किन्तु आभूषणोंके पहिननेसे और भी सुन्दर तेजयुक्त दिखाई पड़ती थी। उसके कानोंमे पहिने हुए कुण्डलोंकी और बाहुमें पहिने हुए केयूरोंकी शोभा अद्भुत थी उसके गलेका हार मनको मोहित करनेवाला था। उसके हाथोंकी अंगुलियोंमें

सुन्दर हीरेकी अंगूठियां और कमरकी करधनी अत्यन्त मनोहर दीखती थी। उसका मुख चन्द्रमा जैसा सुन्दर था, जिसप्रकार चन्द्रमा शीतल और शांतिदायक है उसीप्रकार मुख भी था। नेत्र हिरणीके समान सुन्दर और चंचल थे। उसका भाल–मस्तक अष्टमीके चन्द्रमाके समान (आधे चांदके माफिक) था तथा स्तनयुगल पके हुए नारियलके समान स्थूल कठिन और सुन्दर थे। सारांश यह है कि उसका रूप लावण्य अनुपम था, किसी दूसरी वस्तुके साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती थी। मालूम देता था कि ब्रह्माने पहले संसारकी रचना कर अनुभव किया और पीछेसे इसकी रचना कर सुन्दरताकी चरम सीमा एक इसमें ही डाल दी हो। इसप्रकार गुणोंसे संयुक्त राजा सोमप्रभ और उनकी प्रिय लक्ष्मीमतीके ज्येष्ठ पुत्रका नाम जयकुमार था। वह सुन्दर रूपवाला, शत्रुओंपर विजय करनेवाला यथा नाम तथा गुण था।

भगवान ऋषभदेव इस समय पृथ्वी पर न्याय नीति पूर्वक राज्य कर रहे थे। उन्होंने अपनी बुद्धिमत्तासे वसुंधरा–धनकी खान पृथ्वीको सुधामयी बना दिया था, जिधर भी देखो उधर सुख ही सुख नजर आता था सभी पुरवासी लोग आपकी धर्मनीति और राजनीतिसे परम सन्तुष्ट थे। वे प्रजाका शासन करते हुए अत्यन्त शोभाको पाते थे। एक समय इंद्रकी आज्ञासे गंधर्व सहित नीलांजना नामकी परम सुन्दरी गुणवती अप्सरा वहां आई और प्रभुके सामने हाव-भाव पूर्ण नृत्य करने लगी। नीलांजना नृत्य करनेमें अत्यन्त चतुर थी, बिजलीकी तरह चंचल थी। नृत्य करती-करती कभी आकाशमें जाती और कभी पृथ्वी पर आती थी। वह वीणा और बांसुरीके शब्दोंसे चंचल होती हुई ताल लयके अनुसार कलापूर्ण नृत्य करती थी और सुन्दर आलाप गान भी लेती थी, इसप्रकार अप्सराने खूब ही सुन्दर नृत्य किया, जिसको देखकर वहां बैठे हुए सभी जन चित्रवत् होगए। दैवयोगसे नृत्य करते-करते ही उसकी आयु पूर्ण होगई और देखते-देखते ही वह अदृश्य हो गई तथा नृत्य भी उसी समय बन्द हो गया जिसप्रकार कि बिना नींवके वृक्ष गिर जाता है ठीक वैसी ही हालत वहां होगई, उसके इसप्रकार मरणको और लोगोंने तो नहीं जान पाया किंतु प्रभुने तुरन्त ही अवधिज्ञानसे जान लिया और वे ऐसी अवस्था देखकर संसारसे विरक्त हो गये तथा इसप्रकार संसारकी परिस्थिति पर विचार करने लगे कि:—

संसारी जीवोंका जीवन पानीके बुदबुदेके समान है अथवा अंजुलिमें भरे हुए पानीके समान धीरे-धीरे नष्ट होनेवाला है। परन्तु आश्चर्य तो इस बातका है कि यह जीव जानता हुआ भी अपना हित नहीं सोचता और विषय भोगोंमें लिप्त हुआ समयको व्यर्थ ही खो देता है। इसप्रकार संसारकी क्षण-भंगुरताका विचार कर प्रभुने अपने पुत्र भरतको बुलाया और उन्हें भारतवर्ष का राज्य दिया तथा वीर बाहुबलीको पोदनपुरका राज्य दिया एवं अपने सभी पुत्रोंको अन्य देशोंका अधिपति बना आप निश्चिन्त हो गये। इसी समय स्वर्ग से देवतागण आये और प्रभुको स्नान कराकर तथा उत्तमोत्तम आभूषण पहिना-कर पालकीमें सवार कराकर वनको ले गये। वहां उन्होंने एक वटवृक्षके नीचे प्रभुको विराजमान किया। इसके बाद प्रभुने केशलोंच किया और जैनेन्द्र दीक्षा धारण की। जिस दिन दीक्षा धारण की वह दिन चैत्र बदी नवमीका था।

इसके बाद प्रभुने छह महीनेका योग धारण किया। योग धारणसे उनका शरीर तेजमय हो गया और सारे संसारमें वह तेज बिजलीकी तरह फैल गया। जब योग समाप्त हुआ, तब प्रभु वहांसे चलकर आहारके निमित्त बहुतसे देशोंमें विहार करने लगे। उस समय कोई भी आहारकी विधि नहीं जानता था। भगवान जहां-जहां भी जाते वहां-वहां लोग हर्षके भरे भगवानके पैरों पड़ जाते तथा कई लोग तो प्रभुकी भेंटके लिए उत्तम-उत्तम चीजें—हीरा, पन्ना, मुक्ता, हाथी, घोड़ा, पालकी वगैरह लाते थे, कई अन्न, कोई कन्या, कोई वस्त्र, कोई गहने भेंटमें लाते थे तथा कोई पुष्पमाला, कोई कुछ और कोई कुछ इस प्रकार नाना प्रकारकी चीजें प्रभुके सन्मुख रखते थे और अनेक प्रकारसे विनती करते थे परन्तु भगवान किसीकी तरफ भी आंख उठाकर नहीं देखते थे और समझते थे कि यह लोग आहारकी विधि से अनभिज्ञ हैं। इसप्रकार भग-वानने मौन धरकर ईर्यापथ शुद्धिसे छह महीना विहार किया परन्तु कहीं भी आहारकी योगबाही नहीं मिली। इसके पश्चात् वे विहार करते हुए हस्तिना-पुर आये। वहां के राजा श्रेयांस थे। रात्रिका समय था, राजा शय्यापर सुख-निद्रा लेरहे थे उस वक्त उन्होंने स्वप्नमें सुमेरुपर्वत, कल्पवृक्ष, चांद, सूरज और गहरा समुद्र देखा। स्वप्न देखनेके बाद वे जागे और जो स्वप्न देखे थे उनको

ज्योंके-त्यों महाराज सोमप्रभको कह सुनाया। महाराज सोमप्रभने उन स्वप्नोंका फल बतलाया कि सुमेरुपर्वत देखनेसे उन्नत अर्थात् उसके बराबर और कोई पुरुष नहीं, कल्पवृक्ष देखनेसे उसके समान इच्छित पदार्थोंको देनेवाला, चन्द्रमा देखनेसे उसके समान जगत्के जीवोंको शांति देनेवाला और शीतल प्रकाश करनेवाला और सूरज देखने से उसके समान तेजस्वी संसारको प्रकाश करनेवाला तथा गहरा समुद्र देखनेसे अत्यन्त गम्भीर धीर वीर महान् पुरुष आज नियमसे अपने घर आयेगा, इसके बाद दोपहरके समय ठीक ही प्रभु उनके घर आहार करनेके लिए आ पहुंचे। प्रभुको देखते ही राजा श्रेयांस को अपार प्रसन्नता हुई और दर्शनमात्रसे उन्हें पूर्वभवका जातिस्मरण हो आया। जातिस्मरण होते ही उन्हें दिगम्बर मुनियोंको किस विधिसे आहार दिया जाता है वह भी मालूम हो गया। बस फिर क्या था, भक्ति से विनम्र होकर वे अपने बड़े भाई सोमप्रभ सहित प्रभुके चरणारविन्दोंमें पड़ गये और उन्होंने भक्ति पूर्वक सविधि वैशाख सुदी तीजके दिन (जो कि वर्तमानमें अक्षयतृतियाके नाम से प्रसिद्ध है) गन्नेके रसका आहार दिया। भगवान तीर्थंकर को आहार देनेके प्रभावसे उनके यहां रत्नोंकी वृष्टि हुई। जिससे कि उनको बहुत प्रसन्नता हुई। भगवान आहार लेकर वहांसे वनको विहार कर गये। इसके बाद प्रभुने एक हजार वर्ष तक घोर तपश्चरण किया पश्चात् उन्हे फाल्गुन बदी एकादशीके दिन केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई, इन्द्रने आकर ज्ञान कल्याणककी सब विधि बहुत आनन्दपूर्वक की।

इधर भगवानको तो केवलज्ञान हुआ उधर भरत महाराजकी आयुधशालामे चक्ररत्नकी उत्पत्ति हुई, जिसको ग्रहण कर वे बहुतसी सेनाको साथमे लेकर तमाम भारतवर्षको दिग्विजय करनेके लिए तैयार हो गए। उस समय भरत ने कौरववंशके दीपक जयको बुलाया और उसे सेनापतिका पद दिया❀ इस रत्नकी एकहजार देवता रक्षा करते है। इसके पश्चात् चक्रवर्तीने दिग्विजय करना प्रारम्भ किया और साठ हजार वर्षमे भारतवर्षके छहो खण्डोको जीतकर

❀ चक्रवर्ती के चौदह रत्नोमे सेनापति भी एक रत्न है।

अपने अधीन कर लिया।

इस प्रकार दिग्विजय करके वे वापस अयोध्या नगरीमें आये। सेनापति जयकुमार दिग्विजयमें मेघेश्वर देवताओं को बड़ी बहादुरीसे जीत लिया था इसलिए चक्रवर्तीने प्रसन्न होकर उसका नाम भी मेघेश्वर रख दिया। इसप्रकार आनन्दपूर्वक मेघेश्वर-जय अपने राज हस्तिनापुरमें आये और वहां अमनचैनसे रहने लगे।

सेनापति मेघेश्वरकी जय हो! जो गुणोंके पुंज हैं, शरीरसे अत्यन्त सुन्दर हैं, जिन्होंने अपने पराक्रमसे बड़े-बड़े योद्धाओंको जीत लिया है। मेघेश्वर सरीखे देवताओंको जीतकर जिन्होंने संसारमें मेघेश्वर नामको चरितार्थ कर दिया है जिन्होंने अपनी राजनीतिके द्वारा प्रबल बैरियोंके समूहको नष्ट भ्रष्ट कर दिया है जो चक्रवर्तीको अत्यन्त प्रिय है। सेनापति रत्न होनेसे जिनकी देवतागण हाजरीमें खड़े रहते हैं। महान् पुरुषोंके द्वारा जो सेवनीय हैं। इसप्रकार धर्मके फलको भोगते हुए मेघेश्वर का समय आनन्दसे जाने लगा सो ठीक ही है। धर्मके प्रसादसे ऐसी कोई चीज नहीं है जो कि संसारमें अलभ्य हो। मान-प्रतिष्ठा, कीर्ति, धनादि वृद्धि, पुत्र पौत्रादि समृद्धि धर्मके फलसे प्राप्त होती है। इसलिये जीवमात्रका कर्तव्य है कि वह धर्मका सदा ही पालन करे। एक घड़ी भी बिना धर्मके नहीं खोवे।

❀ द्वितीय अध्याय समाप्त ❀

अथ तीसरा अध्याय।

भगवान आदीश्वर प्रभुको नमस्कार हो, जो कि बैलके चिन्हसे चिन्हित हैं, अपार सुख देनेवाले और दुःखोंको नाश करनेवाले हैं। जिन्होंने युगके आदि में प्रजाको जीवनोपाय बताकर ऋद्धि-सिद्धिकी वृद्धि की पश्चात् दिगम्बर अवस्था धारणकर जिन्होंने कामदेवको नष्ट कर दिया। जो धर्ममय धर्मके दाता हैं तथा जिनकी कीर्ति सुरेन्द्रने गाई, ऐसे श्री आदिनाथ भगवान हमारे लिये मंगलमय हों।

महाराज सोमप्रभके सेनापति जय आदिके सिवाय विजय आदि और

चौदह पुत्र थे, जो कि बहुत गुणोंसे युक्त मनोहर रूपवाले और पराक्रमी थे। एक समय किसी निमित्तको ले राजा सोमप्रभ संसारके भोगोंसे विरक्त हो गए और राजपाट अपने पुत्रको सुपुर्द कर पराक्रमी जयको उन सबका मुखिया बना दिया, सो ठीक ही हैं कि जीवका जिस समय भवितव्य अच्छा होता है उसको कल्याण करनेका कोई न कोई साधन मिल ही जाता है। इसप्रकार सोमप्रभ भव तन भोगोसे विरक्त होकर भगवान ऋषभदेव प्रभुके पास गए और उनसे जैनदीक्षा लेकर दिगम्बरी हो गए पश्चात् कुछ कालमें कर्म-जालको काटकर मोक्ष-स्त्रीके पति बन गये।

इसके बाद जय अपने चाचा श्रेयांसके साथ पहिलेकी तरह राज-सुख भोगने लगा। एक दिन जय विहार करनेके लिए वनमें गए थे कि वहां उन्होंने बैठे हुए एक मुनिराजको देख नमस्कार और एक नाग-नागिनीके साथ उनका धर्मोपदेश श्रवण किया जिसको सुनकर उसके चित्तको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इसके बाद वे अपने नगरको चले गये और नाग-नागिनी भी अपने घर चले गए। वर्षाका समय था अकस्मात् ऊपरसे बिजली पड़ी और उसके द्वारा वह नाग मर गया और मरकर नागकुमार जातिका देव हुआ। इसके बाद एक दिन फिर जय महाराज हाथी पर चढ़कर उसी वनमें गये। वहां जाकर उन्होंने उसी नागिनीको जिसने कि पहले उनके साथ बैठकर धर्म श्रवण किया था, एक नीच जातिके नाग (सर्प) के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा इसपर उनको बहुत गुस्सा आया और उन्होने अपने क्रीड़ा-कमलके द्वारा उन दोनोको मारा और धिक्कार दिया। राजाको मारते देख उनके और भी लोगोने उनको ईट पत्थर लकडीके द्वारा मारा। सो ठीक ही है जो हीन चरित्र हो जाते है उनपर सभीको कोप हो जाता है और सब कोई उनको धिक्कार देते है। इस तरह मारसे व्याकुल होकर वह काकोदर (सर्प) मरकर गंगानदीमे काली नामकी जलदेवी हुई। वह नागिनी भी पीछे अपने खोटे कामपर बहुत पछताई और धर्मध्यानका चिंतवन करती हुई मरी और मरकर वह अपने नागकी जो कि मरकर नागकुमार जातिका देव हुआ था उसकी प्रिया हुई। वहां उसने अपने स्वामी नागकुमारसे जयके द्वारा हुई अपनी मृत्युके सारे समाचार यथावत् कह

सुनाये तथा उनकी बहुत चुगली करी। जिनको सुनकर नागकुमार बहुत गुस्सा हुआ और वह उसी समय जयको मारनेकी इच्छासे उनके महलमें गया सो ठीक है पशु भी अपनी स्त्रीके तिरस्कारको नहीं सहन कर सकता है, उनको भी गुस्सा आ ही जाता है। रातका समय था। जय अपनी प्यारी स्त्री लक्ष्मीमतीके साथ बातचीत कर रहे थे। वे कह रहे थे कि प्रिये! मैंनै आज एक बड़ा कौतुक देखा है उसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो! यह कहकर उन्होंने उस नागिनीका सारा चरित्र लक्ष्मीमतीको कह सुनाया।

नागकुमारने जयकी जब यह बात सुनी तो वह विचारने लगा कि कहां तो मै पशु नाग था और कहां अब धर्मके प्रसादसे उत्तम शरीरको धारण करने वाला देव हो गया सो ठीक ही है धर्मका फल अचिन्त्य है। इसके प्रसादसे जब मोक्षलक्ष्मी तक प्राप्त हो जाती है तो अन्य की क्या बात है। मैंने जो देवका शरीर धारण किया वह इन्हीं महापुरुष जयके निमित्तसे किया है अतएव ये मेरे परमोपकारी और परम हितैषी है। इस विचारके साथ ही उसका क्रोध एकदम शांत हो गया और उसने अपने हितैषी जयकी रत्नोंके द्वारा पूजा की एवं उसको सारी कथा कह सुनाई। पश्चात् यह निवेदन किया कि स्वामिन्! काम पड़ने पर मुझे याद करना मै उसी वक्त आपकी सेवामें उपस्थित हो जाऊंगा। यह निवेदन कर वह देव अपने स्थानको चला गया।

इधर सेनापति जयकुमार जब चक्रवर्तीके साथ तमाम दिग्विजय कर चुका तब उसने आक्रमण करना एकदम छोड़ दिया और शान्त चित्त हो संयमी मुनिकी तरह अपने समयको आनन्दके साथ व्यतीत करने लगा। अब यहां पर और दूसरी कथा कही जाती है।

काशी नामका एक सुन्दर देश है, जो कि सारे संसारमे प्रसिद्ध है। वह ऐसा जान पड़ता है कि मानों तमाम भोग-भूमियां सब जगहसे उठकर यहीं एकत्र हो गई है। ऐसे विशाल काशी देशमे एक बनारस नामकी सुन्दर नगरी है। यह नगरी अत्यन्त विशाल और मनोज्ञ है उसके भवन स्वर्गके विमानोंसे भी उन्नत और सुन्दर बने हुए है। वे ऐसे जान पड़ते है कि मानों अपनी विशालता और स्वच्छतासे स्वर्गके विमानोको जीतकर अमरपुरीकी हंसी ही

उड़ाते हों। वहांके राजा अकम्पन थे। जिनके तेजके डरके मारे शत्रुगण थर-थर कांपते थे। उनके सुप्रभा नामकी रानी थी। रानी सुप्रभा यथा नाम तथा गुणवाली थी, यानी उसके शरीरकी कांति चन्द्रमाके प्रभाके समान सुन्दर थी। उस पुण्यशाली उन राजा और रानीके एक हजार उत्तम गुणोंको धारण करने-वाले पुत्र थे,–जो कि सूरजके समान प्रतापी थे। उनके नाम—हेमांड, सुकेतु, सुकांत आदि थे। इनके सिवा उनके सुलोचना और लक्ष्मीमती नामकी दो कन्यायें थीं। ये दोनों कन्या हिमवन और पद्मद्रहसे उत्पन्न हुई गंगा सिंधुकी समानता को धारण करती थीं। बड़ी कन्या सुलोचना वास्तवमें सु-सुन्दर, लोचना–नेत्रवाली थी। उसके समान और कोई रूपवाली नहीं थी। सुलोचना अपनी कला और अपने गुणों द्वारा चन्द्रमाको भी जीतती थी क्योंकि चन्द्रमा कलंक सहित है और इसमें किसी प्रकारका कलंक नहीं था–निर्दोष थी इसी-लिये सब उसे प्रेमदृष्टिसे देखते थे। उसकी जंघा रंभा–केलेके समान थीं इस-लिए लोग इसे रंभा कहते थे। इसके केश-पाश सघन और सुशोभित थे इसलिए यह सुकेशी कही जाती थी। इसके रूपकी सुन्दरताका अधिक वर्णन कहां तक किया जाय वह इंद्राणी जैसी दीख पड़ती थी। सुलोचना इस नामको वास्तव मे चरितार्थ करती थी। इसके सुमति नामकी एक धाय थी जो कि उसके गुण और कलाओंको बढ़ानेकी सतत् ही चेष्टा किया करती थी। फाल्गुन मासकी अठाईका समय था। उस वक्त सुलोचनाने बड़ी भक्ति भावसे जिनेन्द्र भगवान की पूजा की और उपवास करनेका नियम लिया। पूजा-पाठ समाप्त करके वह प्रभुकी आसिका देने के लिये पिताजीके पास गई। राजाने उसके हाथोंमें आसिकाको देखकर बड़ी भक्ति-भावसे हाथोंकी अंजुलि बनाकर मस्तकपर चढ़ाया। इसके बाद राजाने उसकी तरफ देखकर कहा कि पुत्री! तेरा शरीर उपवासादि करनेसे बहुत कृश हो गया है इसलिए तू शीघ्र ही घरको जा और पारणा करले। यह बात कहकर राजाने उसे विदा कर दिया किन्तु स्वयं इस सोच विचारमे पड़ गया कि पुत्री अब युवती हो गई है इसका विवाह कर देना चाहिए, सो ठीक ही है युवती-पुत्रियां चिन्ताका ही कारण होती हैं। इस प्रश्न को जब वह स्वयं हल नहीं कर सका तो उसने अपने चारों मन्त्रियों को

[१ श्रुतार्थ, २ सिद्धार्थ, ३ सर्वार्थ, ४ सुमति] बुलाया और यह प्रश्न उनके सामने रखा कि सुलोचना किसको देना चाहिए।

इस प्रश्नको सुनकर प्रथम श्रुतार्थ मन्त्रीने कहा कि भारतके तिलक भरतचक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिको यह कन्यारत्न देनी चाहिए क्योंकि कुल रूप अवस्था विद्या धन पुरुषार्थ आदि जो-जो गुण वरमें होना चाहिए उन सबोंका समावेश उसमे है। अर्ककीर्ति वास्तवमें अर्क—सूर्यके समान कीर्तिवाला है इस-लिये वह इस कन्याके लिये योग्य पात्र है। यह बात सुनकर सिद्धार्थ मन्त्री कहने लगा कि आपने जितनी भी बातें बतलाई हैं वे यद्यपि अर्ककीर्तिमें पाई जाती है किन्तु साधारण पुरुषका एक बड़े पुरुषके साथ संबंध होना उचित नहीं जान पड़ता ऐसे सम्बन्धको पंडितजन तो आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते हैं। सम्बन्ध अपने बराबर वालोंके साथ ही करना चाहिए जिससे संसारमें यश हो, आपसमें प्रीति और सुखकी वृद्धि हो। हे राजन्! आपकी बराबरीवाले प्रभंजन, रथवर, बली, वज्रायुध, मेघेश्वर, भूमिजन आदि बहुतसे राजा हैं। उसमें जिसको आप योग्य समझें उसको कन्या दें। सिद्धार्थकी इस सम्मतिको सुनकर सर्वार्थ मन्त्रीने कहा कि राजन्! भूमिगोचरियोंके साथ संबंध पहलेसे ही होता चला आया है किन्तु अभीतक विद्याधरोंके साथ नहीं हुआ है इसलिये मेरी यह सम्मति है कि आप इस सम्बन्धको किसी योग्य विद्याधरके साथ ही निश्चित कीजिए इस सम्बन्धसे हम सबोंको और कन्याको बहुत सुख मिलेगा। इसके पश्चात् सुमति नामका मन्त्री बोला कि स्वामिन्! इन सब सम्मतियोकी अपेक्षा तो इस समय स्वयंवर विधि करना ही उत्तम होगा। इससे सबको सुख—शांति मिलेगी। बुद्धिमान सुमतिकी इस सम्मतिको सुनकर चतुर अकम्पनने कहा कि इस समय स्वयम्वर होना ही योग्य है। इस सम्बन्धमें अकम्पनने अपने पुत्र हेमांगद और प्रिया सुप्रभासे भी विचार किया। सबोंकी सम्मतिसे स्वयम्वर करना ही निश्चित् हुआ। उसके बाद राजा अकम्पनने चारों दिशाओंमे राजाओं के पास पत्र दे-देकर दूत भेजे और उनसे सदल-बल स्वयम्वरमे आनेके लिए आग्रह किया।

जयकुमार और सुलोचनाके भावी संबंधको विचार कर इसीसमय पहिले

स्वर्गसे चित्रांगद नामका देव आया और वह अकम्पनके पास आकर कहने लगा कि मैं सुलोचनाके स्वयंवरको देखनेको इच्छासे आया हूं। यह कहकर उस देव ने नगरके पास ही जो एक ब्रह्मस्थान बना हुआ था उसके उत्तरकी तरफ पूर्व-मुखवाला एक बड़ा सर्वतोभद्र नामका महल बनाया और उसके चारों तरफ सुन्दर स्वयंवर मण्डपकी विधिपूर्वक भव्य रचना की।

दूतगण जो राजा अकम्पनके पत्र ले गये थे राजा महाराजाओंको पत्र देते हुए पत्रको पढ़कर और अकम्पनके अभिप्रायको जानकर प्रायः तीन समुद्रके भीतरके राजागण स्वयंवरमें आ उपस्थित हुए और अपने-अपने योग्य स्थान पर आ बैठ गये वे ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानों इन्द्रकी सभा ही लग रही हो। उधर सुलोचनाने स्नानादि क्रियाओंसे निपटकर सुन्दर मनोहर वस्त्राभूषण पहिने तथा प्रथम सर्वविघ्न विनाशक सिद्ध परमात्माकी पूजन की और उनकी आसिकाको मस्तक पर चढ़ाया। पश्चात् महेन्द्रदत्त नामका कंचुकी उसे रथमें बिठाकर स्वयंवर मंडपमें ले आया। इस समय सुलोचना अपनी रूपराशिसे रानीको भी लजाती थी। रानी सहित अकम्पन महाराज भी मंडपके पास ही एक तरफ बैठ गये, वे ऐसे जान पड़ते थे कि मानों स्वर्गसे इन्द्र ही इन्द्राणी सहित स्वयंवर मंडपको देखनेके लिये आया हो। हेमांगद भी अपने छोटे भाइयों को साथमे लेकर चतुरंग सेना सहित वहां आ गया इधर सुलोचनाका रथ भी मंडपमें आ पहुंचा। सुलोचना रथसे उतरकर मंडपमें गई। पश्चात् हाथमें वरमाला ले पतिवरण करनेकी इच्छासे चली तब कंचुकीने विद्याधर राजाओं की तरफ इशारा करके कहा कि हे पुत्री! यह नमिका पुत्र सुनमि है यह दक्षिण श्रेणीका राजा है। यदि तुम्हारी इच्छा इसके वरने[illegible] तो [illegible] वरो, यह सुनमिका पुत्र सुवन है, जो कि विद्याधरोंमें शिरोमणि [illegible]
का अधिपति है। इसप्रकार कंचुकीने क्रमसे सभी
को कराया। इसके सिवा और भी राजा महाराजाओं[illegible]
कंचुकी सूरजके समान तेजवाले गुणोंके भंडार
पास पहुंचा और वहां पहुंचकर उसने उनका परिचय
पुत्री! यदि तू सुख चाहती है तो इसको वर। इस

राजाओंकी तरह इनको भी छोड़कर अन्तमें किसीसे भी न जीते जानेवाले जय-कुमारके पास पहुंची और वहां जाकर खड़ी होगई, जिसप्रकार बसन्तऋतु आने पर कोयल अन्य वृक्षोंको छोड़कर आमके पेड़पर पहुंच जाती है सुलोचनाको जयमें आसक्त चित्त देखकर कंचुकीने कहा कि हे पुत्री ! ये सोमप्रभ महाराजके पुत्र जगत्प्रसिद्ध महाराज जय हैं। इनकी सुन्दरता कामदेवको भी लजाती है, गुणोंसे परिपूर्ण हैं सो तुम सामने देख रही हो। इन्होंने उत्तर भारतमें जाकर वहांके बली मेघेश्वरदेवको जीतकर जो सिंहनाद किया था वह मेघेश्वर-देवताओं के शब्दोंको भी जीतता था। उससमय भरतचक्रवर्तीने प्रसन्न होकर अपने हाथों से इसके सिर पर "वीर पट्ट" बांधा था और इनका नाम मेघेश्वर रखा था, इतनी बात सुनकर पूर्व भवके अनुरागसे वह मानिनी अत्यन्त शोभायुक्त गुणाढ्य जयको देखकर और उनकी तारीफ सुनकर मनमें हर्षित हुई और उसने वह वरमाला जयके गलेमें डाल दी। उससमय बाजोंके शब्दोंसे सब दिशायें गूंज उठीं तथा सब लोग एकदम घोषणा करने लगे कि कन्याने बहुत उत्तम कार्य किया जो कि जयको वरा। सज्जन पुरुष उसकी इस चतुरता, वर चुननेकी बुद्धिको देखकर साधुवाद देने लगे परन्तु खोटी बुद्धि देने वाले अर्क-कीर्तिके कर्मचारीको यह बात सह्य नहीं हुई और वह इस तरह अर्ककीर्तिको भड़काकर कहने लगा कि महाराज अकम्पनका विचार यदि जयको कन्या देने का था तो हम सब लोगोंको यहां बुलाकर हमारा तिरस्कार क्यों किया ? जो कि कल्पांत तक व्यापक रहेगा। यह बात सुनकर अर्ककीर्ति कुछ लज्जित हुए और उन्होने अपना मस्तक नीचे कर लिया। यह देखकर उस दुष्ट कर्मचारीने उन्हें और भी भड़काना शुरू किया। वह बोला कि अकम्पनने आपको घर बुलाकर यह भारी दुष्टता की है और हदसे ज्यादा अपमान किया है। आप खुद विचारिये कि कहां तो आप चक्रवर्तीके पुत्र और कहां आपका सेवक यह जय ? इस बातका इसने तनिक भी विचार नहीं किया कि हम यह क्या कर रहे हैं ? अकम्पनकी यह दुष्टता ही नहीं किन्तु नीचताकी पराकाष्ठा है।

जिसप्रकार प्रज्वलित अग्निमें घी डालनेसे वह और भयानकरूप धा... कर लेती है अथवा वायुका झकोरा उसको उग्ररूप धारण करा देता...

उसीप्रकार उस कर्मचारीके वाक्योंने अर्ककीर्तिकी क्रोधाग्निको भड़का दिया और वे उसमें जलने लगे। बोले इस दुष्ट अकम्पनने मेरे होते हुए भी मुझे छोड़कर मेरे सेवकको कन्या दी यह उसने बड़ा भारी अपराध किया है इसलिए इसका प्रतिफल इसे अवश्य ही चखाना चाहिए। उस वक्त मेरे पिताजी चक्रवर्तीका भय मानकर मैंने "वीर पट्ट-पदक" का प्रदान करना सहन कर लिया था किन्तु इस समय मेरे सभी सौभाग्य और कीर्तिको नष्ट करनेवाली मालाकी क्षत्तिको मैं कैसे सहन कर सकता हूं? इस प्रकार क्रोधके आवेशमें आकर उसने अपनी सभी मान मर्यादाको तिलांजलि दे दी, उसके हृदयसे हेयोपादेयका ज्ञान रफूचक्कर हो गया और वह एकदम युद्ध करनेके लिये तैयार हो गया, सो ठीक ही है दुष्ट पुरुष दूसरोंके अभ्युदयकी–वृद्धिको सहन नहीं कर सकते है। इसप्रकार अर्ककीर्तिको विवेकशून्य देखकर अनवद्य नामके योग्य और चतुर मन्त्रीने न्याययुक्त और हितकर वचनों द्वारा समझाना शुरू किया कि राजन्! आपके वंशसे धर्म-तीर्थकी प्रवृत्ति हुई है और जयके वंशसे दानतीर्थ चला है इसलिये आप दोनों बराबर हैं अतः आपको अपना पराभव नहीं समझना चाहिये। दूसरी बात यह है कि पराई स्त्रीकी इच्छा करना नितान्त अनुचित है, लोक गर्षित है। यदि कदाचित् आपने लड़-झगड़कर बलात् कन्या ले भी ली तो वह जीतेजी आपकी भार्या न होगी यह निश्चित् है क्योकि कुलवती स्त्रियां एक ही पुरुषको इच्छती है चाहे उनके प्राण भले ही चले जांय। यदि वह प्राण तज देगी तो उस वक्त जयका प्रताप सूर्यकी तरह संसारमें फैल जायेगा और आपकी अपकीर्ति अंधेरेकी तरह फैल जायेगी। राजन्! अभी आप युद्धकी तैयारी नहीं कीजिये। यह न समझिये कि जय अकेला है और वह साधन विहीन है किन्तु उसकी तरफसे अकम्पनके पक्षमे बहुतसे राजे-महाराजे है और साधन भी पर्याप्त है। स्वामिन्! धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होना संसारमे बहुत दुर्लभ है किन्तु इन तीनोको आप साध चुके हैं इसलिए न्यायको उल्लंघनकर इनका सर्वनाश मत कीजिए। राजन्! संसारमे बहुतसे राजे महाराजे है और उनके यहां एकसे एक गुणोंसे युक्त कन्या रत्न है मै उनको आपके भण्डारमें लाकर उपस्थित कर दूंगा, आप नीतिको नहीं तजे। यह स्वयम्वर विधि है।

इस विधिमें यह कोई नियम नहीं है कि कन्या बड़े पुरुषोंके—धनी मानी मनुष्यों के गलेमें ही वरमाला डाले और गरीबोंके नहीं और न यहां सेवक साहिबका ही प्रश्न है। यहां तो सब बात कन्याके ऊपर ही निर्भर है। वह जिसको पसन्द करे उसीके गलमें वरमाला पड़ेगी अर्थात् वही उसका पति होगा। इस-प्रकार अनवद्य मन्त्रीने बहुत समझाया परन्तु अर्ककीर्तिके हृदयपर कुछ भी असर नहीं हुआ जिस तरह कि कमलपत्र पर जलकी एक भी बिन्दु नहीं ठहरती है उसीप्रकार इसके हृदयमें भी वे न्यायपूर्ण वचन स्थान नहीं पाते हुए सो ठीक ही है जिसको पित्तका ज्वर चढ़ रहा है उसको दूध भी कड़वा प्रतीत होता है। अतः उस कुबुद्धि हठी राजाने तुरन्त ही सेनापतिको बुलाकर आज्ञा करी कि हमारे पक्षके जितने भी राजा हैं उनसे कहो कि वे लड़ाईके लिए तैयार हो जांय। यह कहकर उसने तीनलोकको क्षोभित करनेवाली रणभेरी बजवादी। भेरीके शब्दको सुनकर सभी राजागण युद्ध करनेके लिए उत्सुक होने लगे और चलते हुए भटोंके हाथोंके चंचल शब्दोंके द्वारा अपनी कठोरता दिखलाने लगे। सब सेना बाकायदे चलने लगी। सबके आगे अंजनगिरीके समान उन्नत सजे हुए हाथी चले जाते थे। उनके पीछे युद्धरूपी समुद्रकी तरंगोंकी तरह उछलते हुए झूलों आदिसे सुशोभित घोड़े चले जाते थे। घोड़ोंके पीछे चित्कार शब्द करते हुए रथ और उनके पीछे पयादेगण चलते थे, जिनके कि हाथमें नाना-प्रकारके हथियार थे। किन्हींके हाथोंमे दण्ड था तो किसीके हाथमें धनुष था और किन्हींके हाथोंमें भाला था। इसप्रकार चतुरंग सेना सहित अर्ककीर्तिने विजयघोष नामक हाथीपर चढ़कर अकम्पन महाराज पर चढ़ाई कर दी।

अकम्पन महाराजने जब यह समाचार सुना तब मन्त्रियोंको बुलाकर सलाह की और अर्ककीर्तिके पास एक दूत भेजा। दूतने जाकर अर्ककीर्तिसे विनय पूर्वक कहा कि हे चक्रवर्तीके कुमार! इसप्रकार आपको अपनी मान-मर्यादाका उल्लंघन करना शोभा नहीं देता है। हे कुमार! आप रंजको छोड़-कर प्रसन्न हुजिये। व्यर्थका झगड़ा मत कीजिए। इसप्रकार दूतने विनय-अनुनय के साथ बहुत कुछ ऊंच-नीच समझाया परन्तु अर्ककीर्तिके ऊपर कुछ भी असर नहीं हुआ, आखिरमें दूत वापिस लौट आया और उसने हूबहू समाचार राजा

अकम्पनको कह सुनाया। यह सब बात सुनकर जयने कहा कि कुछ भी चिन्ता की बात नहीं है। मैं उस पर-स्त्री लम्पटको सांकल पकड़नेको उद्यत बन्दरकी तरह देखते ही देखते बांध लूंगा। इसके बाद जयने घनघोजा नामकी भेरी बजाई, जो कि उन्होंने मेघकुमारको हराकर प्राप्त की थी। भेरीके शब्द सुनते ही जयकी सेना भी युद्ध करनेके लिए तैयार हो गई। लहराते हुए समुद्रकी तरह मदोन्मत्त हाथी चलते हुए ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानों मदसे ही घूमते हों तथा अपनी टापोंसे जमीनको खोदते एवं हींसते हुए वायुके समान वेगवाले घोड़े और हथियारोंसे भरे हुए रथ चलने लगे। रथोंपर लगी फहराती हुई ध्वजाएं ऐसी जान पड़ती थीं कि मानों वे और योद्धाओको युद्धके लिए ही बुलाती हो। उसी प्रकार पयादेगण भी आमोद-प्रमोदके साथ संग्राम-क्षेत्रमें पहुंचनेके लिए उद्यत हो गए। इस समय वहांकी स्त्रियां भी भेरीका शब्द सुनकर सुभटोंका काम करती थीं वहांका और क्या वर्णन करे। इसप्रकार अपनी सेनाको साथ लेकर स्वयं अकम्प जय और बैरियोको थर-थर कम्पानेवाले अकम्पन भी संग्राम स्थलमें जा पहुंचे। इसी समय सूर्यमित्र, सुकेतु, जयवर्मा, श्रीधर, देवकीर्ति आदि मुकुटबद्ध राजा तथा नाथवंशी, सोमवंशी आदि राजा भी जयसे आ मिले। इनके सिवा अर्द्ध विद्यशोको साथ लेकर मेघप्रभ विद्याधर भी जयकी सहायताके लिए आया। इसप्रकार जयपक्ष भी बहुत प्रबल होगया। इस समय मेघेश्वर जयने शत्रुओंको भय पैदा करनेवाले मकरव्यूहकी रचना की जिससे उनकी शोभा अद्वितीय हो गयी। यह देखकर अर्ककीर्तिने चक्रव्यूह रचा और जयके मकरव्यूहको भेद डाला तथा सुनमि आदि विद्याधरोंने जो कि अर्ककीर्तिके पक्षमें थे तार्क्ष्य व्यूहकी रचना की। इसीसमय अष्टचन्द्र आदि विद्याधर भी अर्ककीर्तिके पक्षमे जा मिले और हथियारोंसे लैस होकर योद्धाओंके साथ प्रचण्ड युद्ध करने लगे। दोनों तरफके बाण शत्रुओंके हृदयको दहलाने लगे। इसप्रकार दोनों तरफके योद्धाओंमें न्याय युद्ध होने लगा। गजके असवार गजके असवारोंसे, घोड़ोके सवार घोड़ोंके सवारोंसे, पयादे पयादोंसे लड़ने लगे। इसतरह दंड, तलवार, भाले, गदा, मूशल, हल आदि हथियारोके द्वारा घमासान संग्राम होने लगा। इधर अर्ककीर्तिने दहकती हुई अग्निकी शिखाके समान

बाणों द्वारा शत्रुदलके वीरोंके हृदयको विदीर्ण कर दिया। यह देखकर जयने अपने छोटे भाइयोंको साथमें ले वज्रकांड धनुषके द्वारा भीषण संग्राम किया और थोड़ी ही देरमें शत्रुदलके योद्धाओंको तहस-नहस कर दिया। जिसतरह कि विजयका अभिलाषी वादी अपनी प्रबल शास्त्रकी युक्तियों द्वारा प्रतिवादीको पराजित कर देता है। इसके बाद जयपक्षके विद्याधरोंने आकाशमें जाकर शत्रु-पक्षके विद्याधरोंका भी भारी तिरस्कार किया और विद्यायुद्धके अभिमान में आकर कहा कि हम तुम लोगोंसे हमेशा ही संग्राम करनेके लिए तैयार हैं। इसी समय नीचेसे भूमिगोचरी और ऊपरसे विद्याधर बराबरकी ताकतसे बाणोंको छोड़ रहे थे जिससे कि वे बीचमें ही एक दूसरेके मुंहसे टकराकर रह जाते थे अर्थात् कोई किसीको नुकसान नहीं पहुंचा सकते थे।

इसके बाद जयने भाइयों सहित यमका रूप बनाया और वे सब घोड़ों पर चढ़कर सिंहकी तरह निःशंकके शत्रुदलके साथ युद्ध करने लगे इस समय जयकी जीत होने लगी यह देखकर शत्रुदलके योद्धा उनपर एक साथ टूट पड़े जिसप्रकार कि अग्नि पर पतंगे आकर एकदम गिरते हैं। इसके पश्चात् हाथियों की सेनाको उल्लंघन करके अर्ककीर्तिने जयके ऊपर आक्रमण किया। जयने भी विजयार्द्ध नामके हाथीपर चढ़कर उसके साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया। चक्रवर्तीने अर्ककीर्तिको दो वस्तुये दी थीं। एक वज्रकांड और दूसरा सफेद घोड़ोंवाला रथ। इससमय अर्ककीर्तिने इन दोनों चीजोंसे काम लिया, जिसकी वजहसे उसके कुछ विजयके चिन्ह दिखाई देने लगे। यह जान यमके समान पराक्रमी जयने वज्रकांड धनुषके द्वारा बातकी बातमें हाथियोंको नष्टकर बाणों के द्वारा अर्ककीर्तिको प्रभा रहित कर दिया जिसतरह कि बादलोंकी घटा सूर्यको तेजरहित कर देती है। जयने अर्ककीर्तिके शस्त्र ध्वजा छत्र चमरआदि सभी राज चिन्ह भेद डाले और उसके मदको चकनाचूर कर दिया। यह देख अष्ट-चन्द्र आदि राजा जयके इष्टको नष्ट करनेके लिए तैयार हुए परन्तु वे उसका कुछ भी अहित नहीं कर सके।

उधर भुजबली आदि राजा हेमांगदके साथ लड़नेको तैयार हुए। हेमांगदके भाई वगैरह भी लड़नेको आये तथा अपने छोटे भाइयोंको साथ लिए हुए अनन्तसैन भी आया और जयके भाईयोंके साथ लड़ने लगा। दोनों पक्षके राजाओंके

आपसमे खूब ही लड़ाई हुई, मारे क्रोधके दोनों पक्षके राजा धूजते थे। यह हाल देखकर जयको भारी गुस्सा आया और उसके आवेगमें उनपर एकदम टूट पड़ा। जयके पुण्योदयसे इसी समय नागकुमारका जिसका कि इन्होंने उपकार किया था आसन कम्पायमान हुआ और जयपर आगत संकटको तुरन्त जान लिया। वह उसी वक्त वहां आया और जयको नागपाश और अर्द्धचन्द्र बाण देकर चला गया। सो ठीक ही है, पुण्य ही संकटमें सहाई होता है। ये दो अमोघ अस्त्र पासमें आते ही जयने उस बाणको वज्रकांड धनुषपर चढ़ाकर अष्टचन्द्र आदि राजाको रथ सहित भस्म कर दिया। यह देखकर कुमारका अभिमान रसातलमें चला गया, जिस तरह दांत और सूंडके कट जानेपर हस्ती निर्मद हो जाता है, ठीक वैसी ही दशा उससमय अर्ककीर्तिकी हो गई। उसके सारे ही उपाय निष्फल हो गए। अभिमान प्रताप आदि सब नष्ट हो गये। ग्रंथकार कहते हैं कि इस नीच कर्मको धिक्कार है, देखिये इस कर्मके चक्करमे आकर चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिको जयने बांध लिया तो औरकी क्या बात है? ठीक ही है जो असत्मार्ग पर जाता है उसकी ऐसी ही दुर्दशा होती है इसमे आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। इसके बाद अस्तंगत सूर्यके समान प्रभारहित अर्ककीर्तिको जयने रथमे बिठाकर आप स्वयं हाथी पर सवार हुआ। जयने अर्ककीर्तिके सिवा जितने भी उसके पक्षके विद्याधर थे सबोंको नागफांससे बांध लिया। इसप्रकार शत्रुदलपर विजय कर सिंहके समान पराक्रमी जय अत्यन्त सुखी हुआ। जयके जीतकी खबर जब देवताओंको मालूम हुई तो वे हर्षित होकर आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे और जयध्वनिसे दशो दिशायें शब्दायमान कर दीं। इसके पश्चात् जयने रणस्थलका अवलोकन किया और जो योद्धा रणांगणमे मर गए थे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया (दाहक्रिया) की तथा घायलों का इलाज किया। यह सब काम करनेके बाद अकम्पन महाराजके साथ काशी में प्रवेश किया। उस वक्त काशी मनुष्योसे भरपूर और फहराती हुई ध्वजाओं से अत्यन्त शोभायुक्त थी अनेक प्रकारकी सज-धजकी चीजोंसे वह सजाई गई ऐसी मालूम पड़ती थी कि जयकी जीतकी खुशीमें नगरीने अपनी काया पलट ही कर दी है। वहां पहुंचकर जयने पकड़े हुए राजाओको तथा अर्ककीर्तिको

प्रतिष्ठित पुरुषों द्वारा विश्वास दिलवाकर उन्हें उनके योग्य स्थानपर ठहराया। इसके पश्चात् जय वगैरहने यह निश्चय समझ कि विघ्न-बाधाओंका नाश जिनेंद्रदेवके प्रसादसे ही होता है इसलिये उन्होंने सबके आदिमें जिनेंद्रभगवान की भक्तिभावसे पूजा-वन्दना की और नाना प्रकारकी स्तुतियों द्वारा भगवान की भक्ति प्रदर्शित की। बाद सबके सब अपने स्थानको चले गये। वहां जाकर जयने पकड़े हुए राजा और विद्याधरोंको छोड़ दिया और योग्य मीठे वचनों द्वारा यह विश्वास करा दिया कि आप लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। इसके बाद सरलचित्त जय और अकम्पन महाराजने कुमार अर्ककीर्तिको एक सुन्दर योग्य आसनपर बैठाकर उनकी स्तुति की और उन्हें नमस्कार किया और कहा कि हे कुमार! हमारे दोनों कुलोंको आपने ही बढ़ाया और लालन-पालन किया है। फिर भला ये कुल आपके द्वारा कैसे नष्ट हो सकते थे? बाड़ कभी खेतको नहीं खाती है, वह सदा ही उसकी रक्षा करती है। इसीलिए ऐसा हुआ है। वास्तवमें आपकी हार नहीं हुई है, हम सब लोग तो आपके सेवक हैं। आप जगत्के माता-पिता हैं, दूसरी बात यह है कि भाई-बंधु, सेवक वगैरह से समय पाकर कोई अपराध भी हो जाय तो महापुरुष उसको माफ ही कर देते हैं क्योंकि सज्जन पुरुषोंका क्षमा ही एक मात्र आभूषण है। हे कुमार! हम अविवेकियोंसे यह एक कसूर बन गया है परन्तु हैं हम आपके सेवक इसलिए आप हमें क्षमा-प्रदान करें यही हमारी आपसे विनम्र प्रार्थना है। स्वामिन्! एक सुलोचनाकी तो बात ही क्या है, यह सर्वस्व ही आपका है और हम भी आपके हैं। यदि आपको सुलोचना प्राप्त करनेकी इच्छा थी तो पहले ही स्वयं-वर विधिको रोक देना योग्य था परन्तु आपका ऐसा भाव तो था नहीं क्योंकि आप एक न्यायवन्त, प्रजापालक, विवेकी राजकुमार हैं। आपको तो किसी दुष्ट पुरुषने अग्निकी तरह भड़का दिया है इसीसे यह सब ऐसा हुआ है। प्रभो! अब आपसे हमारी यही विनम्र प्रार्थना है कि आप हमारे ऊपर शीतल जलकी तरह ठण्डे हूजिये अर्थात् हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये और गई गुजरी बात भुला दीजिए। इस प्रकार कुमार अर्ककीर्तिको हर प्रकारसे सम्बोधित किया पश्चात् महाराज अकम्पनने उनको बहुत सम्पत्ति दी और अपनी छोटी कन्या लक्ष्मीमतीका

विवाह उनके साथ कर दिया। इसप्रकार महाराज अकम्पनने बड़े आदरके साथ सन्तुष्ट कर और उन्हे हाथीपर चढ़ाकर बहुतसे राजे महाराजोंके साथ उनके देशको विदा कर दिया तथा और भी राजाओंको हाथी, घोड़े, आदि भेंट देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और विदा दी। वे लोग भी सब अपने-अपने नगरको चले गए।

इसके बाद बड़े ठाटबाटके साथ वह नागकुमार वहां आया और उसने जयकुमारके साथ सुलोचनाका विवाह बहुत आनन्दके साथ उत्साहपूर्वक करा दिया। यह सब क्या है ? पुण्यका ही फल है जो कि देवतागण भी आकर सेवा में उपस्थित हो जाते हैं। संसारमें पुण्यके बराबर और कोई चीज बड़ी नहीं है। जब तक प्राणीका पुण्यकर्मका उदय रहता है तब तक उसको हर प्रकार की भोगोपभोग सामग्री स्वतः ही मिल जाती है और जहां पुण्य क्षीण हुआ कि वह सामग्री देखते-देखते विलीन हो जाती है जिस प्रकार कि हाथीके द्वारा खाये हुए कपित्थ (कैथ) में का गूदा बिना तोड़े ही विलीन हो जाता है। पुण्यका अचिन्त्य फल है।

इसके पश्चात् जयने अकम्पनने साथ विचार करके यह उपाय निश्चित किया कि सुमुख नामके दूतको रत्नादि भेंट देकर चक्रवर्तीके पास भेजा जाय, बस उसने वैसा ही किया। दूत अयोध्या पहुंचा और चक्रवर्तीके सामने लाई हुई भेंटको रखकर हाथ जोड़कर विनयके साथ बोला कि स्वामिन् ! अकम्पन आपके डरसे भयभीत होकर आपको यह जताना चाहते है कि मैंने स्वयंवर विधि करके अपनी पुत्री सुलोचनाका विवाह जयकुमारके साथ कर दिया है उस स्वयंवरमे कुमारने भी आनेकी कृपा की थी किन्तु जिस वक्त सुलोचनाने आगत राजा महाराओंको छोड़कर जयकुमारके गलेमें वरमाला डाली थी उस समय उन्होंने अपनी अनुमति भी दी थी कि ठीक हुआ किन्तु न जाने पीछेसे किसी दुष्टने उनको भड़का दिया जिससे वे क्रुद्ध हो गये और क्रोधमें आकर उन्होंने युद्ध छेड़ दिया। हे स्वामिन् ! यह सब आप भले प्रकार जानते हैं क्योकि अवधि-ज्ञानके धारी है। आपके दिव्यज्ञानसे यह बात जानना बाहरकी बात नहीं है। हे प्रभो ! अब जो कर्तव्य है सो कीजिए, जिसमे हमारी कोई क्षति न हो और

न हमें क्लेश पहुंचे तथा मारे भी न जावें इसप्रकार दीनतापूर्वक विनम्र निवेदन करके दूत तो एक तरफ बैठ गया। तब परचक्रको भयवंत करनेवाले चक्रवर्ती ने उत्तरमें इसप्रकार कहा कि अकम्पनने ऐसे विनम्र दीनता भरे हुए शब्दोंको लेकर तुम्हें यहां व्यर्थ ही भेजा, वे बड़े हैं इसलिए मेरे पूज्य पिता आदिनाथ प्रभुसे कम नहीं हैं। जिसप्रकार भगवान आदिनाथ स्वामी मोक्षमार्गके प्रवर्तक गुरु हैं एवं दानकी प्रवृत्ति करानेवाले राजा श्रेयांस हैं तथा चक्रवर्ती पद पाने में मैं प्रथम हूं वैसे ही स्वयम्वर विधिके विधाता–प्रवर्त्तावने वाले चलानेवाले राजा अकम्पन हैं। यदि आज वे नहीं होते तो इस विधिको कौन चलाता? यहां भोग-भूमि होनेसे जो विधि लुप्त हो गई थी उसको जिन महानुभावोंने फिरसे चलाया वे संसारके पूज्य हैं मान्य हैं। ऐसे शुभ अवसर पर मेरे पुत्र अर्ककीर्तिने जो अन्याय रूप लड़ाई लड़ी उससे उसने मेरे यशको कल्प पर्यन्त कलंकका टीका लगा दिया, मेरी अपयशी पुरुषोंमें गणना करवा दी। इस तरह दूतको अच्छी तरह समझा बुझाकर वापिस लौटा दिया, उसने वापिस आकर महाराज अकम्पन और जयको चक्रवर्तीका कहा जैसा का तैसा सुना दिया, जिनको सुनकर वे बड़े ही प्रसन्न हुए। इसके बाद कुछ काल तक जयकुमार और सुलोचनाने आनन्द पूर्वक वहीं दिन निकाले पश्चात् जयने अपने नगर जाने की इच्छा प्रगट की तो अकम्पनने हाथी, घोड़ा, धन आदिसे भले प्रकार सम्मानित कर उन्हें विदा किया और साथमें हेमांगद आदि राजाओंको भेजा। इसप्रकार इष्ट बंधु-वर्गसे सुशोभित दम्पत्ति गंगा तटपर पहुंचे। वहां आकर उन्होंने सब सेनाको तो वहीं ठहरा दिया और कितने ही योग्य पुरुषोंके साथ अयोध्या नगरीको गये। वहां अर्ककीर्ति आदिने सामने आकर उनकी बड़ी ठाठ-बाटसे अगवानी करी और उन्हें नगरीमें लाये, जिसवक्त जयने अर्ककीर्ति आदिके साथ नगरीमें प्रवेश किया उससमय ऐसा जान पड़ता था कि बहुतसे देवताओंके साथ इंद्र ही अमरपुरीमें प्रवेश कर रहा हो। वहां पहुंचकर वे सीधे राज-सभामे गए और चक्रवर्तीको नमस्कार कर उनके द्वारा निर्देशित किये हुए स्थान पर जा बैठे। चक्रवर्तीने हृदयमे प्रेमभाव धारण करके कहा कि जय! तुम चन्द्रवदनी बहूको क्यों नहीं लाये, हम उसको देखनेके लिए बहुत उत्सुक हैं।

हम क्या कहे अकम्पनने तो इस नवीन विवाहोत्सवमें हमें भुला ही दिया—निमन्त्रण तक नहीं दिया, तुम्हीं भला कहो तो क्या यह बात उचित हुई ? क्या उन्होंने हम लोगोंको भाई-बन्धुओंसे जुदा कर दिया ? खैर जो भी हो किंतु तुम्हारे लिए तो मैं पिताके समान हूं तुम क्यों भूले ? तुम्हे तो मुझे आगे करके कोई अपना विवाह करना था। चक्रवर्तीके ऐसे प्रेम-भरे शब्दोंको सुनकर जय की दृष्टि मारे लज्जाके ऊपर नहीं उठती थी वह विनयपूर्वक नीचे मुख किये चुपचाप सुनता था। इसप्रकार चक्रवर्तीने बहुत मीठे शब्दों द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किया और उनका योग्य आदर-सत्कार किया। इसके बाद जय महाराज चक्रवर्तीको नमस्कार कर वापिस लौट आये तथा हाथीपर सवार होकर जल्दी ही गंगा तटपर जा पहुंचे। वे प्राणोंसे अधिक प्यारी सुलोचनासे मिलनेके लिए अधीर हो रहे थे। इतनेमें ही उन्होंने एक सूखे वृक्षकी डालपर सूरजकी तरफ मुंह किए एक कौवेकी रोती हुई बोली सुनी। उसके सुनते ही उनके हृदयमे अपनी प्राण-प्यारीके सम्बन्धमें कोई बड़े भारी अनिष्ट होनेकी आशंका हुई, होते ही उन्हें मूर्च्छाने आ दबाया, वे बेहोश हो गये। उनकी यह दशा हुई जान उसी समय कृतज्ञ नागकुमार वहां आया और आकर शीतल सुगन्धित वस्तुओं द्वारा उनकी वह मूर्च्छा दूर की और कहा कि आप सुलोचनाकी चिन्ता न करें वह सब तरहसे कुशल है। जयने उसके वचन प्रमाण कर शीघ्रताकी वजहसे बिना घाटके ही एक अपरिचित मार्ग द्वारा हाथीको गंगामें उतार दिया। हाथी बहुत सुडौल और सुन्दर चमकीले दांत वाला था। वह जलमें सूंड उठाये चलता हुआ ऐसा मालूम पड़ता था मानों पानीमें तैरता हुआ मगर ही हो। हाथी तैरता हुआ जब बीच धारामे पहुंचा तो वह काकोदर जो मरकर गंगामे कालीदेवी हुआ था उसने उसे आगे जानेसे रोक दिया। हाथीने बहुत जोर लगाया किन्तु वह उस स्थानसे एक इंच भी टससे मस नहीं हो सका सो ठीक ही है अपने स्थानपर निर्बल भी बल दिखाने लगते है पूर्व भवके बैरसे उसने जयके प्रति रोष भरे शब्दोमें कहा कि इसे पानीमे डुबोकर मारो, इसने मुझे मारा था और बहुत दुःख दिया था। अब मेरे पाले पड़ा है देखे तुम्हारी कौन रक्षा करनेमें समर्थ हो सकता है। यह कहकर कालीदेवीने जैसे ही जयके

हाथीको पकड़ा तैसे ही वह डूबने लगा। उसको जलमें डूबता देखकर गंगाके तटपर जो हेमांगद आदि राजा खड़े थे वे सब गंगामें एकदम कूद पड़े। उधर सती सुलोचना भी आहार पानी आदिसे तथा शरीरादिसे ममताभाव छोड़कर विघ्नोंको दूर करनेवाले णमोकार मन्त्रका जाप कर अपनी सखीजनोंके साथ गंगामें कूद पड़ी। सो ठीक ही है सती स्त्री पति पर आपन्न विपत्तिके समय अपने प्राणोंकी भी परवाह न कर उनकी सहायक होती है।

इसी गंगातट पर वहांकी अधिष्ठात्री एक गंगा नामकी देवी रहती थी। यह भयानक उपद्रव होते ही सहसा उसका आसन कम्पायमान हुआ और उसने सब समाचार बातकी बातमें जान लिया। वह उसी वक्त वहां आयी और उसने उस दुष्ट कालिकाको एक बड़ी जोरकी लताड़ बताई और ताड़ना दी अन्तमें उसने सबको सही सलामतसे गंगातट तक पहुंचा दिया सो ठीक ही है धर्मात्माओंकी पुण्यके योगसे सब जगह जीत ही जीत होती है, वे जहां भी जाते हैं, सब जगह उनकी पूजा एवं सत्कार होता है। इसके बाद गंगादेवीने नदीके किनारे पर एक सुन्दर सम्पत्तिसे परिपूर्ण महल बनाया और उसमे एक मनोहर सिंहासन स्थापित किया, जिसके ऊपर सुलोचनाको बैठाकर उसकी बड़ी भक्तिभावसे पूजा सत्कार किया और सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण भेंटमें दिये। पश्चात् उसने कहा कि वसन्ततिलक नामक उद्यानमें जिस वक्त मुझे सर्पने काट खाया था उस वक्त तुमने मुझे नमस्कार मन्त्र दिया था। उसीके प्रसादसे मेरी यह दशा हुई है। अर्थात् मैं उस भवसे आकर गंगाकी अधिष्ठात्री देवी और सौधर्म इन्द्रकी नियोगिनी देवी हुई हूं। यह सब आपकी ही कृपाका फल है इसके लिए मैं आपकी अत्यन्त कृतज्ञ हूं। यह सबबात सुनकर जयकुमारने सुलोचनासे इसप्रकार कहा कि प्रिये! उसकी सारी कथा क्या है सो मुझे कहो। तब सुनकर सुलोचनाने नीचे लिखे अनुसार कहना प्रारम्भ किया :—

विन्ध्याचल पर्वतपर एक विन्ध्यपुरी नामकी नगरी है। जो कि अत्यंत सुन्दर और मनमोहक है। उस नगरीमें विंध्यध्वज नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम प्रियंगुश्री था। उसके विन्ध्यश्री नामकी एक कन्या भी थी। विन्ध्यध्वज राजाने अपनी उस कन्याको गुण सम्पन्न बनानेके लिए

मेरे पास भेज दिया। हम दोनोंका आपसमें बहुत हेल-मेल हो गया। एक समय की बात है कि हम दोनों बसन्ततिलक उद्यानमें क्रीड़ा कर रही थीं कि दैवयोग से उसको एक सर्पने काट खाया। सर्पके काटते ही वह मूर्च्छित हो गई और जमीन पर गिर पड़ी। उस समय मैंने उसे णमोकार मन्त्र दिया और उसका महत्व भी अच्छी तरह समझा दिया। पीछे थोड़ी देरमे यह कन्या उस मन्त्रका जाप करती रही और जाप करते-करते उसकी मृत्यु हो गई और यहां आकर गंगादेवी हुई है। उसी धर्मानुरागसे उसने मुझसे इतना स्नेह किया है। यह कथा सुन जयने गंगादेवीको आदरसे विदा किया और आप फहराती हुई ध्वजा-वाले उसके बनाये हुए सुन्दर महलमें गये और वहां उन्होने बड़े आनन्दके साथ रात बिताई। पीछे सवेरा होते ही वे वहांसे उठे और गंगानदीके किनारे-किनारे चलकर हस्तिनागपुर आ पहुंचे। हस्तिनागपुर उस समय अपनी अनुपम सुंदरता से पुरुष सरीखा जान पड़ता था। पुरुषके जिस तरह दो भुजाये होती है उसके भी दो फहराती हुई पताकायें थीं। मनुष्यके मुख होता है तो इसके सुवर्ण कलश ही मुख था। पुरुषके वक्षःस्थल होता है इसके बड़े लम्बे तोरण ही वक्षःस्थल थे। मनुष्यके दो नेत्र होते है उसके सुन्दर झरोखे ही नेत्र थे। मनुष्य के जिस तरह कटिभाग, पैर और नाखून होते हैं, वहां भी छोटी-छोटी गुमटियां बनी हुई हैं जिनकी गहराई ही कटिप्रदेश हैं और खम्भे पैर तथा उनमें लगे हुए रत्न ही नख है। मनुष्यके स्त्री होती है, उसके सज्जन पुरुषोंकी गणना वही स्त्री थी। अधिक हम उस नगरकी शोभाका कहां तक वर्णन करे वास्तवमें अनुपम शोभायुक्त था। ऐसे विशाल समृद्धिशाली सजे-बजे नगरको देखकर जय महाराजने सुलोचना सहित वहां प्रवेश किया और नगरको देखकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए। सुलोचना सहित जय महाराज नगरमे प्रवेश करते हुए इस तरह शोभित होते हुए कि जिस तरह चक्रवर्ती अयोध्या नगरीमें प्रवेश करता हुआ सुशोभित हुआ था इस प्रकार महाराज जय अपनी प्रियाके साथ वहांके महलोमे निवास करने लगे। सुलोचनाके मुखकमलके भ्रमर जैसे जय अपने छोटे भाइयो सहित पृथ्वीका पालन करते हुए इन्द्रके समान सुशोभित होते थे।

एक समय महाराज जय और सुलोचनाने महलके ऊपरसे एक कबूतर

कबूतरीके जोड़ेको देखा और उसको देखते ही जय महाराजके मुंहसे यह शब्द अचानक ही निकल पड़े कि "हा ! मेरी प्रभावती कहां है" बस ये शब्द निकलते ही उन्हें मूर्च्छा आ गई और वे बेहोश हो गये। सुलोचनाको भी उस जोड़ेको देखकर जातिस्मरण-पहले भवका ख्याल हो आया और वह भी "हा" मेरा रतिवर कहां है ! यह शब्द कहकर मूर्च्छित हो गई और जमीन पर गिर पड़ी। उस समय कुटुम्बके सभी लोग इकट्ठे हो गये और यह क्या हुआ कहने लगे। उन्होंने चन्दन कपूर आदि शीतल वस्तुओं द्वारा उनकी वह मूर्च्छा दूर की, जिस तरह कि रत्नोंकी कान्ति अन्धेरेको नष्ट कर देती है। वे दोनों जब सचेत हुए तब उन्हें अपने कुटुम्बवालोंकी विकलता देखकर बहुत आश्चर्य प्रगट हुआ उनको अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया। जय महाराजने सुलोचनासे कहा कि हे प्रिये ! तुम अपने पूर्वभवका सारा वृत्तांत कह कर इन कुटुम्बियों के संशय दूर करो जिससे कि इनको शांति प्राप्त हो। पतिकी आज्ञा पाकर वह मिष्ट-भाषिणी इस प्रकार कहने लगी कि हे नाथ ! मैं अपने पूर्वभवोंका वर्णन करती हूं आप अच्छी तरह सुनिये।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में एक पुष्कलामयी नाम का देश है, उसमें मृणालवती नामकी पुरी है वहांके राजा सुकेतु थे। इसी पुरीमें रतिवर्मा नामक एक सेठ रहते थे, उनकी स्त्रीका नाम कनकश्री और पुत्रका नाम भवदेव था। यहीं श्रीदत्त नामके एक वैश्य भी रहते थे, उनकी स्त्रीका नाम विमलश्री और पुत्रीका नाम रतिवेगा था जो कि शील आदि गुणोंसे युक्त थी। अशोक-देव नामके एक तीसरे सेठ भी यहीं रहते थे उनकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता और पुत्रका नाम सुकांत था। वह सदा ही धर्म कार्यमें लगा रहता था। एक समय भवदेवके माता-पिताने उसके लिए रतिवेगाके माता-पितासे याचना की, फलतः दोनोंकी मंजूरी हो गई भवदेवका चरित्र अच्छा नहीं था, इसी कारणसे लोग उसे दुर्मुख भी कहा करते थे। एक समय धन कमानेकी लालसासे भव-देव परदेश जा रहा था उस समय श्रीदत्तने उससे विवाहके सम्बन्धमें कहा कि इस समय तो आप व्यापारके लिए परदेश जा रहे है, बतलाइए कि यह विवाह कब तक रुका रहेगा ? उत्तरमें भवदेवने बारह वर्षकी प्रतिज्ञा की और कहा कि

मै बारह वर्षके बाद न आऊं तो आप इस कन्याका विवाह दूसरोंके साथ कर देवे। ऐसा कहकर वह व्यापारार्थ परदेश चला गया। कर्मसंयोगसे हुआ भी ऐसा ही। धीरे-धीरे बारहवर्षकी अवधि समाप्त हो गई किंतु वह वापस नहीं आया। अन्तमे रतिवेगाके पिता श्रीदत्तने बड़े भारी ठाठ-बाटके साथ उस कन्या का विवाह अशोक सेठके पुत्र सुकांतके साथ विधिपूर्वक कर दिया। रतिवेगा वास्तवमें रतिके समान सुन्दर रूप गुणवाली थी इसके बाद भवदेव परदेशसे जब घर लौटा और उसने वहां यह सुना कि रतिवेगाका विवाह सुकांतके साथ हो गया है तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उस क्रोधके आवेगमे आकर उसने दोनोंको मार डालनेका निश्चय किया, सो ठीक ही है। क्रोधी पुरुष हित-अहित कर्तव्यका कुछ भी विचार नहीं करता। यह बात सुनकर वे दोनों (दम्पत्ति) बहुत डरे और मारे भयके वनमे चले गए, सो उचित ही है। अपने नाशकी शंका किसके लिए भयावह नहीं होती ? जिस वनमें वे गये वहांएक सुन्दर सरोवर था, उस सरोवर पर शक्तिषेण नामका एक राजा ठहरा हुआ था, वे उसकी शरणमें पहुंच गये और निर्भय होकर रहने लगे। पश्चात् वह दुर्मुख भी उन्हें मारनेके लिए वहां पहुंच गया परन्तु वह उनका बाल भी बांका नहीं कर सका। जब वहां उसका कुछ वश नहीं चला तो वह वापिस अपने घर लौट आया। शुभ कर्मके संयोगसे जहां शक्तिषेण राजा अपने डेरे लगाये हुए ठहरा था वहां एक चारणऋद्धिधारी मुनि आहारके निमित्त आये और वहां शक्तिषेणने उन मुनिराजको नवधाभक्ति पूर्वक मनमें उल्लास धारते हुए आहार दिया तथा उनकी पूजा भक्ति सत्कार किया। यह क्रिया देखकर उन दोनो दम्पत्तिको मन मे बहुत ही आनन्द हुआ और वे अनित्यादि बारह भावनाओका चिन्तवन करते हुए मनमे दयाभाव धारण कर आनन्दसे वहीं अपना समय बिताने लगे। एक समय अवसर पाकर दुष्ट भवदेव-दुर्मुखने उन दोनों दम्पत्तिको आग लगाकर जला डाला जिससे वे गतप्राण हो गये, मौका पाकर शक्तिषेणके सुभटोने दुष्ट भवदेवको मार दिया सो ठीक ही है जो दूसरोके लिए कुआ खोदता है उसके लिए कुआ पहिले ही तैयार रहता है।

पूर्व विदेह की पुण्डरीकनी नगरी में प्रजापाल नामका राजा राज्य

करता था और वहीं एक कुबेरमित्र नामका सेठ भी रहता था, सेठपर राजाकी पूर्ण कृपादृष्टि थी अर्थात् वह उसका बहुत आदर सत्कार करता था। उस सेठके स्त्रियोचित गुणोंसे संयुक्त बत्तीस स्त्रियां थीं, जिनमें धनवती सेठानी सबमें मुख्य थी सो ठीक ही है संसारमें सौभाग्यका मिलना बहुत ही कठिन है। वह हर एक को नहीं मिलता है क्वचित्में ही पाया जाता है। उस सेठ के घर सुकांतका जीव तो रतिवर नामका कबूतर और रतिवेगाका जीव रति-षेणा नामकी उसकी कबूतरी हुई। वे दोनों कबूतर कबूतरी सेठके घरमें बिखरते हुए तंदुल कणोंको चुगकर परस्परमें प्रीति धारणकर आनन्दके साथ अपना समय बिताने लगे। एक समयकी बात है कि उस सेठके घर पर आहार के लिए दो चारणऋद्धिधारी मुनि आकाशमार्गसे आये उन्हे देखकर सेठ-सेठानी के हृदयमें बहुत ही हर्ष हुआ और उन्होंने शुद्ध भावोंसे मुनियोंको पड़गाहन किया एवं नवधा भक्ति पूर्वक उनको आहार दान दिया। उस समय उन कबूतर कबूतरीकी निगाह भी उन मुनियोंपर पड़ी, उन्होंनेभी भक्तिभावसे मुनिराजके चरण-कमलोंका दर्शन किया और अपने पंखोंको पसारकर चरणों का स्पर्श किया। मुनियोंके दर्शनमात्रसे ही उन दोनोंको अपने पूर्वभवका स्मरण-जाति-स्मरण हो आयासो ठीक ही है जिन जीवोंका अच्छा भवितव्य है उनको आत्म-हित-साधनका कोई न कोई प्रबल निमित्त मिल ही जाता है। जाति-स्मरण होनेसे उन दोनोंको पूर्वभवमें राजा शक्तिषेण द्वारा भक्तिपूर्वक दिये हुये मुनि-राजको आहारदानकी याद आगई। मुनियोंके पास आकर उन्होंने मुनिदानकी बहुत ही अनुमोदना की और उसके प्रभावसे बहुतसा पुण्यबन्ध किया। एक समयकी बात है कि वे दोनों कबूतर कबूतरी दाना चुगनेके लिये दूसरे गांवमें गये हुये थे, वहां उनका पूर्वभवका शत्रु भवदेवका जीव जो कि मरकर बिड़ाल-बिल्ली हुआ था, उन्हें देखते ही क्रोधयुक्त हो गया और क्रोधसे आकर उन्हें मारकर खागया। इसलिये ग्रन्थकारका कहना है कि कभी किसीसे बैरभाव मत करो। यह बैरभाव ही भव-भवांतरमे जीवोंको दुःख देनेवाला है।

वहां विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमे गांधार नामका एक देश ह। उसमे शोखली नामकी सुन्दर नगरी है। उसका राजा आदित्यगति था उसकी स्त्रीका

नाम शशिप्रभा था। उसके गर्भसे वह कबूतर हिरण्यवर्मा नामका पुत्र हुआ। वहीं विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें एक अनुपम गौरी देश है, उसमें भोगपुर नाम का नगर है। उसका राजा वायुधर नामका विद्याधर था, उसके स्वयंप्रभा नाम की रानी थी। उसके गर्भसे वह रतिषेण नामकी कबूतरी प्रभावती नामकी पुत्री हुई। एक दिन राजाने देखा कि पुत्री प्रभावती वयस्का (युवती) होगई है तो उसको उसके योग्य वर देखनेके लिये चिंता हुई सो ठीक ही है कि कन्याओंका जन्म ही माता पिताके लिये चिंतादायक होता है फिर उसमें भी जिनकी कन्या युवती हो जाय तो उनकी चिंताका तो क्या कहना है? राजाने तुरन्त ही इस प्रश्नको हल करनेके लिये अपने विचारक मंत्रियोंको बुलाकर और उनसे राय ली कि पुत्री प्रभावतीको किसे देना चाहिये क्योंकि जो काम अपने हितैषियों द्वारा मंत्रणा विचार पूर्वक किया जाता है उसमें पीछे पछताना नहीं पड़ता है। राजाके इस योग्य प्रश्नको सुनकर मंत्रियोंने विचार करके कहा कि हे नाथ! सबकी एक मतसे यह राय है कि इसकी स्वयंवर-विधि करनी चाहिये। राजाने उनकी इस योग्य सम्मतिका आदर किया और उसके अनुसार कार्य करना प्रारंभ कर दिया। भव्य स्वयंवर-मंडप बनकर तैयार होगया, देश देशांतरके विद्याधर राजाओंके पास निमंत्रण भेज दिया गया। सब राजा विद्याधर जो कि कन्या-रत्नके अर्थी थे वे वहां आकर उपस्थित हो गये और स्वयंवर मंडपमें अपने-अपने योग्य स्थानोंपर आकर बैठ गये। प्रभावती हाथोंमे वरमाला ले पति वरण करनेकी इच्छासे स्वयंवर मंडपमे आई और उसने वहां बैठे हुये विद्याधर राजा-ओंमेसे किसीको नहीं वरा। यह हाल देखकर उसके माता-पिताने उससे पूछा कि हे पुत्री! इसका क्या कारण है जो कि तूने इतने राजाओंमेसे किसीको नहीं वरा? कन्याने उत्तरमें कहा कि जो कोई मुझे गति-युद्धमें पराजय कर देगा उसी के गलेमें यह वरमाला डाल दूंगी। इस प्रकार स्वयंवरका एक दिन खतम हो गया।

इसके बाद स्वयंवरका दूसरा दिन आया। उस समय प्रभावतीने सिद्ध-कूट चैत्यालयके शिखरसे माला नीचेको डाली परन्तु वहां बैठे हुए विद्याधरोमे किसीकी भी यह शक्ति नहीं हुई कि वहां बने हुये मेरुकी तीन प्रदक्षिणा देकर

उस माला को बीचमें ही ले लेवें। तब सब विद्याधर राजा शर्मिन्दा हो अपने अपने घर चले गये। इसके पश्चात् कबूतरका जीव जो कि आदित्यगतिके हिरण्यवर्मा नामका पुत्र हुआ था, वहां आया। वह गतियुद्धमें बहुत ही प्रवीण था। उसने बातकी बातमें ही मेरुकी तीन प्रदक्षिणा देकर बीचमें ही मालाको हाथमें ले लिया। यह देखकर प्रभावतीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उनके गलेमें वह वरमाला पहिना दी। इसके पश्चात् हिरण्यवर्माने सिद्धकूट चैत्यालयमें जाकर भगवानका स्तवन पूजनादि धार्मिक क्रियायें कीं, बादमें वायुधर राजाने प्रभावतीका विवाह विधिपूर्वक हिरण्यवर्माके साथ कर दिया। विवाह करके वे दंपति अपने घर आये और वहां आकर नाना प्रकारके सुख भोगने लगे। कुछ दिनोंके बाद प्रभावतीने एक कबूतरके जोड़ेको उड़ते हुये देखा। उसको देखते ही उसे अपने पूर्व भवकी याद आगई और याद आते ही उसके परिणाम विरक्त हो गये उस समय प्रभावतीने एक चारणमुनिसे विनय पूर्वक प्रश्न किया कि हे नाथ! दयाकर मेरे पूर्व भवोंकी कथा कहिये। दयालु निस्पृही मुनिराजने उत्तर मे प्रभावती और हिरण्यवर्माकी सभी कथा ऊपर लिखे अनुसार कह सुनाई। जिसको सुनकर उन दम्पतिमे और गाढ़ प्रीति हो गई, सो तो ठीक ही है अपने पूर्व भवके निकट संबंधीका ज्ञान होने पर किसको प्रीति नहीं होती है, होती ही है। एक समयकी बात है कि आदित्यगतिने आकाशमें मूर्तिमान घने बादलोंको देखा और ऐसा देखा कि वे बातकी बातमें छिन्न भिन्न हो गये यह देखते ही उनके परिणाम संसार शरीर भोगोसे विरक्त हो गये सो ठीक ही है कि जिन जीवोंका भवितव्य अच्छा होनहार है या यों कहिये कि जिनकी कललब्धि आ गई है उनको ऐसे कारण कलाप स्वतः ही मिल जाते हैं और वे उन कारणोंको पाकर अपने आत्म हितकी तरफ लग जाते है, और फिर एक मिनट भी देरी नहीं करते हैं। ठीक आदित्यगतिने भी ऐसा ही किया। उसने तुरन्त ही अपने पुत्र हिरण्यवर्माको बुलाया और उसको अपना तमाम राज्य देकर स्वयं जिन-दीक्षा धारण करली क्योकि जैनेश्वरी दीक्षा ही एक ऐसी दीक्षा है कि जिसमें यह कार्य भी हेय समझा जाता है। पश्चात् हिरण्यवर्माने उत्तमताके साथ न्याय नीतिपूर्वक बहुत दिनोतक राज्य किया औरकिसी समय किसी निमित्तको पाकर

वे भी संसारसे विरक्त हो गये। उन्होंने भी नीतिके अनुसार अपने पुत्र स्वर्ण-वर्माको राज्य देकर स्वयं तपश्चरण करनेके लिए वन बिहारी बन गये। अपने पतिको दीक्षित देख प्रभावतीने भी गुणवती नामकी अर्जिकासे दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरणादिसे शरीरको सुखाने एवं शास्त्र स्वाध्याय द्वारा ज्ञानको बढ़ाने लगी। कुछ दिनों बाद उन दोनो ने वहांसे विहार किया और विहारते विहारते पुंडरीकिनी नगरीमें पहुँचे। वहां प्रभावतीको देखकर प्रियदत्ता सेठानीने संघकी गुरानीसे पूछा कि यह कौन है कि जिसको देखते ही मेरे हृदयमें स्नेह उमड़ आया है इसका क्या कारण है, मुझे बतलाइये। यह सुनकर प्रभावतीने स्वयं कहा कि तुम्हे घरमें रहनेवाले कपोतयुगलकी याद नहीं है स्मरण कीजिए मैं तो वही हूँ जो तुम्हारे घरमे रतिषेणा नामकी कबूतरी थी। यह बात सुनकर सेठानीको बहुत आश्चर्य हुआ और वह फिर बोली कि वह रतिवर कहां है? प्रभावतीने उत्तरमे कहा कि वह भी मरकर विद्याधरोंका ईश्वर हिरण्यवर्मा राजा हुआ है, जो कि अब मुनिदीक्षा धारण कर विहार करता हुआ इस नगरी मे आया है। प्रियदत्ता सेठानीने मुनिके पास जाकर उन्हे भक्तिपूर्वक नमस्कार किया इसके बाद वह भी प्रियदत्ताके उपदेशसे अर्जिका हो गई, और उत्तम क्षमाका पालन करने लगी सो ठीक है वैराग्य फल ही ऐसा है।

इसके पश्चात् मुनिराज हिरण्यवर्माने किसी समय सात दिनके लिये श्मशान (मरघट) मे प्रतिमासनसे योग धारण किया। उधर दुष्ट बिड़ाल-बिल्लीके जीव विद्युत चोरने प्रियदत्ताकी दासीके मुंहसे उन मुनिराजके पिछले भवोंका ये सब हाल सुना रक्खा था इसलिये विभंगावधिसे मुनिमहाराजको मसान भूमिमे ध्यानस्थ जानकर वह चोर वहां आया और उस दुष्टने जलती हुई चितामें मुनिराज हिरण्यवर्मा और अर्जिका प्रभावतीको एक साथ झोंक दिया। उस समय वे दोनों अग्निकी तीव्रतर भयानक परिषहको शुद्ध और समता भावों से सहकर मरे और उसके पुण्य प्रतापसे स्वर्गमें उच्च जातिके देव हुये। यह बात जब स्वर्णवर्माको मालूम हुई तो उसने विद्युतचोरको मार डालनेकी आज्ञा दी। स्वर्णवर्माका यह विचार उन दोनों देवोंको अवधिज्ञान द्वारा ज्ञात हो गया और वे दोनो यतिका रूप धारण करके वहां आये और उन्होंने समझा बुझाकर स्वर्ण-

वर्माका क्रोध शांत कर दिया। सो ठीक ही है साधु महात्माओंका वचन कभी विफल नहीं जाता है। इसके बाद वे दोनों दिव्यशरीर धारी स्वर्णवर्माको दिव्य वस्त्राभूषण भेटकर आप स्वर्ग चले गये। कुछ समय बाद किसी समय वे दोनों देव वहां फिर आये और उन्होंने महामुनि भीमको देखकर उन्हें नमस्कार किया और उनसे धर्मका श्रवण किया। मुनिमहाराजने बताया कि यह धर्म दयामय है और वह दया सत्य और संयम पालन करनेसे होता है। अदत्ता त्याग और परिग्रह त्यागसे भी धर्म होता है। यह धर्म ही जीवोंका कल्याण करनेवाला है एवं मन-वांछित पदार्थोंको देनेवाला है। यह सुनकर देवने फिर कहा कि हे स्वामिन्! यह बतलाइये कि आपके दीक्षित होनेका क्या कारण है? इसके उत्तरमें मुनि-वरने कहा कि मैं इसी पुंडरीकनी नगरीमें एक दरिद्र कुलमें पैदा हुआ था, मेरा नाम भीम है। एक समय मौका पाकर मैंने एक मुनि महाराजसे धर्मका श्रवण किया जिससे मैंने अष्टमूल गुणका धारण और श्रावकके व्रतोंको ग्रहण कर लिया। यह बात मैंने अपने घर जाकर पिताजी को कही तो वे मुझपर बहुत नाराज हुए और मुझे बहुत उलटा–पुलटा समझाया किन्तु मैंने उनकी एक भी बात नहीं मानी। मुझे उस समय जातिस्मरण हो गया था जिससे मुझे अपने पूर्वभवकी सब बाते मालूम हो गई थीं। मैं उस समय विरक्त हो दिगम्बर साधु बन गया। मैं विचार करने लगा कि मै अपने पहले भवमे भवदेव नामका वैश्य पुत्र था। इस भवमें मैंने विरोधके कारण रतिवेगा और सुकांतको मार डाला था। इसके बाद मरकर जब वे कबूतर कबूतरी हुए थे तो मै बिल्ली हुआ था। इस पर्यायमे भी मैंने पूर्व भवके द्वेषसे उनको मार डाला। इसके बाद जब वे हिरण्यवर्मा और प्रभावती हुए तब मै विद्युत चोर हुआ। उससमय भी मैंने उन दोनोंको [मुनि और अर्जिका अवस्थामे भी] जलती हुई चितामे भून डाला। उस महापापके कारण मैं भयानक दुखोंका स्थान जो नरक है वहां गया और वहां नाना प्रकारकी भूख प्यास सर्दी गर्मी आदि यातनायें सहन करनी पड़ीं सो ठीक ही है पाप जीवोंको दुःख ही देता है। नरकसे निकलकर मुझे संसारचक्रमें जो चक्कर लगाने पड़े हैं उनसे मेरी आत्मा इतनी संक्लेशित हो गई है कि मैं उसका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं कर सकता हूँ। इस विचित्र कथा को सुनकर उन

देवोंको बहुत आश्चर्य हुआ और उनको अवधिज्ञान द्वारा सब बातोंका स्पष्टरूप से ज्ञान हो गया वे भी संसारको कंटकाकीर्ण समझने लगे किन्तु वे सातारूपवेदनीय कर्मके उदयसे स्वर्गमे जाकर देवांगनाओंके साथ स्वर्गीय सुखका अनुभवन करने लगे। उनके चले जानेके बाद निर्भय महामुनि भीमने बारह भावनाओंका चितवन कर एवं कठिनतर तपोंको तपकर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा घातिया कर्मोंको घातकर मोक्षमे जा विराजे जहाँ कि जीवको अनन्त सुखोंकी प्राप्ति होती है। यहां सुलोचना अपने स्वामी जयकुमारको स्मरण दिलाती है कि हे नाथ! उस समय हम लोग वहां मुनि–वन्दनाके लिये गये थे और उनकी वन्दना कर वापस स्वर्गको चले गये थे उसके बाद स्वर्गसे चयकर हम दोनों इसी भरतक्षेत्रके हस्तिनागपुरके राजा सोमप्रभके तुम पुत्र रत्न हुए और मै राजा अकंपन की पुत्री सुलोचना हुई। यही कारण है कि आज कबूतरोंके जोड़ेको देखकर आप तो "हा प्रभावती" कहकर मूर्च्छित हो गए और मै उस भवके मेरे स्वामी रतिवरकी याद कर "हा रतिवर" ऐसे कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। इस प्रकार हम यहां क्रीड़ा करनेवाले सुन्दर दम्पति हुए है और निमित्त पाकर हमें जातिस्मरण भी हो गया है। इसप्रकार सुलोचनाने अपने पूर्वभवकी सारी कथा सुनादी जिसको सुनकर जयकुमारको बहुत आनन्द हुआ। सो ठीक ही है, स्त्रियों के कोमल वचनोसे कौन नहीं प्रसन्न होता है? इस प्रकार वह दम्पति मनमाने भोग भोगते हुए अपने समयको आनन्दसे बिताने लगे। इनके पास विद्याधरके भवमे प्राप्त हुई बहुतसी विद्यायें थीं, जिनकी वजहसे वे मेरु और कुलाचलोंपर जहां भी इनकी इच्छा होती थीं, वहां जाकर नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते थे और सांसारिक सुखोंका आस्वादन लेते थे। एक समयकी बात है कि जयकुमार क्रीड़ा करनेके लिए कैलाश पर्वतके वनमें गये हुये थे, वहां सुलोचनाको अकेली एक स्थानपर छोड़कर स्वयं कुछ दूर निकल गये। इसी समय दैवात् इन्द्रने अपनी सभामे जयकुमारके शीलव्रतकी बड़ी प्रशंसा की और सुलोचनाके पतिव्रत की भी उसी प्रकार सराहना की। यह बात वहांके एक रविप्रभ नामक देवको नहीं सहन हो सकी। उसने तुरन्त ही कांचना नामकी एक सुन्दर अप्सराको जय के पास भेजा। वह जयके पास आकर इसप्रकार कहने लगी कि–इस भरतक्षेत्र

के विजयार्धकी उत्तर श्रेणीमें एक सुन्दर रत्नपुर नगर है। वहांका राजा पिंगलाधार है। उसकी रानीका नाम सुप्रभा और कन्याका नाम विद्युत्प्रभा है, जो कि हाव-भावसे पूर्ण है। मैं वही विद्युत्प्रभा हूँ। मेरा विवाह राजा नाभिके साथ हुआ था। एक समय मैंने आपको मेरुके नन्दन बनमें क्रीड़ा करते हुये देखा था, तभीसे मेरी लालसा आपको प्राप्त करनेकी हो रही थी। मेरा मन आपकी तरफ पूर्ण खिच गया है। नाथ! इतने दिनों तक आपके दर्शन नहीं हुए थे। आज भाग्यसे मुझे मौका मिला है अतः नाथ! मुझे स्वीकार कीजिये और मेरे साथ मनमाने भोग भोगिये।

विद्युत्प्रभाकी यह बात सुनकर और उसकी निंद्य चेष्ठा जानकर जयकुमारने कहा कि तुम मनमें ऐसा घृणित पाप मत विचारो मेरे पर-स्त्रीका त्याग है। तुम यहांसे अभी चली जाओ। इसतरह मेघेश्वरने उसको एक डांट बताई। यह देखकर विद्युत्प्रभाको बहुत क्रोध आया। वह उस समय राक्षसी का रूप बनाकर जयको नाना तरहसे उपद्रव करने लगी, किंतु जब उसका यहां वश नहीं चला, तो वह वहाँसे भागी और भागकर सुलोचनाके पास पहुँच गई। सुलोचनाने भी इसकी अच्छी तरहसे खबर ली आखिरमें वह उसके अखंड और दृढ़ शीलके माहात्म्यसे डरकर अदृश्य हो गई। शीलकी बड़ी महिमा है, शीलव्रतधारी व्रतियोंसे जब देवता भी डरते है तो औरोंकी तो क्या बात है। उसने स्वर्गमें पहुँचकर अपने स्वामीके प्रति जयकुमार सुलोचनाके शीलकी बड़ी मुक्तकंठसे प्रशंसा की। उसकी यह बात सुनकर रविप्रभको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह तुरन्त ही वहां आया और आकर उसने उस दम्पतिको नमस्कार किया और अपना सारा हाल उनको कह सुनाया और अन्तमें बोला कि मैं आपका बहुत अपराधी हूँ। कृपाकर आप मुझे क्षमा कीजिये। इसके बाद उसने उस दम्पतिकी वस्त्राभरण द्वारा पूजा की अर्थात् उसको वह चीज भेंटमे दी और भक्तिसहित स्तुति की। पश्चात् वह अपने स्थान को चला गला। इधर जयकुमार भी अपनी प्रिया सुलोचनाके साथ अपने स्थान हस्तिनागपुर चले गये।

एक समय अनेक राजाओं द्वारा पूजित जयकुमार का चित्त संसारकी क्षणभंगुरताकी तरफ गया और वह इतना गहरा हो गया कि संसारको एकदम

अनित्य समझने लगे। उन्होंने आदिनाथ स्वामीके पास जाकर धर्मका भले प्रकार उपदेश सुना, उसको सुनकर वे संसार शरीर भोगोंसे विरक्त हो गये और उन्होंने अपने पुत्र अनन्तवीर्यको राज्य देकर स्वयं बहुतसे राजाओं सहित दिगंबर दीक्षा धारण करली। इसके बाद थोड़े ही दिनोंमें सप्तऋद्धि और मनःपर्ययज्ञान को लाभकर वे आदिनाथ स्वामीके इकहत्तरवे गणधर हो गये और क्रमसे घातिया कर्मोको नाशकर केवलज्ञानी बन गये। इधर स्वामीके विरहसे पीड़ित सुलोचनाने भी विरक्त हो सुभद्रा नामकी भरत महाराजकी पत्नीके साथ–साथ ब्राह्मी अर्जिकाके पास अर्जिकाके वृत धारण कर लिये और घोर तप तपकर अन्तमे सन्यासमरण पूर्वक शरीर त्याग किया, जिससे कि वह सोलहवें [अच्युत] स्वर्गमे स्त्री पर्यायको छोड़कर देव हो गई।

इसके बाद भगवान आदिश्वरने सम्पूर्ण देशोंमें विहार कर धर्मामृत की वर्षा की और विहार करते–करते कैलाशपर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होने चौदह दिन तक मुक्तिका साधक योग धारणकर योगका निरोध किया और माघ कृष्णा चतुर्दशीके सुबह [सूर्योदयके समय] पूर्व मुख कर पद्मासनसे औदारिक शरीर छोड़कर अक्षयपद जो मोक्षपद है उसको प्राप्त किया। उस समय सुर–असुर आदि देवताओने प्रभुका मोक्ष कल्याणक महोत्सव बड़ी भक्ति–भावसे मनाया और सिद्धिकी अभिलाषासे सातिशय पुण्यबन्ध किया। इसके बाद जय भी घाति–अघाति कर्मोको नष्ट कर कल्याणमय अविनाशी जो मोक्षावस्था है उसके भोक्ता हो गए। उन जयकी जय हो, जो संसारके विजेता और सर्व शास्त्रोंके पूर्ण ज्ञाता है तथा शत्रुरूपी जो प्रबल दावानल अग्नि उसको शांत करनेके लिए मेघके समान है एवं जिन्होने प्रबल कर्मरूपी मलको प्रबल शुद्धिके द्वारा मार्जन कर दिया है, जिनकी भव्यजन नाना प्रकार से स्तुति करते है तथा जो कौरवों के शिरोमणि है। इस प्रकार भगवान आदिनाथ स्वामी तत्त्वोका स्वरूप बतलाकर बहुतसे जीवोंको संसारसे पारकर स्वयं कैलाश पर्वतसे निर्वाणको चले गए। अब घरमे ही वैरागी शुद्ध संवेगी दयालु भरत महाराज मोक्ष लाभ करे।

❀ तृतीय अध्याय समाप्त ❀

अथ चतुर्थ अध्याय

उन आदिनाथ भगवानको मेरा नमस्कार हो जो कि पुराण-पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, जिनकी कीर्ति संसार में अक्षुण्ण प्रसारित हो रही है, जिन्होंने कर्मरूपी पहाड़ोंको छेदनकर उत्तम अवस्था जो मोक्ष अवस्था है उसको प्राप्त किया है।

जय के पश्चात् कुरुवंशमें अनन्तवीर्य राजा हुआ। इसके बाद कुरुचन्द्र, शुभंकर, धृतिकर, धृतिदेव और गुणोंके पुंज गुणदेव राजा हुए। इसके बाद धृतिमित्र आदि बहुतसे राजाओंने इस वंशको सुशोभित किया। इसके पश्चात् भ्रमघोष, हरिघोष, हरिध्वज, रविघोष, महावीर्य, पृथ्वीनाथ, प्रथु, गजवाहन आदि सैकड़ों प्रतापी राजा हुए। इनके हो चुकनेके बाद विजय नामके राजा हुए जो कि संसारप्रसिद्ध थे, पश्चात् सनत्कुमार, सुकुमार, वीरकुमार, विश्व, वैश्वनर, विश्वध्वज और वृहत्केतु आदि बहुतसे पराक्रमशाली राजाओंने इस वंश में जन्म लिया इसके बाद विश्वसेन महाराजने इस वंशको अलंकृत किया। इन्हीं राजाके यहां परम पूज्य सोलहवें तीर्थंकर श्रीशांतिनाथ स्वामीका जन्म हुआ है अब संक्षेपमें शान्तिनाथ तीर्थंकरका चरित्र कहा जाता है जो कि संसारकी कर्ममलीमस आत्माओंके लिये सद्बोध और सच्चारित्रका प्ररूपक होगा, जिसके श्रवणमात्र करनेसे ही उनका कर्मका भार हलका होगा इसलिये उस पुण्यमयी चरित्रको स्थिर मन होकर सुनेंगे।

इसी भरतक्षेत्रके बीचमें एक विजयार्द्ध नामका पर्वत है। इसकी दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर नामका एक नगर है। वहां राजा ज्वलनजटी राज्य करता था। उसकी रानीका नाम वायुवेगा था। उसके अर्ककीर्ति नामका एक पुत्र था तथा इसके स्वयंप्रभा नामकी एक पुत्री थी। जो कि शील रूप गुण आदिसे शोभित थी। एक दिन राजाको यह समाचार मिला कि वनमें जगनन्दन और अभिनन्दन नामके दो मुनिश्वर आये हुये हैं यह खबर पाते ही उनकी वन्दना करनेके लिये वनमें गया। वहां जाकर उसने मुनिचरणोंकी वन्दना की और उनसे उपदेश सुना तथा सम्यग्दर्शन धारण किया। साथ-साथ स्वयंप्रभाने भी उपदेश सुना। इसके बाद वह राजा मुनीश्वरोंको नमस्कार कर अपने वापिस चला गया।

इसके बाद एकबार पर्वके दिनोंमें स्वयंप्रभाने बहुत प्रसन्नता पूर्वक उपवास किये जिससे उसका शरीर कृश हो गया किंतु उपवासकी वजहसे शरीरकी कान्ति यथावत् थी। स्वयंप्रभाने बड़ी भक्तिभावसे जिनेन्द्र भगवानकी पूजा की और उनके चरणयुगको स्पर्शकर पूजाकी। आसिका को लाकर अपने पिताको दी। पिताने बड़ी भक्ति भावसे उस आसिकाको मस्तकपर चढ़ाया। ज्वलनजटीने अपनी कन्या को यौवनवती देख यह निश्चय किया कि इसका विवाह किसी उत्तम योग्य वरके साथ कर देना चाहिये परन्तु वह यह निश्चय नहीं कर सका कि यह सुन्दर कन्या किसे दी जानी चाहिये इसके लिये उसने अपने मंत्री वर्गको बुलाया और उनसे परामर्श किया। इसपर शास्त्रोंके ज्ञाता सुश्रुत नामके मंत्रीने कहाकि महाराज! इसी विजयार्द्ध की उत्तर श्रेणीमे एक अलकापुरी नगरी है जो कि यथानाम तथा गुणवाली है। वहांका राजा मयूरग्रीव है उसकी नीलांजना नामकी रानी है, उनके कई पुत्र है, जिनके नाम अश्वग्रीव, नीलकंठ और वज्रकंठ इत्यादि है। इनमे अश्वग्रीवकी स्त्रीका नाम कनकचित्रा है, उनके पांच सौ पुत्र है। अश्वग्रीवके हरिस्मश्रुक नामका मंत्री हैं और शतविन्दु नाम का निमित्तक है। राजा अश्वग्रीव तीन खण्ड पृथ्वीका स्वामी है। मेरी राय हैं कि अपनी कन्याको इन्हे देवे तो अति उत्तम हो। कन्या इनके यहां बहुत सुख भोगेगी और आपको भी शांति मिलेगी। सुश्रुत मंत्रीके वचन सुनकर बहुश्रुत नामके मंत्रीके कहा कि तुमने जो कुछ कहा सो ठीक तो है किंतु अश्वग्रीवकी अवस्था अधिक है इसलिये इन्हे कन्या देना मुझे उचित नही प्रतीत होता है। वरमे नीचे लिखे नौ गुण देखकर ही कन्या देनी चाहिए। १ उच्चजाति २ नीरोगता, ३ योग्य आयु, ४ शील, ५ शास्त्रज्ञान, ६ सुन्दर सुडोल शरीर, ७ धनसम्पत्ति, ८ पक्ष, ९ कुटुम्ब। ये नौ बाते कन्या देते समय वरमे जरूर देखना चाहिए। अश्वग्रीवमे इन नौ बातोंमें से बहुतसी बातें नहीं पाई जाती हैं इसलिए कोई दूसरा ही वर कन्याके लिए खोजना चाहिए क्योकि सब बातोंका विचार कर ही बुद्धिमान अपनी कन्या प्रदान करते है जिससे कि भविष्यमे कन्याको सुख मिले। इसके बाद उसी मंत्रीने फिर कहा कि महाराज! गगनवल्लभपुरमे सिंहरथ, मेघपुरमे पद्मरथ, चित्रपुरमे अरिंजय, अश्वपुरमे हेमरथ,

रत्नपुरमें धनंजय आदि बहुतसे राजा रहते हैं। इनमेंसे जो आपको अधिक रुचे उसे कन्या दीजिये। यह बात हो चुकने पर श्रुतसागर नामका तीसरा मंत्री बोला कि महाराज स्वयंप्रभाके योग्य वर मैं बतलाता हूँ सो सुनिये। विजयार्द्ध की इसी उत्तर श्रेणीमें सुरेन्द्रकान्त नामका एक नगर है वहां का राजा मेघवाहन है, उसकी स्त्रीका नाम मेघमालिनी है उनके विद्युत्प्रभ नामका एक पुत्र और ज्योतिर्माला नामकी एक कन्या है। एक समय राजा मेघवाहन सिद्धकूट चैत्यालय गया हुआ था, वहां उसने एक चारणमुनिको देखा, जिनका कि नाम वरधर्म था। वहां उसने मुनिराजको नमस्कार किया और उनसे धर्मका उपदेश श्रवण किया तथा अपने विद्युत्प्रभके पूर्वभवका वृत्तान्त पूछा। उत्तरमें दयालु मुनिराजने कहा कि—

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें वत्स्यकावती नामका एक देश है, उसमें प्रभापुरी नामकी एक नगरी है। उस नगरी का राजा नन्दन था, उसके जयसेना नामकी रानी थी और उन दोनोंके विजयभद्र नामका पुत्र था। एक दिन विजयभद्र बनक्रीड़ा करनेके लिये बनमें गया हुआ था, वहां एक फलको पेड़से नीचे पड़ता हुआ देखकर संसारसे विरक्त हो गया और पिहिताश्रव मुनिराजके पास जाकर उसने अन्य चार हजार राजाओंके साथ दिगम्बरी दीक्षा धारण करली। कुछ समय बाद वह मरकर शांत परिणामोंके द्वारा चौथे—स्वर्ग...... माहेन्द्रके चक्रक नामक विमानमें देव हुआ। वहां उसने सात सागरकी आयु प्राप्त की। वहांसे चयकर अब यह तुम्हारे यहां विद्युत्प्रभ नामका पुत्र हुआ है और थोड़े ही समयमें निश्चयसे निर्वाण जायगा। श्रुतसागर नामका मंत्री राजा ज्वलनजटीसे कह रहा है कि जिस समय यह कथा हो रही थी, मैं भी उस समय वहीं था। पिहिताश्रव मुनिके मुखारविंदसे मैंने यह हाल अपने कानों से सुना है। इसलिये मेरी राय है कि आप अपनी कन्याको उसे ही देवो और ज्योतिर्माला जो उसकी पुत्री है वह अपने कुमार अर्ककीर्तिके योग्य है इसलिये उसे हम अर्ककीर्तिके लिये ले लेवेंगे। श्रुतसागरके उपर्युक्त वचन सुनकर सुमति मंत्रीने कहा कि राजन्! कन्याको प्रायः सब ही विद्याधर चाहते हैं। इसलिये किसी एक को दे देनेपर वे बड़ा भारी बैर—विरोध खड़ा कर देवेंगे

इसलिये मेरी राय है कि स्वयंवर कर देना अति उत्तम होगा, ऐसा करनेमे किसीको कहने सुननेका मौका भी नहीं मिलेगा। यह बात कहकर वह मंत्री चुपचाप बैठ गया। राजाको उसकी बात जँच गई उसने मंत्री वर्गको तो विदा किया और एक संभिन्नश्रोतृ नामक पौराणिक पंडितको बुलाकर उससे पूछा कि आप यह बतलाइये कि हमारी स्वयंप्रभा कन्याका पति कौन होगा? यह सुनकर पौराणिकजीने कहा कि मैं शास्त्र के आधारसे आपके सामने प्रतिपादन करता हूँ आप उसे ध्यानपूर्वक सुनें।

सुरम्य देशमे पोदनापुर नगर है, उसका राजा प्रजापति है। उसके भद्रा और मृगावती नामकी दो रानियां है भद्राके पुत्रका नाम विजय और मृगावती के पुत्रका नाम त्रिपृष्ठ है। वे दोनों ही ग्यारहवे तीर्थंकर–श्रेयांसनाथक तीर्थमे नारायण और बलभद्र होंगे। वे दोनों महाबली राजा अश्वग्रीवको मारकर तीन खंडके अधिपति होंगे तथा उनमे त्रिपृष्ठ संसारके परिभ्रमणका अन्त कर तीर्थंकर होगा इसलिये तीन खण्डके अधिपति त्रिपृष्ठको ही कन्या देनी चाहिये। कन्या उसके मनको मोहित कर कल्याणकी भामिनी बनेगी और उस निमित्तसे आप भी विद्याधरोके स्वामी बनेगे। त्रिपृष्ठ बहुत पराक्रमशाली प्रभुता सहित है। इसप्रकार पौराणिक के वचन सुनकर वह राजा बहुत प्रसन्न हुआ और हर्षित होकर उसने उस पौराणिकका बहुत आदर–सत्कार किया और अच्छी भेट देकर सादर विदा किया। इसके बाद राजा ने उसी समय इन्द्रनामा दूतको बुलाया और उसे पत्र तथा वरके लिये भेट दे और सब बाते समझा बुझाकर उसे महाराज प्रजापतिके पास पोदनापुर भेजा। दूत ताजमहलके सभाभवनमें जहां कि महाराज विराजे थे पहुँचा और जो भेट करने के लिये ले गया था वह महाराजके सामने रक्खी तथा पत्र हाथमे देकर विनय सहित प्रार्थना करने लगा कि नाथ! ज्वलनजटीकी इच्छा है कि अपनी पुत्री स्वयंप्रभाको आपके पुत्ररत्न त्रिपृष्ठको देवें इसप्रकार दूत अपनी प्रार्थना कर एक तरफ बैठ गया। राजा ने आगत पत्रको पढ़ा और उसका सार अभिप्राय जानकर उसने दूतका खूब ही आदर–सत्कार किया और बदलेकी भेंट देकर कहा कि जैसी तुम्हारे राजा की इच्छा होगी वैसा ही होगा। ऐसा कहकर दूत को वहांसे विदा कर

दिया। दूत पोदनापुरसे वापिस रथनूपुर आया और वहां आकर उसने अपने राजासे वहांके समाचार यथावत् कह सुनाये। अपने मनोभिलषित कार्यकी सिद्धि जान ज्वलनजटीको बहुत ही हर्ष हुआ। इसके बाद बड़ी विभूति और ठाठ-बाटके साथ ज्वलनजटी स्वयंप्रभाको साथमें ले पोदनापुर पहुँचे। महाराज प्रजापति ये समाचार जानकर अगवानीके लिये नगरसे बाहर आये और बड़े सम्मानके साथ ज्वलनजटीको नगरमें ले गये और सुन्दर सुहावने मंडपमें ठहराया। इसके बाद ज्वलनजटी ने विवाहकी सब सामग्री एकत्र कर कन्याका त्रिपृष्ठके साथ सविधि विवाह कर दिया। भेंटके साथ उसने अपने जामाताको सिंह विद्या, नाग विद्या और तार्क्ष्य विद्या भी दीं। इसके बाद ज्वलनजटी कन्या का विवाह कर रथनूपुर चला गया और निश्चित हो सुख भोगने लगा।

इसीसमय उत्तर श्रेणीकी अलकापुरीमें जहां कि अश्वग्रीव रहता था वहां तीन प्रकारके उपद्रव दिव्य, भोम और अन्तरिक्ष होने लगे। पहिले कभी नहीं हुये ऐसे इन भयावह उपद्रवोंको देखकर वहांके अधिवासी लोग बहुत आकुलित होने लगे। उस समय अश्वग्रीवने शतबिन्दु नामक निमित्तज्ञानीको बुलाया और उससे इन उपद्रवोंका कारण पूछा। निमित्तज्ञानीने कहा कि हे राजन्! जिसने सिंध देशमें केहरीसिंहको मारकर अपना बल दिखाया एवं जिसने आपके पास आती हुई भेंट को बीच ही में जबरदस्ती छीन लिया तथा जिस धोरवीरने विद्याधर ज्वलनजटीकी पुत्री स्वयंप्रभाको वरा उसके द्वारा तुम्हारेको दुःख होगा, यही इन उपद्रवोंका फल है, इसलिये आप उसकी तलाश करें और अपना भले प्रकार प्रबन्ध कर उसके नाश करनेका प्रयत्न कीजिये। निमित्तज्ञानीकी यह बात सुनकर राजाने उसी समय मंत्रियोंको आज्ञा प्रदान की कि तुम लोग शत्रुकी जल्दी खोज करो और ढूंढकर उसका शिरःछेद कर दो क्योंकि विषवृक्षको जड़मूलसे उखाड़कर फेंक देना ही श्रेयस्कर है। मंत्रियोंने राजाकी यह बात सुनकर सब जगह शत्रुको देखने के लिये गुप्तचर भेज दिये। कुछ गुप्तचर पोदनापुर भी गये और वहां उन्होंने शतबिन्दुकी बताई हुई सिंघ-बध आदिकी बातोंसे यह निश्चय किया कि हमारे महाराजका शत्रु यह आत्माभिमानी त्रिपृष्ठ ही है। इसके ही निमित्तसे हमारे यहां भयानक उपद्रव हो रहे

है। इतना पता लेकर वे गुप्तचर अपने महाराज अश्वग्रीव के पास गये और उनको सब समाचार कह सुनाया। अश्वग्रीव यह समाचार सुनकर बहुत भयभीत हुआ। उसने उसी समय चिंतागति और मनोगति इन दो दूतोको बुलाकर त्रिपृष्ठके पास भेंट देकर भेजा। वे दूत त्रिपृष्ठके पास गये और उनके सामने भेट रखकर आदरके साथ बोले कि राजन्! विद्याधरोंके अधिपति अश्वग्रीवने आपके लिये यह आज्ञा दी है कि मै रथावर्त पर्वतपर आता हूँ, आप भी वहां आकर मुझसे मिलें। इसलिये हमलोग आपको लेनेके लिये यहां आये है। यह बात सुनकर त्रिपृष्ठको बहुत गुस्सा आया और उसने क्रोधभरे शब्दों में कहा कि मैने आजतक भी उष्ट्रग्रीव, खरग्रीव, अश्वग्रीव वाले मनुष्य नहीं देखे है, फिर यह अश्व-घोड़ोंकी सी गर्दन वाला मनुष्य कहां से आ गया। त्रिपृष्ठकी यह बात सुनकर दूतोने कहा कि विद्याधरोंके स्वामी और संसार के पूज्य पुरुषोत्तमके लिये आपको ऐसे शब्दोंका प्रयोग करना शोभा नहीं देता है। इस पर त्रिपृष्ठने कहा कि यदि तुम्हारा स्वामी आकाश में चलने वाला खगेश-विद्याधर है तो पक्ष-युक्त पक्षी हुआ, तो मुझ जैसे राजाके लिये ऐसा पक्षी देखनेकी क्या जरूरत है? मै नहीं जानता। इसके उत्तरमें फिर दूत बोले कि हमारा स्वामी चक्रनायक है, उसको बिना देखे अभिमान के वशमे आकर यद्वा तद्वा वचन कहना यह ठीक नहीं है। उनके कोपसे शरीरमे रहना तक भी कठिन हो जाता है तो पृथ्वीपर रहना तो नितान्त ही कठिन है। दूतके ऐसे कठोर वचन सुनकर त्रिपृष्ठ ने कहा कि यदि तुम्हारा स्वामी चक्रनायक है अर्थात् घड़ा बनाने वाले कुम्हारका मुखिया है तो मै ऐसे के लिये क्या तो भेजूं और क्या मेल-मिलाप ही करूँ। त्रिपृष्ठके ऐसे वचन सुनकर दूतोने क्रोध भरे शब्दोमे कहा कि जो कन्या अश्वग्रीवके योग्य थी उसको तुमने चुरा लिया है सो क्या वह तुम्हे सहजमे ही पच जायगी? ज्वलनजटी और प्रजापति उसके सामने कौन खेतकी मूली है वे चक्रवर्ती के क्रोधके आगे क्या कर सकते है? इतना कहकर वे दोनों दूत वापिस लौट आये और अश्वग्रीवको नमस्कार कर उनको त्रिपृष्ठके साथ जैसी भी कुछ बात-चीत हुई थी उसको ज्योंकी त्यों सुना दी। अश्वग्रीवको यह बात सुनकर भारी क्रोध उत्पन्न हो गया और उस क्रोधके

आवेशमें आकर उसने तुरन्त ही रणभेरी बजवा दी ठीक ही है भवितव्यताके अनुसार ही बुद्धि होती है और तदरूप ही कार्य होता है। संसारव्यापी रण-भेरीके शब्दोंको सुनकर सब राजागण मय लड़ाईके सामानके उसकी सेनामें आ उपस्थित हुये।

इसके बाद अश्वग्रीव चतुरंग सेना सहित रथावर्त पर्वतकी तरफ रवाना हुआ। उसके गमनके शब्दोंसे दशों दिशायें गुंजायमान हो गई। जिस समय वह चला, उस वक्त उल्कापात, बिजलीका गिरना, पृथ्वीका कांपना आदि अपशकुन सूचक चिन्ह हुये। अश्वग्रीवको आया जान प्रतापतिके दोनों पुत्र भी युद्धके लिए तैयार होकर वहाँ आ गये। दोनों तरफ की सेना में भयंकर युद्ध होने लगा। यह देख त्रिपृष्ठको बहुत ही क्रोध आया और वह उसके आवेशमें आकर अश्वग्रीवको मारनेके लिये स्वयं ही तैयार हुआ इधर अश्वग्रीव भी पूर्वभवके बैरसे त्रिपृष्ठके साथ पहिले से ही युद्ध करने के लिए तैयार था, फिर देर ही क्या थी दोनों तरफसे बाणोंकी वर्षा होना शुरू हो गई। सारी सेना भी बाण-मय दीखने लगी। इस तरह सामान्य शस्त्रों द्वारा उनमें परस्पर बहुत कालतक युद्ध हुआ परन्तु इससे किसी तरफ का भी जय पराजय नहीं हुआ तब विद्या-युद्ध होना प्रारम्भ हुआ। इस युद्धको भी होते हुए बहुत देर हो गई पश्चात् जब अश्वग्रीव का विद्याबल व्यर्थ जाने लगा तब अत्यन्त क्रोधित हो उसने अपने बैरी त्रिपृष्ठ पर चक्र चलाया। चक्र तीन प्रदक्षिणा दे त्रिपृष्ठ के हाथ के ऊपर आ गया। अन्तमे त्रिपृष्ट ने उसी चक्रके द्वारा अश्वग्रीवकी गर्दन काटकर धाराशायी बना दिया। इसप्रकार विजय और त्रिपृष्ठ आधे भरतक्षेत्रके अधि-पति बन गये। उस समय राजा महाराजा व्यन्तर और मगध सभी उनकी सेवा सूश्रुषा करने लगे। इसके पश्चात् त्रिपृष्ठने ज्वलनजटीको दोनों श्रेणियोंका स्वामी बना दिया सो ठीक ही है महापुरुषोंकी संगतिसे संसारकी कौनसी ऐसी चीज है जो प्राप्त नहीं होती है? अर्थात् सब कुछ मिल जाता है।

इसके बाद पूर्व पुण्यकर्मके योगसे नारायण त्रिपृष्ठ को १ खड्ग २ शंख, ३ धनुष, ४ चक्र, ५ दंड, ६ शक्ति, ७ गदा ये सात रत्न और बलभद्र विजयको १ रत्नमाला, २ गदा, ३ मूसल, ४ हल ये चार रत्न मिले। इन देवोपनीत

रत्नों की हजारों देवता सेवा करते थे, नारायण त्रिपृष्ठकी सोलह हजार रानियां थीं उनमें पट्टरानी स्वयंप्रभा ही थी सो ठीक ही है सौभाग्य होना बहुत ही कठिन है। विजय बलभद्रके आठ हजार रानियां थीं जो सभी शील रूप आदि गुणोंकी खानि थीं। इसके बाद राजा प्रजापतिने भी अपनी ज्योतिर्माला पुत्री का विवाह ज्वलनजटीके पुत्र अर्ककीर्तिके साथ बड़े ठाठ बाटसे विधिपूर्वक कर दिया जिससे उन दोनोंमे परस्पर गाढ़ी प्रीति हो गई। अर्ककीर्ति ज्योतिर्मालाके अमिततेज नामका एक पुत्र और सुतारा नामकी एक कन्या हुई। इसी प्रकार नारायणके भी श्रीविजय बलभद्र नामके दो पुत्र और ज्योतिप्रभा नामकी एक कन्या हुई। इसके पश्चात् किसी निमित्तके मिल जानेपर प्रजापति महाराज संसार और शरीरके भोगो से विरक्त हो गये और उन्होंने पिहिताश्रव मुनिके पास जाकर दिगम्बरी दीक्षा धारण करली और कठिन कठिनतर तपोको तप कर कर्मोको नाशकर पंचमगति–मोक्षगतिको प्राप्त हो गये, जहां से फिर आना ही नहीं होता। यह बात सुनकर ज्वलनजटी भी अपने पुत्र अर्ककीर्तिको राज्य-भार देकर स्वयं जगनन्दन मुनि के पास दिगम्बरी दीक्षाले शुक्लध्यानके प्रभाव से मुक्तिवधू के दूल्हा बन गये।

इसके बाद ज्योतिप्रभाका स्वयंवर रचा गया, उसने स्वयंवरमे अमिततेजके गले मे वरमाला डाल दी और अर्ककीर्तिकी पुत्री सुताराने श्रीविजयके गले मे वरमाला डाल दी। बाद इन दोनों कन्याओं का यथा विधि धूमधामके साथ विवाह महोत्सव किया गया। इसके बाद बहुत दिनो तक नारायण ने राजपाट का सुख भोगा और अन्तमे मरकर वह तो सातवे नरकमे गया और विजय बलभद्र ने अपने पुत्र श्रीविजयको राज्य देकर स्वयं भाईके वियोग से व्याकुलित हो स्वर्णकुम्भ मुनिके पास दीक्षा धारण करली, उनके साथ साथ और भी सात हजार राजाओने तप धारण किया। बलभद्रने थोड़े ही समयमे घातिया कर्मोको नष्ट कर सबसे उत्कृष्ट ज्ञान–केवलज्ञान प्राप्त किया। यह बात सुनकर अर्ककीर्तिने भी अपने पुत्र अमिततेजको राज्य देकर विपुलमति मुनिराज के चरणोमे दीक्षा धारण कर ली और तप–तपकर अष्टकर्मोको नष्ट कर मोक्षपदको प्राप्त किया, जहाँ कि जीवके वास्तविक अविनाशीक सुखकी

प्राप्ति है। इसके बाद विजय और अमिततेज युवराजने बहुत कालतक निश्चित हो राजसुख भोगा।

एक दिन पोदनापुरके राजाकी सभा में एक नया आदमी आकर राजा को अशीर्वाद देकर बोला कि राजन्! सावधान होकर मेरी बातको सुनो। आजके सातवें दिन आपके [पोदनापुर राजाके] मस्तकर महावज्र की वर्षा होगी। यह बात मैं तुझे विचारपूर्वक कहता हूँ। आप उससे बचनेके लिए अभी से उपाय कीजिये। यह सुनकर विजयभद्र युवराजको गुस्सा आया और वह बोला कि पंडितजी महाराज! यह तो बतलाइये कि उस समय आपके मस्तक पर काहेकी वर्षा होगी? यह बात सुन निमित्तज्ञानीने अहंकार भरे शब्दोमें यह कहाकि उस समय मेरे मस्तक पर अभिषेक पूर्वक रत्नों की वृष्टि होगी और उत्तमोत्तम वस्त्राभरण पहिननेको मिलेगा। उसके इसप्रकार वचनों को सुनकर श्री विजयको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि हे भाई! तुम यहां आओ और बैठो, मेरी बात सुनो। बतलाओ कि तुम कौनसे गोत्र मे पैदा हुए हो, कौन तुम्हारा गुरु है, और तुमने कौनसे ग्रन्थोका अध्ययन किया है तथा यह बात तुमने किस निमित्तसे जानी है, तुम्हारा नाम क्या है? इतनी बाते तुम मुझे समझाकर कहो तब मेरा संशय मिटेगा। इसके उत्तरमें निमित्तज्ञ ने कहा कि मैं कुंडलपुरमें रहता हूँ। वहां का राजा सिंहरथ है, उसके प्रोहितका नाम सुरगुरु है, उसका मै शिष्य हूँ। मैने विजय बलभद्रके साथ दीक्षा धारण कर निमित्त शास्त्रों को अच्छी तरह पढ़कर कंठस्थ किया है। अंतरीक्ष, भौम, अंगग, लक्षण, व्यंजन, छिन्न, स्वर और स्वप्न इन सब अंगो के लक्षण भेद प्रभेद मुझे सब मालूम है। मैने दीक्षा तो ले ही ली थी किंतु जिस समय भूख प्यासने जोर किया तो मुझसे जन्य वेदना नहीं सहन हो सकी। मैने उस पीड़ा से व्याकुलित होकर दीक्षा छोड़ दी और दुःखी होकर इधर उधर घूमने लगा। कुछ समय बाद मैं फिरता फिरता पद्मनी ग्राममें आया, वहां मेरा मामा सोमशर्मा रहता था। उसकी स्त्रीका नाम हिरण्यलोमा था उसके चन्द्रानना नामकी एक कन्या थी। उस कन्या का मेरे मामाने मेरे साथ विवाह कर दिया और उसके साथ २ मुझे कुछ धन भी दिया। जब मुझे कन्या और धन दोनों ही मिल गये तो फिर

किस बात की चिंता थी। मैने उस समय निश्चिन्त हो निमित्त–शास्त्रोका अध्ययन खूब मन लगाकर किया। धीरे धीरे मेरे मामाका दिया हुआ धन जब सब खर्च हो गया तब मेरी स्त्रीको बहुत खिन्नता हुई सो ठीक ही है, जहां आमदनी नहीं है और प्रतिदिनका खर्चा है वहां विपुल संपत्ति खजाने तक भी एक न एक दिन खाली हो ही जाते है। यही हाल यहां भी हुआ।

एक दिन मेरी स्त्रीने मुझसे क्रोधभरे शब्दों मे यह कह कि क्या यह धन तुम्हारा ही कमाया हुआ था? यह कहकर उसने मेरे आगे उन कौडियो को डाल दिया जो निमित्त ज्ञानकी बात जानने के लिए काममे आती थीं। उस क्रियासे मैने यह निश्चय किया कि पोदनापुरके नरेशके मस्तकपर महावज्रपात होगा और मेरे भोजन करने की जो स्फटिककी थाली थी जिसमे कि मेरा प्रतिबिम्ब पड़ रहा था उस पर मेरी स्त्रीने हाथ धोनेकी जलकी धार छोड़ दी इससे मैने जाना कि मुझे अभिषेक पूर्वक राज–लाभ होगा। मेरा नाम अमोघजिह्व है। मैने ये सब बाते ऊपर कहे हुए निमित्तसे जानकर ही आपको सावधान किया है, इसमें मेरा और कोई कारण नहीं है। यह बात सुनकर राजा ने उस निमित्तज्ञको तो विदा कर दिया और स्वयं चिंतातुर हो अपने बचनेका उपाय सोचने लगा सो ठीक ही है अपने नाश की शंका प्राणियोंके हृदयमे शंकुकी तरह सदा ही चुभती रहती है। उसने तुरन्त ही मंत्रियोंको बुलवाया और उनसे कहा कि आज एक वज्रपात होगा। यह मुझसे एक अच्छे निमित्तज्ञने कहा है। राजा की यह बात सुनकर सुमति मंत्री बोला कि महाराज! इसके लिए आप तनिक भी चिन्ता न करें। आपको हम एक लोहेकी मंजूषा–सन्दूकमे बन्द करके समुद्रके भीतर छोड़ देगे वहां पर बिजली वगैरहका कुछ भी भय नहीं रहेगा इससे आपकी भले प्रकार रक्षा हो जायेगी। यह बात सुनकर सुबुद्धि मंत्रीने कहा कि यह यत्न तो ठीक नहीं मालुम देता है कारण कि समुद्रमे बहुतसे मगरमच्छ रहते हैं, वहां तो उनके निकल जानेका भय है, इसलिए हम आपको वहां न छोड़कर विजयार्ध की जो गुफा है उसमें ले जाकर छिपा देंगे वहां आपकी निश्चयसे रक्षा हो जायगी। सुबुद्धि मंत्रीकी यह बात सुनकर बुद्धिसागर मंत्री बोला कि मै एक प्रसिद्ध कथा कहता हूँ उसको आप ध्यान पूर्वक सुनिए।

सिंहपुरमे एक दुष्ट तपस्वी जिसका कि नाम सोम था, रहता था। उसको वाद विवाद करनेका भारी शौक था। एक दिन उसे शास्त्रार्थ में जिनदासने जीत लिया, जिससे वह बहुत लज्जित और दुखी हुआ अन्तमे वह खोटे परिणामोसे मरा और मरकर भैसा हुआ। उसका मालिक उसपर जरा भी दया नहीं करता था। वह सदा ही उसको बोझा ढोनेमें लगाये रखता था, खाने पीने को भी समय पर नहीं देता था जिससे कि वह बहुत दुबला-पतला हो गया। वेदनानुभवसे उसे अपने पहिले भवोंकी याद आ गई और वह वहां से भी वैर बांधकर मरा और मरकर श्मशान भूमिमे दुष्ट राक्षस हुआ। सिंहपुरमें दो राजा थे एक का नाम भीम और दूसरे का नाम कुम्भ था, कुम्भका रसोइया बहुत चतुर था। लोग उसको पाकशास्त्री के नाम से पुकारते थे। वह सदा ही कुम्भ को पका हुआ मांस खाने को देता था। राजा को मांस खाने का शौक था। एक दिन उस रसोइयाने मनुष्यका मांस पकाकर राजाको खाने के लिये दिया। राजाको वह बहुत ही स्वादु मालूम हुआ। राजा जिह्वा इन्द्रियकी लोलुपतावश रसोइयासे बोला कि जैसा तूने आज स्वादिष्ट मांस पकाया है वैसा ही प्रतिदिन पकाकर मुझे दिया कर। रसोइया जी हाँ कहकर उस दिन से मनुष्यका मांस पकाकर राजाको खिलाने लगा। ग्रामके रहनेवाले मनुष्योंके शिशु कमती होने लगे। जब यह बात शहरके लोगों को ज्ञात हुई कि यह दुष्ट राजा ही मनुष्य भक्षक है, इसने ही हमारे बच्चे खा डाले है। उस वक्त उन्होंने तथा मंत्री आदि ने आपस मे एकता करके उस दुष्ट राजाको नगरसे बाहर निकाल दिया, अब सिर्फ उसके साथमे एक रसोईदार रह गया और सबोने उसका साथ छोड़ दिया सो ठीक ही है, कोई भी दुष्ट हिंसक मनुष्यका सहवास नहीं चाहता है। एक समय की बात है कि दुष्ट राजाने उस रसोइयाको भी मारकर खा डाला और वह ऊपर कहे हुये महिषासुर राक्षसकी आराधनासे प्रजाके लोगोंको मार-मार कर खाने लगा और नगरके बाहर राक्षसकी भांति घूमने लगा। उस समय लोग उससे बहुत भयभीत होने लगे सो उनका भयभीत होना ठीक ही था, कौन नहीं प्राणहारी नररूप राक्षससे भय खायेगा? पुरवासियोंने उसके भय से सिंहपुरमें रहना ही छोड़ दिया और वे कुम्भकारपुर नामक नगरको बसाकर वहां रहने

लगे। उन्होंने दुःखित हो राक्षस से कहा कि हे राक्षस! तू प्रतिदिन ही एक आदमी और एक गाड़ी अन्न ले लिया कर किन्तु और बाकी मनुष्यो पर तो दया—दृष्टि कर। वहां पर ही एक चंड कौशिक नामका बाडव [जाति विशेष] रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री था। वह प्रतिदिन भूतोंकी आराधना किया करती थी और उनसे प्रार्थना करती थी कि भूतों! तुम मुझे एक पुत्र दो। कर्म—संयोगसे सोमश्रीके एक मौडच्यकौशिक नामका पुत्र हुआ। बारी बारी से जाते हुए उस मौडच्य कौशिककी भी बारी एक दिन उस राक्षस के पास जानेकी आई। प्रतिदिन की तरह वह भी एक अन्नकी गाड़ीके साथ उस नर राक्षसके पास भेजा गया। वह नर—रूपमे राक्षस कुम्भ उसको देखते ही खाने के लिए झपटा। यह देख भूतोसे जो कि मौडच्य कौशिकके उपासक थे नही रहा गया। वे कुम्भपर एकदम टूट पड़े और उन्होने लात, घूंसा, डंडा आदिके द्वारा कुम्भकी अच्छी तरह से खबर ली तब वह दुःखसे त्रस्त होता हुआ विजयार्द्ध की कन्दरा—गुफामें चला गया। कर्मके संयोगसे वह द्विजपुत्र—मोडच्य कौशिक छूट गया और नगरवासी लोग निर्भय हो गये। सो ठीक ही है जिस समय जीवके शुभ कर्मका उदय आता है उस समय उसके सभी काम सुधर जाते है, शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। मनमाने भोगोपभोग की प्राप्ति होती है, कुटुम्बी-जन एवं अन्यजन सब उसके सहायक हो जाते है। मनुष्यकी तो क्या बात है देवतागण भी उसकी हजूरी मे ही खड़े रहते हैं। कर्मके संयोगसे ही जीव मारा जाता है, कर्मके संयोग से ही पुत्रादिकी प्राप्ति होती है। यह संसारका जितना भी खेल है वह सब ही कर्माधीन है। लोग समझते है कि हम अमुकको सहायता करते है, हम उसको काममे लगाये हुये है, हमारी ही वजह से उसका पालन—पोषण हो रहा है, यह समझना उनका भूल—भरा है। सिद्धांत यह कहता है कि न कोई किसीको देता है और न कोई किसी का अपहरण करता है। ये संसारी जीव कर्माधीन हुये अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मोका ही फल भोगते है। इसमे जराभी सन्देह करनेकी बात नहीं है। कर्मके निमित्त से ही सब कुछ होता है। कर्मही संसारमें सबसे प्रधान है। मंत्री कहता है कि उस विजयार्ध की कन्दरा मे कुम्भ राक्षस रहता है उस राक्षसका गुफामें पूरा—पूरा भय है इसलिये मेरी

सम्मति है कि राजाको वहां न रखे, जिस जीवके जैसा कर्मका उदय होगा ठीक वैसा होकर रहेगा। उसको टालनेवाला कोई नहीं फिर इस ऊटपटांग उपायोंको करना एकदम फालतू है। यह बात सुनकर मतिसागर मंत्रीने हितकर वचनोंमें कहा कि हे महाराज! निमितज्ञने यही तो कहा है कि पोदनापुर के राजा के ऊपर वज्रपात होगा किसी खास व्यक्ति विशेष पर तो नहीं कहा है इसमें चिंता करनेकी कौनसी बात है? मेरी राय है कि सात दिनके लिये एक और व्यक्ति को राजा बनाकर सिंहासन पर बैठा देना चाहिए। यह युक्तिमत बात मति-सागरकी सुनकर सब लोगोंने उसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की। इसके पश्चात् सबोकी सम्मति से राज सिंहासनपर राजाके चित्रकी स्थापना करदी गई। सबों ने इस प्रतिबिम्बको ही पोदनापुरका राजा मानकर नमस्कार किया और उसकी आज्ञा शिरोधार्य की।

असली राजा श्री विजयने राजकाजका तमाम काम छोड़कर श्री जिनेन्द्र भगवानकी भक्ति पूजनमें मन लगाया और गरीबोंको बहुत दान दिया एवं मंदिरोंमे शांति महोत्सव कराया। निरन्तर ही जिनवाणी का अध्ययन पूजा उत्सव आदि धर्मकार्य करने लगा। धीरे २ सातवां दिन आगया, उस निमित्तज्ञानीके कहे माफिक ठीक उसीसमयपर राजाके प्रतिबिम्ब पर वज्रपात हुआ। वज्रपात होते ही वह प्रतिबिम्ब नष्ट-भ्रष्ट हो गया। जब सब उपद्रव शांत हो गया तब शहर के लोगोने नाना प्रकारके बाजों एवं नट नटीके नृत्यों द्वारा बड़ा भारी उत्सव मनाया और भारी प्रसन्नता प्रगट की। उस निमित्तज्ञानीको भी बहुतसे वस्त्रा-भूषण प्रदानकर जिसमें एकसौ गाँव लगते थे ऐसा पद्मिनी खेट भेंटमें दिया और उसका बहुतही आदर सत्कार किया। इसके पश्चात् मंत्रियोंने सुवर्ण के मनोहर कलशो द्वारा अभिषेककर श्रीविजयको धूमधामके साथ फिर राज सिंहासनपर बिराजमान किया। इस प्रकार पोदनापुरका राजा निर्भय होकर भोग-भोगने लगा। एक समयकी बात है, वह अपनी माता स्वयंप्रभासे आकाश-गामिनी विद्या लेकर सुतारा सहित ज्योतिवनमें क्रीड़ा करनेको गया वहां उसने सुताराके साथ मनचाही क्रीड़ा की।

चमरचंचपुरीका राजा इन्द्राशनि था उसके अशनिघोष नामका एक

पुत्र था। वह भ्रामरी विद्याको साधकर वनसे अपने घरको वापिस लौट रहा था। इतने में उसकी निगाह सर्वांग सुन्दर सुतारा रानीपर पड़ी। उसे देखते ही वह कामासक्त हो गया और उसको अपहरण करने के लिए उद्यम करने लगा। उसने छलसे एक मायामयी हिरण राजाके आगे छोड़ा, जिसको देखकर सुतारा ने कहा कि नाथ! देखो यह कैसा सुन्दर हिरण है। आप इसे दिल बहलाने के लिए पकड़ लाइये। राजा तो उधर सुताराके कहे अनुसार हिरण पकड़ने चला गया सो ठीक ही है कि जिस समय विपत्तिकाल आता है उस समय बुद्धिमान् पुरुषोंकी बुद्धि भी मलिन हो जाती है। उधर अशनिघोषने राजाका रूप धारण करके सुताराके पास प्रिय वचनों में कहा कि हे सुमुखी! आओ, आज कुछ जल्दी है इसलिए सूर्यास्तके पहिले ही हम नगर पहुँच जाँय। यह कह उसने सुताराका हाथ पकड़कर विमानमे बिठा लिया और आकाश मार्गसे उसे ले चला। कुछ दूर निकल जाने पर उस दुष्ट कामी ने अपना असली रूप प्रगट किया, जिसको देखकर सुतारा चिंतामग्न हो गई। वह मनमे विचार करने लगी कि यह कौन है, जो कि मुझे हरकर लाया है? उधर राजा को जब वह मायामयी हिरण हाथ न लगा तो वे हतोत्साह हो उसी स्थान पर वापिस लौट आये जहाँ कि सुताराको छोड़ गए थे। वहां उन्होंने वैताली विद्याको सुताराके रूपमें बैठी हुई देखा जो कि अशनिघोषकी आज्ञासे वहां बैठी थी और कह रही थी कि मुझे कुरकट जातिके सर्पने डस लिया है। उसकी हालतको देखकर उस समय यह मालूम पड़ता था कि उसकी मृत्यु निकट आ गई है। उसको इस अवस्था मे देखकर श्रीविजय बहुत व्याकुलित हुये। उन्होंने उस समय विष उतारने के लिये बहुतसे मणि मंत्र–तंत्र आदिका उपचार किया किन्तु ज्यों-ज्यो उपचार किया जाता था त्यों-त्यों उसका विष द्विगुणित–द्विगुणित होता जाता था। उस समय उन्होंने अन्तमे नागदमन नामकी औषधि दी परन्तु उससे भी उसकी पीड़ा नहीं मिटी। राजाके गलेमें एक विषहरी मणि पड़ी हुई थी उसको भी उन्होंने घिसकर दिया परन्तु फल कुछ नहीं हुआ तब समझा कि यह विष भयानक और प्राणसंहारी है इसका उतरना बहुत ही कठिन है, यह निश्चयकर राजा स्त्रीके मोहसे उसके साथ ही मरनेको तैयार हो गया। उसने चिता

बनाकर उसपर सुताराके शवको रखकर सूर्यकांत मणि से आग जलाकर चिताको प्रज्वलित कर दिया। इसके पश्चात् वह स्वयं व्याकुल हो चितामें कूदना ही चाहता था कि इतनेमें आकाशसे उसके पास दो विद्याधर आये और उन्होंने विच्छेदिनी विद्यासे बैताली विद्याको नष्टकर बायें पैरसे उसके एक जोरकी ठोकर लगाई जिसको वह न सहनकर अपना असली स्वरूप प्रगटकर कांपती हुई अदृश्य हो गईं। यह तमाशा देख श्रीविजयको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने विद्याधरोंसे पूछा कि यह क्या बात है? कृपाकर मुझे बतलाइये। विद्याधरोंने इस कथाको इसप्रकार कहा—

भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमे ज्योतिप्रभ नामका एक नगर है, वहां का राजा मैं हूँ। मेरा नाम संभिन्न है मेरी स्त्रीका नाम सर्वकल्यानी है और मेरा द्वीपशिख नामका पुत्र है। रथनूपुर के महाराज हमारे मालिक हैं। मै एकसमय उनके साथ शिखरतल नामक उद्यानमें क्रीड़ा करने गया था। वहांसे लौटकर मैंने आकाश मार्गसे जाता हुआ एक विमान देखा और उसमें मैंने यह करुण आर्त्तनाद सुना कि मेरा स्वामी श्रीविजय नरेश कहां है? हे नाथ! तुम मेरी रक्षा करना, मुझे जल्दी आकर इस संकटसे छुड़ाना। यह दीनता भरे शब्दोंको सुनकर मैं उस विमानके पास गया। वहां मैंने उसमे सुताराके पास बैठे हुए एक और विद्याधरको देखा, देखते ही मैंने एक जोरकी लानत बताई और कहा कि तू कौन है? और यह पास में बैठी हुई कौन है? जिसको कि तुम जबरदस्ती हरण करके लिए जारहे हो। यह सुनकर अशनिघोष मुझपर बहुत क्रोधित हुआ और गुस्सेमे आकर बोला कि नहीं जानता कि मेरा नाम विद्याधरों का विरोधी राजा अशनिघोष है। मेरे जितने भी शत्रु हैं वे मेरे चरणों में शिर नवाते हैं। मैं चमरचंचपुरका अधीश्वर हूँ। यह पासमे बैठी हुई सुतारा है, इसे मै जबरदस्ती हरण करके लिए जा रहा हूँ। यदि तुममें शक्ति है तो तुम दोनों इसे छुड़ाने का प्रयत्न करो। उसकी यह बात सुनकर मैंने विचार किया कि सुतारा मेरे स्वामी की बहिन है। इसलिए मेरी भी बहिन है यह दुष्ट इसे हरण किये ले जारहा है, ऐसे समयपर मेरा चुप रहना, असमर्थता ही नहीं पहले दर्जेकी कायरता है। क्षत्रीधर्म इसको नहीं कहते हैं कि जो

शत्रुसे डरकर पीठ दिखाकर भाग जाये। मैं अपने प्राणोत्सर्ग करके इस दुष्टके पंजेसे इसे छुड़ाकर इसकी रक्षा करूंगा, ऐसे विचारकर मै उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। यह देख सुतारा मुझसे बोली कि भाई! तुम युद्ध मत करो, ज्योतिवनमें पोदनापुरके राजा मेरे पति श्रीविजय है, उनके पास जाकर उनसे मेरे यह सब समाचार सुनादो। इसलिये मै सुतारा का भेजा हुआ यहां आपके आस आया हूँ और यहां जो आपके पास स्त्री बैठी थी, वह तो अशनिघोषकी पढ़ाई हुई वैताली विद्या सुताराके रूपमें थी। इसलिए वह मेरी ललकार और ताड़ना से रफूचक्कर हो गई है। यह कथा सुनकर राजा श्रीविजयने उस विद्याधरसे कहा कि आप कृपाकर मेरे घरपर चलनेका कष्ट कीजिये और वहां मेरी माता, छोटा भाई और बन्धु–बान्धवोंसे यह सब समाचार कह दीजिये।

राजाके इसप्रकार कहनेपर उस विद्याधरने अपने पुत्र द्वीपशिख को शीघ्र ही पोदनापुर राजाके साथ भेज दिया। उधर पोदनापुरमे भी भयानक उत्पात मच रहे थे, जिनको देखकर सब अधिवासियोंको भय लग रहा था। उनको देखकर उस समय अमोघजिह्व नामक निमित्तज्ञसे यह प्रश्न किया कि इन उपद्रवोका क्या फल है? फल निमित्तज्ञने कहा कि इस समय श्रीविजय नरेशपर कोई विपत्ति आई थी किंतु अब वह टल गई है। अब थोड़ी ही देरमे कोई पुरुष उनकी कुशल–क्षेमका समाचार लेकर आनेवाला है। तुम प्रसन्नचित्त हो, किसी बातकी चिन्ता या भय मत करो। निमित्तज्ञानीके ऐसे संतोषप्रद वचनोको सुनकर स्वयंप्रभा आदिक सब अपने–अपने कामोमे पहिले की तरह लग गये। इतनेमे आकाश मार्गसे विद्याधरका पुत्र द्वीपशिख वहां आया और उसने स्वयंप्रभाको प्रणामकर उससे श्रीविजय नरेशकी सब कथा यथावत् कह कर कहा कि हे माता! श्रीविजय नरेश सकुशल है इसलिए इस सबन्धी चिंता छोड़कर स्वस्थ हूजिये। यह कहकर उसने सुतारा के हरे जानेका सब समाचार आदिसे अन्त तक कह सुनाया। जिसको सुनकर स्वयंप्रभा दावानलसे जलती हुई लताके समान मुरझा गई अथवा बुझते हुये दीपकके समान निस्तेज हो गई। या यों समझिये कि जिसप्रकार मेघकी ध्वनि सुनकर हंसिनी शोकाकुलित हो जाती है ठीक उसी प्रकार वह भी पुत्रवधूके हरे जानेके समाचार शोक–सागरमे

गोता खाने लगी। वह उसी समय चतुरंग सेना सहित द्वीपशिख विद्याधरको आगे करके अपने अन्य पुत्र विजयभद्र आदिको साथमें ले ज्योतिप्रभ नामक बनमें पहुँची जहां कि श्रीविजय बैठा था। श्रीविजयने अपनी माताको अपने भाइयों सहित आती देख कर वह उसके पास गया और उनको नमस्कार किया। दुःखिनी माताने पुत्रको देखकर कहा कि वत्स ! उठो शोक छोड़कर शीघ्र ही पोदनापुर चलो। माताकी ऐसी आज्ञाको सुनकर श्रीवजय उनके साथ घर लौट आया। वहां आकर जब उसका चित्त कुछ शान्त हुआ तब स्वयंप्रभाने सुताराके हरे जानेका सब समाचार पूछा। श्रीविजयने मातासे जैसाका तैसा सारा समाचार कह सुनाया और कहा कि हे माता ! यह संभिन्न विद्याधर हमारा बड़ा भारी उपकारी है। यह राजा अमिततेजका सेवक है। इसने हमारे साथ जो उपकार किया है उसका मैं शब्दो द्वारा वर्णन नहीं कर सकता हूँ। इसके बाद श्रीविजय, माता और अपने छोटे भाई विजयभद्रसे सलाह कर तथा विजयभद्र को पोदनापुरकी रक्षाके लिए छोड़कर माताके साथ विमानसे बैठकर रथनूपुर को रवाना हो गये। थोड़ी देरमे ही वे रथनूपुर जा पहुँचे। वहां जब अमिततेज को यह समाचार मालूम हुआ कि हमारी बूआ अपने पुत्र सहित यहां आई है तो वह तुरन्त ही उनकी अगवानी लेनेके लिये नगरके बाहर गया और उनसे आनन्द पूर्वक मिला और उन्हें नगरमें ले जाकर एक उत्तम स्थानमे ठहरा दिया। इसके बाद स्वयप्रभाने अमिततेजसे अशनिघोषका सारा हाल कहा। उसे सुनकर अमिततेजने अशनिघोषके पास अपना मरीचि नामका एक दूत भेजा। दूतको उसने कठोर और नीच वचन कहकर फटकारा। उसकी फटकार सुनकर दूत उल्टे पैर अमिततेजके पास आया और उसने अशनिघोषके जैसेके तैसे वचन कह दिये अमिततेजको उसकी यह बात बहुत अयोग्य प्रतीत हुई और उसने मंत्रियोसे सलाह कर अशनिघोषको मारनेका संकल्प किया और श्रीविजयको युद्धवीर्य, अस्त्रावर्ण और बधमोचन ये तीन विद्या जो कि परम्परासे इनके यहां चली आ रही थी देकर तथा अपने रश्मिवेग सुवेग आदि पुत्रोंको साथ भेजकर शत्रुको विजय करनेके लिये भेजा और खुद सहस्र नामक अपने ज्येष्ठ पुत्रको साथमे लेकर ह्रीमंत पर्वतपर गया। वहां उसने संजयंत मुनियोंके चरणो मे

बैठकर दूसरी विद्याओंको छेदन करने वाली महाज्वाला नामकी विद्या सिद्ध करने लगा। इधर अशनिघोषको जब यह मालूम हुआ कि श्रीविजयने रश्मिवेग आदिको साथमे लेकर युद्ध करनेके लिए हमारे ऊपर चढ़ाई की है तो वह भी अपने पुत्र सुघोष शतघोष ओर सहस्रघोष आदिको युद्ध करनेको भेजा किंतु वे सब श्रीविजयके विद्याधरोंके साथ युद्धमे हार गये। यह बात अशनिघोष को मालूम हुई तो उसे बहुत ही गुस्सा आया और वह उस समय स्वयं युद्ध करनेके लिये वहां पहुँच गया। दोनों तरफसे घमासान युद्ध होने लगा। दशों दिशाये युद्धके शब्दोसे गुंजायमान हो गई। शत्रुके शरीरको छिन्न-भिन्न करने के लिये श्रीविजय जो बाण छोड़ता था उन्हे अशनिघोष भ्रामरी विद्याके बलसे काटकर अपने दूने रूप बनाता जाता था। श्रीविजय ज्यों-ज्यों अपने बाणोके द्वारा उनको नष्ट करता जाता था त्यों-त्यों वह अपने रूपोंको अनेक बनाता जाता था। थोड़े ही देरमे समूचा रणस्थल अशनिघोषमय ही दीखने लगा। इतने मे महाज्वाला विद्याको साधकर रथनूपुरका राजा अमिततेज भी वहां आ पहुँचा और पन्द्रह दिन बराबर युद्ध कर उसने महाज्वाला विद्याके प्रभावसे अशनिघोष की सारी विद्याये नष्ट कर दीं। यह देख अशनिघोष बहुत शर्मिन्दा हुआ और वहांसे भागकर भयभीत हो कैलाश पर्वतपर विजय भगवानकी सभामे जा छिपा। उसके पीछे श्रीविजयादिक और राजागण उसको पकड़नेके लिए वहां पहुँचे। परन्तु उनका वहां पहुँचते ही मानस्तम्भके दर्शन मात्रसे सारा मान गलित हो गया और जितना भी कुछ बैर विरोध था वह सब मिट गया। उन्होने भगवान की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हे भक्तिसहित नमस्कार किया और सबके सब यथा-स्थान बैठ गए। इसी समय अशनिघोषकी माता आसुरी साथमे सुताराको लेकर वहां आई और उनसे बोली कि मेरे पुत्रसे जो कुछ अपराध हुआ है उसे आप क्षमा करेंगे और मुझे पुत्र-भिक्षा देवेंगे। यह कहकर उसने श्रीविजय और अमिततेजको सुतारा सौंप दी। इसके बाद अमिततेजके प्रश्न करने पर विजय भगवान धर्मका उपदेश करने लगे। उन्हें सप्ततत्व नौ पदार्थ एवं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका व्याख्यान दिया। उसे सुनकर अमिततेज ने भगवानसे फिर प्रश्न किया कि हे नाथ ! कृपाकर यह बतलाइये कि अशनिघोष

ने मेरी बहिन सुतारा किस कारणसे हरी ? इसके उत्तरमें केवली भगवानने कहा कि मैं इसका कारण बतलाता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

इसी भरत क्षेत्रके मगध देशमें अचल नामका एक गॉव है। वहां एक धरणीधर नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम अग्निला था। उसके इन्द्रभूति और अग्निभूति नामके दो पुत्र थे। इनके सिवा धरणीधरके एक दासी पुत्र भी हुआ, जिसका नाम कपिल था। कपिलको वह विप्र पढ़ाता नहीं था। किन्तु उसपर सदा ही क्रोध किया करता था। उसके और जितने भी पुत्र थे उनको वह अच्छी तरहसे शिक्षा देता था। बुद्धिमान् था इसलिये वह जो कुछ पढ़ाता था वह उसे सुनकर झट याद कर लेता था। इस तरह वह थोड़े ही समय मे वेदका अच्छा विद्वान् हो गया। उसे ऐसा देखकर धरणीधरने ईर्षा-वश उसे घरसे निकाल दिया। कपिलको अपने पिताका यह बर्ताव बहुत ही बुरा मालूम हुआ और वह मनमे बहुत ही खेद-खिन्न हुआ। घरसे निकलकर थोड़े ही दिनोंमे रत्नपुर पहुँच गया। वहां का राजा श्रीषेण था। उसकी दो रानियां थीं, एक सिंहनन्दिता और दूसरी आनंदिता। उसके इन्द्र और उपेन्द्र नामक दो पुत्र थे। राजाके प्रोहितका नाम सत्यकी था। उसकी स्त्रीका नाम जाम्बू था। उसके सत्यभामा नामकी एक पुत्री थी। एक दिन कपिलको देखकर सत्यकीने विचार किया कि यह लड़का वेदका अच्छा पंडित है। इसके साथ अपनी कन्याका विवाह करना योग्य होगा। यह विचार कर उसने सत्यभामा का विवाह विधिपूर्वक कपिलके साथ कर दिया। कपिल वहां रहकर थोड़े ही दिनोमें खूब धनीमानी हो गया। राजा भी उसका अधिक मान सम्मान करने लगा। कुछ दिनों बाद धरणीधरने यह समाचार सुना कि कपिल बहुत धनाढ्य और राजमान्य हो गया है तब वह अपनी दरिद्रता नष्ट करनेके लिये उसके पास रत्नपुर आया। कपिलने उसे दूरसे आते देख उठकर नमस्कार किया और लोगोंमे यह प्रसिद्ध कर दिया कि मेरा पिता यह है। धरणीधरने लोगोंसे यह कहा कि यह मेरा पुत्र है। कपिलने अपने पिता धरणीधरको बहुत सम्पत्ति वस्त्राभूषण आदि दिये, जिससे कि उसकी दरिद्रता नष्ट हो गई। एक दिनकी बात है कि सत्यभामाने धन वस्त्र और भोजनादि से धरणीधरका खूब आदर

सत्कार किया और भक्तिभाव प्रदर्शित करते हुए एकान्त मे उसने पूछा कि श्वसुरजी ! मुझे सच्ची-सच्ची बात बतलाइये कि यह कपिलपुत्र आपका कैसी जातिका है। मुझे तो उत्तम जातिका नहीं मालूम देता है। धरणीधरने उससे कहा कि यह बात नहीं है । यह उत्तम जातिका है और मेरा ही पुत्र है परन्तु इस बात से सत्यभामाका सन्देह नहीं मिटा । वह बार २ यही पूछे और बार २ उसको वही उत्तर मिले । तब सत्यभामाने इसको लोभ दिखाया, बहुतसा सुवर्ण दिया, वेश-वस्त्र आभूषण दिये, मीठे-मीठे स्वादिष्ट भोजन कराये पीछे फिर वही प्रश्न किया। धरणीधरने लोभके वश हो कपिल की सारी कथा सत्यभामा को सुना दी और सुनाकर वह तुरन्त ही दूसरे देशको चला गया । सो ठीक ही है लोभ संसारमे क्या नहीं अनर्थ करता है । लोभसे ही क्रोध पैदा होता है, लोभसे ही काम होता है, लोभसे ही मोह होता है, कहां तक इसकी तारीफकी जाय लोभसे ही जीवन का सत्यानाश हो जाता है, बुद्धि बिगड़ जाती है, हेय उपादेयका कुछ ज्ञान नहीं रहता । लोभी मनुष्यको अपने यश अपयशका कुछ भी ख्याल नहीं रहता । जितना भी अनर्थ दुनियांमे होता है उसका मूल कारण धन-लोभ ही है इसीलिये तो बताया है कि लोभ पापका बाप है इससे बढ़कर और कोई पाप नही है ।

पतिके इसप्रकार चरित्रको सुनकर सत्यभामा को बहुत ही दुःख हुआ और दुःखित होकर राजा श्रीषेणकी शरणमे गई । वहां उसने महाराजसे अपने पतिकी सारी कथा कह दी जिसको सुनकर राजाको भी बहुत बुरा लगा, बुरा लगनेकी बात ही थी । उसने कपिलको देश निकालने की आज्ञा दे दी ।

एक दिन राजा श्रीषेणके घरपर दो चारणमुनि आये, जिनका नाम अमितगति और अरिंजय था । राजाने उनको बड़ी भक्तिभावसे पड़गाहन किया और उन्हे नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान दिया, जिससे उसको अतिशय पुण्यकी प्राप्ति हुई । श्रीषेण की दोनों रानियोंने और सत्यभामाने मुनिदानकी अनुमोदना की जिसके प्रभावसे उन्होंने राजा के साथ २ उत्तम भोगभूमिकी उत्कृष्ट [तीन पल्य] की आयुका बंध किया, सो ठीक ही है, कृतसे कारित और अनुमोदनाका फल थोड़ा नहीं है, होना चाहिये शुद्ध परिणाम । कौशाम्बी नामकी नगरी है, वहांका राजा महाबल था, उसके श्रीमती नामकी रानी थी

और उनके श्रीकांता नामकी एक पुत्री थी। महाबलने श्रीकान्ता का विवाह इन्द्रसेनके साथ कर दिया और श्रीकान्ताकी सेवा कार्य करनेके लिए एक दासी भी दी। दासी अत्यन्त रूपवती थी। उपेन्द्रने ज्यों ही उसे देखा कि वह उसपर आसक्त हो गया। यह बात जब इन्द्रसेनको ज्ञात हुई तो उसे बड़ा क्रोध आया और उपेन्द्रके साथ लड़ाई करनेको तैयार हो गया। यह बात जब श्रीषेण को मालूम हुई तो वह दोनों की लड़ाई निपटानेके लिए उनके पास गया और उन्हें हर प्रकारसे समझाया बुझाया किन्तु इन लोगों ने उसकी बातको नहीं माना। पिताको यह बात बहुत खटकी और उसने अत्यन्त दुःखित हो विषका फूल सूँघकर अपनी आत्म-हत्या करली। श्रीषेणकी यह अवस्था देख दोनो रानियों के मनमे बहुत ही दुःख हुआ। उन्होंने विचार किया कि अब हमारे जीवन का क्या फल है, बिना पतिके विधवाओंका जीवन असार है ऐसा विचार उन्होंने और सत्यभामाने भी विष-फूलको सूंघकर आत्मघात कर लिया।

धातकी खंडकी उत्तरकुरु नामकी उत्तम भोगभूमिमें श्रीषेण और रानी सिंहनन्दिताका जीव मरकर युगल उत्पन्न हुआ और वहीं अनंदिता और सत्यभामाका जीव भी युगल उत्पन्न हुआ इन दोनोंमें अनंदिताका जीव तो स्त्रीलिंग छेदकर पुरुष हुआ और सत्यभामाका जीव उसकी स्त्री हुआ। उनकी आयु तीन पल्यकी थी। वे सब भोगभूमिमें आनन्दसे कल्पवृक्षोंके सुख भोगते हुये अमन-चैनसे अपना समय बिताने लगे। पुण्यका हिस्सा अभी और बाकी रह गया था इसलिए आयु पूर्णकर श्रीषेणका जीव सौधर्म नामक प्रथम स्वर्गमें श्रीप्रभ नामका देव हुआ और सिंहनंदिताका जीव उसका विद्युत्प्रभा नामकी देवी हुआ। इसप्रकार अनंदिताका जीव विमलप्रभ विमानमें भवदेव नामका देव हुआ और सत्यभामा का जीव उसी विमानमें शुक्लप्रभा नामकी उसकी देवी हुई। उनकी आयु पांच पल्यकी थी। स्वर्गोमें कल्पवृक्षोंके सुखोको भोगते हुये पाँच पल्यकी आयु समाप्त की और वहांसे चयकर श्रीषेणका जीव तो तुम अमिततेज हुये और

आत्म-घात अत्यन्त निंदित है, उसको करनेवाले जीवको निश्चयसे नरकगति ही मिलती है किन्तु उन्होंने चारणमुनियोंको दान देते समय उत्तम भोग-भूमिकी आयु बांध ली थी इसलिये वहां जन्म धारण किया क्योंकि आयुबन्ध छूटता नहीं।

सिंहनंदिताका जीव ज्योतिप्रभा नामकी तुम्हारी धर्मपत्नी हुई है। और अनंदिता का जीव श्रीविजय हुआ है तथा सत्यभामा का जीव सुतारा हुई है। उधर दुष्ट कपिलके जीवने भी बहुत से दुःखोको उठाया और दुःखमयी इस संसारमे नाना प्रकारकी यातनाये दुर्गतियोंमे सहन की सो ठीक ही है। पापकी वजहसे जीव-को दुःख ही दुःख उठाने पड़ते है, उसे क्षणिक भी शांति निराकुलता नहीं मिलती है। भूतरमण नामके बनमे ऐरावती नदीके किनारे तापसियोका एक आश्रम था। उस आश्रममे कौशिक नामका एक तपस्वी रहता था, उसकी स्त्रीका नाम चपलवेगा था। कपिलका जीव उसके यहां मृगश्रृंगनाम का पुत्र हुआ। वह भी तापस हो गया। एक समयकी बात है कि मृगश्रृंगने विद्याधर चपलवेगकी विपुल विभूति देखी उसको देखकर उसने यह निदान किया कि मै आगे के भवमे इस विद्याधरके यहां पुत्र होऊं। यह निदान बांधकर वह तापस मरा और उसके प्रभावसे वह चपलवेगके यहां अशनिघोष नामका पुत्र उत्पन्न हुआ है। इसको हेय उपादेय अथवा ग्राह्य अग्राह्यका कुछ भी ज्ञान नहीं है। उसी पूर्वभवके स्नेहवश इसने सुताराका अपहरण किया था। हे खगपति अमिततेज! तुम इस भवसे पाँचवे भवमे चक्रवर्ती तीर्थंकर और कामदेव इन तीन सातिशय पदवियो के धारी महान् आत्मा होओगे। इसप्रकार यह कथा सुनकर अशनिघोष, स्वयप्रभा और सुतारा आदि बहुत से महानुभाव उपदेश सुन दीक्षा धारणकर साधु हो गये। इसके पश्चात् सबलोग भगवानको नमस्कारकर श्रीविजय आदि अमिततेजके साथ–साथ अपने अपने नगरको चले गये। नगर में पहुँचकर अमिततेजने धर्मके कार्यमे अधिक मनको लगाया सो ठीक ही है। भवितव्यताके अनुकूल मनकी प्रवृत्ति वैसी ही हो जाती है। अमिततेजके जीवको भविष्यमे जगतका परम कल्याण करनेवाला तीर्थंकर होना है तो उसकी मनोप्रवृत्ति धर्मके कार्यो मे विशेषतया लगना ही चाहिये। वे पूर्व के दिनोंमे उपवास धारण करते प्रतिदिन दान देते, भगवानका पूजन स्तवन करते, साधुओंकी भक्ति करते, उनकी हरतरहसे वैयावृत्य करते एवं हमेशा ही धर्मकथा सुननेमे अथवा करनेमें संलग्न रहते इसप्रकार धार्मिक क्रियाओका पालन करते–करते उनको निर्मल सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो गई। वे बहुत प्रेमसे

न्यायनीति अनुसार जिस तरह पिता पुत्रकी रक्षा एवं संभाल करता है उसी प्रकार ये भी प्रजाका पालन करते हुये व बहुत ही मंदकषायी, शांतचित्त, इस लोक और परलोकके हितके इच्छुक थे। विद्यायें भी उनके पास बहुत थीं जो कि उनके कुल–क्रमसे चली आई थीं। उनके नाम:–१प्रज्ञप्ति, २ आग और जलको रोकनेवाली स्तम्भिनी, ३ कामरूपिणी, ४ विश्वप्रकाशिका, ५ अपतिघात सुगामिनी, ६ आकाशगामिनी, ७ उत्पत्तिनी, ८ वशंकरी, ९ आवेशिनी, १० शत्रुदमा, ११ प्रस्थापिनी, १२ अवर्तनी, १३ प्रहरणी, १४ मोहनी, १५ विपाटिनी, १६ संक्रामणी, १७ संग्रणी, १८ भंजनी, १९ प्रवर्तिनी, २० घ्नतापिनी, २१ प्रभावती, २२ पलायिनी, २३ निक्षेपिणी, २४ चांडाली, २५ शबरी, २६ गौरी, २७ खट्वांगिका, २८ श्री मृदुगुणी, २९ शतसंकुला, ३० मातंगी, ३१ रोहिणी, ३२ कूष्मांडिनी, ३३ वरवेगिका, ३४ महावेगा, ३५ मनोवेगा आदि बहुतसी विद्याओंके स्वामी और दोनों श्रेणियोंके अधिपति थे। पुण्योदयसे अमिततेजके सभी भोगोपभोगकी अनुकूल सामग्री प्राप्त थी, सो ठीक ही है पुण्य ही संसार मे एक ऐसी चीज है कि जिससे यह जीव इच्छित पदार्थोको प्राप्त कर सकता है। एक दिन पुण्ययोगसे उनके यहां दमवर नामके चारणमुनि आहारके निमित्त आये। अमिततेजने उन्हे प्रसन्नचित्त हो आहार दान दिया; जिसके प्रभावसे उनके घर पर पंचाश्चर्यकी वर्षा हुई।

एक समय अमिततेज और श्रीविजय दोनों बनमें विहार करने के लिये गये थे। वहां उन्होंने सुरगुरु और देवगुरु इन दो मुनियोंको देखा। देखते ही दोनों ने उन मुनियोंको भक्तिभावसे नमस्कार किया और उनसे विनय भरे शब्दोमे निवेदन किया कि हे नाथ! मेरी और मेरे पिताकी पूर्व भवकी कथा कृपाकर कहिये। परमदयालु मुनिराजने श्रीविजयके पूर्व भवोंका और त्रिपृष्ट नारायण के विश्वनन्दिके भवसे लेकर कई एक भवोंका वर्णन किया। श्रीविजय अपने पिताके माहात्म्यको सुनकर उनके पदवी प्राप्ति के लिये स्वयं निदानबन्ध करता हुआ वे दोनों अपने २ नगरको चले आये और वहां सुखामृतका पान करते हुये प्रसन्नतापूर्वक समयको बिताने लगे। एक समय उन दोनोने विपुलमति और विमलमति नामक मुनीश्वरोंके मुखारविंदसे यह सुना कि हमारी आयु अब सिर्फ

एक मास ही शेष रह गई है । यह जानकर वे और भी पहिलेसे अधिक श्रद्धा-पूर्वक धर्मका पालन करने लगे । इसके बाद अमिततेजने अपने पुत्र अर्कतेजको और श्रीविजयने अपने पुत्र श्रीदत्तको राजपाट दे भक्तिभावसे अष्टाह्निका पूजा की और दोनो ही चन्दनवनमें गये वहां उन्होंने अत्यन्त शांत परिणामी नन्दन-मुनिके पास दिगम्बरी दीक्षा धारण की पश्चात् प्रायोपगमन नामका सन्यास धारण करके अत्यंत शांत परिणामों द्वारा प्राणों का त्याग किया जिसके प्रभाव से वे आनत स्वर्गमे देव हुये । अमिततेजका जीव आनत स्वर्गके नंद्यावर्त नामक विमानसे रविचूलिका नामका देव हुआ और श्रीविजयका जीव उसी स्वर्गके स्वस्तिक विमानमे मणिचूलिक नामका देव हुआ । वहां इन दोनों की आयु बीस सागर की हुई । बीस सागर तक स्वर्गमें सुख भोगा यह समय उसका बात की बातमें निकल गया सो ठीक ही है कि सुखका समय जाता मालूम नहीं देता और दुःखकी एक घड़ी भी कटना मुश्किल हो जाती है । वे वहाँ से चयकर इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह में वत्सकावती देशकी प्रभाकरी नगरीमे स्तमित सागर राजाके यहां पुत्र हुये । इस राजाके दो रानियां थीं । एकका नाम वसु-न्धरा और दूसरी का नाम अनुमति था । दोनो रानियां रूप शील और गुणकी खानि थीं । इन दोनोमे से वसुन्धराके गर्भसे तो रविचूलिकका जीव अपराजित और अनुमतिके गर्भसे मणिचूलिकका जीव अनन्तवीर्य पुत्र हुआ । वे दोनो ही पुत्र माता-पिताको आनन्द देनेवाले सदा खिले हुये कमलके समान प्रसन्नचित्त रहते थे, जिनको देखकर लोगों की अत्यन्त प्रीति उनपर उमड़ती थी । जब वे दोनों पुत्र वयस्क-युवा हुये तो राजा स्तमितसार किसी कारणको पाकर संसारके भोगोंसे विरक्त हो गया, फिर उसको ये भोग, भोग न जँचकर भुजंग मालूम होने लगे । वह अपने पुत्रोंपर राज्यका भार डालकर स्वयं वनमे जाकर स्वयंप्रभ गुरुके पास जिनेश्वरी दीक्षा धारण करली । एक समय स्तमितसागरने धरणेन्द्रकी विभूति देखी और उसने उसके पाने का निदान किया । निदानके प्रभावसे वह मरकर धरणेन्द्र ही हुआ । वास्तवमें यह निदानबन्ध बहुत बुरा है । स्तमितसागर जिनेश्वरी दीक्षा धारण करने से न जाने वह कितना बड़ा पद प्राप्त करता परन्तु निदान बंध करनेसे उसको उतनी ही चीज मिली इसलिये

निदानबंध कभी भी नहीं करना चाहिए। इधर वे दोनों भाई–अपराजित और अनन्तवीर्य पृथ्वीपर एकछत्र शासन करते हुये इन्द्र प्रतीन्द्र सरीखे शोभा पाते हुये। एक समयकी बात है किसी राजाने इनकी सेवामे वर्वरी और चितालिका नामकी दो कुशल नर्तकी भेजीं। वे नर्तकी अपने कार्यमें बहुत ही प्रवीण–हाव–भावकी जानकार थीं और बहुत ही चित्तको हरण करनेवाले नृत्य करती थीं, उनका नृत्य देखनेके लिए और राजाओंके साथ वे दोनो भाई भी नाटयशाला मे बैठे हुये थे। इनका कौतुक देखने के लिए दैवयोगसे उसी समय वहां नारद आ पहुंचे किन्तु इस समय उन दोनों भाईयों का मनोयोग नृत्यकी तरफ लग रहा था इसलिए वे नारदको नहीं देख पाये। नारदने उसको अपना बड़ा भारी अपमान समझा और वह गुस्सेके मारे जलभुन करके आग बबूला हो गया। वह तुरन्त ही उल्टे पैर वापिस होकर प्रतिनारायण दमतारिके नगरमे पहुँचा। दमतारि उस समय सिंहासनारूढ़ था। बहुतसे सभ्यगण उसकी सभामें उपस्थित थे। नारद उसको देखकर आकाशसे पृथ्वी पर उतरे। दमतारिने उन्हे देखते ही सिंहासनसे उठकर नमस्कार किया और उन्हे उच्च सिंहासन पर बैठाया। नारदजी दमतारिको शुभाशीर्वाद देकर सिंहासन पर बैठ गये। इसके बाद दमतारि बोला कि महाराज! आप भक्तों पर प्रेमकी दृष्टिसे देखने वाले भव्योत्तम है अतएव मुझ भक्त पर प्रसन्न हूजिये और दयाकर बतलाइये कि आपका आना यहां कैसे हुआ। उत्तरमे नारदजी ने कहा कि राजन्! मै तेरे ही हितके लिए इधर उधर फिर रहा हूँ। संसारकी जो उत्तम वस्तु है उसका समागम तुझे हो इसके लिए ही मेरा यह प्रयत्न है। मुझे तेरा रात दिन स्मरण रहता है। सुनो! कल दिन रंभा और उर्वशीके समान रूप गुणवाली सुन्दर दो नर्तकियों को प्रभाकरी पुरीके राजा अपराजित और अनन्तवीर्यकी सभा में नृत्य करते हुये देखा है वे दोनो तेरे लायक है। मुझे वह अनिष्ट संयोग सहन नहीं हुआ इसलिए मै शीघ्रगतिसे तेरे पास आया हूँ। सभी जानते है कि चूड़ामणि रत्न उत्तमांग शिरपर धारण किया जाता है उसको यदि पैरमें पहिन लिया जाय तो क्या वह अच्छा दिखाई देगा? राजन्! जिसप्रकार अमूल्य मणि दरिद्रीको शोभा नहीं देती, वह तो राजा महाराजा सेठ साहूकारोंके यहां शोभा देती है अर्थात् योग्य

वस्तु योग्य स्थानमे ही शोभा पाती है उसी तरह वे नर्तकी भी अपराजित अनंतवीर्य के यहां शोभा नहीं पातीं, वे तो महाराज सरीखे महाराजाओंके यहां ही शोभा पायेंगी। नारदकी यह बात सुन दमतारिने उसी समय एक दूतको बुलाया और कुछ भेंट देकर अपराजित और अनन्तवीर्यके पास भेजा, दूत बहुत होशियार और समयोचित बातको जाननेवाला था। वह प्रभानगरीमे पहुँच गया, वहां जाकर उसने उन दोनो भाईयोको सभा मंडपमे बैठा हुआ देखा। देखकर उनके आगे भेंट रखकर उन्हे नमस्कार किया और कहा कि राजन् मुझे प्रतिनारायण दमतारिने आपके पास भेजा है और आपसे उन दो नर्तकियोकी याचना की है जो आपके यहां है। कृपा कर आप उन नर्तकियोको उन्हें दे दीजिये जिससे कि परस्पर मे प्रीति बढ़े। यह बात सुनकर उन्होंने दूतको तो बाहर बैठने के लिए कहा और मंत्रियोंको भीतर बुलाकर उनके साथ परामर्श किया और पूछा कि इससमय अपना क्या कर्तव्य है। इतनेमें पुण्योदयसे अमिततेजके तीजे भवमे जो विद्याये प्राप्त थीं वे आकर अपराजितसे कहने लगीं कि हे राजन् ! आप किसी तरहकी चिंता न करें। हम शत्रुको हर प्रकारसे तहस नहस करनेके लिए प्रस्तुत है। इतना कहकर वे सब विद्याये हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और अपराजित की नौकरानीकी तरह काम करनेमें संलग्न हो गई, सो ठीक ही है कि पुण्यात्माओंके लिये सभी संकटमे सहायक हो जाते है। तब वे दोनों भाई प्रभाकरी नगरीकी रक्षा के लिए मंत्रियोको नियत कर स्वयं नर्तकियोंका रूप बनाकर दूत के साथ साथ शिवमन्दिरको चल दिये और थोड़ी ही देरमे वहां पहुँच गये। वहां पहुंचकर उन्होने दमतारिकी सभामे बहुत ही मनमोहक कला परिपूर्ण नृत्य किया जिसको देखकर सारी सभा आश्चर्य करने लगी। दमतारिने प्रसन्न होकर नर्तकियोंको कहा कि तुमने बहुत ही उत्तम नृत्य किया है तुम इस विषय की अच्छी जानकार हो, इसलिए मै अपनी पुत्री कनकश्री नृत्यकला सीखनेके लिए तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ। राजाने वह कन्या उन दोनों को सौंप दी। उन्होने भी इस कन्याको योग्य नृत्य संगीत गीत आदि बहुतसी कलाये सिखा दीं, भाग्यवश कन्या अनन्तवीर्य पर मोहित हो गई तब वे दोनों उस कन्याको साथ लेकर आकाशमे चले गये। यह बात जब दमतारिको मालुम हुई तो वह बहुत क्रोधित

हुआ और पछतावा भी करने लगा। सो ठीक ही है कि जो मनुष्य बिना बिचारे शीघ्र ही आवेशमें आकर काम करने लग जाते है उनको शेषमे पछतावा करना पड़ता है। दमतारिने क्रोधमें आकर उनको पकड़नेके लिये बहुतसे योद्धा भेजे किंतु वे अपराजितके सामने कोई भी नहीं ठहर सके। आखिरमें उसने विचार किया कि यह काम नर्तकियोंका नहीं हो सकता है, यह तो कोई छल है। यह विचार कर वह खुद युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ। इसके बाद पूर्वभवमें प्राप्त हुई विद्याओंके बलसे अपराजितने दमतारिके साथ बहुत देर तक घमासान युद्ध किया एवं दमतारिके साथ अनन्तवीर्यका भी बहुत देर तक युद्ध होता रहा। आखिरमें क्रोधित हो दमतारिने परचक्रको डरानेवाला भयानक चक्र हाथमें लिया और उसे अनन्तवीर्य पर चलाया। पुण्य योगसे वह चक्र उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर हाथ पर आ गया और उसी चक्रसे अनन्तवीर्यने दमतारिका मस्तक छेद कर दिया। उस समय चारों तरफ हलधरकी जीतके समाचार व्याप्त हो गये, जिसको सुनकर सभी विद्याधर उनके पास आये और आकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी आधीनता स्वीकार की। इसके बाद वे दोनों भाई बहुत से विद्याधरों सहित और अतुल सम्पत्ति सहित अपनी पुरी प्रभाकरीको वापिस लौट आये। रास्ते में आते हुए उन्होंने केवलज्ञानी अतुल विभूतिके धनी कीर्तिधर नामक जिनभगवान को देखा और देखकर उन्हें भक्ति सहित नमस्कार किया और सभामें बैठ भगवानका हितकारी दिव्य उपदेश श्रवण किया तथा कनकश्री के पूर्वभवोंको भी पूछा। कनकश्री भगवानके मुखारविंदसे अपने पूर्वभवकी कथा सुनकर इस असार–संसार और नश्वर शरीरसे विरक्त हो गई और उसने अर्जिकाके पास जिनदीक्षा ले ली। इसके पश्चात् वे दोनों भाई कनकश्री की प्रशंसा कर और भगवानको नमस्कार कर समोशरणके बाहर आए और अपनी नगरी प्रभाकरीकी तरफ रवाना हो गये। अपराजित और अनन्तवीर्यकी पुण्योदयसे देवतागण भी आकर सेवा करते थे, उनके चरणोंमें पुनः पुनः प्रणाम करते थे। वे सदा ही प्रसन्नचित्त रहते थे। संसारमें कोई भी उनका शत्रु नहीं था। निंदा अपवाद आदिसे सर्वथा ही रहित थे, कोई भी निंदक नहीं दिखाई देता था। वे वास्तवमे धर्मके लाभको प्राप्त कर चुके थे और अपने चरित्र से

अन्य पुरुषोंको यह बतलाते थे कि तुम भी यदि सुखी होना चाहते हो तो इस जाति का पुण्य उपार्जन करो।

जिन्होंने बड़े २ योद्धाओंसे युद्ध कर अपराजित नामको चरितार्थ किया, वे अपराजित बलदेव सदा जयवंत रहे तथा जिन्होंने अपने प्रचंड वीर्यसे दमतारि जैसे बली प्रतिनारायणके बलको चकनाचूर कर दिया एवं जो शूरवीरोमे प्रधान है सभी शक्तियोके स्वामी हैं, ऐसे प्रतिनारायण अनन्तवीर्य सर्वज्ञके प्रभाव से शोभित होवे। इस प्रकार वे दोनो भाई प्रीतिपूर्वक अपने समयको बिताने लगे।

पांचवां अध्याय

उन शांतिनाथ भगवानकी मै भक्तिपूर्वक वंदना करता हूँ जिन्होने कर्मो को नष्टकर मोक्षसुख प्राप्त किया एवं अज्ञानांधकारको सुज्ञानके द्वारा हटाया तथा जो परमशांतिको प्राप्त कर चुके है वे भगवान मुझे शांति प्रदान करे।

इसके बाद प्रतिनारायण अनन्तवीर्यने तीन खण्ड का राज्य पाकर सब प्रकारके भोगपभोगोंको भोगा और आयुका अन्त होने पर पापोदयसे वह रत्न-प्रभा नामकी नरककी प्रथम पृथ्वीमें नारकी हुआ और वहां पर नरकोंके दुःख भोगता रहा। इधर अपराजित अजितसेनको राज-काज देकर आप यशोधर मुनि महाराजके पास दिगम्बरी दीक्षा धारण करली, जिसके प्रभावसे सोलहवे अच्युत स्वर्ग के स्वामी इन्द्र हुये। इधर पहले नरकमे अनन्तवीर्य का जीव जो कि नारकी हुआ था उसको सम्बोधन करनेके लिए उसके पूर्वभवका पिता धरणेन्द्र वहां गया और वहां उसने उसको जिनेन्द्रवाणीका उपदेश दिया, जिससे उसके दृढ़ सम्यग्दर्शन हो गया। इस प्रकार नरककी संख्यात वर्षकी आयुको पूराकर वहांसे निकला और निकलकर इसी भरतक्षेत्र की उत्तरश्रेणी मे एक व्योमवल्लभ नामका नगर है, उसका राजा मेघवाहन था उनके यहां पुत्ररत्न हुआ, जिसका नाम मेघनाद था। वह दोनों श्रेणियोका स्वामी था। एक समय वह सुमेरु के नन्दनबनमे गया और वहां जाकर प्रज्ञप्ति नामकी विद्याको सिद्ध करने लगा। इतने मे उसके पूर्वभवके बड़े भाई-अच्युत इन्द्रकी दृष्टि उस पर पड़ी वह प्रेमके वश हो वहां आया और उसने मेघनादको अच्छी तरह सम्बोधन

किया। भवितव्यतावश वह उसके समझानेसे समझ गया सो ठीक ही है जिन जीवोंका अच्छा होनहार है उसीको धर्मके वचन रुचिकर होते हैं और जिनका उदय ही अच्छा नहीं है उनको वे वचन विषके समान प्रतीत होते हैं। मेघनाद को स्वपर तत्वका बोध हो गया जिससे उसने उसी समय जिनदीक्षा धारण करली और वह नन्दन नामक पर्वतपर प्रतिमायोग लगाकर ध्यानस्थ हो गया। इधर अश्वग्रीवका छोटा भाई सुकंठ जो कि संसार–समुद्रमें चक्कर लगाता हुआ असुरजातिका देव हुआ था, वह उस पर्यायको पूराकर वहां से निकला और दैव-योगसे मुनि मेघनादको ध्यानस्थ देखकर उसे उनपर बहुत क्रोध आया और क्रोधके आवेशमें आकर उस दुष्टने मुनिराजको घोर उपसर्ग किया किन्तु वे धीर वीर मुनिराज अपने ध्यानसे थोड़े भी विचलित नहीं हुए किन्तु ध्यानमें और दृढ़ हो गये और उपसर्गको समताभाव धारण कर सहन किया, जिसके प्रभावसे वे अच्युत स्वर्गमें प्रतींद्र हुए। वहां वे अपने बड़े भाई इन्द्रके साथ स्व-र्गीय सुखको भोगने लगे। आयुके पूर्ण होने पर इन्द्रका जीव तो वहां से चयकर जम्बू द्वीप के पूर्व विदेहके मंगलावती देशमें रत्नसंचयपुरके राजा क्षेमंकर और उनकी रानी कनकमालाके गर्भसे वज्रायुध नामका उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्ररत्न हुआ। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ तो उसका विवाह राजलक्ष्मी नामकी राजपुत्रीके साथ हो गया। अनन्तवीर्य का जीव जो पहले प्रतींद्र हुआ था वह वहां से चयकर इन्हीं वज्रायुध और राजलक्ष्मीके यहां पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम सहस्रायुध रक्खा गया। उसकी स्त्रीका नाम श्रीषेण था। उन दोनों के कनकशांति नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र यथा नाम व गुणवाला था, उसकी शरीरकी कांति तपे हुए सोनेके समान थी। इस तरह पुत्र पौत्र आदि सहित राजा क्षेमंकर आनन्दपूर्वक राजसुख भोगने लगा। एक समय ईशान स्वर्गके इन्द्रने अपनी सभामें वज्रायुधके दृढ़ सम्यक्त्व की बहुत प्रशंसा की और कहा कि इसके समान निर्मल सम्यक्त्व और किसी के नहीं है। यह प्रशंसा वहां एक बैठे हुए विचित्रचूलक नामक देवको सहन न हो सकी और वह वहां से उनकी परीक्षा लेनेके लिए पंडितका भेष बनाकर वज्रायुधके पास आया। राजाने यथा-योग्य आदर–सत्कार किया। पंडितने राजा से कहा कि राजन्! मैने सुना है

कि आप जीवादितत्वोंके विचारमे बड़े विद्वान् हैं इसलिए मै आपसे वाद–विवाद करनेकी इच्छा करता हूँ। इस तरह विचित्रचूल एकांत नयका ग्राश्रय लेकर ग्रौर राजा अनेकान्त नयके आधारसे आपसमे वाद–विवाद करने लगे। विचित्र-चूलने कहा कि ग्राप यह बतलाइए कि जीव आदि तत्वसे पर्याय भिन्न होती है या अभिन्न ? यदि कहोगे कि भिन्न होती है तो पर्याय निराधार ठहरी उसका कोई आधार ही नहीं रहा। निराधार होनेसे वस्तुका ही ग्रभाव हो जायगा, जिस तरह कि घटके ग्रभावमे माटीका भी अभाव हो जाता है ऐसा मानने से शून्यवादका प्रसंग आता है इसलिए पर्याय पर्यायीसे भिन्न नहीं है। यदि कहोगे कि पर्याय पर्यायीसे अभिन्न है तो यह पर्याय है ग्रौर यह पर्यायी है ऐसा जो भेद भाव होता है वह फिर नहीं होगा। इसलिए तुम्हारा यह मानना युक्तिसंगत नहीं हो सकता। यदि यह कहोगे कि द्रव्य तो एक है, केवल उसकी पर्याय अनेक दीख पड़ती है तो ऐसा मानने पर सारा संसार एकरूप हो जायगा ग्रौर जो नाना रूप दिख पड़ता है वह फिर कुछ नहीं बनेगा तथा जीवोको पुण्य और पापका फल भी नहीं मिलेगा और यह संसारमे देखा जाता है कि अमुक मनुष्य पापोदयसे दुःखी हो रहा है और दूसरा पुण्योदयसे सुख पा रहा है, सो भी नहीं बनेगा ग्रौर फल नहीं मिलने से बन्ध भी नहीं होगा, बन्ध न होने से मोक्ष भी नहीं बनेगा, इसलिए यह मानना भी युक्तिमत नहीं। यहां प्रश्न एक ग्रौर उठता है कि वह द्रव्य नित्य है या क्षणिक ? इन दोनों पक्षोके मानने से नहीं बनेगी और अर्थ क्रियाके अभावमे वस्तुकी सत्ताका ग्रभाव हो जायगा और सत्ताके ग्रभाव होनेसे वस्तुका वस्तुमे ग्रर्थ क्रिया-हलन चलन ही अभाव हो जायगा ग्रौरदोनों के ग्रभावसे शून्यताका प्रसंग हो जायेगा। यदि शून्यताको मानेंगे तो मेरे पक्षका समर्थन होगा, तुम्हारे पक्षका अभाव हो जायगा इसलिये तुम्हारा मत कल्पना मात्र है। सप्त तत्व नव पदार्थ यह सब कल्पना है, वास्तवमे कुछ नहीं। इसलिए राजन् ! ऐसी कपोल कल्पित बातोमे मत फँसो, इनमे कुछ भी वास्तविकता नहीं है। इस प्रकार विचित्रचूलके वचनोंको सुनकर राजा वज्रायुधने कहा कि मित्र ! अब थोड़ा ध्यान देकर मेरे वचनोंको भी सुनिए। तुमने जो कुछ विकल्प उठाकर दोष दिखाया है वह दोष तो वस्तुको क्षणिक एकांत या नित्य एकान्त

माननेमें आते हैं अथवा सर्वथा भेदभाव या सर्वथा अभेद–भाव माननेमें आते हैं किन्तु स्याद्वादमत–अनेकान्तमतके माननेवालोंके यहां ये सब दोष नहीं आते हैं। उनके यहां तो स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्यादास्ति नास्ति, स्याद् वक्तव्य अस्ति, अस्याद्वक्तव्य, स्याद्नास्ति अवक्तव्य, स्याद् अस्तिनास्ति अवक्तव्य इन सप्तभंगों द्वारा पदार्थकी सिद्धि होती है एवं पुण्य पापका आस्रव होकर बन्ध होता है और बन्धके अभाव हो जाने पर मोक्ष अवस्था प्राप्त होती है। उनके द्रव्यार्थिक नय करके वस्तु ध्रौव्यरूप मानी गई है और पर्यायार्थिक नय करि उत्पाद और व्ययरूप मानी गई है। नय भेदसे ही स्याद्वादियोंके यहां कोई भी विरोध वस्तुओंमे नहीं आता है। एक वस्तुमें बहुतसे धर्म रहते है जैसे कि एक पुरुष पिताकी अपेक्षा पुत्र और पुत्र की अपेक्षा पिता है, स्त्रीकी अपेक्षा पति है। भानजे की अपेक्षा मामा है, इसी तरह वस्तु भी अनेकांतात्मक ही है। यह बात स्याद्वादकी सिद्धिमे सुनिर्णीत हो चुकी है, कोई भी बाधक प्रमाण पदार्थोंकी अनेकांततामें उपस्थित नहीं होता है, हो भी कहांसे? पदार्थोका स्वभाव ही ऐसा है। इसलिये विद्वान् एकांतपक्षको छोड़कर अनेकांतस्याद्वादमतको स्वीकार करो। राजा के इस प्रकार युक्तिमत वचनों को सुनकर वह देव निरुत्तर हो गया और बहुत ही प्रसन्नचित्त हुआ। उसने हृदयमें निश्चय किया कि वास्तवमे यह वज्रायुध स्याद्वाद मतमे दृढ़ है, शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक है। स्वर्गमें इन्द्रने जैसी इसकी प्रशंसा की थी वास्तवमें यह वैसा ही है। इसप्रकार देव निःसन्देह हो वज्रायुधको कहने लगा कि हे वज्रायुध! तुम धन्य हो। जैसा मैने तुम्हारे विषय मे सुना था तुम वैसे ही निकले। उस समय उस देवने अपने आने की सारी कहानी राजाको सुना दी और सुनाकर राजाकी उसने दिव्य वस्त्र और आभूषणो द्वारा पूजा सत्कार कर स्वर्गको चला गया। इसके बाद राजा क्षेमंकरको प्रतिबोध हुआ। वह बारह भावनाओं का चिन्तन करने लगा। संसार शरीर और भोगोकी क्षणभंगुरताका विचार करने लगा। इतनेमे ही पांचवें–ब्रह्म स्वर्ग से लौकांतिक देव वहां आकर राजाके वैराग्यकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि राजन्! यह तुमने बहुत ही अच्छा विचार किया है। इस प्रकार राजा की स्तुति भक्ति कर वे स्वर्गको चले गए। इसके बाद क्षेमंकरने अपने पुत्र

वज्रायुधको बुलाया और उसके ऊपर राज भार डालकर आप बनमे जाकर दिगंबर मुनि हो गये। कुछ समय बाद उन्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गई जिसकी वजहसे वे तीनों लोकोंकी बातको दर्पण तत्वकी भांति जानने लगे। उस समय वे भगवान तीर्थंकर समवशरण सहित अत्यन्त सुशोभित होते थे। इधर राजा वज्रायुध न्यायनीति पूर्वक भोगोको भोगता हुआ राज्य करने लगा।

एक समय वह राजा वसन्तके समय में बन-क्रीड़ा करनेके लिये अपनी रानियो सहित गया हुआ था। वह वहां सुदर्शन नामके सरोवरमे जल-क्रीड़ा कर रहा था। इसी समय पूर्वभवके बैरी किसी दुष्ट विद्याधरने उसके ऊपर एक पत्थरकी शिला डालदी और नीचे आकर उस राजाको नागपाश द्वारा बंधनबद्ध कर लिया। किन्तु उस बली वज्रायुधने अपने हाथ से ही उस शिलाके टुकड़े टुकड़े कर दिए और नागपाशको भी नष्टभ्रष्ट कर दिया। यह हालत देख वह पूर्वभवका वैरी विद्याधर भय खाकर वहां से भाग गया और राजा भी अपनी रानियो सहित नगरको निःशंक होकर वापिस आया और वहां सुखपूर्वक रहने लगा। कुछ समयके बाद धर्मके प्रभावसे उसके यहां नवनिधियों सहित चक्र रत्नकी उत्पत्ति हुई। सो ठीक ही है, धर्मका अचित्य फल है। चक्र रत्नको पाकर वह चक्रवर्ती आनन्दपूर्वक भोगोपभोगोंको भोगने लगा। सदा ही उसका मन भोगोंमे भरपूर रहता था।

जिस समय चक्रवर्ती दशों खंडोंका एक छत्र राज्य कर रहे थे उस समय विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमे शिवमन्दिर नामका एक नगर है, वहां का राजा विमलवाहन था। उसकी प्रियाका नाम विमला था। वह शुभ लक्षणोंवाली थी, उसके कनकमाला नामकी एक पुत्री थी। उसका विवाह कनकशांति के साथ कर दिया गया, स्तोकसारपुरके राजा समुद्रसेन और उसकी रानी जयसेना थी। उनके वसन्तसेना नामकी एक कन्या थी। उसका भी विवाह कनकशांतिके साथ कर दिया। इन दोनों सुलक्षणा पत्नियों को पाकर कनकशांति आनन्द पूर्वक सांसारिक सुखोको भोगने लगा। एक समय कनकशांति अपनी दोनों भार्याओं सहित क्रीड़ा करनेके लिये बनमे गया था। वहां उसने विमलप्रभ नामक मुनीश्वरको देखा और उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उनसे धर्मश्रवण किया।

धर्मकथा सुनने से उसका चित्त संसारके विषय भोगोंसे एकदम विरक्त हो गया, सो तो ठीक ही है जब तक इन भोगोंको अन्धा होता हुआ यह जीव भोगता रहता है तब तक तो यह अत्यन्त प्रिय मालूम होते हैं और जहां उसके दिव्यनेत्र खुले और उसको स्वपरका ज्ञान हुआ कि विषय भोग भुजंगके समान प्रतीत होने लगते है। यही अवस्था उस समय कनकशांतिकी हो गई। उसने उसीसमय दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। अपने पतिको दीक्षित देखकर कनकमाला और वसन्तसेनाने भी विमला नामकी एक अर्जिका से जिन दीक्षा ले ली और दीक्षा लेकर तप तपने लगी। सो ठीक ही है, कुलवती स्त्रियां ऐसा ही आदर्श कार्य करती है।

एक दिन मुनिराज कनकशांति सिद्धाचल पर ध्यान लगाये हुए प्रतिमासन योग कर रहे थे। वहां किसी एक विद्याधर ने उन्हें बहुत उपसर्ग किया परन्तु वे उन उपसर्गोंसे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। जिससे उन्हें उसी समय केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गई। पोतेको केवलज्ञान हुआ देखकर वज्रायुध चक्रवर्ती भी संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त हो गया। सहस्रायुधको उसने राजपाट देकर स्वयं क्षेमंकर भगवानके समीप दीक्षा धारण करली और सिद्धाचलकर एक वर्षतक प्रतिमायोग धारण करके ध्यानस्थ हो गया। इस समय वज्रायुधने ऐसा ध्यान लगाया कि उसके पैरोंतक सर्पोंने बांबी बना ली थी एवं कंठतक बेलोंने उसे बेढ़ लिया था। उधर अश्वग्रीवके रत्नकंठ और रत्नायुध ये दो पुत्र भव-भ्रमण करते हुए अतिबल और महाबल नामके असुर हुए थे। वे दोनों ही वज्रायुध को नाना प्रकारसे कष्ट देने लगे। उन दोनों असुरोंने उस समय वज्रायुधका ध्यानसे मन डिगानेके लिए रम्भा और तिलोत्तमा का रूप बनाया। वे नाना प्रकारके हाव-भाव दिखाकर उन्हें विचलित करने के लिए प्रयत्न करने लगे, किन्तु उनका मन सुमेरु ध्यानसे बिल्कुल भी विचलित नहीं हुआ। मुनिकी यह अवस्था देखकर वे चुपचाप ही वहां से भाग गये। कुछ देर बाद वे अपने असली रूपमें प्रगट हुए और वज्रायुध मुनिकी स्तुति पूजा आदि कर स्वर्गको चले गये। इधर सहस्रायुधने कुछ दिनों तक राज्य के कार्य को संभाला, बाद किसी निमित्त पाकर वह भी विरक्त हो गया। उसने अपने छोटे

पुत्र शांतबली को राज्य देकर स्वयं पिहिताश्रव मुनिराजके पास दीक्षा धारण कर ली। इधर वज्रायुध मुनिका ध्यान समाप्त हो गया तब वे दोनो मुनिराज (वज्रायुध और सहस्रायुध) साथ-साथ विहार करने लगे। विहार करते २ वे विपुलाचल पर्वतपर आये और वहाँ मौन धारण करके ध्यानमे लवलीन हो गए और अन्त समयमे धर्मध्यान-पूर्वक शांत परिणामोसे शरीरको त्याग किया, जिसके प्रभावसे ऊर्ध्व ग्रैवेयकके सौमनस नामक अधोविमानमे उनतीस सागर की आयुवाले उत्तम जातिके अहमिन्द्र हुये। वहां उन्होने आयु पर्यंत स्वर्गीय सुख भोगे। पश्चात् आयु पूर्ण होते ही वे वहांसे गये। चयकर वज्रायुध का जीव तो जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमे पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिनी नगरीमे घनरथ नामक राजाकी मनोहरा नामकी रानीके गर्भसे मेघरथ नामका पुत्र हुआ। जिस समय राजा घनरथके मेघरथ पुत्र उत्पन्न हुआ, उस समय उसने बड़ा भारी उत्सव किया। इसी प्रकार घनरथ राजाकी दूसरी रानी मनोरमा के गर्भसे सहस्रायुध का जीव, जो कि ग्रैवेयकमे अहमिन्द्र हुआ था, वह दृढ़रथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, दोनो पुत्र क्रम-क्रमसे बढ़ने लगे। जब वे युवावस्था को प्राप्त हुए तब उनके पिता घनरथने उनका विवाह कर दिया। मेघरथका विवाह प्रियमित्रा और मनोरमाके साथ हुआ तथा दृढ़रथका विवाह सुमतिके साथ हुआ। कुछ समय बाद मेघरथकी प्रिया प्रियमित्राके गर्भसे नंदिवर्धन नामका पुत्र हुआ और दृढ़रथकी वल्लभा सुमतिके गर्भसे वरसेन नामका पुत्र हुआ। इस प्रकार पुत्र पौत्रादिकोके सहित राजा घनरथ ऐसा शोभित होता हुआ जैसे तारागण, सूर्य और चन्द्रमा आदिके सहित सुमेरु पर्वत शोभाको प्राप्त होता है। एक समय घनरथ किसी निमित्तको पाकर संसारसे उदास हो गया। उसने अपने पुत्र मेघ-रथको राजपाट दे स्वयं दिगंबरी दीक्षा धारण करली। उस समय स्वर्गसे लौकांकित देव आये तथा अन्य देवतागण भी आये और वहां उन्होंने दीक्षा महोत्सव किया, पश्चात् वे स्वर्ग चले गये। इधर तीर्थंकर घनरथ थोड़े ही समय मे घाति कर्मोको नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त कर केवली हो गए और समव-शरण आदि विभूति सहित करोड़ों सूर्य की प्रभा से भी अधिक शोभाको धारण करते हुए जान पड़ते थे।

इसके पश्चात् एक समय मेघरथ राजा देवरमण नामक उद्यानमें अपनी रानियोंको साथ लेकर क्रीड़ा करने के लिए गया था। वहां पहुँच कर वह एक शिला पर बैठ गया। इतने में ही आकाश-मार्ग से जाता हुआ विद्याधर का विमान उधर से निकला और वह वहीं रुक गया। उस विद्याधर को उस समय बहुत ही गुस्सा आया और गुस्सेमें आकर उसने चारों तरफ दृष्टि की तो एक शिलापर मेघरथ को बैठा हुआ देखा। वह उसको मारने के विचारसे शिला के नीचे घुस गया और चाहा कि उसको शिला सहित उठाकर नीचे पटकदे जिससे कि वह मर जाय। यह बात राजाको भी ज्ञात हो गई, उसने उसी समय उस शिला को अपने अंगूठे के अग्रभाग से थोड़ा दबा दिया, जिससे वह विद्याधर उस शिलाके भार को सहन करनेमें असमर्थ हो गया और दुःखित हो चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाने की आवाज को जब उसकी स्त्रीने सुना तो वह उसी समय मेघरथकी शरणमें आई और आकर विनम्र हो पतिके जीवन की भिक्षा मांगने लगी। उसकी इस प्रकार प्रार्थना करने पर मेघरथने उस शिला पर से अपने अंगूठेको हटा लिया। यह अवस्था देख-प्रियमित्राने अपने स्वामी मेघरथ को पूछा कि स्वामिन्! यह क्या बात है? उत्तरमें मेघरथने कहा कि विजयार्द्ध पर्वतपर एक अलकापुरी नामकी नगरी है, उसका राजा विद्युद्दंष्ट्र और रानी अतुलवेगा है, उस दोनों के सिंहरथ नामका एक पुत्र है। वह एक बार विमल-वाहन मुनिकी वन्दना करने के लिए गया था। वह वापिस घर जा रहा था कि अभी इसका विमान यहां अपने आप ही रुक गया। तब इसने उधर देखकर मेरे ऊपर गुस्सा किया और मुझे शिला सहित उठाने के विचार से यह उसके नीचे घुस गया। मुझे मालूम होते ही मैंने अपने अंगूठे से उस शिला को दबा दिया, जिसकी वजहसे वह उसका बोझ नहीं सहन कर सका तो वह चिल्लाया। चिल्लानेकी आवाज सुनकर उसकी स्त्री आई और उसके जीवन की भिक्षा मांगी। इस प्रकार उसने सारा हाल अपनी स्त्रीको कह सुनाया, पश्चात् उस विद्याधरको सन्तोष बन्धा वहां से उसको विदा कर दिया।

एक समय राजा मेघरथने चारण ऋद्धिधारी दमवर मुनिराजको आहारदान दिया था जिसके प्रभाव से उसके यहां देवताओने पंचाश्चर्य प्रगट

किए। यह राजा सदा ही शक्ति अनुसार तप करता था अष्टह्निका पर्वके आने पर उसने बहुत भक्ति-भावसे भगवानकी पूजाकी और प्रोषधोपवास व्रत लिया एवं रात्रिके समयमें प्रतिमायोग धरकर मेरुकी तरह अचल हो गया। इसी समय ईशान इंद्रने अपनी सभा में बैठकर अवधिज्ञान के द्वारा राजा मेघरथको ध्यानस्थ देखा और देखते ही शतमुख द्वारा वह उनकी स्तुति करने लगा कि मेघरथ तुमको धन्य है, धन्य है तुम्हारे धैर्यको। हे संसारकी असाताको मिटाने वाले आत्मध्यानी ! तुमको मेरा शत बार प्रणाम है। यह सुनकर अन्य देवता-गणने स्वामी से पूछा कि हे देव ! आप किनकी स्तुति कर रहे है ? यह सुन कर इन्द्रने कहा कि इस समय शुद्ध सम्यग्दृष्टि राजा मेघरथ प्रतिमायोगमे लीन हो रहा है। वह ज्ञानी विवेकी उत्तम गुणोंका भण्डार होने से पूज्यनीय है, इस-लिए मैने उसे नमस्कार किया है। इन्द्रकी यह बात वहां की अतिरूपा और सुरूपा नामकी दो देवियों को नहीं सहन हो सकी और वे उसी समय मेघरथके पास पहुँचीं। वहां पहुँचकर उन्होने विनम्र, हाव, भाव, विलास, गीत और नृत्य आदि नाना प्रकार की चेष्टाये कीं, परन्तु वे सब विफल हो गई। वे राजा मेघरथके मन सुमेरुको थोड़ा भी चलित नहीं कर सकीं तब उनको इन्द्र की बात पर विश्वास हुआ और वे मेघरथको नमस्कार कर अपने स्थान को चली गई। इसप्रकार एक दिन ईशान इन्द्रने अपनी सभा मे प्रियमित्राके रूपकी प्रशंसा की थी, जिसको सुनकर रतिषेणा और रति नामकी दो देवियोको बहुत ही आश्चर्य हुआ और वे दोनों देवियां उसका रूप देखनेके लिए स्वर्गसे नीचे आई और वे स्नानके समय मे सुगंधित तैल उबटन आदिसे मले गए भूषण और वस्त्र रहित रानीके मनोहर शरीरको देखकर आश्चर्य करने लगीं और कहने लगी कि जब इसका इस समय ऐसा सुन्दर रूप है तब श्रृंगार आदि करने पर तो न जाने कितना सुन्दर होगा ? इसके बाद उन दोनों ने सुन्दर कन्या का रूप बना कर बुद्धिमानी के साथ कहा कि हे देवी ! हम तुम्हारा रूप देखनेके लिए स्वर्ग से आई थीं। इन्द्रने अपनी सभामे वास्तवमें जैसी आपके रूपकी प्रशंसा की थी हमने ठीक वैसा ही यहां देखा है। यह बात सुनकर रानी ने कहा कि तुम एक क्षण ठहरो। रानी की आज्ञा मानकर वे देवियां उसी जगह ठहर गई। इतनेमे

रानीने अपने बेशकीमती वस्त्राभूषण पहिने, शरीरमें सुगंधित तैल लगाया, माथेमें सुगंधित पुष्प गूंथे और हर प्रकार से शरीर श्रृंगारित किया पश्चात् अप्सराओं को बुलाकर अपना रूप दिखाया। उस समय वे देवियां उसका रूप देखकर अपना शिर हिलाने लगीं। यह देख रानीने कहा कि यह क्या बात है? वे कहने लगीं कि हे सुभगे! सुनो, ईशान इन्द्रने स्वर्गमे आपके रूपकी जैसी प्रशंसा की थी वह आपका रूप हमने स्नान करते समय वैसा ही देखा किन्तु रूपकी जैसी शोभा स्नान करते समय थी वैसी अब षोडश श्रृंगार कर लेनेपर नहीं है। इतना कहकर वे देवियां तो अपने स्थानको चली गई। इधर रानी अपने रूपको क्षणस्थायी जान वैराग्य युक्त हो गई। उस वक्त राजाने रानीको धैर्य बंधाया और कहा कि तुम अभी दीक्षा नहीं लो, मेरा भी परिणाम इन भोगोंसे उदास हो रहा है इसलिए हम और तुम दोनों ही एक साथ दीक्षा लेंगे।

एक दिन राजा मनोहर नामके उद्यानमे गया हुआ था। वहां उसने अपने पिता घनरथ प्रभु के दर्शन किए और उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। वे एक सुन्दर सिंहासन पर विराजमान थे, राजा वहीं एक स्थानपर बैठ गया और उसने आत्म-हितकी इच्छा से प्रश्न किया कि भगवान्! क्रिया और संस्कार आदिसे क्या लाभ है? इसके उत्तर मे प्रभुने कहा कि राजन्! सप्तम उपासकाध्ययनांगमे जो १०८ क्रियायें बतलाई हैं, उनमेसे ५३ क्रियायें गर्भान्वय नामसे कही जाती है, जो कि गर्भसे लेकर मरण पर्यतकी विधिको बतलाती हैं, तथा ४८ क्रियाये दीक्षान्वय नामसे कही जाती हैं. जो कि दीक्षा से प्रारम्भ कर निर्वाण तककी विधिको बतलाने वाली हैं। बाकी ७ क्रियायें कर्त्रन्वय नामसे पुकारी जाती है जो सिद्धांतको प्रतिपादन करती है। ❀ इन क्रियाओंके पालन करने से आत्मा का बल बढ़ता है, संस्कार पवित्र होते हैं, आत्म-विशुद्धि होती है, सद्विचार और सद्भावनायें होती है। इस प्रकार राजा घनरथ प्रभुके बतलाए हुये क्रियाओंके स्वरूप एवं विधि-विधान तथा उनके फलको एवं श्रावक धर्मको सुनकर विरक्त परिणाम हो गया और उसी समय उसने अपने छोटे भाई दृढ़रथको बुलाकर कहा कि भाई अब तुम राज-पाटको सम्भालो! मै अब

❀ इन क्रियाओ का विशेष स्वरूप श्री आदिपुराणजी से जानना चाहिए।

आत्म–कल्याणके लिये तप तपूंगा। भाईकी यह बात सुन दृढ़रथने कहा कि पूज्य ! राज–काजमे जो दोष आपको दीख रहे हैं उन्हें मैं भी तो देख रहा हूँ। इसलिए विचारता हूँ कि पहले ग्रहण कर पीछे छोड़ना इसकी अपेक्षा तो यही उत्तम है कि उसको पहिले ही ग्रहण नहीं करना। कीचड़ मे ढेला फेक कर उसको अपने ऊपर डालना और फिर उसको पानी से साफ करना, यह कौनसी बुद्धिमानी है ? बुद्धिमानी तो यह है कि उससे पहिले ही दूर रहे। इस प्रकार की बातचीत से मेघरथने अपने भाई को विरक्त परिणाम जान अपने पुत्र मेघसेन को बुलवाया और उसे राजपाट संभला दिया। पश्चात् स्वयं सात हजार राजाओं और अपने दृढ़रथ सहित दिगम्बर दीक्षा धारण करली। दिगम्बर मुनिराज मेघरथ दुर्द्धर संयम का पालन करने लगे जिससे थोड़े ही समय में द्वादशांग के पारगामी अर्थात् श्रुतकेवली हो गए। उन्होने परम पवित्र षोडश कारण भावनाओंको भाकर सर्वोत्कृष्ट तीर्थकर प्रकृतिका बंध किया। पश्चात् वे मुनिराज दृढ़रथ मुनिराज के साथ–साथ नभस्तिलक पर्वत पर गए वहां उन दोनों ने शरीर और आहारादिसे ममता छोड़कर एक मास के लिए सन्यास धारण किया एवं सन्यास मरणपूर्वक प्राण छोड़े जिससे कि वे दोनो सर्वार्थसिद्धि नामक विमानमे महर्द्धि धारक देव हुए। वहां उनकी आयु तेतीस सागर की थी और शरीर स्फटिकके समान निर्मल और कांतियुक्त था। साढ़े सोलह महिनेमे वे श्वासोच्छ्वास लेते थे, अमृतपान ही जिनका आहार था सो भी तेतीस हजार वर्ष व्यतीत होने पर एक बार लेते थे, शुक्ललेश्या❋के धारक थे। मैथुन–क्रिया स्त्री संभोग रहित उनके उत्तम सुख था। शरीरकी उँचाई एक हाथ की थी तथा लोकनाड़ी के भीतर अपने योग्य द्रव्यक्षेत्रादि को विषय करने वाला जिनके अवधिज्ञान था, एक भवावतारी अर्थात् मनुष्यका एक भव प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगे। इसप्रकार मेघरथ का जीव अहमेंद्र पर्यायमे सर्वोत्कृष्ट जातिके सांसारिक सुखोंको भोगने लगा।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे कुरुजांगल नामका एक देश है, उसमें हस्तिनागपुर नामका एक नगर है जिसकी शोभाका वर्णन पूर्वमे कह दिया गया है।

❋ कषायो से रँगी हुई योगो की प्रवृत्ति को लेश्या कहते है।

वहां का राजा विश्वसेन था, वह बहुत विद्वान्, कार्यकुशल और नीतिज्ञ था। उसकी रानीका नाम ऐरादेवी था। वह बहुत गुणवती विदुषी और सुन्दरी थी। श्री, ह्री, धृति आदि देवियां जिसकी सेवा करती थीं। रात्रिका पिछला प्रहर था कि वह शय्या पर सुखकी नींद सो रही थी उस वक्त उसने सोलह स्वप्न देखे तथा मुंहमे प्रवेश करते हुए एक उन्नत हस्ती को देखा। उस समय मेघरथ का जीव जो कि सर्वार्थसिद्धिमे अहमेंद्र हुआ था वहां से चयकर माता ऐरादेवी के गर्भमे आया। वह दिन भादो वदी सप्तमीका था इसके बाद माता जगी और शय्या से उठकर प्रभात समयकी दैनिक क्रियाओंसे निबटकर और वस्त्राभूषण पहिनकर मनमें अत्यन्त हर्षित होती हुई अपने पतिदेव के पास गई और वहां पहुँचकर उसने पतिको नमस्कार किया। स्वामीने भी आदरके साथ आधे सिंहासन पर बैठाया और आनेका कारण पूछा। मानिनी रानीने भी रात्रिमे जो स्वप्न देखे थे, उनको जैसा का तैसा कह दिया और नम्र शब्दोंमें निवेदन किया कि स्वामिन्! इन स्वप्नोंका क्या फल है? उत्तरमें राजाने कहा कि इन स्वप्नोंके फलों से यह जान पड़ता है कि तुम्हारे गर्भमें संसार का उद्धार करने वाला कोई महान् पुण्यशाली आत्मा जन्म धारण करेगा। स्वप्नों का यह फल सुनकर रानीको महान् हर्ष हुआ सो ठीक ही है। पुत्रका होना ही एक तो हर्ष का कारण है, दूसरे जिनके तीन लोक के नाथ, संसार के मुकुटमणि चक्रवर्ती तीर्थंकर और कामदेव सरीखे पुत्ररत्न पैदा हों उनके माता–पिताओ को परम हर्ष होना ही चाहिए। इनके पश्चात् इन्द्रने अवधिज्ञान के द्वारा यह जाना कि भगवान् माता के गर्भमें आये है तो वह अपनी चतुरंग सेना सहित तथा अन्य देवगणके साथ हस्तिनागपुर मे भगवान का स्वर्गावतरण–गर्भकल्याणक मनाने के लिए वहां आया और बड़ी धूमधामसे उत्सव मनाकर वे देवता गण अपने २ स्थान को चले गये। माताका गर्भ ज्यों–ज्यों वृद्धिको प्राप्त होता था उसका शरीर भी त्यों–त्यो तेजयुक्त होता जाता था। उसका मन प्रतिदिन दान पूजा आदि सत्कार्योंके करने में अग्रसर होता जाता था। देवताओंने पन्द्रह महिने तक माता ऐरादेवी के घर रत्नोंकी वृष्टि की। पश्चात् जेठ वदी चौदसके दिन उगते हुए बाल सूर्यके समान उसने पुत्र रत्नको जन्म दिया। भगवानका जन्म

होते ही देवोंके यहां बिना बजाए स्वयं ही महा शंख भेरीशब्द, सिंहनाद, घन्टा आदि बाजोंके शब्द हुए। इन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ, जिससे उन्हे अवधिज्ञान द्वारा मालूम हुआ कि भगवानका जन्म आज हस्तिनागपुरमे हुआ है। यह जानकर इन्द्र सब देवतागण सहित महाराज विश्वसेन के घर आए और भगवानको सुमेरु पर्वतपर ले गए। वहां उन्होंने भगवानका १००८ सुवर्ण कलशों द्वारा क्षीर–समुद्रके जल से महाभिषेक किया एवं स्वर्गीय वस्त्र–आभूषण भगवानको पहिनाए और बहुत भक्तिभाव प्रदर्शित किया तथा शांतिनाथ यह नाम भगवानका प्रगट किया। वहां से वापिस आकर प्रभुको माताकी गोद मे दिया। भगवान की आयु एक लाख वर्षकी थी। शरीर चालीस धनुष उंचा था तथा उत्तम लक्षणों से युक्त था, शरीर की कांति सुवर्णके समान थी।

इसके पश्चात् दृढ़रथका जीव जो कि सर्वार्थसिद्धि में पैदा हुआ था वह वहां से चयकर राजा अश्वसेन की दूजी रानी यशस्वती के गर्भ से चक्रायुध नामका पुत्र हुआ। चक्रायुध बुद्धिमान और अच्छे गुणोंसे युक्त था, जिससे उसकी पंडितजन भी सेवा करते थे। इसके बाद राजा विश्वसेन ने कुल, शील, रूप, कला, योग्यावस्था आदिको देखकर कन्याओं के साथ शांतिनाथ प्रभुका विवाह संस्कार कर दिया और उन्हें अभिषिक्त कर अपना राज–पद दे दिया। इस समय प्रभु सूर्यकी प्रभाको भी जीतते थे अर्थात् उनका प्रताप बहुत तेज था। वे न्यायनीति पूर्वक प्रजाका पालन करने लगे जिसप्रकार सूर्यके निकलने से अन्धकार किनारा कर जाता है ठीक उसी तरह इनके सुशासनमे अन्याय किनारा कर गया था। कुछ समय बाद भगवानकी आयुधशाला मे चक्ररत्न पैदा हुआ, जिसके द्वारा उन्होंने छह खंडोंको विजय किया, विरोधी राजाओको जीता एवं उनकी आयुधशालासे १ चक्र, २ छत्र, ३ दंड, ४ असि ये चार रत्न तथा लक्ष्मीगृहमें १ चर्म, २ चूड़ामणि, ३ कांकिणी ये तीन रत्न इस प्रकार सात जड़ रत्न पैदा हुए और सात ही चेतन रत्न हुए अर्थात् हस्तिनागपुरमे १ पुरोहित, २ गृहपति, ३ सेनापति, ४ रथपति तथा विजयार्द्ध मे १ कन्या, २ हाथी, ३ घोड़ा इस प्रकार चक्रवर्ती भगवानके जड़ और चेतन मिलाकर चौदह रत्न पैदा हुए एवं नवनिधि प्राप्त हुई। इस प्रकार अतुल विभूति प्राप्त कर

भोगोपभोगोंको भोगते हुए शांतिनाथ प्रभुका बहुत समय निकल गया। यह समय जाता हुआ कुछ भी नहीं मालूम पड़ा सो ठीक ही है सुखका समय जाता हुआ किसी को भी नहीं मालूम देता और दुःख की एक घड़ी भी मुश्किल से कटती है। एक समय की बात है कि प्रभू अलंकारयुक्त होकर अपना प्रतिबिम्ब दर्पणमें देख रहे थे। उस वक्त उन्होंने अपने चेहरेको दो रूप में देखा अर्थात् पहिले समयमें तो किसी रूप में था और दूसरे समय मे किसी दूसरे ही रूप में प्रतीत होने लगा। वे इसी निमित्तको लेकर संसारके भोगोंसे विरक्त हो गये। जो विषय कुछ समय पहिले मधुर प्रतीत होते थे वे ही विषय इस अवस्था में विष सम मालुम पड़ने लगे। इतने में ही ब्रह्म स्वर्गसे लौकांतिक देव आये और उन्होंने प्रभुका स्तवन किया तथा उनके इस कार्य की अनुवेदना की और अपना नियोग पूरा कर वापिस स्वर्गको चले गये। इसके बाद अन्य देवगण के साथ इन्द्र वहां आया और भगवानका अभिषेक कर उनको उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिनाये एवं पालकीमें बैठाकर उन्हे सहस्राम्रवनमें ले गये और वहां ले जाकर एक मनोहर शिलापर प्रभुको विराजमान किया। उस समय प्रभुने पंचमुष्टि केशलोच किया और तमाम वस्त्राभूषणों को उतार कर दिगम्बर हो गये। यह दिन ज्येष्ठ बदी चतुर्थीका था तथा दोपहरका समय था प्रभुके साथ-साथ चक्रायुध आदि हजारों राजाओंने भी आत्म हितके साधन की इच्छासे संयमको धारण किया। प्रभुने छह दिन के उपवासके बाद आहार लेने की प्रतिज्ञा की। दीक्षा लेते ही प्रभुको मनःपर्ययज्ञान हो गया। इसके बाद वे पारणा करने के लिए शिवमन्दिरपुर गए और वहां उनको सुमित्र राजा ने भक्तिभाव सहित सविधि आहार दिया। इस प्रकार प्रभु सोलह वर्ष तक छद्‌मस्थ रहे बाद में उन्हे पोष सुदी १० के दिन देदीप्यमान केवलज्ञान हो गया। उस समय स्वर्गसे आकर इन्द्रने समवशरणकी भव्य रचना की। समवशरणमें बारह सभायें थीं, जो कि भव्यजीवों द्वारा भरपूर थीं। भगवान के चक्रायुध आदि ३६ गणधर थे। इसके बाद सुर असुर द्वारा पूज्य तीनलोकके नाथ प्रभुने आर्यखण्डमें विहार किया और भव्यजीवों को धर्मका उपदेश दिया। जब उनकी आयु एक महीने की शेष रह गई तब वे अनादिनिधन श्री सम्मेशिखर पर्वत पर पहुँचे और वहाँ

जेठ बदी चौदस के दिन प्रभुने सब कर्मोको नष्ट कर सिद्धालय को प्राप्त किया तथा चक्रायुध आदि नौ हजार मुनिगणने भी कर्मसमूह को नाशकर निर्वाण प्राप्त किया। इस समय स्वर्ग से आकर देवों ने सबका निर्वाण महोत्सव बड़ी भक्तिभाव से किया एवं प्रभुका नानाप्रकार से स्तवन किया। बाद वे अपने २ स्थानको चले गये। उस महोत्सवमे जो भी महापुरुष सम्मिलित हुए थे उन्होंने भी प्रभुका नानाप्रकार से स्तवन किया, बाद में वे भी अपने-अपने नगर को चले गये। इस प्रकार कौरव वंशमे आदि जिन श्री शांतिनाथ स्वामी का जन्म हुआ जिनके चरण कमलों मे इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्ती आदि नमस्कार करते हैं। जो गुणो के भण्डार है अतएव गुणी पुरुषो द्वारा पूजने योग्य है। काम शत्रुको समूल नष्ट करने वाले एवं जयश्री के पति है, चक्ररत्न के स्वामी है, धर्म के प्रवर्तक है, तीर्थके कर्ता है। सुन्दर अनुपम शरीर वाले हैं-- कामदेव है। वे शांतिनाथ प्रभु मेरी रक्षा करे।

शांतिनाथ प्रभु शांतिके कर्ता और शांतिके केन्द्र है। मोक्षके दाता और मोक्षमार्ग के उपदेष्टा है। जो महानुभाव मन स्थिर करके शांतिनाथ प्रभुके गुणोंका स्मरण करता है, वह सहजमे शांतिलाभ करता है। उनको मनवांछित सुखकी प्राप्ति होती है, उसके मोहका नाश होता है और उत्तम गुणोकी प्राप्ति होती है। ऐसे उन शांतिनाथ प्रभुके लिये मेरा मन वचन कायसे नमस्कार है। वे मुझे परमशांति देवे तथा मेरे निर्मल मनोमंदिर मे विराजमान होकर मुझे आत्मकल्याणका मार्ग बताये जिससे सुखकी प्राप्ति हो।

अथ षष्ठोध्याय:

उन कुन्थुनाथ स्वामीको मेरा नमस्कार है जो कुन्थु आदि जीवों की परम रक्षा करनेवाले और भव्यात्माओ को मोक्षके मार्ग में लगाने वाले है। जिनका स्मरण मात्र करनेसे कर्म-रज समूल नाश हो जाते है।

शांतिनाथ प्रभुके पश्चात् कुरुवंश मे उनका पुत्र श्रीनारायण नामका राजा हुआ। इसके बाद शांतिवर्द्धन और उनका पुत्र शांतिचन्द्र नामका राजा हुआ। बादमे चन्द्रचिह्न और कुरु राजा भी इसी वंशमे पैदा हुये। इनको आदि देकर और भी बहुतसे राजा इसी वंशमे हुये। इसके बाद सूरसेन नामक एक

प्रतापी राजा हुए जो कि नीतिज्ञ और नीति पूर्वक चलने और चलाने वाले थे। इनके समयमें किसीको भी ईति भीति नहीं सताती थी। इनका प्रताप—सूर्य इतना तेज था कि मारे डरके शत्रुगण पहाड़ गुफामें छिपे रहते थे, जिस तरह कि सूर्य के प्रतापसे तारागण दिनमे छिपे रहते हैं। उस राजा की स्त्रीका नाम श्रीकान्ता था, श्रीकान्ता वास्तवमें श्रीलक्ष्मीके समान कान्तिवाली थी। उसका रूप सौन्दर्य अनुपम था, स्त्रियोचित गुणोंसे परिपूर्ण थी, जिसकी श्री आदि देवियां हमेशा ही सेवा में उपस्थित रहती थीं। सो ठीक ही है, संसार में पुण्य एक अनुपम चीज है। पुण्यके योगसे अलभ्य वस्तु भी लभ्य हो जाती है। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उस रानीके घरके आगनमें इन्द्रका कुबेर जल की तरह रत्नोंकी वृष्टि करता था, जिससे उस समय सारी पृथ्वीमे धन ही धन दिखाई देता था। वहां का रहने वाला कोई भी दरिद्री नहीं था। पृथ्वीका वसुधा नाम वहीं सार्थक होता था।

एक दिन रानी श्रीकांता सुखकी नींद सो रही थी, रातका पिछला प्रहर था। उस समय रानीने सोलह स्वप्नों को देखा। जब प्रभात हुआ तब रानी नाना तरहके वाद्योंकी आवाज सुनकर शय्यासे उठी। इस समय उसके हृदयमें हर्ष प्रकर्ष था। उसने प्रभात समय की क्रियायें की और उन क्रियाओंसे निबट-कर वस्त्राभूषण पहन राजाकी सभामें पहुँची। वह उस समय ऐसी शोभती हुई कि जैसे बिजली से आकाश शोभा को प्राप्त होता है। उसने वहां जाकर नमस्कार किया और आधे सिंहासन पर बैठ गई और उसने शुभ स्वप्नों को जैसा देखा था वैसा राजासे निवेदन किया। उन्हें सुनकर राजाने अवधिज्ञान द्वारा उनका फल जान लिया और क्रमशः उन स्वप्नों के फलोंको रानी से कह दिया, रानी का मुख कमल स्वप्नों का फल सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया जिस तरह कि चन्द्रमा की किरणों के संसर्गसे कुमुदिनी विकसित हो जाती है। इसके बाद रानी ने श्रावण बदी दशमी के दिन सर्वार्थसिद्धि चयकर आये हुए देव देवियों द्वारा शोधित अपने गर्भमें धारण किया। उस समय इन्द्र अन्य देवताओं सहित वहां आया और उसने बड़े उत्साह के साथ गर्भ कल्याणक का उत्सव किया। मुक्ताफलको धारण करने वाली निर्मल सीपकी तरह अथवा

रत्नोंकी खानिको धारण करने वाली वसुन्धरा जैसे शोभा को प्राप्त होती है, ठीक उसी तरह वह रानी भी प्रभु को गर्भमे धारण किए हुए अनुपम शोभाको प्राप्त होती थी। उस समय उसके शरीरकी कांति अत्यन्त तेजयुक्त हो गई थी, किन्तु उसको गर्व रंचमात्र भी नहीं था। सुन्दरी देवांगनाये हमेशा ही उसकी सेवा मे उपस्थित रहती थीं और उसको प्रसन्न करने के लिये अनेक प्रकार के गूढ प्रश्न पूछती थीं कि देवी! संसार मे सार वस्तु क्या है? सुख किसे कहते है? प्राणियोंको सुख दुःख देनेवाला कौन है? माता! इन प्रश्नोंका उत्तर ऐसा बताइए कि जिनका प्रथम अक्षर भले ही भिन्न हो बाकी और अक्षर समान हों। रानी ने उत्तर दिया कि संसार में एक धर्म ही सार है। शर्मको सुख कहते हैं। प्राणियोंको अपन किए हुए शुभ अशुभ कर्मो के द्वारा ही सुख दु:ख मिलता है। कर्मके निमित्तसे ही वे संसारके बन्धन मे बँधते है और जन्म मरण धारण करते है और नाना संकटोको सहन करते है तथा कर्मके ही निमित्त से सांसारिक सुखोको भोगते है। इन प्रश्नों के पश्चात् फिर भी देवियों ने पूछा कि देवी! सूर्य से क्या उत्पन्न होता है? विद्वानोके मुख मे क्या रहता है? गंगा किसे कहते हैं? विदुषी रानी ने इन तीन प्रश्नोंका उत्तर एक ही शब्दमें यो दिया कि भा-गी-रथी अर्थात् सूर्य से भा-आभा उत्पन्न होती है। विद्वानोंके मुंहमे गी-वाणी सरस्वती रहती है। अर्जुन रथीको कहते हैं और गंगा भागी-रथीको कहते है। इसप्रकार माता को प्रसन्न करने के लिए देवियां नानाप्रकार के प्रश्न करती थीं और माता उन प्रश्नोंका सयुक्तिक उत्तर एक शब्द में देती थी। इसके बाद जब नौ मास पूर्ण हो गये तब उस देवी ने वैशाख सुदी प्रति-पदाके दिन पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिस प्रकार कि पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है। प्रभुका जन्म जानकर उसी समय स्वर्ग से इन्द्र आदि देवगण आये और वे हर्षोत्कर्ष के साथ भगवान को सुमेरु पर्वत के शिखर पर ले गये। वहां उन्होंने प्रभुको एक उत्तम रत्नमयी सिंहासन पर विराजमान किया और नाना प्रकारके उत्तम पाठो द्वारा प्रभुका स्तवन किया एवं क्षीरसमुद्रका जल हाथोहाथ लाकर महाअभिषेक किया और स्वर्गीय वस्त्राभूषण पहिनाये तथा उनका 'कुंथुनाथ' नाम रक्खा। इसके बाद वे वापिस हस्तिनागपुर आये और प्रभुको

उनके माता पिता को सौंप दिया। प्रभु क्रम–क्रमसे बढ़ने लगे और उन्होंने कुमार अवस्थाको उल्लंघन कर यौवन–अवस्थामें पैर रक्खा। इस समय प्रभुके शरीरके साथ सभी गुण वृद्धिगत थे। उनके शरीर की ऊंचाई पैंतीस धनुष थी, शरीर की कांति तपाये हुए सोने के समान थी। आयु पांच हजार वर्षकम एक लाख वर्ष की थी। कुछ समय बाद प्रभु का राज्याभिषेक हुआ और वे न्याय नीति पूर्वक प्रजा का पालन करते हुए राज–सुख भोगने लगे। कुछ दिन बाद उनकी आयुधशाला में चक्ररत्नकी उत्पत्ति हुई। जिसको प्राप्तकर उन्होंने छहों खण्डका दिग्विजय किया। एक दिन इन्हें अपने पिछले भवकी याद आ गई और वे संसारसे विरक्त हो गए। यह जान पांचवें स्वर्ग से लौकांतिक देव आए और संसारसे उदासचित्त हो प्रभुकी स्तुतिकर अपने स्थानको चले गये। इसके बाद प्रभुने अपने पुत्र को राजपाट संभला दिया और वे विजया नामकी पालकी में सवार होकर इन्द्र आदि देवगणके साथ सहेतुक बन में गये, वहां उन्होंने पंच-मुष्ठी केशलोंच किया और हजारों राजाओंके साथ साथ संयमको धारण किया। जिस दिन संयम धारण किया उसी दिनसे उन्होने छह दिनके बाद आहार लेने की सदाके लिये प्रतिज्ञा की। हस्तिनागपुर में ही धर्ममित्र नामका एक श्रावक रहता था। उसने भगवानको पारणाके दिन खीरका आहार दिया जिससे उसके घर पर पंचाश्चर्य हुए। प्रभु सहेतुक बन में सोलह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्थामें रहे। बाद तिलक वृक्षके नीचे प्रभुने घातिया कर्मों का नाशकर चैत्र सुदी तीज के शाम के समय केवलज्ञान प्राप्त किया। इस समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेरने भगवानके समोशरण की रचना की और सुर असुर मनुष्य आदि वहां आकर भगवानकी वन्दना स्तुति करने लगे। प्रभुके समोशरण में स्वयम्भू आदि पैंतीस गणधर थे। सात सौ मुनीश्वर और तिरेपन हजार एक सौ शिष्य थे। दो हजार पांच सौ अवधिज्ञान के धारी और तैतीस हजार केवलज्ञानी थे। पांच हजार एकसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे एवं मनःपर्ययज्ञानी तैतीससौ थे तथा उत्तर-वादी मुनि दो हजार पचास थे। सब मिलाकर कुल साठ हजार मुनीश्वर थे और साठ हजार तीन सौ पचास अर्जिकायें थीं, दो लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाये थीं। इसीप्रकार असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे, इस तरह

प्रभु ने संघ सहित पृथ्वीतल पर विहार किया और भव्य जीवों को मोक्ष का रास्ता बतलाया। अन्तमे विहार करते करते वे हजारों मुनियों सहित सम्मेदाचलपर पधारे। वहां प्रभुने एक महिने तक योग निरोध किया और घातिया कर्मों की तरह शेष अघातिया कर्मो को नाशकर वे मोक्ष कान्ता के पति बन गए। भगवानके साथ साथ और भी बहुतसे मुनियोंने मोक्ष लाभ किया। जिस दिन प्रभु मोक्ष पधारे वह दिन बैशाख सुदी पड़वाका था। प्रभुका निर्वाण जान इन्द्र वहां देवताओंके साथ आया और उसने बहुत उत्साहित हो प्रभुका निर्वाण महोत्सव मनाया और उनके गुणोंको स्मरण करते हुए वे सब देवगण स्वर्ग चले गए।

जो पहिले जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह मे वैभवशाली प्रतापी सिंहरथ नाम। राजाओंका मुकुट मणि हुआ और वहां से फिर सर्वार्थसिद्धि नामक विमान मे अहमेंद्र हुआ तथा वहां से चयकर तीन लोकके नाथ कुंथु आदि से जीवों के परम रक्षक कुन्थुनाथ प्रभु हुए, जो कि तीर्थंकर चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवी के धारक हुए। वे प्रभु हमें उत्तम गुण प्रदान करे, हमारी रक्षा करे जो स्वामी तीन लोकके द्वारा पूजनीय हैं कामदेव सरीखे प्रबल योद्धाको जिन्होंने बातकी बातमे पछाड़ दिया, जो पुण्यके भण्डार है अर्थात् जिनका स्मरण करने से पुण्यकी प्राप्ति होती है ऐसे कुन्थुनाथ भगवान हम सबों को सुख देवे, हमारी रक्षा करें।

अथ सप्तम अध्याय

मैं उन अरह जिन को नमस्कार करता हूँ कि जिन्होंने कर्म शत्रुओं पर विजय लाभ किया है, जिनकी इन्द्र, अहमेन्द्र, चक्रवर्ती आदि पूजा करते है। जो सभी गुणों के आश्रय भूत है तथा जो तीर्थंकर और चक्रवर्ती पदवी से विभूषित हैं एवं सारे संसार मे जो सर्वोत्कृष्ट है।

इस प्रकार बहुत से राजा महाराजाओं के हो चुकने के बाद कुरुवंश मे सुन्दर आकृतिको धारण करनेवाला सुदर्शन नामका राजा हुआ। उसके मित्रसेना नामकी भार्या थी। वह सुन्दराकृति और सती थी। श्री आदि देवियां उसकी सेवा करती थी। एक दिन रानीने रात्रिके पिछले प्रहर में सोलह स्वप्न

देखे और फाल्गुन सुदी तीज के दिन गर्भ धारण किया। उस समय अवधिज्ञान के द्वारा भगवान माता के गर्भ में आये हैं जानकर चतुर्णिकाय के देवों ने हर्ष प्रकर्ष के साथ गर्भोत्सव मनाया इसके पश्चात् वे माता पिताको नमस्कार कर स्वर्ग चले गये। यद्यपि गर्भ का भार बहुत था परन्तु मित्रसेनाको वह भार कुछ भी नहीं मालूम देता था। इसके बाद गर्भ के जब नौ मास पूर्ण हुये तब पूर्व दिशा के समान इस रानी ने अगहन सुदी चतुर्दशीके दिन बालक सूर्य को जन्म दिया। प्रभु जन्म से ही तीन ज्ञान–मति, श्रुत और अवधिज्ञान के धारक थे, तीर्थंकर थे। इसी समय स्वर्ग से इन्द्र आदि देवतागण वहां आए और भगवान् को गाजे बाजे के साथ सुमेरु पर्वतपर ले गये। वहां उन्होंने सुवर्ण कलशो द्वारा प्रभुका अभिषेक किया और उनका नाम अर या अरह रक्खा तथा और भी जो जन्म कल्याणककी विधि थी सो सब की। पश्चात् प्रभु क्रम–क्रमसे बढ़ने लगे और कुछ समय बाद कुमार अवस्थाको उल्लंघन कर युवावस्था धारण की। उनका शरीर तीन धनुष ऊँचा था, शरीरकी कान्ति तपाये हुये सोने के समान थी, आयु चौरासी हजार वर्ष की थी। प्रभुका एक हजार कन्याओं के साथ विवाह हुआ था। इसके कुछ समय बाद वे राजा हुए। देवतागण हमेशा ही उनको आ–आकर नमस्कार करते थे। कुछ समय बाद प्रभुकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, जिसके द्वारा उन्होंने बत्तीस हजार राजाओं को अपने अधीन किया, उन्हें नम्रीभूत किया। छहों खण्डोंकी दिग्विजय की। ये स्वामी चक्रवर्ती, पुण्यात्मा और तीर्थंकर थे। उनके यहां अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी और चौरासी लाख ही रथ थे। वे बत्तीस हजार देशों के अधिपति थे, छियानवे हजार स्त्रियो के भोक्ता थे और बहत्तर हजार पुरियों के रक्षक थे। एवं निन्यानवें हजार द्रोण और अड़तालीस हजार पत्तनों के स्वामी थे। उन प्रभु के यहां सोलह हजार खेट और छियानवे हजार गांव थे। वे बत्तीस हजार नाटको को देखते थे। उनके यहां एक करोड़ थालियां, तीन करोड़ गायें और एक करोड़ हल थे एवं सात सौ कुक्षिवास और अठहत्तरसौ अटवी–दुर्ग थे। उन प्रभुको अठारह हजार म्लेच्छ राजा नमस्कार करते थे। उनके यहां नौ निधियां और चौदह रत्न थे। उनके चरणोकी रक्षा करनेवाली उनके यहां दो

खड़ाऊं थीं। जो कि विष विकारको दूर करती थीं। प्रभुके यहां अभेद नामका कवच और अजितेजय नामका रथ था, वज्रकांड नामका धनुष और अमोघ नामका शर था। उनके यहां वज्रतुण्डा नामकी शक्ति और सिहाटक नामका भाला था। सुनन्दा नामकी तलवार और भूतमुख नामकी ढाल थी। सुदर्शन नामका चक्र और चंडवेग नामका दंड था। उनके यहां वज्रमयी चर्मरत्न, चिंतामणि और कांकिणी नामके रत्न थे, पवनंजय नामका घोड़ा और विजय पर्वत नामका हाथी था उनके यहां मनको आनन्द देनेवाली बारह भेरियां सदा बजती रहती थीं। बारह विजय घोष नामके नगाड़े थे। इस प्रकार चक्रवर्तीकी अतुल विभूति प्राप्तकर प्रभु अपने समयको व्यतीतकर रहे थे कि इतनेमे उन्होने एक समय शरदकालीन मेघ बद्दलोको देखा। वे बद्दल देखते देखते विघटित हो गये। प्रभु इस निमित्त को लेकर संसार शरीर और भोगों से विरक्त हो गए। उन्होंने अपने पुत्र अरविन्दकुमार को बुलाया और उसे सारा राजपाट सौंप दिया। उसीसमय अपना नियोग पूरा करनेके लिए ब्रह्मलोकसे लौकांतिक-देव आये, प्रभुके इस कार्यकी प्रशंसा की तथा आगे के मार्ग का निर्देश किया पश्चात् वे स्वर्गलोक चले गये। इसके बाद प्रभु वैजयंती नामकी सुन्दर पालकी में सवार होकर देवताओं और राजा महाराजाओं के साथ सहेतुक बनमे गए। वहां उन्होंने अगहन सुदी दसमीके दिन हजारों राजाओं सहित दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली तथा छह उपवासों के बाद आहार लेने की प्रतिज्ञा की। चार ज्ञानके धारी प्रभु ने पारणा के दिन चक्रपुर के महाराजा अपराजित के यहां आहार ग्रहण किया। उस समय देवताओ ने राजा अपराजित को धन्य-धन्य कहा तथा उसके घर पंचाश्चर्य हुए, प्रभु भोजनकर विहार कर गये। इस प्रकार प्रभुके सोलह वर्ष छद्मस्थ अवस्थामे व्यतीत हुए। बाद आम्र वृक्ष के नीचे बैठे हुये प्रभुने प्रचंड घातिया कर्मोको नाश कर कार्तिक सुदी बारस के दिन षष्ठोपवासके प्रभावसे केवलज्ञानको प्राप्त किया, जिसकी वजहसे उन्होंने तीनों लोकोंको दर्पणकी तरह जान लिया। उस वक्त सुर असुर आदि सभी देवता आये और उन्होने भगवानके पंचम ज्ञानकी भक्तिभाव से पूजा की और भव्य समोशरणकी रचना की। भगवान अरहनाथने आर्यखण्डमें विहार किया।

जब आयुका एक महिना शेष रह गया भगवान श्री सम्मेदशिखरजी पधारे और वहां उन्होंने योग निरोध कर चैत्र बदी अमावसके दिन हजारों मुनियों सहित मोक्ष प्राप्त किया। उस समय देवतागण वहां आये और उन्होंने नाना प्रकारसे प्रभुका स्तवन किया एवं सब विकल्प जालोंको छोड़कर भगवान का बहुत भक्तिभावसे निर्वाण महोत्सव मनाया, जिससे उनका आत्मा भी कर्ममलसे प्रक्षालित हो गया पश्चात् वे अपने २ स्थान को चले गये।

उन अरह जिन भगवानकी जय हो जो कि कर्मरूपी बैरियोंके समूह को जीतनेवाले है, जिनके चरण-कमलोंकी इन्द्र नरेन्द्र अहमेद्र के समूह पूजा करते हुए अपने को धन्य समझते है। जो सब विद्याओंके अधिपति हैं, भव्य जीवों को मोक्षका रास्ता बताने वाले हैं। जो महान् आत्मा पहिले धनपति नामके राजा थे, बाद मुनियों मे श्रेष्ठ मुनीश्वर हुए और संयम पालन करने के प्रभाव से जिन्होंने संजयंत नामके विमानमें अहमेंद्र पद प्राप्त किया। वहां से चयकर जो इसी भरतक्षेत्रमे धर्मात्माओंके मुकुटमणि तीर्थके प्रवर्तक तीर्थकर हुए, चक्रवर्ती और कामदेव हुए ऐसे वे तीन पदवीके धारक अरह जिन हमारी रक्षा करें, हमें भी कर्मसमूहसे रहित करे।

अथ अष्टम अध्याय

जो जगतका स्वामी, मुनियोंमें नायक और श्रेष्ठ ज्ञानको देनेवाला है एवं जिसके स्मरण मात्रसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ऐसे प्रभुको हमारा नमस्कार हो। वे मुझे सुमति प्रदान करें।

अरहनाथ प्रभुके पश्चात् उनका पुत्र अरविंद राजा हुआ और उनके बाद शूर, पदमरथ और रथी नामके राजा राज-पाटके भोक्ता हुए पश्चात् रथीका पुत्र मेघरथ राजा हुआ। उसकी भार्याका नाम पद्मावती था। पद्मावती के गर्भसे विष्णु और पदमरथ नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों ही पुत्र तेजस्वी और महाबली थे। एक दिन मेघरथ राजा किसी निमित्तको पाकर अपने पुत्र विष्णु सहित दिगम्बर हो गया। उसके बाद पद्मरथ हस्तिनागपुरके राजा हुए। अब यहां पर सुखको देनेवाली दूसरी कथा कहते है।

इसी समय अवन्ती देशमें उज्जैनी नामकी अत्यन्त शोभायुक्त नगरी थी।

उसका राजा श्रीवर्मा था और उसके चार बुद्धिमान् मंत्री थे। जिनके नाम बलि, वृहस्पति, प्रहलाद और नमुचि थे। ये चारों ही मंत्री वाद-विवाद करनेमे बहुत ही दक्ष थे, एक दिन उज्जैनीमें ससंघ श्री १०८ अकंपन आचार्य विहार करते हुए आए और वे सब एक बन मे आकर ठहर गए। आचार्य अकंपन के संघ मे सातसौ मुनि और थे। अवधिज्ञान से भविष्यकी बातको जानने वाले आचार्य महाराज ने उसीवक्त सब मुनियोंको यह कह दिया कि तुम कोई भी वाद-विवाद नहीं करना, मौन होकर बैठो इसी मे संघकी कुशल है। इधर मुनियों का आगमन सुन नगर के सब नर-नारी उनकी वन्दना पूजा करने के लिये बनमे गए। उन्हें जाते देखकर राजा ने पूछा कि आज क्या कारण है कि नगर के सभी स्त्री-पुरुष पूजाकी सामग्री ले-लेकर उच्छव सहित चले जा रहे है? क्या ये सब कोई तीर्थकी वन्दना करनेके लिये जा रहे हैं? हम देखते है कि आज हमारी नगरी मे बड़ा उत्सव हो रहा है? राजा की यह बात सुन कर मंत्रियो ने कहा कि ये सब लोग उद्यानकी तरफ जा रहे हैं, वहां एक दिगंबर मुनीश्वरों का संघ आया हुआ है। यह बात सुन राजाके हृदयमे भी भक्ति का संचार होने लगा और वह उसी समय मुनियों की बन्दना करने के लिए चल पड़ा, साथ मे उसके बलि आदि मंत्री भी गए। राजाने बन मे पहुँचकर मुनियों की वन्दना की परन्तु बदलेमे मुनियों ने राजाको आशीर्वाद नहीं दिया और चुपचाप बैठे रहे। यह देख राजा से मंत्रियों ने कहा कि राजन्! ये सब निरे मूर्ख है, बैलके समान हैं इसलिए चुपचाप बैठे है। इसके पश्चात् वे सब वहांसे राजाके साथ साथ चले आये। भाग्यवश उन्हे रास्तेमे आते हुए एक श्रुतसागर नामके मुनि सामने दीख पड़े। उन्हे देखकर मंत्रिथोंने हास्यरूप मे राजासे कहा कि राजन्! देखो यह भी एक युवा बैल पेट भरकर आ रहा है। मुनि श्रुत-सागरको अपने गुरु की आज्ञा मालूम नहीं थी इसलिए उन्होंने मंत्रियोके साथमे बहुत वाद-विवाद किया और उन्हें बादमे पराजित कर दिया, जिससे वे बहुत लज्जित हुए और मनमे कषाय भाव लाकर उनको कष्ट पहुँचानेका दृढ़ संकल्प कर लिया। इधर मुनि श्रुतसागर वहां से चलकर अपने संघमे पहुँचे और वहां पहुँचकर उन्होने सारा समाचार जैसा का तैसा गुरु महाराज को सुना दिया।

उत्तर में गुरुवर्यने कहा कि तुमने यह काम अच्छा नहीं किया इसलिए तुम यहां से जाओ और जिस स्थान पर वाद–विवाद किया है वहां जाकर रात बिताओ, नहीं तो संघ को भारी विपत्तिमें पड़ना पड़ेगा।

गुरु की आज्ञा मान श्रुतसागर उसी स्थान पर गये, जहां कि उन्होंने वाद–विवाद किया था। वहां पहुँचकर वे ध्यान में तन्मय हो गये। इधर रात होने पर ये दुष्ट मंत्री उन मुनियोंको मारने के लिए चले। वे रास्ते में जा ही रहे थे कि उनको वे ही मुनि वाद–विवाद स्थान पर दीख पड़े, दीखते ही उन दुष्टों का क्रोध उमड़ आया और वे आपसमें कहने लगे कि जिसने हमारा मान भंग किया है वह यही है इसे ही मारना चाहिए। ऐसा कह उन्होंने मुनिराजको मारने के लिए हथियार उठाया त्यों ही वहां के पुरदेवता ने उन्हे कीलित कर दिया अर्थात् उनके हथियार ज्यों के त्यों ऊपर उठे रहे, तब वे बहुत घबराये और बहुत व्याकुलित हुए। आश्चर्य की बात उस समय हुई कि उन्होंने मुनिराजको मारने के लिये जो नंगी तलवार उठाई थी उनसे मुनिके ऊपर तोरण जैसी शोभा हो गई। प्रातःकाल हुआ पुरवासी लोग जागे। राजाको भी ये सब समाचार ज्ञात हुए। राजाको वहां आकर दुष्कृत्यके कारण कीलित इन मंत्रियों को देखकर बहुत दुःख हुआ। पुरवासी लोग उनको धिक्कार के शब्द कहने लगे और उनकी इस दुष्कृतिकी निन्दा करने लगे। राजा ने उन दुष्ट मंत्रियों का सिर मुंडवाकर उन्हें गधे पर चढ़ाकर नगरकी परिक्रमा लगाकर देश से बाहर निकलवा दिया। वहांसे वे हस्तिनागपुर के राजा पद्मरथ के यहां गये और वहां उन्होने नम्रताका व्यवहार किया, जिससे राजाने प्रसन्न होकर उन्हे अपना मंत्री बना लिया और हर प्रकार से उनकी रक्षा की। इसके पश्चात् कुम्भनगरका राजा हरिबल नित्य ही पद्मरथके राज्य में उपद्रव किया करता था। पद्मरथको यह बात सह्य नहीं थी किन्तु वह इतना बलिष्ठ था कि पद्मरथ उसको युद्धमे जीत नहीं सकता था, इसलिए वह दिन रात चिंता में मग्न रहता था, जिसकी वजह से उसका शरीर भी बहुत ही दुर्बल हो गया था सो ठीक ही है संसार में चिंता एक ऐसी चीज है जो आदमी को एकदम नष्ट कर देती है। न तकारों का कहना है कि चिता और चिंता इन दोनों शब्दों में

सिर्फ अनुस्वारका ही फर्क है किन्तु दोनों के कार्य में जमीन आसमान का फर्क है। चिता तो निर्जीव-मुर्दा मनुष्यको जलाती है किन्तु चिंता तो सजीव को जलाती है। राजा पद्मरथ का यह हाल देखकर बलि मंत्रीने पूछा कि राजन्! आपके यहां हम सरीखे मंत्री रहते हुए किस बातका दुःख है जिससे कि आप दिन प्रतिदिन चिंतातुर होते जाते हैं। कृपाकर अपना अन्तरंगका दुःख बतलाइये। राजा मंत्री के वचन सुनकर बोला कि मुझको हरिबल राजा की बहुत चिंता है, वह हमेशा ही हमारे राज्य मे उपद्रव किया करता है। राजा की यह बात सुनकर बलि मंत्री ने अपने साथ बहुतसी सेना लेकर हरिबल-सिंहबल राजा पर चढ़ाई करदी। राजा सिंहबलका गढ़ बहुत ऊँचा था किन्तु बुद्धिमान बलिने उसको तत्काल ही तोड़ दिया और युक्तियों के द्वारा सिंहबल को पकड़ लिया और उसको बांधकर राजा पद्मरथके सामने रख दिया। राजा बलि मंत्रीकी इस कृति से बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने प्रसन्न होकर चारोंसे कहा कि तुम्हें जो कुछ मांगना हो सो मांग सकते हो। इसपर बलि मंत्रीने कहा कि महाराज! हमारा यह वर अभी श्रीमान् के भण्डार मे जमा रहे। जब हमको आवश्यकता होगी तब हम आपसे निवेदन करेगे। राजा बलिकी यह बात सुन कर चुप हो गया। उसके बाद उज्जैनी से विहार करते करते अकम्पन आचार्य सातसौ मुनियों के संघ सहित हस्तिनागपुर मे आये और योग की सिद्धिके लिए उन्होंने वर्षा ऋतुमे चार महिने तक वहीं रहने का संकल्प कर लिया तथा सब योगियोंको यह आज्ञा करदी कि कोई भी योगी-मुनि वादियो से किसी प्रकार का वाद-विवाद न करे, नहीं तो संघ को बड़ी भारी विपत्ति मे पड़ जाना पड़ेगा। मुनियों के आगमन की खबर जब पुरवासियों को लगी तो वे पूजाकी सामग्री ले-लेकर भक्ति-भावसे उनकी वन्दनाके लिये जहाँ संघ ठहरा था वहाँ जाने लगे। यह हाल देख बलि मंत्रीके अन्तरंग में पूर्व वैरकी याद कर क्रोध उमड़ आया तब वह राजा के पास गया और उसने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार अपना वर मांगा कि मुझे सात दिन के लिये अपना राज्य दीजिये। राजा तो वचनबद्ध था ही इसलिये उसने उसे सात दिनके लिये राजा बना दिया और आप रणवास के भीतर चला गया। बलि राज्य पाकर कुबेर की तरह बहुत

धन खर्च करने लगा और जहां सातसौ मुनियों सहित अकम्पन आचार्य समाधि लगाये हुए विराजमान थे उस जगहको उसने घेर लिया और वहां उसने नरमेघ यज्ञके नामसे एक महायज्ञ करना शुरू कर दिया जिससे कि साधुओं को बड़ा भारी संताप होने लगा। उस महायज्ञ में बहुत से जीवादिक होमे गये जिससे भारी दुर्गंधयुक्त प्राणापहारी धूआँ वहां व्याप्त हो गया। मुनीश्वरों ने इसको अपने ऊपर बड़ा भारी उपसर्ग आया जान समताभाव से सहन किया। प्राणों की आशा छोड़ मौनावलम्बन हो आत्मध्यान में और दृढ़ हो गये। धन्य है जैनेश्वरी दीक्षा कि जहां प्राणोंकी कुछ भी परवाह नहीं की जाती किन्तु प्राणों के जाने का अवसर आता है तो और दृढ़ता के साथ ध्यान में संलग्न हो जाना होता है।

मिथिलापुरी नगरीके निकट बनमें श्रुतसागर चंद्राचार्य नामके आचार्य विराजमान थे उन्होंने अर्ध रात्रि के समय आकाशमें श्रवण नक्षत्रको कंपायमान होता हुआ देखा। उसको देखकर अवधिज्ञान से उन्होंने कहा कि खेद है कि मुनिगणों के ऊपर भारी दुःख आन पड़ा है। आचार्य महाराज के पासमें ही पुष्पदन्त नामक क्षुल्लक बैठे हुए थे, उन्होंने जब आचार्य मुखसे दुःख भरे वचन सुने तो कहने लगे कि स्वामिन्! किस स्थानपर किसको कष्ट हो रहा है। आचार्य महाराज ने मुनि उपसर्गका सारा वृत्तांत क्षुल्लकजी को कह दिया। पश्चात् क्षुल्लकजीने कहा कि महाराज! मुनियोंका वह उपसर्ग किस प्रकार दूर हो सकता है? उत्तरमे आचार्य महाराज ने अवधिज्ञान से जानकर यह कहा कि धरणीभूषण गिरिपर महामुनि विष्णुकुमार तपस्या कर रहे है, उन्हें तपस्या के प्रभावसे विक्रियाऋद्धि प्राप्त हो गई है किंतु वे मुनि तपश्चर्या में इतनें संलग्न है कि उन्हें इस बात का पता भी नहीं है कि मुझे विक्रियाऋद्धि प्राप्त हो गई है। वे विष्णुकुमार मुनि ही इस उपसर्ग को दूर करने में समर्थ हो सकते हैं। आचार्य महाराजकी यह बात सुनकर क्षुल्लकजी विष्णुकुमार मुनिके पास गये और उन्होने चरण स्पर्शकर सब समाचार कह दिया। महामुनि विष्णुकुमारने परीक्षा करने के लिए अपनी भुजा लम्बी करी तो वह इतनी लम्बी होती चली गई कि समुद्र तक पहुँच गई। तब विष्णुकुमार ने विक्रिया होने का निश्चय

किया। पश्चात् ये आकाश मार्गसे चलकर बहुत शीघ्र हस्तिनागपुर पहुँच गये और वहां पहुँचकर उन्होंने राजा पद्मरथ से कहा कि राजन्! तुमन मुनियोके ऊपर यह भयानक उपसर्ग क्यों कर रक्खा है? तुमने उत्तम कुलमे जन्म धारण किया है फिर तुम्हारी यह दुर्मति कैसे? उत्तर मे राजा ने विनम्र शब्दों मे कहा कि स्वामिन्! यह कार्य मेरा नहीं है। मैने सात दिनके लिये बलिको राज-पाट दे दिया है, मै उससे वचनबद्ध हो चुका हूँ, यह दुष्कृत्य बलिके द्वारा किया जा रहा है। मै प्रतिज्ञाबद्ध होने से कुछ भी नहीं कर सकता हूँ, हाँ यदि आप रोकना चाहें तो भले रोक सकते है। उत्तर मे विष्णुकुमार ने कहा कि राजन्! मै नहीं समझता कि तुम मे यह खलता कहां से आ गई कि अपने पूज्य पुरुषों पर प्राणापहारी उपसर्ग होते हुए भी तुम उसको नहीं रोकते हो? यह क्या तुम्हारा उचित कार्य है? इतनी आपस में बात चीत हो जाने के बाद विष्णुकुमार ने अपना बामनका रूप बनाया और वे झटसे यज्ञ भूमिमे पहुँच गए, जहां कि बलि राजा किमिच्छक दान (जिसको जो चाहे सो लो) दे रहा था वहां पहुंच कर उस बामनने अपने को ब्राह्मण वर्ण मे पैदा हुआ बतलाया और कहा कि मैं वेदोका प्रकांड विद्वान् हूं, द्विज हूं और आप दान देने वाले दाता हैं। इसलिये मै आपसे कुछ दान लेने की इच्छा करता हूं। बामनकी यह बात सुनकर बलि राजा बोला कि आपको जो चाहिये सो मांग लीजिए, मै आपको अवश्य दूंगा। उसके इस प्रकार कहने पर बामनने कहा कि मुझे सिर्फ तीन पैंड-कदम पृथ्वी चाहिए। यह बात सुनकर वहां पर बैठे हुए महानुभावो ने कहा कि विप्र तुमने कुछ नहीं मांगा। यह बलि राजा कुबेरकी तरह इस समय दान कर रहा है फिर तुम्हारी यह थोड़ी-सी याचना कुछ महत्व नहीं रखती। इसके उत्तरमे फिर उस बामनने कहा कि राजन्! अब बहुत से क्या लाभ? अब आप दूसरा संकल्प छोड़ कर मुझे तीन पैड जमीन देनेका संकल्प कीजिये। बलिने तथास्तु कहकर तथा हाथमे जल लेकर इस संकल्पको स्वीकार किया। बस फिर क्या था उन्होंने विक्रियाऋद्धिके द्वारा अपना बड़ा भारी रूप बना लिया और पांव फैलाकर एक पांव तो सुमेरु पर्वतके शिखर पर रखा और दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर रक्खा अब तीसरा पैर रखनेके लिए जगह नहीं

रही तो बलिके पीठ पर पैर रख दिया और उसको बांध लिया। यह देख सब मंत्रीवहां इकट्ठे हुए और विष्णुकुमार मुनिकी शरणमें जा कर विनम्र प्रार्थना करने लगे। इधर आकाशसे देववाणी होने लगी और मुनिराज पर पुष्पवृष्टि होने लगी। उस समय सुर असुर और नारद आदि सभी वीणा ले-लेकर संगीत द्वारा उनका यशोगान करने लगे। वे कहने लगे कि हे करुणासागर मुनिराज! अब तुम अपना पांव खींच लो। उनमें अमर जातिके देवोंने वीणा बजाकर मुनिराज को प्रसन्न किया उन्होंने संतुष्ट होकर विद्याधर राजाओं को घोषा, सुघोषा, महाघोषा और घोषवती आदि वीणायें दीं। इसप्रकार बलिको पराजय करके विष्णुकुमार मुनिने मुनि उपसर्ग को निवारण कर दिया। पश्चात् बलि को अपने इस कृत्यपर बहुत ही दुःख हुआ और उसने अपने मस्तकको मुनियोंके चरणोंमे रखकर अपने अपराधकी पुनः पुनः क्षमा याचना की पश्चात् उन चारों ने श्रावकके व्रत धारण कर लिये। इसके बाद वे मुनिराज संसारमे जैन धर्मकी प्रभावना करके एवं लोकके सामने वात्सल्य अंगका परम दृष्टान्त उपस्थित करके अपने स्थान को चले गये। इस प्रकार पुरवासियोंने साक्षात् धर्मका प्रभाव देखकर हृदय में धर्मको धारण किया।

पद्मरथ राजाके बाद क्रमसे पद्मनाभ, महापद्म, सुपद्म, कीर्ति, सुकीर्ति, वसुकीर्ति, वासुकी आदि बहुत से राजा हुये। इनके बाद शांतनु नामका राजा हुआ, जो कि बहुत शक्तिशाली और कुरुवंशमें अगुआ था एवं पृथ्वीको सुखी करने वाला था और गुणी पुरुषोंमें अग्रणी था। उसकी भार्याका नाम सबकी था जो कि सीताके समान पतिव्रता थी। उसकी गर्भसे शांतनु राजाके पारासर नामका एक पुत्ररत्न पैदा हुआ, जो कि अत्यन्त बली था।

रत्नपुरमे जन्हु नामक एक विद्याधर राजा रहता था, उसके गंगा नामकी एक पुत्री थी। वह बहुत पवित्र शरीरवाली और गुणवती थी। एक समय जन्हु ने सत्यवाणी नामक किसी निमित्तज्ञानीसे उसके विवाह के सम्बन्ध मे पूछा था तदनुसार उसने आठवीं कन्या गंगाका विवाह पारासर के साथ कर दिया। पारासर गंगा जैसी गुणवती एवं सुन्दरी स्त्रीको पाकर बहुत ही संतुष्ट हुआ और वह उसके साथ सुन्दर महलों में मनचाही क्रीड़ा करने लगा। कुछ समय

बाद उसके एक पुत्र–रत्न पैदा हुआ, जिसका नाम गांगेय रखा गया। बालक गांगेय बृहस्पति के समान बुद्धिमान था। धीरे-धीरे वह बाल चन्द्र–दोजके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा तथा क्रम–क्रमसे सब विद्याओंमे पंडित हो गया। उसने बाण विद्यामें विशेषनिपुणता प्राप्तकी जिससे कि वह चाहे जिस निशानको बातकी बातमे छेद डालता था। एक समय शुभकर्म के संयोगसे उसने चारण ऋद्धिधारी मुनियोंसे धर्मका उपदेश सुना और यथाशक्ति उसको ग्रहण किया। इसके बाद पारासर राजाने अपने पुत्रको बुद्धिमान जान उसे युवराज बना दिया सो ठीक ही है कि योग्य पुत्रको पिता और योग्य शिष्यको गुरु अपनी सारी सम्पत्ति दे डालते है तो युवराजपद देना तो क्या बात है ? एक समय पारासर यमुना नदी के किनारे क्रीड़ा करने के लिए गया था कि वहां उसने एक नौका मे बैठी हुई सुन्दर नेत्रवाली रूप और गुण की खान एक मनोहर कन्या को देखा। बस उसको देखते ही वह उसके रूप और लावण्यपर एकदम मुग्ध हो गया और वह उसके पास जाकर पूछने लगा कि हे सुभगे ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो और तुम्हारी क्या जाति है ? उत्तर मे कन्याने कहा कि राजन् ! मै यहीं गंगा-तटपर रहनेवाले नौका चलानेवाले मल्लाहो के स्वामी की पुत्री हूँ, मेरा नाम गुणवती है। मैं अपने पिताकी आज्ञासे यहां नौका चलाया करती हूँ क्योंकि जो श्रेष्ठकुलमे पैदा हुई कन्या है वे कभी भी अपने माता–पिताके वचनों का उल्लंघन नहीं करती है। कन्याकी यह बात सुनकर वह राजा कन्या की इच्छा से उसी समय उसके पिताके पास गया। धीवरने पारासरको आते देख कर उसका बहुत स्वागत किया, जिससे राजाके मनमे बहुत प्रसन्नता हुई। पश्चात् राजाने अपना मनोरथ धीवरको कह सुनाया कि मैं तुम्हारी गुणवती पुत्रीको अपनी भार्या बनाना चाहता हूँ, यह बात सुन उस धीवरने कहा कि राजन् ! मेरा इस कन्याको तुम्हे देनेके लिए उत्साह नहीं होता है क्योकि तुम्हारे यहां राज–पाटको सम्हालनेके लिये पराक्रमी बुद्धिशाली गांगेय पुत्र मौजूद है तब आपही बतलाइये कि मेरी कन्यासे जो सन्तान होगी वह गांगेयके होते हुए किस तरह राज–पाटकी अधिकारी होगी ? इसलिए आप इस प्रसंगको नहीं छेड़िये। धीवरकी निराशा-भरी बात को सुनकर राजाका मुखकमल मुरझा गया और वह हतप्रभ होकर

अपने घर चला गया। अपने पिता का मलिन मुख देकर गांगेय के हृदयमें बहुत चिंता पैदा हो गई और वह विचारने लगा कि क्या मुझसे इनका कुछ अविनय हुआ है या किसी तरहसे इनकी मुझसे या किसी अन्यके द्वारा आज्ञा भंगकी गई है जिससे कि इनका मुख आज मलिन दीख पड़ता है। गांगेयने इस विषय पर बहुत ऊहापोह किया किन्तु वह निश्चय तक नहीं पहुँच सका तो एकांतमें मंत्री से पूछा कि आज महाराज मलिनमुख क्यों दीख रहे हैं ? इसके उत्तर में मंत्रीने यमुना नदीके तटका सारा किस्सा गांगेयको सुना दिया। गांगेय उस वक्त उस धीवरके पास गया और उससे कहने लगा कि तुमने जो राजाका अनादर किया सो ठीक नहीं किया है उत्तरमें धीवरने कहा कि कुमार ! इसका कारण यह है कि जो सौतका पुत्र होते भी अपनी कन्याको देता है, वह पुरुष अपने प्राणोंसे प्यारी कन्या को अंधेरे कुएँमें ढकेल देता है। कुमार ! तुम्हारे पिता के तुम जैसे पराक्रमी बुद्धिमान सौत–पुत्रके मौजूद होते हुए फिर तुम्हीं बतलाओ कि मेरी कन्यासे जो सन्तान होगी वह कैसे सुखी हो सकती है ? क्या कभी बनमें गर्जना करते हुये सिंहके रहने पर मृगगण सुखी रह सकते है ? कदापि नहीं। कुमार ! मेरी लड़कीसे जो भावी संतान होगी वह कदापि राज–पाटको नहीं पा सकेगी। प्रत्युत उसको आपत्तिमें ही फँस जाना पड़ेगा। क्योंकि राजलक्ष्मी तुम्हे छोड़कर दूसरे के पास जा नहीं सकती जैसे कि समुद्रको छोड़कर नदियां तालाब में गिरना पसंद नहीं करती है। धीवर की इस बातको सुनकर गांगेय ने प्रेम भरे शब्दों में अपने भावी मातामहको यों समझाया कि आपने जो कल्पना की है वह मात्र आपका भ्रम है। आप यह निश्चय समझिये कि हमारे कुरुवंश का अन्य वंशोंसे जुदा ही स्वभाव है। सबोंको एकसा मत समझो। क्या कभी हंस और बगुलेका भी एक स्वभाव हुआ है ? दूसरी बात यह है कि मैं आपकी पुत्री गुणवती सती को अपनी मातासे भी अधिक आदरकी दृष्टिसे देखूंगा। मै आपके सामने हाथ उठाकर यह प्रतिज्ञा करता हूं कि गुणवतीकी भावी सन्तान ही राज–पाट की भोक्ता होगी, मै नहीं। इसके उत्तरमें धीवरने कहा कि कुमार ! आपके जो भावी सन्तान होगी वह कैसे दूसरेके राज–काजको देख सकेगी ? इससे भी मेरी कन्या की सन्तान निष्कंटक राज्यके सुखको नहीं भोग सकती है। धीवरकी यह

बात सुन गांगेय उसके मनोगत अभिप्राय को ताड़ गया और कहने लगा कि तुम्हारी इस चिन्ताको भी मै अभी दूर किये देता हूं। यह कह उसने कहा कि यहां तुम और आकाशमें सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर वगैरह सभी अच्छी तरहसे सुनो कि मै आज से जन्म पर्यतके लिये ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा करता हूं अर्थात् आजीवन ब्रह्मचारी रहूंगा। भूचर, खेचर और जिनदेवकी साक्षी पूर्वक मैं यह व्रत ग्रहण करता हूं। यह सब बातचीत हो जानेके बाद धीवर ने अपनी कन्याको बुलाया और अपनी गोदमे बैठा लिया। पश्चात् बुद्धिमान गांगेयकी उसने बहुत प्रशंसा की और कहा कि तुमने अपने पिताके मनोरथ सिद्ध करनेके लिये जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया है इससे ज्ञात होता है कि तुम गुणवान् पितृभक्त और आदर्श पुत्ररत्न हो। मै तुमसे इस प्रसंगमें एक कहानी कहना चाहता हूं उसको आप स्थिर मन होकर सुनेंगे।

एक समय मैं विश्रामके निमित्त यमुना नदी के किनारे गया हुआ था। वहां मैंने एक अशोक वृक्ष के नीचे सुन्दर रूपवाली उसी समय में पैदा हुई एक कन्याको पड़ी हुई देखा। मेरे कोई सन्तान नहीं थी, मै दिन रात ही सन्तानकी चिन्तामे लगा रहता था। मै उस कन्याको कुछ आश्चर्य के साथ लेनेमे प्रवृत्त हुआ, इतने में ऊपरसे आकाशवाणी हुई जिसे मैंने अपने कानोंसे सुनी। आकाशवाणी में कहा कि रत्नपुरके राजा रत्नांगदकी रानी रत्नवती के गर्भसे इस कन्याका जन्म हुआ है। इसके पिता रत्नांगद के बैरी किसी विद्याधर ने इसे यहां लाकर डाल दिया है। यह सुन मैंने उस कन्या को निःशंक भावस प्रसन्नता पूर्वक गोदमे उठा लिया और लाकर अपनी प्रियाको दे दिया। उस कन्या का नाम मैंने गुणवती रक्खा। धीरे धीरे पलते हुए वह कन्या मेरे घर पर सयानी हो गई, यह वही मेरी पुत्री है सो आप मेरी इस पुत्री को अपने पिता शांतनुके लिये ग्रहण करो। धीवर की यह बात सुनकर गांगेय उस कन्या को साथ मे ले वापिस अपने नगर हस्तिनापुरको आया और वहां आकर बहुत विनयके साथ उसका विवाह अपने पिता के साथ विधिपूर्वक करा दिया। राजा शांतनु गुणवती जैसी यथा नाम तथा गुणवाली पत्नीको पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए। जिस प्रकार कि एक दरिद्री पुरुष निधिको पाकर फूला नहीं समाता ठीक

उनकी अवस्था भी उस समय वैसी ही हो गई। गुणवती कन्या को गंधिका और योजन गंधिकाके नामसे भी कहा जाता था। कुछ समयके बाद उसके गर्भसे अच्छी आदतोंका अभ्यासी अव्यसनी सुन्दर एक व्यास नामका पुत्र हुआ। वह पापों को नष्ट करनेवाला, धर्मात्मा, सबोंमे श्रेष्ठ था। उसकी भामिनीका नाम सुभद्रा था। सुभद्रा वास्तवमें बहुत भद्र परिणामी थी। उसके गर्भसे धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर ये तीन क्रमसे पुत्र-रत्न हुये। ये तीनों ही अत्यन्त सुन्दर गुणशाली, बली और चतुर थे। इसप्रकार तीनों पुत्रों सहित व्यास हस्तिनापुरमें राज्य करता हुआ अपने समयको व्यतीत करने लगा। यहां पर गौतम गणधर श्रेणिक राजाको संबोधन करके कहते है कि हे श्रेणिक! अब मै तुझे हरिवंशकी उत्पत्ति संक्षेपमें कहता हूं जिसप्रकार कि भगवान ने कहा है सो तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

भरतक्षेत्रके हरिवर्ष नामक देशमें एक भोगपुर नामका नगर है, वह बहुत ही शोभायुक्त और भोगोपभोगकी सामग्रीसे परिपूर्ण है। वहांपर आदि-नाथ प्रभु द्वारा स्थापित हरिवंशका प्रभंजन नामका राजा राज्य करता था। उसकी भार्या का नाम मृकंडु था। वह अत्यन्त रूप-लावण्यवती थी। जैसे इन्द्राणी शोभती है ठीक उसीप्रकार राजा प्रभंजनके वह मृकंडु शोभा पाती थी।

कौशाम्बी नगरीमें एक सेठ रहता था जिसका कि नाम सुमुख था। वह सुन्दराकृति और धनी था। किसी समय वह लोभमें फँस वीरदत्तकी स्त्री बनमाला को हरकर लेगया। एक समय उसने मुनि को आहारदान दिया। जिसके प्रभाव से वह मरकर प्रभंजन राजाके यहाँ सिंहकेतु नाम का पुत्र रत्न हुआ। वह अपने तेजसे सूर्यके तेजको भी जीतता था।

उसी हरिवर्ष देशके शीलनगरमें वज्रघोष नामका राजा रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुप्रभा था। उसके गर्भसे वनमाला का जीव विद्युतप्रभा नामकी पुत्री हुई। वह सुन्दर रूपवाली और गुणवती थी। कुछ समय बाद उसका विवाह सिंहकेतुके साथ हो गया। उधर वह वीरदत्त जिसकी कि स्त्री हरण की गई थी मरकर चित्रांगद नामका देव हुआ। एक समय सिंहकेतु विद्युत प्रभा सहित बनक्रीड़ा कर रहे थे। पूर्वभवके बैरसे उन दम्पत्तिको उस चित्रांगद नामके देवने हरण कर लिया। वह इन दोनोंको मारना ही चाहता था कि

उसके मित्र सूर्यप्रभ देव ने उसको ऐसा करनेसे मना किया और वह उसकी बात को मान गया किंतु उसने उस दम्पत्तिको चंपानगरीके बनमें छोड़ दिया पश्चात् वे दोनों देव स्वर्गको चले गये। दैवयोग से उस समय चम्पानगरीका राजा चन्द्रकीर्ति मर गया था, उसके कोई संतान नहीं थी इसलिये वहांके राजा का निर्णय करने के लिये एक हाथी छोड़ा गया था। हाथी बनमें आया और उसने उस दम्पत्तिको देखा, देखकर उसने कलशों द्वारा उस दम्पत्तिका अभिषेक किया और नगरमे ले आया। उस समय सिंहकेतुने वहाँके अधिवासियोंको अपना सारा समाचार कह दिया, जिसको सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने मिलकर उसकी पूजा की। सिंहकेतु मृकंडुका पुत्र था इसलिये वहाँ उसका नाम मार्कण्डेय प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद हरिगिरी, हेमगिरी, वसुगिरी आदि राजाओं की वंश परम्परा चली। उसके बाद सूर और वीर यह दो भाई राजा हुये। सूर राजाकी रानी का नाम सुरसुन्दरी था। वह अपनी सुन्दरतासे देवांगनाओकी तुलना करती थी। कुछ समय पश्चात इनके अन्धकवृष्टि नामका नीतिज्ञ प्रतापशाली एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी भार्याका नाम भद्रा था। उसका मुख चन्द्रमा के समान शीतल था और वह गुणोसे परिपूर्ण थी। उसके गर्भसे दश पुत्र उत्पन्न हुये, जो कि सभी नीतिज्ञ विद्वान् और पुरुषोत्तम थे। वे दश पुत्र दश धर्म के समान दीख पड़ते थे। उनके नाम ये थे—१ समुद्रविजय, २ स्तमितसागर, ३ हिमवत्, ४ विजय, ५ अचल, ६ धारण, ७ पूरण, ८ सुवीर, ९ अभिनन्दन और १० वां वसुदेव था तथा उनके दो पुत्रियां भी थी, जिनका नाम कुन्ती और माद्री था। कुन्ती नाना कलाओमे निपुण थी, उसका मुखचंद्र अत्यन्त शोभायुक्त था। कुच कनक कुम्भके समान शोभा पाते थे, उन्नत नितम्ब थे एवं कमर केहरिके समान एकदम पतली थी। मतलब यह है कि उसका सारा ही शरीर अनुपम था। माद्री भी उससे कम सुन्दरी नहीं थी, वह भी अपनी सुन्दरतासे कामदेवकी तुलना करती थी। उसके चंचल कटाक्ष पंडितोंको भी जीतते थे। यहां पर गौतम गणधर राजा श्रेणिकको कहते है कि हे राजन्! अब मै क्रमसे समुद्रविजय आदि की नारियोका नाम कहता हूँ सो तुम सुनो।

१ सुखकी खानि शिवादेवी, २ धैर्यकी देने वाली धृतिधात्रि, ३ सुन्दर

प्रभावाली स्वयंप्रभा, ४ श्रेष्ठ नीतिपूर्वक चलनेवाली सुनीता, ५ सीताके समान पवित्र आचरणवाली सीता, ६ प्रिय मीठे वचन बोलनेवाली प्रियवरक, ७ प्रभा रूप भूषणवाली प्रभावती ८ सुवर्णके समान उज्जवल कालिंगी, ९ सुन्दर प्रभा-वती सुप्रभा ये क्रमसे नौ की स्त्रियां थीं।

समुद्रविजय आदिका सुवीर नामका एक भाई मथुरामें रहता था। उसकी प्रियाका नाम पद्मावती था। सुवीरके भोजनवृष्टि नामका पुत्र था। उसकी भार्याका नाम सुमति था। वह सुन्दर शरीरवाली और विदुषी थी। उसके गर्भसे उग्रसेन, महासेन और देवसेन नामके ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये। तीनों ही पुत्र लोगोको आनन्द देनेवाले थे। सुमतिके इन पुत्रोंके सिवा एक गान्धारी नामकी एक कन्या भी हुई। जो कि अत्यन्त सुन्दर और गुणोंकी खानि थी, पूर्ण चन्द्रमाके समान जिसका मुख था। उग्रसेन आदिकी क्रमसे पद्मावती, महासेना और देव सेना नामकी स्त्रियां थी, जो कि सदा ही प्रसन्नचित्त रहा करती थीं।

राजगृहका राजा बृहद्रथ था, वह बहुत प्रतापशाली और बुद्धिमान था, बड़े बड़े राजा महाराजा उसकी सेवामे सदा उपस्थित रहते थे। उसकी भार्या का नाम श्रीमती था। श्रीमती बहुत सुन्दरी और लक्ष्मी जैसी जान पड़ती थी। उन दोनों के जरासिंध नामका एक पुत्र-रत्न हुआ। वह भी बहुत तेजस्वी और प्रतापशाली था एवं भरतक्षेत्रके तीन खंडोंका अधिपति था। बड़े बड़े राजा उसकी सेवा में उपस्थित रहा करते थे, वह प्रतिनारायण था।

एक समय राजा व्यासने कुन्ती के पिता अन्धकवृष्टिसे पांडुके लिए कुन्ती की याचना की। तब अन्धकवृष्टिने इस विषयपर अपने पुत्रोंके साथ एकान्तमे विचार किया और विचारकर यह निश्चय किया कि पांडुको कुष्ठ रोग है, इसलिये उसे कन्या देना योग्य नहीं है क्योंकि देनेसे संसारमे अपयश फैल जायगा। इसके बाद पहिलेकी तरह व्यासने अन्धकवृष्टिसे कुन्ती के लिये पुनः पुनः याचना की, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली, अन्ततोगत्वा वह धैर्य धारण कर चुप हो बैठ गया।

इधर पांडु राजा कुन्तीके रूप लावण्य और गुणोंपर मुग्ध हो चुका था। उसके बिना उसका एक क्षण भी कटना दुश्वार हो रहा था। जैसे रतिके बिना कामदेवको चैन नहीं पड़ता। उसीप्रकार बिना कुन्तीके पांडुको भी चैन नहीं पड़ता था। वह दिन रात उसीका स्मरण किया करता था, जिससे उसका शरीर पीला पड़ गया था। वह ज्वरग्रस्त पुरुषकी तरह अथवा भूत पिशाचादि से ग्रस्त पुरुष विह्वल हो विक्षिप्त हो जाता है, ऐसे ही कुन्तीके वियोगमें झुलसा सा गया था। एक समय पांडु बनमें क्रीड़ाके लिये गया था, वहां वह फूलोंकी शय्या वाले लता-वितान मे क्रीड़ा कर रहा था कि इतनेमें उसे लतावितान-मंडपके पास ही एक अगूठी दीख पड़ी और उसने उसे उठा लिया। इसी समय किसी एक विद्याधर पर पांडुकी दृष्टि पड़ी, जो कि इधर उधर कुछ देखता फिरता था। उस विद्याधर को देखकर पांडुने पूछा कि भाई! तुम यहाॅ क्या खोजते फिरते हो? उत्तरमें विद्याधरने कहा कि मैं अपनी अंगूठी खोज रहा हूँ। विद्याधरकी यह बात सुनकर पांडुने उसे अंगूठी दिखाकर कहा कि हे विद्याधरों के अधिपति! आप अंगूठी देखनेका क्यों व्यर्थमें कष्ट उठाते है, अंगूठी तो आपकी यह है। कृपाकर मुझे आप यह बतला सकते है कि आपकी यह अंगूठी खो कैसे गई। उत्तर मे विद्याधरने कहा कि मै विजयार्धपर रहने वाला वज्रमाली नामका विद्याधर हूँ। मै अपनी प्राण-प्रियाके साथ इस घने बनमें क्रीड़ा करनेके लिये आया था और जब क्रीड़ाकर वापिस लौटने लगा तो उस समय भूलसे विमानके किसी छेदमेंसे मेरी यह अंगूठी गिरगई और मुझे उसकी खबर भी नहीं पड़ी और मै विमानको उड़ाये चला गया। थोड़ी देर बाद जब अंगूठी हाथमें नहीं दीख पड़ी तो मै प्यारी अंगूठीके लिए चिंतित हो गया और उसीको खोजने के लिये यहाॅ वापिस आया हूॅ। उसकी बात अभी पूरी भी नहीं हो पाई थी कि इतनेमें पांडु बोल पड़ा कि इसके द्वारा अपका कौनसा काम साधा जाता है। उत्तरमे विद्याधर ने कहा कि यह अंगूठी मनचाही वस्तु देनेमें समर्थ है। यह सुन पांडु कहने लगा कि मित्र! यदि इस अंगूठीमे यह करामात है तो कुछ दिन के लिए मुझे दे दीजिये। मै इसे प्रतिदिन ही अपने हाथ की अंगुलीमे पहिनूंगा और पीछे कार्य होनेपर मैं आपको वापिस दे दूंगा। उसकी इसप्रकार विनीत

प्रार्थना करनेपर उस परोपकारी वज्रमाली विद्याधरने पांडुको अंगूठी दे दी। उस समय उसने विचार किया कि जड़ मेघ बिना याचना किये ही दूसरों को ठण्डा और स्वादु जल पिलाते है तो मैं चेतन याचना करने पर इस महानुभाव को अंगूठी नहीं दूँ तो मैं उन जड़ मेघोंसे भी गया बीता हूँ।

पांडु अंगूठी को अंगुलीमें पहनकर उसीसमय सुरपुरी को चला गया, जहां कि राजा सुर रहता था। रात्रि के समय पांडुने अंगूठीके प्रभावसे अपना अदृश्य-रूप बनाकर राजाके रनवासोंमे प्रवेश किया और कुन्ती को प्राप्त करने की भावना भाता हुआ उसके महलमे पहुँच गया। कुन्ती उस समय सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो अपने आसनपर बैठी हुई थी। उसका शरीर अत्यन्त सुडौल और रूप लावण्य युक्त था। वह उस समय कामदेवकी रतिके समान मालूम देती थी। उसके प्रत्येक शरीर में कामदेवने स्थान पा लिया था इसीलिये वह मदके उन्मादसे विलक्षण विनोद करती थी। उसका मन बहुत ही गंभीर था, कमर कुचोंके भारसे एवं नितम्बके भारसे एकदम पतली हो गई थी मतलब यह है कि वह रूप लावण्यसे इतनी सुन्दर थी कि उसकी सानीकी कोई उस समय दूसरी स्त्री नहीं थी, इसलिये उसको देखकर मनुष्यके नेत्र रूप हिरण बँध जाते थे। वह वास्तवमें कामकी केलि थी अथवा बेल थी। उसको देखकर लोग अचम्भा करते थे कि यह कोई स्वर्ग की अप्सरा है या किन्नरी है या कौन है? इस प्रकार कुन्तीके अनुपम रूप लावण्यको देखकर पांडुने विचारा कि इसके बिना मैं अपना व्यर्थ ही समय खो रहा हूँ। बस, ऐसे विचारकर उसने मान-मर्यादाको छोड़कर अपना असली रूप प्रकट किया। कुन्ती का शरीर उस समय चन्द्रमाके समान शांत था और सूर्यके समान प्रतापयुक्त पांडुके मुखकमलको देख कर एकदम कांप गई। वह उसकी सुन्दरता देखकर विचार करने लगी कि यह कोई देव है या कौन है? इसका ललाट ही क्या इतना सुन्दर है या इसमें अष्टमीका आधा चन्द्र ही अंकित हो गया है? इसके सिरका यह केश-पाश है या कामअग्निसे निकली हुई धूमकी शिखा है? इसके सुन्दर वक्षःस्थलको देख कर मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसके वक्षःस्थलमें हारके छलसे जय लक्ष्मीने ही निवास कर लिया है, नहीं तो लोग इसके मनमें स्थान पाकर लक्ष्मी

पति क्यों हो जाते हैं ? इसकी दोनों भुजाये स्त्रियोंको बांधनेके लिये दो पाश ही है ऐसा मुझे अनुभव हो रहा है। इसप्रकार सुन्दराकृति पांडुको देखकर कुन्तीने विनम्र शब्दों मे कहा कि मेरा यह महल सीमायुक्त और दुर्लघ्य है इसमे आप कैसे आये और किस निमित्तसे आये है ? आप कौन हैं, किस कपटसे यहां पधारे हैं ? कुन्तीके यह वचन सुनकर पांडुने कहा कि हे सुभगे ! यदि तुम्हें सुननेकी इच्छा है तो मनको साफकर सुनो, मै तुमको सारा हाल सुनाता हूँ।

कुरुजांगलदेशमें हस्तिनापुर नाम का एक नगर है। वहां इस समय धृतराष्ट्र राजा राज करते है। मैं उनका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम पांडु है, मैं पृथ्वी में प्रसिद्ध हूँ अर्थात् मुझे सब कोई जानते हैं। मै क्षमताभावको धारण करनेवाला हूँ, लोग मुझे पंडित कहते हैं क्योंकि संसार भरके पंडितोंकी बुद्धि मेरे मे एकत्र हो गई है। मेरी आज्ञा दुर्लघ्य एवं अलंघ्य है इसलिये इन्द्र तुल्य हूँ। मेरे सम्पत्तिका अक्षय भंडार है इसलिये मै कुबेर हूँ। जिस प्रकार योगीजन आत्माका ध्यान करते हैं, कामदेव रतिका एवं कामी पुरुष अपनी प्राण-प्यारीका चिंतवन—स्मरण करते है, ठीक उसी तरह मै भी तुम्हारा स्मरण करता हुआ, कामके वाणोंसे बेधा हुआ यहां आया हूँ। मेरा मन अब तुम्हारे आधीन हो चुका है, अब तुम जैसा समझो वैसा करो।

पांडुके इन वचनोंको सुनकर कुन्ती बोली कि राजन् ! मैं अभी बिना ब्याही कुंवारी कन्या हूँ। यदि इस समय तुम्हारे साथ मै संगम करती हूँ तो संसार मे बड़ी भारी अकीर्ति फैल जायगी। दूसरी बात यह है कि कुलवती कन्यायें बिना पिताकी आज्ञाके अपना पति नहीं बनाती हैं, इसलिये आप इस अयोग्य बातके लिये हठ न कीजिये, जो योग्य न्यायनीतिके अनुसार हो वही काम कीजिये। नीति तो यह है कि आप मेरे पितासे विधिपूर्वक याचना करके मेरे साथ पाणिग्रहण कीजिये। इस बातपर कामसे पीड़ित पांडुने उत्तर दिया कि कामिनी ! मै तुम्हारे 'कुन्ती' नामके दो अक्षरोंके मंत्रसे खिंचा हुआ तो यहाँ तक आया हूँ और यदि इस कामकी आज्ञाको उल्लंघन करता हूँ तो मुझे भारी डर इस बातका लगता है कि वह मुझे न जाने आज्ञाभंगकी कितनी कड़ी सजा देगा यह शंका मेरे हृदयमे शंकु की तरह चुभ रही है। इसलिये हे मानिनी !

तुम मेरे वचनको अपने हृदयमें स्थान दो और अपने पाससे लज्जारूपी बेलको जड़से उखाड़ फेंक दो और मेरे साथ काम भोग करो। तुम समझती हो कि क्या कामसे उद्धत हुआ मन्दोन्मत्त हस्ती नीतिरूपी अंकुशको कभी मानता है? नहीं, वह तो स्वच्छंद हो इधर उधर घूमता ही है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य के तभी तक लोकलज्जा रहती है, तभीतक धर्मकर्म रहता है, तभीतक शास्त्रज्ञान रहता है, तभीतक मान मर्यादा या बड़प्पन रहता है, तभीतक उच्च आदर्श रहता है जबतक कि प्रबल कामरूपी मन्दोन्मत्त हस्ती उसके पीछे हाथ धो नहीं पड़ता है इसलिये हे सुन्दरी! मैं तुमसे यह अपनी अन्तिम बात कहता हूँ कि या तो अपना शरीर मेरे हाथोमें दो या मेरी मृत्युको बिना विचारे अपने हाथों में ले लो। हे सुभगे! तुम भय मत करो, मुझे आलिंगन दो एवं अधरामृत पान कराओ देवी। अब देर मत करो, जल्दीसे मुझे अपना मन दो, वचन दो, काय दो क्योंकि तुम्हारे बिना दानके दिये मुझे अब चैन नहीं पड़ता। क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि जो अधिक तृषातुर होता है वह दोनों पसोंसे हाथोंसे गटर गटर पानी पीता है। घूर्णिते, अब तुम मान छोड़कर मेरी प्राघूर्णक विधि अतिथि सत्कार करो क्योंकि मैं तुम्हारा मेहमान हूँ। पांडुकी ये सरस बातोंको सुनकर उसके कामके पंचबाण इतने जोरसे लगे कि जिसके मारे वह विह्वल हो गई। उस समय लज्जाको ताकमे उठाकर रख दिया और मदातुर हो उन दोनोने यथेच्छ काम चेष्टाये की। इस तरह वे दोनों एक दूसरेके ऊपर आसक्त हो बहुत ही प्रसन्न हुये, उस समयके भावको बतलाना कविकी लेखनीके बाहर है। इस तरह वह पांडु अपना अदृश्यरूप बनाकर कुन्तीके यहां आता जाता रहा और निःशंका हो उसके साथ काम क्रीड़ा करता हुआ प्रसन्न चित्त रहता था। सो ठीक ही है प्यारी प्रेयसीके मिलने पर किसे प्रसन्नता नहीं होगी। एक दिन दैवयोगसे कुन्ती की धायने उसे प्रगट रूपसे अपनी आँखों से देख लिया और वह मनमें विचारने लगी कि यह कौन है, कहांसे और किसलिये यह कुन्तीके महलमें आया है? यह बात विचारते ही वह एकदम घबड़ा गई। पीछे जब वह चला गया तब धायने कुन्तीसे पूछा कि हे पुत्री! तुम सच कहो रात्रिमे वह कौन और किस निमित्तसे तुम्हारे पास आता है? धायकी यह बात सुनते ही कुन्ती एकदम

घबड़ा गई और शरीर कंपित होने लगा, नेत्र चंचल हो गये। कुछ देर बाद लड़खड़ाती हुई बोली में बोली कि माता ! तुम मेरी इस दुष्कृतिको कान लगाकर सुनना मै तुमको जो यथार्थ बात है वह सब कह दूंगी। दरअसलमें बात यह है कि कर्माधीन हुआ यह कामी जीव चाहे जैसे दुष्कृत्योंको कर डालता है। देखो कर्मके वश होकर किस-किसने दुःख नहीं उठाये और कौन कौन नष्ट-भ्रष्ट नहीं हुये। उसको भी जटिल आपत्तियोंका सामना करना पड़ा। संसारके सारे ही जीव कर्मके वशमें पड़े हुये नाना प्रकारकी यातनाये सहन कर रहे हैं। कर्म के निमित्तसे अघटित घटना घट जाती है और आसानीसे होने वाली घटनायें दूर भाग जाती है। कहां तक कर्मकी विचित्रता कही जाय। माता ! इनके वश में पड़कर ऐसे काम साधु महात्माओ से भी हो जाते हैं जिनका कि स्वप्नमे भी विचार नहीं किया जाता। ठीक मेरी भी वही दशा हुई अर्थात् एक दिन संध्या के पश्चात् कर्मका प्रेरा वह मनुष्य अकस्मात् ही मेरे पास आया, इसकी और मेरी परस्पर बात-चीत हुई और उसने मुझे अपनी चिकनी चुपड़ी बातोमें ऋजु कर लिया और मै उसको अपनी तरफ नहीं खेंच पाई। वह पुरुष हस्तनागपुरके राजा व्यासका पुत्र हैं। उसका नाम पांडु है। इसके शरीरकी आकृति एक-दम पांडु (सफेदी लिया हुआ पीलापन) है इसलिये इसका नाम शायद पांडु रक्खा गया है। यह मेरे रूप की प्रशंसा सुनकर मुझपर आसक्तचित्त था, भाग्यवशात् इसको उद्यानमे वज्रमाली विद्याधरसे इच्छित फलको देनेवाली एक मुद्रिका मिल गई। वह उस मुद्रिकाको पहिन अपना अदृश्य रूप बनाकर मेरे साथ रमण करनेकी इच्छा से आया था। कुन्तीके इन वचनोंको सुनकर धाय का सारा शरीर कॉप गया। वह बोली कि पुत्री ! तूने कामके वशमे होकर यह क्या निंदित काम कर लिया। देखो नीतिकारोंका यह वचन है कि स्त्री चाहे बाला हो चाहे वृद्धा, चाहे मूर्खा, विकलांगी हो चाहे परम सुन्दरी हो, वह कैसी ही क्यों न हो परपुरुषसे वह सदा ही दूर रहे। नारीको घृतके घड़ेकी उपमा दी है और पुरुष को तप्त अंगारेके समान बतलाया है। दोनोंका ही स्वभाव क्रमसे पिघलना और पिघलाना है। संयोग होने पर-एकांतवास मिलनेपर स्त्री पिघल जायगी और पुरुष उसको पिघला लेगा। कन्ये ! कौन इस बातको कहेगा कि

पुरुषने बलात्कार किया है वे तो सब यही कहेंगे कि कन्याने बहुत बुरा काम किया है। दूसरी बात यह है कि यह यदुवंश कुल स्वच्छ और निष्कलंक है। सो अब इस निंद्य कर्मके हो जानेसे अवश्य ही कलंकयुक्त हो जायेगा और यदि इस बातको तुम्हारे पिता वगैरह सुन पायेंगे तो उस समय तुम्हारी और मेरी क्या दशा होगी, सो मैं नहीं जानती।

धायकी यह बात सुनकर कुन्तीका शरीर कांपने लगा, शरीरकी कांति सब फीकी पड़ गई। वह डरके मारे गदगद स्वरमें कहने लगी कि हे उपमाता, तुमने मुझे पाला पोषा है और बड़ा किया है इसलिये तुम मेरी मां से भी बढ़कर हो। इसलिये मेरे ऊपर कृपाकर तुम मुझे कर्तव्य मार्ग सुझाओ मुझे तुम जो कहोगी वही मैं करूंगी। माता इस समय मेरे छिद्रोंको न हेरकर मुझे पवित्र बनाओ, सुधार का रास्ता बताओ। माता, मुझे इस समय इतना दुःख हो रहा है कि उसका अंत बिना मरण हुये नहीं हो सकता है। मुझे अब मरण ही शरण है। देखो, यह प्राणी क्षणिक सुख के लिये कामके वश होकर लोक-निंद्य नितान्त गर्हित काम कर लेता है और पीछे कुन्ती की तरह पछताता है और मरण ही की शरण हो जाता है, यह कितने खेदकी बात है। कुन्तीके ऐसे दुःख भरे शब्दोंको सुनकर धायने सम्बोधित करके कहा कि प्यारी पुत्री ! तुम भय और चिंता मत करो। जिस कामसे तुम्हारी भलाई होगी मैं वही रास्ता तुम्हारे लिये ढूंढ निकालूंगी। तू अब चिंता छोड़ सुखसे रह। इस प्रकार कुन्तीको धैर्य बंधाकर वे दोनों जनी आनन्द से अपना समय बिताने लगी।

इसके पश्चात धाय विद्यामे प्रवीण उस धायने बहुत समय तक तो जहां तक बना वहां तक कुन्तीके दोषोंको छिपाया किन्तु कुछ दिनों बाद पांडु के संयोगसे कुंतीको गर्भ रह गया और वह दिनों दिन वृद्धिगत होने लगा। गर्भके प्रभावसे उसका पेट कड़ा हो गया, पेट की त्रिवली भंग हो गई। इसप्रकार उसके गर्भ का प्रथम चिन्ह दिखाई देने लगा। मुंह की आकृति पीली पड़ गई, थूक अधिक आने लगा, बोलना-चालना कमती हो गया, शरीरमें सुस्ती छा गई। उसके नेत्र सुहावने दीखने लगे एवं साड़ीसे दबे हुये उसके कुचकुम्भ उन्नत और सुवर्णकी कांति सरीखे हो गये। जिस प्रकार जलसे सिंचन की गई बेल फल

फूलोंसे शोभा पाने लगती है ठीक वैसे ही गर्भके भारसे उन्नत युगल कुचोंके भारको सहन करने वाली कुन्ती भी वैसे ही शोभा पाने लगी।

एक समयकी बात है कि गर्भके भारसे श्रांत कुन्तीके माता पिताने उस को देखलिया। देखते ही वे बड़े आश्चर्य में पड़ गये और धायसे बोले कि तू बड़ी दुष्टा नीच है, बता तूने कुन्तीसे यह नीच कृति किस पुरुषके समागमसे करवाई, कौन पुरुषको तू यहाँ लायी। तूने हमारा यह बड़ा भारी अनिष्ट किया क्या तू यह नहीं जानती है कि पुत्री और पुत्रवधु ये दोनों कितने ही उच्चकुलमें पैदा हुई हो किन्तु स्वतंत्र होनेपर जार-पुरुषके संसर्गसे कुल को दोष लगा देगी इसीनिमित्त रक्षाके लिये पुत्रीको तेरे सुपुर्द किया था सो तूने ऐसी रक्षा की जो प्रगट दिखाई दे रही है यह कार्य इतने भारी कलंकका हुआ है कि हमें राजाओं की सभामें मुँह नीचा करके बैठना होगा, लज्जाके मारे निगाह ऊपर नहीं उठा सकेंगे, उससे हमें बहुत दुःखित होना पड़ेगा। कीर्तिकारोंने बतलाया है नदी और स्त्रीमें कोई अन्तर नहीं है कि नदी जिस प्रकार रस-जलके वेग द्वारा अपने कूलों किनारों को नष्ट कर देती है, ठीक उसीप्रकार स्त्री भी अपने इस श्रृंगारादि रसों द्वारा अपने कुलको नष्ट भ्रष्ट कर देती है अर्थात् दाग लगा देती है। इसलिये तो बतलाया है कि नागिनी सर्पिणी नखवाले पशुपक्षी सिंहादिक और नारीका एवं दुष्टका विश्वास भूलकर भी नहीं करना चाहिये। कहावतमें भी आता है कि पुरुषों को स्त्रियों का भरोसा नहीं करना चाहिये, उसमें भी जो स्त्रियां कामासक्त हो जाँय तो उनका भूलकर भी विश्वास नहीं करना चाहिये, री दुष्ट! विचार तो कि जो स्वभावसे ही नागिनी दूसरोंको कष्ट देती है वह भला दूसरोंके द्वारा सताई हुई कष्ट नहीं देगी? यह बात क्या विश्वास योग्य हो सकती है? हमने तुझे रक्षा के लिये अपनी पुत्री को सौपा और तूने बिल्ली की कहावत चरितार्थ कर दिखाई। वह इस प्रकार कि किसीने एक भूखी बिल्ली को कुछ दूध इसलिये दिया कि तू इसकी रक्षा करना किंतु वह रक्षा की जगह स्वतः ही खा गई। ठीक ऐसा ही कार्य तूने किया है। कुन्ती के माता पिता के ऐसे रोष भरे वचनों को सुनकर धायका शरीर कांपने लगा, उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ हो गया मुँहकी कांति मलिन हो गयी, वह जैसे तैसे अपने को

संभालकर बोली कि राजन् ! आप अशरणके शरण हैं यदुकुलके पालक हैं, गुणवान हैं और विद्वान हैं। कृपाकर मेरे वचनों को सावधान होकर सुनेंगे। हे नरेश ! इसमें न तो कुन्तीका ही दोष है और न मेरा ही, किन्तु दोष है पूर्व-कृत कर्मका। यह पूर्व में संचित कर्म नटकी तरह नाना प्रकार से नाच नचाता है और जीव नाचता है राजन् ! सुनिये, कुरुजांगल देश में कौरव वंश में पैदा हुआ अतुल विभूतिका स्वामी पांडु नाम का एक राजा है। वह कुन्ती के रूप गुणपर अत्यन्त आसक्त था उसने आपसे कुन्ती के लिये याचना भी की परन्तु आपने कुछ ध्यान न दिया तब वह स्वयं कुन्ती से प्रार्थना करने के लिये एवं उसके साथ रमण करनेके लिये मौका खोजने लगा, भाग्यवशात् उसकी वज्रमाली नामके एक विद्याधरसे भेट होगयी और उससे उसने एक मुंदरी जो कि रूप बदलनेका काम करती थी, ले ली। वह उस अंगूठीको पहनकर रात्रिके समय अपना अदृश्य रूप बनाकर कुन्तीके महलमें पहुँचा। कुन्ती उस समय अकेली बैठी थी बस मौका पाकर उसने उसके साथ गंधर्व विवाह कर लिया और वह प्रतिदिन उसके साथ रमण करने लगा। एक दिन मैंने उसे कुन्तीके महलमें देख लिया। तब मैने कुन्तीसे उसका सारा हाल मालूम कर लिया उस समय कुन्तीने मुझसे सारा हाल कह दिया और मैंने आपको जैसाका तैसा सुना दिया है। राजन् ! अबतक तो मैने पुत्रीकी रक्षा की और उसके दोषको ढक रक्खा किंतु अब मेरे वशकी बात नहीं है, इसलिये अब इस सम्बन्धमें आपको जो उचित जंचे सो कीजिये। धायके पूर्वोक्त वचन सुनकर उन दम्पतिने कहा कि तू इस दोषको अभी गुप्त रखना। धायने ऐसा ही किया किंतु वह दोष बिना कुछ कहे ही लोगोंके कानों तक पहुँच गया जिसप्रकार कि पानीमे पड़ी हुई तेलकी बिंदु सब जगह फैल जाती है।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा, नौ महीना पूरे होगये तब कुन्ती ने पुत्रको जन्म दिया। पुत्र बाल सूर्यकी तरह अत्यन्त प्रतापी और कांतियुक्त था। पुत्रका जन्म होते ही सुरीपुरमे सर्वत्र उसकी खबर फैलगई। पुरवासी लोग राजाके भयसे प्रगटमें तो कुछ नहीं कहते थे किंतु कानोंकान राजा की निन्दा करते थे। यह बात जब राजाके कानोंतक पहुँच गई कि लोग

निंदा कर रहे हैं तो उसने उसका नाम कर्ण रक्खा वह इसकारण कि इसके जन्मकी खबर लोगोंके कानोंकान फैल गई पीछे मंत्रियोंसे सलाह कर उस पुत्रके कानोंमे कुंडल, आभूषण, रत्न-कवच पहिनाकर सन्दूकमें बन्दकर उसके भीतर 'कर्ण' नाम लिख एक पत्र और थोड़ा द्रव्य रखदिया और उस सन्दूकको यमुना नदीके प्रवाहमें बहा दिया।

मंजूषा बहते-बहते चम्पापुरी नगरीमें जमुनाके किनारे जा लगी। नगरी की उससमय अनुपम शोभा थी, उसके महलोंके ऊपर सुवर्ण कलश लगे हुये थे। वहांके जिनमन्दिर अनुपम शोभायुक्त थे, जिनके ऊपर ध्वजाये फहरा रही थीं। भव्यजन मन्दिरोंमे जाकर भगवानकी पूजन करते थे। इस नगरीमें भगवान् वासुपूज्य स्वामीके गर्भ, जन्म और मोक्ष तीन कल्याणक हुये थे इससे यह अत्यन्त पवित्र बन गई थी। वह नगरी अंगदेशमें है ऐसी विशाल अनुपम नगरीका राजा भानु था। वह राजा बहुत विवेकी, साधुजनोंका भक्त एवं दुष्टजनोंका विग्रह करनेवाला था, जिन पुरुषोंका कोई शरण न था उनको आश्रय देनेवाला था। शस्त्र और शास्त्र दोनों विद्याओंका प्रकांड पडित, सूर्यके समान प्रतापी था, इसलिये उसके नामसे शत्रुगण थर थर कांपने लगते थे। दानी वह इतना था कि उसके दिये हुये दानको प्राप्त कर याचक कल्पवृक्षोंको भी भूल जाते थे, उसके रहते हुये लोग चिन्तामणि और कामधेनुके नामको ही भूल गये थे, उसके राधा नामकी एक प्रिया थी। वह शील, रूप और गुणकी खानि थी। उसका रूप लावण्य देखकर लोग उसको लक्ष्मीकी उपमा देते थे। जिस प्रकार लक्ष्मी सबको आनन्दप्रद होती है व जैसी शुभ है, वह भी उसी प्रकार शुभ थी। वह राजा भानुके हृदयसे लगी कल्पलताके समान जान पड़ती थी एवं रम्भाके समान मालूम देती थी। वह भोगोंसे परिपूर्ण और मनको मोहित करने वाली थी इसलिये वह इन्द्रकी इन्द्राणी जैसी शोभाको प्राप्त होती थी बहुत ही सम्पत्तिशाली एवं सौभाग्यवती थी। यह सब कुछ होते हुये भी दुर्दैवसे उसके कोई सन्तान नहीं थी, लोग उसको बंध्या कहते थे।

एक समय राजाने किसी एक निमित्तज्ञानीको बुलाकर पूछा कि हे कोविद्! कहो कि मेरे पुत्र होगा या नहीं? उसके प्रश्नको सुनकर निमित्तज्ञने

कहा कि हे राजन् ! निमित्तशास्त्रके आधारसे उत्तर देता हूँ उसको तुम सावधान होकर सुनो। यमुना नदीके किनारे तुम्हें एक प्रतापी सुन्दर बालक सहित एक मंजूषा पेटी मिलेगी, वही पुत्र तुम्हारा बालक होगा, इसमें रंचमात्र भी मिथ्या नहीं है। राजा इस बातको सुनकर प्रसन्न हुआ उसने उसी समयसे होशियार पहरेदार यमुना नदीके किनारे पर तैनात कर दिये। उसका चित्त उधर ही लगा रहा, कुछ समय बाद एक सन्दूक यमुना नदीके प्रवाहमें बहता हुआ आया। पहरेदारने देखकर उसे निकाल लिया और राजाके सामने ला रख दिया। राजाने उस सन्दूकको खोलकर देखा तो उसमें सुन्दर बालक था। बालक को निकालकर राजाने उसको अपनी गोद में ले लिया और निमित्तज्ञानीके वचनों पर गहरा विचारकर वह अपनी रानीके प्रति बोला कि हे राधे ! तुम अपने मनोमंदिरमें पवित्र विचारोंको स्थान देती हो, सद्चारित्रको पालन करती हो इसलिये सूरजसे भी अधिक प्रतापशाली इस पुत्रको अपनी गोदमें लो। रानी स्वामीके इन वचनोंको सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और उसने बड़ी उमंगके साथ उस बालकको अपनी गोदमें ले लिया उसे लेते समय रानी ने अपने कानको खुजलाया जिसको देखकर राजाने उस पुत्रका नाम 'कर्ण' रख दिया। राजा भानुके घर कर्ण कला कौशल, शोभा लक्ष्मी और शौर्यादि गुणोंसे दिन-प्रति दिन द्वितीयाके बालचन्द्रकी तरह वृद्धिको प्राप्त हुआ। द्वितीयाका चन्द्रमा जिस प्रकार बढ़ता हुआ तपको नष्टकर जगतके प्राणियोंको सुख शांति देता है उसी प्रकार यह भी जगतके लिये आनन्द देने लगा। लोग इसके बाल्यकालको देखकर बड़े प्रसन्न होते थे।

इसप्रकार शुभ पुण्योदयसे जिसे सौभाग्य प्राप्त है, जिसकी आज्ञामें देव चलते हैं, जो शास्त्रज्ञ है, जिसका शरीर तेजयुक्त है एवं शास्त्रोंके पठनपाठनमें जिसकी सदा ही रुचि रहती है, कीर्तिका स्थान है, जिसने भाग्योदयसे कुन्तीकी कुक्षिसे जन्म धारण किया, जो लक्ष्मीका स्थान है, दयार्द्रचित्त है ऐसा वह कर्ण सारे संसारमें श्री कांतिसे सुशोभित हो। ग्रन्थकार कहते हैं कि यह सब सुयोग पुण्य से ही मिलता है, ुण्यसे ही अग्नि जल और जल अग्नि हो जाता है तो मनुष्योंकी क्या बात ? [illegible]

पुण्यशालीके चरणोंमे शीश नवाते हैं। अतः हे भव्यात्माओं! पुण्य उपार्जन करो। पदार्थका अनुभव व चिंतवन और जिनेन्द्र भगवानका भजन करो जिससे कि क्रमशः मोक्ष सुखकी प्राप्ति हो।

❀ आठवां अध्याय समाप्त ❀

अथ नवम अध्याय।

उन सम्भवनाथ भगवान्को नमस्कार हो जो तृषारूपी रोगसे संत्रस्त जगतके प्राणियोंको आकस्मिक वैद्य हैं, वैद्य जैसे रोग शान्त करता है वैसे ही जिनके ध्यान करनेसे रोग दूर ही खड़े रहते है जो सुख के दाता, पापके विधाता और भव्योंको संसार-समुद्रसे पार करनेवाले है।

यहां गौतम स्वामी श्रेणिकको संबोधित करते है कि हे श्रेणिक! संसार में वे बड़े अज्ञानी हैं जो प्रतापशाली कर्णकी उत्पत्ति कानसे मानते है यह कितनी अयोग्य बात है। कानों-कान उसके जन्मकी खबर पुरवासियोंको लगी थी इसलिये उसका कर्ण नाम हुआ था तथा चंपापुरीमे भानु राजाने अपनी प्यारी राधाको पुत्र गोदमें लेते समय कान खुजाते देखा था इसलिये वहां भी उस राजाने उसका नाम कर्ण रक्खा था। दूसरी बात यह है कि किसी तरह मान भी लिया जाय कि कर्णकी उत्पत्ति कानसे हुई थी तो संसारमे इस समय भी तो कान आँख नाक मुंह सब कुछ मौजूद है उनसे क्यों नहीं मनुष्यकी उत्पत्ति होती है? आजतक कानोसे कोई पैदा हुआ हो या आँख नाकसे पैदा हुआ हो ऐसा तो सुननेमे नहीं आया, जिसप्रकार गौ के सींगसे कभी दूध नहीं निकल सकता अथवा बंध्या स्त्रीके संतान नहीं होती एवं आकाशके कभी फूल और गधेके सींग नहीं होते, पत्थर पर कभी अन्न पैदा नही होता और सर्पके मुखमे अमृत पैदा नहीं होता, इन सब बातोका होना जिस प्रकार असंभव है वैसे ही कानसे कर्णकी उत्पत्तिका होना भी नितांत असम्भव है। यदि ऐसा संभव होता तो फिर विवाह आदि संस्कारकी आवश्यकता ही क्या थी, मनुष्य और स्त्री कानसे ही पैदा हो जाते। इसलिये हे राजन्! कर्णकी उत्पत्ति जैसे पूर्वमे कही गई है, सत्य है और ग्राह्य है। शंका यहां यह हो सकती है कि कर्ण को सूर्यसुत कहते है। जबकि सूर्यका कुन्तीके साथ समागम ही नहीं हुआ तो

उसकी संज्ञा सूर्यसुत कैसे ? इसका उत्तर है कि कर्णका लालन पोषण राजा भानुने किया था। भानु सूर्यको भी कहते हैं इसलिये लोकमें कर्ण की सूर्यसुतके नामसे प्रसिद्धि हो गई। जैसे कि नारायण कृष्णको नन्दगोपके यहां पलने की वजहसे गोपाल कहते हैं।

अब गौतम स्वामी राजा श्रेणिकको कहते हैं कि हे राजन्! अब मैं तुझे कौरव और पांडवोंकी उत्पत्ति शास्त्राधारसे कहता हूँ उसको सुनो :—

एक समय अंधकवृष्टिने अपने सब पुत्रोंको बुलाया और कुन्तीके विवाह के सम्बन्धमे विचार किया कि यदि कुन्ती पांडुको छोड़कर दूसरेके साथ व्याही जायगी तो वह व्यभिचारिणी कहलायगी और ऐसा सुनकर कोई दूसरा उसको व्याहेगा भी नहीं, अतः उत्तम यही है कि पांडुको ही कन्या दी जाय। ऐसा विचारकर उन्होने वरके योग्य भेट आदि देकर एक चतुर दूतको राजा व्यास के पास भेजा। दूत थोड़े ही समयमें कौरवोंके राजा व्यासकी सभामें पहुंचा। वहां उसने दूरसे ही सिंहासनपर बैठे राजाके दर्शन किये, उसकी विभूति देख-कर वह चकित हो गया और अपने सफल मनोरथकी भावना करता हुआ। राजाके ऊपर चमर ढुलते थे, छत्र लगा हुआ था, देश विदेशके राजा उसके सामने नाना प्रकार की भेंट लिये हुये खड़े थे। राजाके कानोंमे कुण्डल थे, गले मे रत्नोंका हार था। सभामें बैठा हुआ राजा इन्द्रकी उपमाको धारण करता था। वह बहुत ही उद्योगी, न्याय नीतिका विचारक, हृदयका बहुत ही पवित्र एवं गम्भीर था, उसकी शासन-प्रणाली बहुत ही आदर्श थी, अन्यायियोंको यथोचित दंड देता था। उसके सुशासनमे सभी लोग संतुष्ट थे। ऐसे गुण सम्पन्न राजाके पास पहुंचकर दूतने अन्धकवृष्टि के द्वारा भेजी हुई भेंटको सामने रखकर निवेदन किया कि राजन्! सुरीपुरके राजा अन्धकवृष्टि जो कि सर्व प्रसिद्ध है उन्होंने मुझे आपके पास यह सन्देशा लेकर भेजा है कि आपके राज-कुमार पांडुके साथ मेरी पुत्री कुन्तीका विवाह हो। दूतके इन वचनोंको सुनकर व्यासने कहा कि जो कार्य योग्य है उसे कौन नहीं चाहेगा ? मुद्रिका और मणिकके संयोगकी कौन चतुरपुरुष इच्छा नहीं करेगा ? व्यासजीको प्रथम ही

यह बात मालूम थी कि पांडु कुन्तीको चाहता है। इसलिये उसने दूतसे कहा कि जैसी सुरीपुरके राजाकी इच्छा है वैसी ही हमारी भी है। उनके कहे अनुसार हम तैयार हैं। व्यासने उसी समय पांडु और कुन्तीकी सगाई सूचक बडा महोत्सव किया और सब राजाओंके आगे पांडुके लिये कुन्तीका लेना स्वीकार किया पश्चात् नानाप्रकारके वस्त्र आभूषणोके द्वारा दूतका बहुत सन्मान किया एवं लग्न दिनका निर्णय करके भेट सहित उसे अपने यहांसे विदा किया।

इसके कुछ दिन बाद पांडुकुमार विवाह करनेके लिए हस्तिनापुरसे सुरीपुरको रवाना हुआ। उस समय उसने नानाप्रकारके गहने पहिने तथा बहुतसे राजाओ को साथमें लिया। उसके सिरपर सफेद छत्र लगा हुआ था जिससे वह इन्द्र सरीखा दीख पड़ता था। आगे-आगे नानाप्रकारके बाजे बजते हुए चले जाते थे जिनके शब्दोंसे दिशाये गूंज गई थीं। भाट लोग विरदावली बखानते हुये चले जाते थे एवं नट नानाप्रकारके नृत्य करते हुए आगे-आगे चल रहे थे। कामिनी मंगल गीत गा रही थीं। पांडुकी माता सुभद्राने पांडुकी मंगल आरती उतारी और उसे सिद्ध भगवान की आसिका दी जो कि पांडु के लिये मंगलकारी थी।

इसप्रकार पांडुकुमार विवाह करनेके लिये घोड़ोंपर सवार होकर वहांसे चला। संगमें और भी बहुतसे राजा महाराजा बाराती रूपमे थे। उनमे से कोई हाथी पर चढ़ा था तो कोई घोड़ेपर सवार था तो कोई रथमे चढ़ा हुआ था। सब लोग रास्तेमें प्रकृतिकी शोभा देखते हुये चले जा रहे थे और कहते जाते थे कि कुमार! देखिये यह कमलोंसे परिपूर्ण शब्द करती हुई गहरी नदी सुन्दर स्त्रीके समान दीख पड़ती है। कुमार! इधर पर्वत देखिये यह आपके समान उन्नतवंश (पक्षमें बांस) वाला है। नाथ! ये मयूरगण आपके विवाह की खुशीमे अपनी प्रिया मयूरीके साथ कैसा सुहावना नृत्य कर रहे है और भी देखिये कि ये सघन छायावाले वृक्ष फल और पत्तोंके भारसे झुके जा रहे है मानो, आपकी पाहुनगति कर रहे है और भेटमे आपको फल फूल दे रहे है, सो ठीक ही है अपनी बारात वालेकी कौन पाहुनगति आदर-सत्कार नहीं करते है? इसप्रकार रास्तेमे प्रकृतिकी शोभा देखते हुए पांडुकुमार थोड़े ही समयमे सारे

रास्ते को तयकर सुरीपुर जा पहुंचे। कौरववंशी पांडुकुमारको आया जानकर यादववंशी राजा अन्धकवृष्टि उसकी अगवानी करनेके लिए अपने शहरसे बाहर आया और बरातको आदरपूर्वक लिया एवं मिला भेंटी की एवं कुशल आदिके समाचार परस्परमें पूछे, बाद बरातको अपने नगरमें लाये। उस समय नगरीकी शोभा अनुपम थी, जगह-जगह तोरण बंधे हुए थे, मकानों पर छोटी-छोटी सुन्दर पताकायें लगी हुई थीं। इस नगरके मंदिरों पर सुवर्णके कलश चढ़े हुए थे, जो कि बहुत सुहावने प्रतीत होते थे। घरके आगे भांति-भांतिके रंगोंके स्वस्तिक-मंडे हुए थे जिनको देखकर मालूम होता था कि यहां कुछ आज विशेष उत्सव है। यहांके महलोंमें बैठी हुई ललनायें मंगल गीत गा रही थीं, वे ऐसी मालूम देती थीं कि मानों देवांगनायें ही हों। यहांके महलोंमें चन्द्रकांत मणि लगी हुई थीं, उनपर रात्रिके समय चन्द्रमाकी चांदनी पड़ती थी, जिससे वहां असमयमें ही जलकी वृष्टि होजाती थी, जो कि मोरोंको नाचनेके लिए उत्साहित करती थी। उस समय लोगोंको ऐसा भान होता था कि वह चन्द्रकांत मणि नहीं है किन्तु घरेलू मेघ ही है। यहांके मकानोंकी दीवारोंमे स्फटिकमणि लगी हुई थीं, उनमें स्त्रियोंका प्रतिबिम्ब पड़ता था, जिसको देखकर उनको भ्रम हो जाता था कि ये हमारी सौत तो नहीं आ गई। ऐसा विचारकर वे अपने पतिके पाससे गुस्साके भाव दिखाकर हट जाती थीं, पीछे पति उनकी इस कृतिपर हंसी उड़ाते थे, कहीं-कहीं दीवारोंपर मरकत मणि—हरित मणियां भी लगी हुई थीं, जो हिरणके बच्चोंको हरित घासका भ्रम पैदा करती थीं। इसप्रकार नाना प्रकारसे सुसज्जित सुरीपुरमें उन दोनोंने (बराती और घराती जो कि पाहुन-गति करने गये थे) प्रवेश किया। वहां ले जाकर अन्धकवृष्टिने खूब सजे हुए एक सुन्दर मनोहर मण्डपमें पांडुकुमारको ठहराया और उसका अच्छी तरह आदर सत्कार किया। इसके पश्चात् शुभ मुहूर्त और शुभ लग्नमें पांडुकुमार फूलमालाओसे सुसज्जित विवाहवेदी—चंवरीके पास लाये गये। वहां कुन्तीदेवीने उन्हें अपना वर पसन्द किया। इसके सिवा माद्रीने भी माता-पिताके आज्ञानुसार कुन्तीके साथ ही साथ कुमारको अपना पति बनाया। जिसप्रकार कि सीता ने रामको अपना बनाया था। इसप्रकार कुन्ती और माद्रीका कुमारने सविधि

पाणिग्रहण किया। उससमय कुमारको किसीने वस्त्र, किसीने बहुमूल्य गहने पहराये और किसीने हाथी, किसीने घोड़े, किसीने रथ, किसीने कुछ और किसी ने कुछ देकर कुमारका यथोचित आदर सत्कार किया। इसके पश्चात् कुमार माद्री और कुन्ती दोनों कन्याओंको लेकर इन्द्रकी तरह सुशोभित हस्तिनापुरको चला आया। हस्तिनापुर पहुंचकर जब उसने अपने नगरमें प्रवेश किया तब वहांके नर-नारी अपना-अपना काम छोड़कर कुमारको देखनेके लिए दौड़ आये। इससमय पांडुकी शोभा और अपार विभूतिको देखकर एक स्त्री दूसरी स्त्रीको पूछती हुई कि हे भद्रे ! पांडु कहां है और किधरको जा रहा है। देखो तो सही इसने कैसी अपार विभूतिके साथ नगरमे प्रवेश किया है। यह बात सुन एक स्त्री बोल उठी कि तुझे यदि पांडुके देखनेकी चाह है तो इधर आ मैं तुझे पांडु को दिखाये देती हूं। कोई स्त्री अपने घरपर स्नान कर रही थी इतनेमे ही उसने विवाह करके लाये हुए कुमारके शुभागमनकी बात सुनी तो वह स्नान छोड़ आधे ही कपड़े पहिने केशोंसे जल टपकते हुए ही बाहर कुमारको देखनेके लिये चली आई, उससमय उसे अपनी कुछ सुध-बुध नहीं रही। एक स्त्री भोजन कर रही थी कि राजाके आनेके समाचार जानकर भोजन छोड़ बिना पानी पीये बाहिर दौड़ी आई, मुंह में झूठन लग रही थी। कोई स्त्री अपने रोते बालकको छोड़कर किसी दूसरेके बालकको ही गोदमें लेकर बाहर पांडुको देखनेको निकल पड़ी। कोई स्त्री दर्पणमे मुख देख रही थी वह दर्पण लिये ही घरसे बाहिर हो गई, कोई स्त्री अपने पतिको जीमता हुआ ही छोड़कर चली आई और कुमार को देखनेकी इच्छासे इधर-उधर फिरने लगी। कोई स्त्री गहने पहिन रही थी वह उन गहनोंको वहीं पड़ा छोड़ बाहिर दौड़ी चली आई, इतनी आतुर हो गई कि उन गहनोंको सन्दूकमे भी नहीं रख आई। एक स्त्री कंठका आभूषण कटिमें और कटि-कमरका आभूषण कंठमें पहिनकर बेसुध हुई बाहिर आ खड़ी हुई। किसीने राजाको देखनेकी आतुरतासे अस्थिर चित्त हो मस्तकपर काजलका तिलक और आंखोंमें कुंकुमका कज्जल डाल लिया। कोई स्त्री कपड़े पहिन रही थी सो उलटे सीधे कपड़े पहिनकर ही चल खड़ी हुई। कोई एक वृद्धा स्थूलकाय सवारीमें बैठी हुई ही दूसरी स्त्रीसे बोली कि सखी, तुम मुझे भी देखनेको ले

चलो, मै तुझे बहुत आशीर्वाद दूंगी। कोई स्त्री गर्भके भारसे थकी हुई भ्रम हो जानेसे चक्कर आने लगे जिससे वह इधर-उधर घूमती, गिरती-पड़ती फिरने लगी। कोई स्त्री रास्ता न मिलनेसे मार्ग रोकनेवाली स्त्रियोंसे प्रिय शब्दोंमें कहती कि सखी! रास्ता छोड़ो मुझे महाराजके दर्शन करने दो। कोई स्त्री रास्ता न देनेके लिए दूसरी स्त्रियोंसे कहती है किंतु वह वहांसे नहीं हटती तब उसे गिराकर जलतरंगकी तरह उससे आगे निकल जाती थी। कोई स्त्री कुन्ती और माद्रीके सहित पांडुको देखकर कहती है कि सखी! इन दोनों सुन्दरियोंने किस पुण्यसे ऐसा पति प्राप्त किया है। मालूम पड़ता है कि इन दोनोंने पूर्वभव में किन्हीं सुपात्रके लिये उत्तम दान दिया है या घोर तपश्चर्या की है अथवा श्रीगुरुकी वैय्यावृत्य की है, जिन चैत्यालय या जिनेन्द्र भगवानकी पूजन की है। अथवा जिनवाणीको मन लगाकर सुना है या जीवोंकी करुणा की है। निश्चय से ही इन कामोंमेंसे कोई इन्होंने अवश्य किया है। तभी तो इन्हें ऐसा योग्य सर्वगुण सम्पन्न वर मिला है, अन्यथा कभी नहीं मिलता, पांडुके सिरपर लगा हुआ श्वेत छत्र ऐसा शोभा दे रहा था कि मानों उसका यश ही एकत्र होकर छत्र बन गया है। पांडुके प्रखर शस्त्रों द्वारा वैरियोंका मान मर्दन कर दिया गया था और उसके बराबर और कोई बली राजा नहीं था। इसप्रकार नगरके अधिवासियोंने पांडुको नानाप्रकारकी भेंट देकर बहुत प्रशंसा की।

कुछ समय बाद पांडु अपने महलमें चला गया और दोनो पुत्रवधुओंको राजा व्यासने अपने मंदिरके पास ही बने हुए सुन्दर महलमें ठहराया। पश्चात् वह पांडु दोनों प्रियाओंके साथ सुखसे रमता हुआ उसी जगह रहने लगा। सो ठीक ही है जिसका प्रबल पुण्योदय है, उसके लिए संसारमें कोई चीज दुर्लभ नहीं है। उससमय पांडुको कुन्तीके स्पर्शसे बहुत ही आनन्द हुआ एवं उसके मुख कमलकी सुगंधिको लेकर तृप्त नहीं होता हुआ, जिस तरह भ्रमर कमलके गंधमें मस्त होजाता है उसको अपनी सुध-बुध नहीं रहती है सो ठीक ही है यह काम प्राणियोंको अन्धा बना देता है, उसको उससमय हेयोपादेयका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। कुन्तीने उससमय अपने कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे एवं सरस मुस्कानसे अपने अप्रमित सौंदर्यसे पांडुके मनको इसतरह बन्धनबद्ध कर दिया था

कि जिसतरह बेड़ी मनुष्यको जकड़ देती है फिर वह हलन-चलन भी नहीं कर सकता है। इसतरह वह पांडु अपनी नव-विवाहिता पत्नियोंके साथ कभी महलके बगीचेमें, कभी बेलोंके छाये हुए लता-वितानमें, कभी वनमें, कभी तालाबमें मन चाही क्रीड़ा करता था। कभी उनके साथ नदियोंके पुलिनमें, बालुप्रदेशमें, कभी बावड़ियोंके जलमें, कभी हिंडोलेमें मनको बहलाया करता था, खेल खेलता था। इसप्रकार पूर्व पुण्यके उदयसे नानाप्रकारके भोगोंको भोगता हुआ साथमें सत्-पात्रादिक दान करता हुआ अपने समयको बिताने लगा।

भोजकवृष्टि राजाकी एक गान्धारी नामकी पुत्री थी जो कि शीलवती, गुणवती और विदुषी थी। सुन्दरतामें अद्वितीय थी, उसकी मन्द चाल हाथीको भी लजाती थी। वह नेत्रसे मृगीको, नाकसे सूआको जीतती थी एवं मुखसे चन्द्रमाको लजाती थी, उसका विवाह धृतराष्ट्रके साथ हुआ था। उसके सौ पुत्र भविष्यमें होनेवाले थे। इसके बाद देवक राजाकी पुत्री कुमुद्वतीके साथ पंडित विदुरका पाणिग्रहण हुआ। एकसमय रात्रिके पिछले पहरमें कुन्ती अपनी शय्या पर सुखनिद्रा लेरही थी, उससमय उसने निम्नलिखित शुभ स्वप्न देखे।

पहिले स्वप्नमें उसने एक मदोन्मत्त हाथी देखा जिसके कपोलोंसे मद झर रहा था और जो अपने सुण्डादंडको इधर-उधर घुमा रहा था। दूसरे स्वप्नमें उसने कल्लोल करता हुआ समुद्र देखा। तीसरे स्वप्नमें पूर्ण चन्द्रमा देखा और चौथे स्वप्नमें उसने चार शाखावाला अर्थियोंको दान देनेवाला एक कल्पवृक्ष देखा। इन स्वप्नोंके देखनेके बाद जब सवेरा हुआ तब वह जागी और प्रातःकाल की तमाम क्रियाओंसे निवृत्त होकर उसने अपने सुन्दर वस्त्र आभूषण पहिने। पहिनकर वह अपने स्वामी पांडुके पास आई और उन्हे नमस्कार किया पश्चात् पांडुने उसका यथायोग्य सत्कार किया और उसे आधे सिंहासनपर बैठाया। इसके बाद कुन्तीने देखे हुए स्वप्नोंको सुनाकर राजा पांडुसे उसका फल जानना चाहा। उत्तरमें पांडुने कहा कि हे सुन्दरी! तुमने प्रथम स्वप्नमें हाथी देखा है उसका फल है कि तुम्हारे एक पुत्ररत्न होगा। समुद्र देखने का फल यह है कि वह पुत्र समुद्रवत् गम्भीर होगा। चन्द्र देखनेसे संसारको आनन्द देनेवाला होगा। कल्पवृक्ष देखनेसे वह पुत्र बड़ा दानी होगा। उससे जो कोई भी जिस चीजकी

याचना करेगा उसे वह वही चीज देगा। चौथे स्वप्नमें जो चार शाखावाला कल्पवृक्ष देखा है उसका फल यह है कि उसके बाद चार भाई उसके और होंगे। ये पांचों ही पुत्र सुन्दर, प्रतापी और विजयी होंगे। कुन्ती इन स्वप्नोंका फल सुनकर बहुत ही हर्षित हुई। कुछ समय बाद सोलहवें अच्युत स्वर्गसे एक भाग्य-शाली देव चला और वह कुन्तीके गर्भमें आया। सो ठीक ही है पुण्यके योगसे मनुष्योंको पुत्र-पौत्रादिक कोई भी सामग्री संसारमें दुर्लभ नहीं है। वर्तमानमें मनुष्य जो इष्ट वियोग आदि दुःख पा रहे हैं उसका एकमात्र कारण पल्लेमें पुण्य नहीं होता है। धीरे-धीरे कुन्तीका ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ने लगा त्यों-त्यों सज्जन पुरुषोंको आनन्द होने लगा। पांडुर पीले शरीरको धारण करनेवाली गर्भवती कुन्तीको देखकर पाडुके मनको बहुत ही हर्ष हुआ। उससमय कुन्ती ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानों रत्नोंकी खानि ही है। गर्भके वजहसे उसके पेटमें जो त्रिबली पड़ती थी वह मिट गई थी इससे जान पड़ता था कि इस गर्भ से वैरियोंका मान भंग अवश्य ही होगा उसका यह आद्य सुगन है। कुन्तीको उससमय मिट्टी खानेकी इच्छा रहती थी इससे जान पड़ता था कि इसका गर्भ-स्थ तनय सम्पूर्ण पृथ्वीका भोक्ता होगा। उसके कुच उन्नत होगये थे और उनका अग्रभाग काला पड़ गया था, इससे यह जान पड़ता था कि यह पुत्र अपने स्वजनोंको उन्नत अवस्थामें पहुंचायेगा और शत्रुओंके कालिमा लगायेगा। उससमय उसको थूक बहुत आता था इससे जाना जाता था कि उस पुत्रके डर के मारे वैरीगण इधर-उधर फिरेंगे। इसप्रकार गर्भके चिन्होंसे चिन्हित कुन्तीको उससमय शयन, भोजन और आभूषण आदि किसी भी कार्यमें रुचि नहीं रही किन्तु जिनेन्द्रभगवानके पूजन, दर्शन एवं और भी धार्मिक कार्योंके करनेमें उसे दोहल रूपसे प्रीति होती थी। वह नित्य ही जिनेन्द्रदेवका दर्शन-पूजन करती, व्रत करती और व्रती पुरुषोंमें अनुराग रखती थी, एक बार उसको यह दोहला हुआ कि मैं युद्धमें जाकर बड़े-बड़े शत्रुओंका संहार करूं। इसप्रकार उसको और भी दोहले हुये। पश्चात् गर्भके जब नौ मास पूर्ण हुए तब उस पुण्यवतीने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया। उसके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसके नेत्रकमल बहुत बड़े थे, मुंह चन्द्रमाके जैसा था, उसके उत्पन्न होते ही अन्धेरा न जाने कहां

विलीन होगया जिसप्रकार कि सूर्यके उदय होनेपर विला-जाता है। पुत्रोत्पत्ति के समय राजाके घरपर आनन्द भेरी बज रही थी। जिससे कि राजमहल गूंज रहा था। मालूम पड़ता था कि बड़ा भारी मेघ ही गरज रहा हो। इसके सिवा नगाड़े, शंख, वीणा, मृदंग, दुंदुभि आदि बाजोंकी ध्वनि होरही थी। नर्तकी नृत्य कर रही थी, भट्ट लोग विरदावलि बखान कर रहे थे। नगरकी गली-गली मे चन्दनका छिड़काव होरहा था, घर-घर रत्नोंके तोरण बंध रहे थे और उत्सवके लिये मंडप सजाये गये थे। मतलब यह है कि पुत्रोत्सवकी खुशीमे पुर-वासियोंने नगरीकी नानाप्रकारसे शोभा की थी और वह उस समय स्वर्गपुरीके समान दीखती थी।

पुत्र-जन्मके समाचार जब मेघके समान पांडुने सुने तो उससमय उसने लोगोंकी इच्छानुसार खूब ही धनकी वर्षा की, यथेच्छ दान दिया और उनका यथायोग्य आदर-सत्कार किया। वह नवजात बालक कौरववंशरूपी समुद्रको वृद्धिगत करनेके लिये चन्द्रमाके समान होता हुआ। चन्द्रमाके उदय होनेपर जिसप्रकार समुद्र बढ़ता है वैसे ही उस पुत्रने भी रणवासमें एवं सारे नगरमें आनन्द ही आनन्द फैला दिया। उसके उत्पन्न होनेपर बन्धु वर्गको युद्धमे स्थिर होनेकी भावना हुई इसलिये इसका नाम 'युधिष्ठिर' रखा। तथा गर्भमे आते ही वह लोगोंको धर्मसाधन बना इसलिए इसका नाम 'धर्मराज' रखा। माताका दूध पीते समय जो दूध मुंहसे बाहर आ छलकता था उससे उज्ज्वलताको धारण करनेवाले शरीर और शरीरकी स्वाभाविक उज्ज्वल दीप्तिसे जो दिशाये व्याप्त हो रही थी इससे उसकी और ही अपूर्व शोभा होगई थी। वह बालक अपनी तोतली बोलीसे एवं मधुर मुस्कानसे तथा मणिखंचित गृहांगणकी भूमिमें लिपटते हुए, गिरते पड़ते हुए माता-पिताको सतत ही प्रसन्न करता रहता था, बालक युधिष्ठिर जिसप्रकार आयु शरीरादि वृद्धिको प्राप्त होगया उसीप्रकार उसमें स्वाभाविक गुण भी बढ़ते जाते थे।

युधिष्ठिरके पिता पांडु क्रियाकांडके अच्छे पंडित थे इसलिये उन्होंने अपने बालकका अन्नाशन, सचौल, उपनयन आदि सभी संस्कार शास्त्रविधि अनु-सार कराये। क्रमसे युधिष्ठिरने बाल्य-कालको लांघकर युवावस्थामें पैर रखा।

उससमय भी उसकी वाणी, कला, विज्ञान, शील आदि गुण जैसेके तैसे ही रहे। उसके रंचमात्र भी मदका भाव तक नहीं आया।

उसके मस्तकपर उससमय निर्मल मणियोंसे जड़ा हुआ मुकुट अत्यन्त शोभा देता था। मानों शिखर समेत सुमेरु पर्वतकी चोटी ही हो। उसका मुख अत्यन्त प्यारा था और वह चन्द्र मंडलको लजाता था। क्योंकि चन्द्रमा तो घटता बढ़ता रहता है तथा उसमें लांछन भी है। यह बात उसके मुखमें नहीं थी। उसके कानोंमें पहिने हुए कुंडल अत्यन्त शोभा देते थे एवं नेत्र सूक्ष्मदर्शी और मनोहर थे। उसकी नाक सुगंधिके ग्रहण करनेमें समर्थ थी एवं चंपाके समान शोभायुक्त थी। सुन्दर किंपाक फलके समान उसके लालिमा लिये होष्ठ थे, भृकुटी चंचल थी। उसके कंठमें हीरोंका हार पड़ा हुआ था जिससे उसकी शोभा अत्यन्त अद्भुत होगई थी। उसका वक्षःस्थल बहुत बिस्तृत था, वह ऐसा मालूम देता था कि मानों बिस्तृत और उन्नत पहाड़ ही हो। उसकी भुजायें स्तम्भ सरीखी लम्बी थीं अथवा हाथीके सुण्डादंडकी तरह लम्बी थीं, वे रणक्षेत्रमें जय-लक्ष्मीको प्राप्त करनेमे समर्थ थीं। उसकी हथेलीमें नक्षत्र, मछली, कच्छप, गदा, शंख, चक्र, माला, तोरण आदि शुभलक्षण थे। उसका सुन्दर शरीर कटक अंगद केयूर, मुद्रिका आदि भूषणोंसे अत्यन्त शोभायुक्त था। जैसे कि स्वर्गमें भूषणांग जातिका कल्पवृक्ष शोभाको प्राप्त होता है। उसकी नाभि बावड़ीके सदृश थी, उसमे लावण्यरूप जल लबालब भरा हुआ था। उसकी कमरकी करधनीकी शोभा ही निराली थी। वह दूसरी पत्नीसी जान पड़ती थी। जिसप्रकार फेन सहित जलसे नदीका किनारा शोभाको प्राप्त होता है उसीतरह उत्तम वस्त्रोंसे व्याप्त उसके सघन-जघन शोभते थे। इसप्रकार उसके उरुस्थल, जंघायें आदि अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुशोभित होते थे। उसके रूपकी उपमा देनेके लिए कोई वैसी दूसरी सुन्दर चीज ही नहीं थी कि जिसके साथ उसके रूपकी उपमा दी जाय। इस-प्रकार युधिष्ठिरका शरीर अत्यन्त शोभायुक्त था। इसके बाद कुन्तीने भीमको जन्म दिया। भीम युधिष्ठिरके समान ही शिष्ट, सुन्दर और पराक्रमशाली था। उसके पराक्रमको सुनकर बड़े-बड़े योद्धा भय मानते थे इसीलिये इसका नाम भीम पड़ा था। उसकी महान काय, लम्बी और सुदृढ़ भुजायें थीं। वह गुणोंका

धनी था, महाकांतिको धारण करनेवाला था। सुन्दर शरीरवाला था, पृथ्वीका भूषण था। इसके बाद कुन्तीने धनंजय नामके पुत्रको जन्म दिया। वह महा-तेजवाला और धन एवं जयको प्राप्त था। वह शत्रुरूप ईंधनको जलानेके लिए अग्निके समान था, इसलिए वास्तवमे धनंजय था। उसका दूसरा नाम अर्जुन था। उसका यह नाम इसलिये पड़ा था कि उसके शरीरकी कांति अर्जुन–चांदीके समान थी। वह दुष्टोंके निग्रह करनेमें एवं शिष्टोंके ऊपर अनुग्रह करनेमे समर्थ था। उसकी माता कुन्तीने स्वप्नमें इन्द्रको देखा था। इसलिये लोग उसे शक्र-सुत भी कहते थे। कविके यदि सो जिह्वा भी हो जाय तो भी वह उसके रूप, गुण, तेज, यश और बलको कहनेमें समर्थ नहीं हो सकता है। इसप्रकार कुन्ती ने पराक्रमशाली सुन्दर शरीरयुक्त गुणाढ्य तीन पुत्रोंको जन्म दिया। इसके बाद पांडुकी दूसरी स्त्री माद्रीने कुलको समुज्ज्वल करनेवाले नकुलको जन्म दिया। यह नकुल शत्रुओंके कुलोंका नाश करनेवाला था, तेज और गुणोंकी खानि था। पश्चात् सहदेवको जन्म दिया। सहदेव भी गुणाढ्य और महाबली था तथा शस्त्र और शास्त्र विद्यामें विशारद था। इसप्रकार वैरियोंको निर्मूल करनेवाला प्रचंड तेजका धारक पांडुराजा अपने पांचों पुत्रोंके साथ सुख भोगने लगा। जिसप्रकार कि कोई निरोगी—स्वस्थ पुरुष अपनी पांचों इंद्रियोंके द्वारा सुख भोगता है उसीप्रकार पांडुराजा स्त्रियोचित सम्पूर्ण गुणोसे युक्त कुन्ती और सुन्दरी माद्री सहित प्रतापी पांचों पुत्रोके साथ आनन्दपूर्वक सांसारिक सुखोंको भोगता हुआ रहने लगा।

इधर परम प्रीतिको प्राप्त हुई धृतराष्ट्रकी प्यारी गांधारी अपने बन्धु-बांधवोंके साथ सुख भोग रही थी। धृतराष्ट्र गांधारीके मुख कमलके साथ भ्रमरकी तरह केलि–क्रीड़ा करता हुआ तृप्त नहीं होता था, उन दोनों दम्पत्ति में भारी स्नेह था, एक दूसरेका वियोग सहन नहीं होता था। सो ठीक ही है कामीजन कामके स्थान पर ही सुख पाते है उन्हें कामके साधक निमित्तोंमे ही आनन्द मिलता है और उनके वियोगमें दुःख। गांधारी अत्यन्त पतिभक्ता थी इसलिये वह अपने पतिको नानाप्रकारकी चेष्टाये करके जैसे हास्य, कटाक्ष, विनोद, संगीत आदि निमित्तोंसे रिझाती थी। एकसमय उस सदाचारी धृतराष्ट्रने

गांधारीके साथ महाभोग और वरा-भोग आदि क्रीड़ायें कीं। उससमय पुण्य योगसे गांधारीके गर्भ रह गया। नीतिकार कहते हैं कि संसारमें ऐसी कौनसी वस्तु दुर्लभ है जो पुण्य योगसे प्राप्त नहीं होती हो। धीरे-धीरे जब गर्भके दिन पूरे हुए तब उस सुमुखीने पुत्रको जन्म दिया, जिससे लोगोंको बड़ा भारी हर्ष हुआ। डौंढ़ी द्वारा पुत्र उत्सवका समाचार पाकर पुरंध्रीजन माताको आशीर्वाद देने लगे कि देवी, तुम ऐसे ही सुखकी खानि सौ पुत्रोंको जनो। वह पुत्र शत्रुओं को भय पैदा करनेवाला एवं उनके साथ भयंकरतापूर्वक युद्ध करनेवाला था। शत्रु उसकी कथा सुननेसे ही कंपित होजाते थे इसलिये लोग उसे दुर्योधनके नाम से पुकारते थे। जो मनुष्य पुत्रोत्सवका समाचार लेकर राजाके पास गया था राजाने उसे अपने राज-चिन्ह-सिंहासन, चमर-छत्र आदिको छोड़कर बाकी और द्रव्यादि देनेमे कोई कसर नहीं की। उससमय राजाने जेलमें पड़े हुए कैदियोंको छुड़वा दिया। पुत्रोत्सवकी खुशीमें उससमय नानाप्रकारके वादित्र बजाये गए जिससे दसों दिशाओंमे यह बात फैल गई कि आज राजाके प्रतापशाली पुत्र उत्पन्न हुआ है। इसप्रकार दुर्योधन विद्या, बुद्धि आदि गुणोंमें दिन-प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता हुआ। इसके बाद गांधारीने दुःशासन नामके दूसरे पुत्रको जन्म दिया। यह पुत्र भी स्पष्टवक्ता और सर्व प्रतिष्ठित था। उसकी जितनी भी चेष्टायें थीं वे सब लोगोंके लिये हितकारी और आदर्शरूप थीं। इसके बाद गांधारीने और अट्ठानवे पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम ये हैं—३ दुर्द्धर्षण, ४ दुर्मर्षण, ५ रणश्रांत, ६ सुमाध, ७ विद, ८ सर्वसह, ९ अनुर्विद, १० सुभीस, ११ सुवन्हि, १२ दुःसह, १३ दुसल, १४ सुगात्र, १५ दुःकर्ण, १६ दुःश्रव, १७ वरवंश, १८ अवकीर्ण, १९ दीर्घदर्शी, २० सुलोचन, २१ उपचित्र, २२ विचित्र, २३ बारुचित्र, २४ शरासन, २५ दुर्मद, २६ दुःप्रगाह, २७ युयुत्सु, २८ विकट, २९ ऊर्णनाभ, ३० सुनाम, ३१ नन्द, ३२ उपनन्द, ३३ चित्रबाण, ३४ चित्र-वर्मा, ३५ सुवर्मा, ३६ दुर्विमोचन, ३७ अयोबाहु, ३८ महाबाहु, ३९ श्रुतवान, ४० पद्मलोचन, ४१ भीमबाहु, ४२ भीमबल, ४३ सुषेण, ४४ पंडित, ४५ श्रुतायुध, ४६ सुवीर्य, ४७ दंडधर, ४८ महोदर, ४९ चित्रायुध, ५० निःषंगी, ५१ पाश, ५२ वृन्दारक, ५३ शत्रुंजय, ५४ शतृसह, ५५ सत्यसंध, ५६ सुदुःसह,

५७ सुदर्शन, ५८ चित्रसेन, ५९ सेनानी, ६० दुःपराजय, ६१ पराजित, ६२ कुंडशायी, ६३ विशालाक्ष, ६४ जय, ६५ दृढ़हस्त, ६६ सुहस्त, ६७ वातवेग, ६८ सुवर्चस, ६९ अदित्यकेतु, ७० बह्वाशी, ७१ निबंध, ७२ प्रियोदी, ७३ कवाची, ७४ रणशोंड, ७५ कुंडधार, ७६ धनुर्धर, ७७ उग्ररथ, ७८ भीमरथ, ७९ शूरबाहु, ८० अलोलुप, ८१ अभय, ८२ रौद्रकर्मा, ८३ दृढ़रथ, ८४ अनादृढ़, ८५ कुंडभेदी, ८६ विराजी, ८७ दीर्घलोचन, ८८ प्रथम, ८९ प्रमाथी, ९० दीर्घालाप, ९१ वीर्यवान, ९२ दीर्घबाहु, ९३ महावक्ष, ९४ सुलक्षण, ९५ विलक्षण, ९६ कनक, ९७ कांचन, ९८ सुध्वज, ९९ सुभज, १०० अरज। इन नामोंके सौ पुत्र उत्पन्न हुए। ये सभी पुत्र यशस्वी, बुद्धिमान और पराक्रमशाली थे। सभी पुत्र शास्त्र और शस्त्र विद्याके प्रकांड विद्वान थे। जिसप्रकार कौरव और पांडव वृद्धिको प्राप्त होते जाते थे त्यों-त्यों उनके आनन्द देनेवाली लक्ष्मी भी बढ़ती जाती थी। निर्मल कांतिके धारक ब्रह्मचारी गांगेय इन सब कौरव और पांडवोंका लालन-पालन, निरीक्षण-शिक्षण देते थे, जिसकी वजहसे ये पुत्र थोड़े ही दिनोंमे उच्चकोटिके विद्वान् होगए। इन पुत्रोंका द्विजोत्तम द्रोणाचार्यने भी निरीक्षण-परीक्षण किया एवं धनुर्विद्या सिखलाई जिससे ये सभी धनुर्विद्यामे विशारद होगये। ये सभी पुत्र द्रोणाचार्यकी खूब आदर-सत्कार, विनय-सुश्रूषा करते थे क्योंकि विद्या विनयसे ही आती है। जो छात्र गुरुकी जितनी विनय करता है, उसको विद्या भी उतनी ही जल्दी आती है। अर्जुन बहुत ही सरल-चित्त था, अत्यन्त विनयी था, पापकर्मोसे हमेशा ही दूर रहता था, सदा ही अच्छे कर्मोमे मनको लगाता था इसलिए धनुर्विद्या विशारद गुरु द्रोणाचार्यने प्रसन्न होकर उसे धनुर्विद्याकी विशेषतया शिक्षा दी। इसके सिवा उन्होंने उसे शब्द-भेदी महाविद्या भी सिखाई।

ग्रंथकार कहते है कि गुरुका विनय करनेसे क्या-क्या चीज नहीं मिल जाती है। विनय ही संसारमे एक ऐसी चीज है कि जिससे मनोभिलषित कार्यकी सिद्धि होजाती है। अर्जुनको 'पार्थ' भी कहते है। पार्थने जो कुछ भी गुरुसे विद्या प्राप्त की थी वह सब उसकी गुरु-भक्तिका ही प्रसाद था। इसप्रकार अर्जुनने गुरुद्रोणसे विनयपूर्वक धनुषके द्वारा लक्ष्यबेध करना सीख लिया जिससे वह राज-सभामे

जगतके धनुर्विद्या विशारदोंको नीचा दिखाकर आकाशमें चन्द्रकी तरह सुशोभित होने लगा। इसप्रकार सुखसागरमें निमग्न डूबे हुए कौरव और पांडवोंका बहुत-सा समय व्यतीत होगया, वह बीतता हुआ समय उनको कुछ भी मालूम नहीं हुआ। सो ठीक ही है कि सुखके सैंकड़ों वर्ष बातकी बातमें निकल जाते हैं और दुःखकी एक घड़ी भी नहीं निकलती है।

इसप्रकार पांडु राजा सुखसे अपना समय बिताता था। कोई भी उसका शत्रु न था, बहुतसे राजा-महाराजा उसके पक्षमें थे। जिसके पांचों ही पुत्र बहुत बलशाली थे, नीतिज्ञ थे। उनमें ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर जिसको कि धर्मपुत्र कहते थे वह सदा ही धार्मिक कार्योंमें रत रहता था। उसका छोटा भाई भीम बहुत ही भयंकर योद्धा था, उसके सामने विपक्षी आंख उठाकर भी नहीं देख सकता था। इसीप्रकार अर्जुन भी उत्तम कार्योंको करनेवाला और समर्थ पुरुषों द्वारा पूज्य था। उसके शक्रसुत, अर्जुन और पार्थ ये तीन जो नाम थे वे वास्तवमें सफल नाम थे, वह शस्त्र और शास्त्र विद्यामें अत्यन्त प्रवीण था। नकुल अरि-गणको समूल नष्ट करनेवाला था और सहदेव प्रख्यातकीर्ति था इसप्रकार ये पांचों पांडव सदा सुशोभित हों। उन दुर्योधनादि कौरवोंकी भी जय हो जो कि अतुलबल और सम्पत्तिके धनी हैं एवं शुभ लक्षणोंसे चिन्हित हैं, जो शस्त्र-शास्त्र आदि विद्यामें प्रवीण हैं, नीतिके पंडित हैं, जिनका चित्त निरन्तर ही भगवानके चरणोंकी सेवा करनेमें लगा रहता है।

नवम अध्याय समाप्त।

अथ दशम अध्याय।

मै उन अभिनन्दन भगवानकी स्तुति करता हूं कि जिन्होंने शुद्ध आतम-स्वभावको प्राप्त कर लिया है, जो सत्यार्थ आगमके उपदेशक हैं। संसारसे पार कर मोक्षमार्गमे स्थिर करनेवाले हैं, आनन्दके कर्ता है। जिनकी आत्मा अत्यन्त निर्मल बन गई है, जो सबको समान दृष्टिसे देखते है। वे अभिनन्दन प्रभु हमें भी अपनी सरीखी बुद्धि प्रदान करें।

एकसमय श्वेत छत्रसे सुशोभित राजा पांडुको वन-क्रीड़ा करनेकी इच्छा हुई। उसने अपने नगरमे इसकी भेरी डौंढ़ी पिटवा दी जिसका शब्द सुनकर

चारों प्रकारकी सेना तैयार होगई। चंचल घोड़े, मदोन्मत्त हस्ती और सुन्दर रथ सब तैयार होगए। जिससमय सेना तैयार होकर बाहर निकली उससमय उसके शब्दोंसे दसों दिशायें गुंजायमान हो गई। इसप्रकार पांडु राजा बहुत ठाट-बाट के साथ वनको चला। उसकी आज्ञासे माद्री भी उनके साथ चली। वह अद्वितीय सुन्दरी थी, उसकी चाल-ढाल सब सौम्य थी, मुखकमल सदा ही विकसित रहता था उसके शरीरकी शोभा उससमय देखने ही योग्य थी। वह पालकीमें बैठकर वनमे पहुंच गई। थोड़ी देर बाद पांडु भी उस सघन वनमें पहुंच गया, वहां उसका माद्रीके समागमसे मन बहुत प्रसन्न हुआ। वह वहां पहुंचकर ऊँचे-ऊँचे ताल वृक्ष देखता हुआ तो कहीं सरल सरसके वृक्ष देखता हुआ। कहीं मंजरियों की सुगंधिसे सुगंधित आम वृक्षोंको देखता हुआ, कहीं अशोक वृक्ष जो कि कामिनियोंकी पैरकी ताड़नासे हरे-भरे होजाते हैं उनको देखता हुआ और कहीं प्रमदाओंके कुल्लोंसे सींचे गए बकुलक वृक्ष देखता हुआ, कहीं कुरुवक वृक्ष देखता हुआ, कहीं वह मदोन्मत्त भ्रमरोंके शब्दोंको सुनता हुआ तो कहीं कोयलों के मधुर गानको सुनता हुआ। कहीं स्त्रियोंके कंठसे निकले हुए मधुर गानोंको सुनता हुआ, कहीं तरल तरंगोंके शब्दो द्वारा किन्नरियोंके शब्दोंको भी जीतने-वाले तालाबोंको देखता हुआ। इसप्रकार माद्री रानी सहित वह वनकी शोभा को देखता हुआ बड़े अमन चैनसे क्रीड़ा करता हुआ। उसने विलासोंके द्वारा माद्रीको बहुत रमाया, उसके साथ नानाप्रकारकी क्रीड़ा की। इसके सिवा उसने चन्दनके रससे, अगुरुद्रवके मर्दनसे, सुगन्धित द्रव्यके निक्षेपसे एवं स्त्रियोंके चंचल कटाक्ष सहित निरीक्षणोंसे तथा उनके सुन्दर-सुन्दर आलापोंसे अपने चित्तको हरप्रकार बहलाया परन्तु उसको उन सब चीजोंसे तृप्ति नहीं हुई किन्तु विषय-वांछा बढ़ती ही गई सो ठीक ही है अग्निमे जितनी भी लकड़ी पड़ती जायगी उतनी ही बढ़ती जायगी। समुद्र कभी नदियां पड़नेसे नहीं अघाता उसीप्रकार कामी पुरुष भी विषयसेवन करते हुए नहीं अघाते। कभी वह राजा बावड़ियों मे जाकर स्त्रियोंके साथ सुगन्धित चन्दनके जलकी बूंदोंसे क्रीड़ा करता था और कण्ठतक पानीमे बैठ जाता था तब वह ऐसा प्रतीत होता था कि मानों स्त्रियों के मुखरूपी चन्द्रमाको ग्रसनेके लिए राहु ही आगया हो। कभी वह वस्त्र

खींचता और कभी स्त्रियोंके मुखमें अबीर मलता था। इसप्रकार कामुक राजा अपनी स्त्रीके साथ सुन्दर एकान्त स्थान देखता हुआ, वहां उसने बहुतसे लता-वितानोंको देखा। वह एक सांद्र लता मंडपमें बैठ गया। वहां पुष्पोंकी सुगन्धि की वजहसे भौंरे गूंज रहे थे। उस लतावितानमे उसने एक सुन्दर फूलोंकी शय्या बनवाई और कामासक्त हो उसपर माद्री सहित बैठ गया और वहां माद्री के साथ इच्छित काम क्रीड़ा की जिससे उसका मदन ज्वर उतर गया। इसी समय उसने मंडपके पास ही क्रीड़ा करते हुए एक हिरणको देखा। हिरण उस समय अपनी हिरणीके साथ रतिक्रीड़ा कर रहा था। उसे देखते ही उसके ये भाव होगए कि देखो यह तिर्यञ्च भी मुझे खिजाता है। बस यह विचार आते ही उसको उसपर बहुत गुस्सा आया और उसने धनुष चढ़ाकर उसपर बाण छोड़ दिया। हिरण उससमय बहुत ही कामासक्त होरहा था। बाण लगते ही वह शब्द करता हुआ जमीनपर गिर पड़ा, उसे उस समय बहुत वेदना हुई जिसकी वजहसे वह तड़प-तड़पकर मर गया। ग्रंथकार कहते हैं कि धिक्कार है इन भोगोंको कि जिनके कारण लुब्धकोंकी यह दशा होती है। उसीसमय आकाशसे देववाणी हुई कि हे राजन्! तुझे यह दुःखदायी निंद्य कार्य नहीं करना था। अरे! विचार तो सही कि इन भोले निरपराध प्राणी तृण खाकर अपनी उदर पूर्ति करनेवालोंको ही जब राजा मारने लगे तो संसारमें उनका रक्षक ही कौन रह जाता है? मैंड खेतकी रक्षा करनेके लिये ही लगाई जाती है, वही यदि खेत को खाने लगे तो रक्षक कौन? यह तो रक्षक-भक्षकका मामला होगया। पण्डित पुरुष तो इन्हें अपराध करनेपर भी नहीं मारते फिर निरपराधियोंकी तो बात ही क्या है? राजन्! यह ठीक है कि राजा शिष्टोंका पालन करते हैं और दुष्टोंका निग्रह करते हैं किन्तु आप यह जानते हुए भी क्यों इस युक्तिमत बातसे विपरीत चल रहे हैं? थोड़ा विचारिये तो ये विचारे हिरण न तो किसीको मारते हैं, न किसीका धन चुराते हैं और न किसी की रखी हुई घासादिको ही खाते हैं। वे तो इधर-उधर फिर-फिराकर महता कष्टेन अपनी उदर पूर्ति करते हैं फिर भी राजा लोग उनके साथ इतनी निर्दयता, इतनी कर्कशता करें कि वे उनको उनके प्राणोंसे भी खो देवे इससे और निंद्यकार्य उनका क्या होगा?

इस महान अपराधसे परलोकमे उनकी क्या गति होगी, वे मरकर कहां जायेंगे सो तो विचारना चाहिये ? राजन् ! एक चींटी अपने शरीरमें काट लेती है तो कितनी वेदना होती है, उसका अनुभव करते हुए भी आपने इस गरीब हिरणको मार दिया यह कहां तक उचित किया ? जीव घातसे केवल पाप ही होता है इसलिये हिंसा भूलकर भी नहीं करना चाहिए क्योंकि हिंसाकी सर्वत्र निंदा की गई है। जो अधर्मी धर्मकी आड़ लेकर हिंसामे धर्म मानते है वे गायके सींगोंसे दूध निकालनेकी इच्छा करते है अथवा अग्निसे कमलकी उत्पत्ति चाहते है एवं विष खाकर जीना चाहते है, सांपके मुंहसे अमृत चाहते है एवं छिपते हुए सूर्यसे दिनकी अथवा शिलापर अंकुरारोपण करके उसपर अन्न उगनेकी आशा करते हैं। हिंसा तीन कालमे भी सुख देनेवाली नहीं है। धर्मके नामपर हिंसा करना यह धर्मको उठाना है और अपनी जिह्वा इन्द्रियकी लालसाको पुष्ट करना है। हिंसा सीधी नरककी नसैनी है। यह जानकर राजा लोगोंको सब जीवोंपर दया करनी चाहिए। दया ही उत्कृष्ट धर्म है। दयासे बढ़कर और संसारमे कोई चीज नहीं है। इसप्रकार आकाशवाणीको सुनकर वह दयालु राजा संसार शरीर और भोगोसे विरक्त होगया। देखो, कर्मकी बड़ी विचित्रता है। कहां तो राजा विषय-भोगोंमे इतना अनुरक्त था कि उसको विषयसेवनके सिवाय कुछ दूसरा काम ही नहीं सूझता था और कहां एकदम उनसे विरक्त होगया। सो ठीक ही है, काललब्धि एक ऐसी चीज है जो जीवकी भवितव्यताके अनुसार उसके भाव और तद्रूप क्रिया कर देती है। वह उससमय विचारने लगा कि यह इंद्रिय विषय प्राणियोंके लिये दुर्गतिमे लेजानेवाला है। जहां वृथा ही प्राणवध हो उसमे मेरी क्या सिद्धि ? भला जिस राज्यसे पाप हो उससे मेरा क्या सम्बन्ध ? इस जीवने अनन्तबार मनुष्यादि पर्याय धारण करके विषयसुख भोगे उनसे ही जब तृप्ति नहीं हुई तब अब कैसे तृप्ति हो सकती है ? दूसरी बात यह है कि जो चीज एकबार भोगी जा चुकी वह जूठी होगई। कौन ऐसा संसारमे बुद्धिमान होगा जो उच्छिष्ट खाना पसन्द करेगा ? एक बात यह भी है कि विषय-भोग भोगते वक्त ही सुहावने लगते हैं परन्तु उत्तरकालमें नीरस होजाते हैं और विष समान प्रतीत होने लगते है। विषय-सेवन जीवको कोई सुख देनेवाली

चीज नहीं है; वह तो रोगका प्रतिकार है। इसीलिए आचार्योने ऊपर-ऊपरके स्वर्गोमे प्रविचारका नहीं होना ही सुख बतलाया है। दूसरी बात यह भी है कि यह विषय सुख अनित्य है—क्षणस्थायी है। कुछ देर चमत्कार दिखाकर नष्ट हो जानेवाला है। राजा विचार करता है कि हे आत्मन्! तूनें अनन्तकाल तक विषय सुख भोगे पर तृप्ति नहीं हुई परन्तु अब तो इनसे सन्तुष्ट हो। इससमय तो तुझे सब अनुकूल साधन मिले हुए हैं। याद रख, समय पाते हुए तू यदि नहीं चेता तो कर्मका ऐसा झकोरा आयेगा कि पीछे ढूंढे भी पता नहीं लगेगा। दूसरी बात यह है कि तू समझकर भी इन विषयोंसे विरक्त नहीं होता है तो एक दिन वह आयेगा कि तुझे ही यह विषय छोड़ देंगे। इसलिए समझदारी इसीमें है कि तू ही इनका त्याग पहिले करदे और अपनी चीज पकड़ जिससे तेरा हित हो। पर-पदार्थमे रत होनेसे जीवका कभी कल्याण नहीं होता यह तू निश्चित समझ। अब तक मै मोहके फन्देमें पड़ा हुआ था, अब मैं प्रतिबुद्ध हुआ। इससमय मैं आत्म-सुखसे सुखी हूं, मुझे सन्तोष है और आत्माके सच्चे सुखका अभिमान है। अब मुझे स्त्री प्रेमसे कुछ प्रयोजन नहीं। यह कामी पुरुष विषय भोगोमे तन्मय होकर अपने भोजनको, त्यागको, विवेकको, वैभवको, बड़प्पनको और क्या कहा जाय अपने जीतव्यको भी छोड़ देते हैं। कामी राजा अपने राज-काजको भूल जाते है उन्हें अपने कर्तव्य-अकर्तव्यका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। वे मिथ्यात्वकी वजह से अकर्तव्य कार्य भी करने योग्य बना लेते हैं। वास्तवमे विचार किया जाय तो स्त्रीके अंग-प्रत्यंग ही घृणाको पैदा करने वाले हैं किन्तु कुकवियोने उनकी यहां तक प्रशंसा कर डाली है कि उनकी उपमा के लायक संसारमें कोई चीज ही नहीं है। देखिये, स्त्रियोंके कुच मांसके पिंड है किन्तु उनको क्या कहा जाता है कि ये दो स्वर्णके कलश है अथवा अमृतके घड़े है। स्त्रियोके मुख श्लेष्म खंकार और थूकका घर है परन्तु उसको उपमा दी जाती है पूर्ण चन्द्रमाकी, इसीलिये स्त्रियोंको चन्द्रमुखी कहा जाता है। नेत्र-युगल कीचड़ जैसे घृणास्पद मलके स्थान है किन्तु कहा यह जाता है कि यह मृगलोचना-हिरणके समान नेत्रवाली है। इसीप्रकार नाक दुर्गंधित वस्तुका स्थान है किंतु दुःख है कि उसको कामुक शुकके समान नाकवाली कहते है।

उसके जघन मल-मूत्र करनेके स्थान हैं किंतु उनको उपमा दी जाती है कि ये तो हाथीके सुण्डादंड हैं अथवा कामकेलि करनेके मनोहर स्थान हैं। भला विचारने की बात है कि जिन स्थानोंसे मल-मूत्र बाहर होता है, उन स्थानोंसे प्रीति करना यह कितनी मूर्खताका काम है ? किन्तु नहीं, कामी पुरुष उनमें इतने अनुरक्त होते हैं कि जितना विष्ठा खानेवाला सूअर विष्ठा खानेमें अनुरक्त होता है। इसीप्रकार स्त्रियोंके बालोंकी नानाप्रकारसे प्रशंसा की जाती है परन्तु वास्तवमें चीज कुछ नहीं है। इसलिए राजा विचार करता है कि हे आत्मन् ! विचार, तुझे इस स्त्री-संगसे क्या, कैसा और कितना आनन्द मिलता है ? जब तू इस बातका विचार करेगा तो उसकी असलियतको अवश्य समझेगा। प्रथम स्त्रीके शरीरपर तू अपनी बुद्धिको दौड़ा कि वह कैसा है ? यह शरीर सात धातुओंका पिण्ड है, नश्वर है, मायाका स्थान है। फिर भी तू रागान्ध होकर इसमें आसक्ति करता है। आश्चर्य है तेरी बुद्धि पर ! यह कैसा महा मोहका पर्दा आत्मापर पड़ा हुआ है कि जीवकी बुद्धि खोटे कार्योंकी तरफ स्वतः ही लग जाती है और अच्छे कार्योंकी तरफ रास्ता बतलाने पर भी नहीं जाती है।

महत् आश्चर्य तो इस बातका है कि समझदार पुरुषोंकी बुद्धिमें भी भाटे पड़ जाते हैं कि वे जान बूझकर भी पापोंकी तरफ अपनी आत्म प्रवृत्तिको लगाते हैं। यह कितना भयंकर महा मोहका पर्दा है। धिक्कार है और शतबार धिक्कार है, इस मोहको। देखो, ज्वलन्त उदाहरण रावणका सामने है कि उसने पवित्र सीताके रूपपर मोहित होकर किस प्रकारकी भयानक आपत्तियोंका सामना किया था, आखिरमें अपना राजपाट और तो क्या जीवनसे भी हाथ धोना पड़ा था। इतना ही नहीं मरकर नरक गति भी प्राप्त की, जिसकी वजहसे अद्यावधि दुःख भोग रहा है। मोहके निमित्तसे जब जीव ठगाया जाता है तब उसकी बुद्धि भी उससमय ठग ली जाती है, फिर वह भौंचक्का-सा हुआ इधर-उधर उस अग्निको शमन करनेके लिए दौड़ता है और नानाप्रकारके संकल्प विकल्पोंमें पड़ जाता है। उससमय वह विचारता है कि मैं कहां जाऊं, कहां बैठूं, क्या करूं, किस जगह मुझे सुख मिलेगा, किस राजाकी जाकर मैं खुशामद करूं, जिससे कि मुझे लक्ष्मी मिले। सौभाग्यशाली स्त्री कैसी होती है और मेरा भाग्य

क्या है। भोग-विभूति मैं कैसे भोग सकूंगा। ये पञ्चेन्द्रियके विषय कैसे सुहावने हैं। मेरा मनोरथ कौनसी वस्तुके प्राप्त होनेसे सफल हो सकेगा। मै अपने शत्रु को कब मार सकूंगा। यह अशन मेरा है, यह वसन मेरा है, यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है, यह बन्धुवर्ग मेरा है। इसप्रकार बाह्य पदार्थोंमे यह मोही जीव मोह बुद्धिको करता हुआ अपने अमूल्य समयको व्यर्थ ही खो देता है। तब तब होता क्या है कि इस विचार-विचारमें ही उसका जीवन शेष होजाता है अर्थात् काल आकर सिर पर खड़ा होजाता है और कहता है कि अब चलो यहांसे, तुम्हारा समय हो चुका। बस, मनके संकल्प-विकल्प वहीं पड़े रह जाते है और अपना बोरिया बखंडा बांधकर चला जाना होता है। पांडुराजा बिचार करता है कि मुझ दुष्ट आत्माने इस बिचारी मृगीके प्राणप्यारे निरपराध हिरण को एक क्षणमात्रमे धराशायी कर दिया यह मेरा कार्य बहुत ही निंदास्पद हुआ है। अब मै कौनसा ऐसा कार्य करूं जिससे मेरा इस पापसे पिंड छूटे। राजा यह विचार करता हुआ इधर-उधर अन्यमनस्क हुआ देखने लगा। इतने ही में उसे एक योगिराजके पवित्र दर्शन हुए। उनका नाम सुव्रत था, वे योगिराज व्रतोंसे युक्त थे, सर्वावधि ज्ञानको धारण करनेवाले थे, गुप्ति और समितिको पालनेवाले एवं षट्कायके जीवोंकी रक्षा करनेवाले थे। जिनका कार्य सदा ही आत्म-चिंतन करनेमे लगे रहनेका था, भव-तनभोगोंसे एकदम विरक्त थे। बारह भावनाओंका चिन्तवन करनेवाले और बाईस परीषहोंको जीतनेवाले थे, उनकी तपश्चर्या बहुत बढ़ी हुई थी इसीलिये उनका शरीर क्षीण होगया था। वे जिते-न्द्रिय और क्षमाके खजाने थे। अक्षय सुखके भोक्ता थे। वे कभी भी स्त्रियोंके तीक्ष्ण कटाक्ष-बाणोंके लक्ष्य नहीं हुये थे। उनका पक्ष उत्तम था। वे प्रतिक्षण ही कर्मोकी निर्जरा करनेमे संलग्न रहते थे। उन्होंने इन्द्रियजन्य सुखको तिलां-जलि दे दी थी। बड़े-बड़े राजा-महाराजा जिनके चरणोंकी सेवा करते थे। वे मुनि चार प्रकारके संघसे युक्त थे।

इसप्रकार परम विरागी दिगम्बर मुनिराजको देखकर पांडु उनके चरण-कमलोंमे पड़ गया और अपने योग्य स्थानपर बैठ गया। मुनिराजने राजाको धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और कहा कि राजन्! इस संसार-वनमें यह

जीव हमेशा ही चक्कर लगाता रहता है जिसप्रकार अरहटकी घड़ी जरा भी नहीं ठहरती है वह घूमती ही रहती है, इसलिए जो पुण्यार्थी बुद्धिमान पुरुष है वे सदा ही धर्मका सेवन किया करते हैं। वे अपना एक मिनिट भी समय व्यर्थ नहीं खोते हैं। क्योंकि निश्चय नहीं है कि एक समयमे क्या कैसे होता है। धर्म दो विभागोंमें बांटा गया है अर्थात् एक मुनिधर्म और दूसरा श्रावकका धर्म। इस धर्मके धारण करनेसे ही जीव भव भ्रमणसे छूट सकता है और कोई दूसरा उपाय नहीं है, यतिधर्म पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति इसप्रकार तेरह प्रकारसे पालन होता है। अब इनका संक्षेपमे वर्णन करते हैं। षट्काय (पांच स्थावर-काय पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक तथा एक त्रसकाय) के जीवोंकी मन, वचन, कायसे पूर्ण रक्षा करना सो पहिला अहिंसा महाव्रत है। जगतके हितकारी और अहितको दूर करनेवाले, कानोंके लिये सुखकारी, मिथ्यात्वरूपी रोगको दूर करनेवाले, सब संदेहको मिटानेवाले, ऐसे हित-मित परिमित सत्य वचन बोलना सो दूसरा सत्य महाव्रत है। जल और मिट्टीको भी बिना दिये हुए नहीं ग्रहण करना सो तीसरा अचौर्य महाव्रत है। अठारह हजार शीलके भेदोंको धारणकर सब प्रकारकी स्त्रियोंसे—देवी, तिर्यचिनी, मनुष्यनी, चित्रामकी स्त्री आदिसे मन, वचन, काय और कृत-कारित अनुमोदनासे विरक्त हो अपनी आत्मामे ही रमण करना सो चौथा ब्रह्मचर्य महाव्रत है। चौदह प्रकारका अन्तरंग और दस प्रकारके बहिरंग परिग्रहसे विरक्त होना सो पांचवां परिग्रह त्याग महाव्रत है। रौद्र, पीड़ा, रति, आहार और इसलोक-परलोकका विकल्प मनमे नहीं उठाना सो पहिली मनोगुप्ति है। चार प्रकारकी—स्त्रीकथा, देशकथा, भोजनकथा और राजकथा ये विकथा—खोटी कथा है उनको न करना दूसरी वचनगुप्ति है। चित्र आदिकी क्रियाओं द्वारा शरीरमे विकार न होने देना अथवा परिषह सहन करनेमे भीरु नहीं होना सो तीसरी कायगुप्ति है। सूर्यके निकल आनेपर लोगोंका आवागमन होने लगे तब प्रमाद छोड़कर चार हाथ आगेकी जमीनको शोध कर चलना जिससे कि जीव-जन्तुओंको किसी भी प्रकारकी बाधा न हो सो पहिली ईर्यासमिति है। कर्कश आदि दस प्रकारके वचनोंको न बोलना सो दूसरी भाषा-

प्रकारके संघको भक्तिभावसे चार प्रकारका दान दिया। दीन-दुःखियोंके दुःखको टाला, औरोंको भी यथायोग्य संतोषित किया। पश्चात् उसने अपने युधिष्ठिर आदि पुत्रोंको बुलाया और उन्हें राज्यभारसे विभूषित कर धृतराष्ट्रके सुपुर्द किया। पीछे धृतराष्ट्रसे कहा कि भाई ! तुम मेरे इन पांचों पुत्रोंको अपना ही पुत्र समझकर इनका लालन-पालन करना। पश्चात् कुन्तीको भी शिक्षा दी और कहा कि तुम घरमें रहकर इन पुत्रोंका अच्छी तरह पालन-पोषण करना। इसप्रकार सबको योग्य शिक्षा देकर आप स्वयं संसार शरीर और भोगोंसे एक-दम विरक्त हो परलोक साधनेके लिये तैयार होगया। इससमय मोहके वश युधिष्ठिर आदि सभी रुदन करने लगे। पांडुने उन्हें भी अपने राज्यकी यथा-न् रक्षाके सम्बन्धमें समझाया। पश्चात् उस वीर आत्माने अपने कुटुम्बसे क्षमा मांगी और स्वयं सबको क्षमा दी, बाद सब परिग्रहको छोड़कर घरसे बाहर हो वनकी तरफ चल दिया। वह गंगातट पर गया वहां उसने एक प्रासुक स्थानपर बैठकर सन्यास धारण कर लिया। उसने आजन्म आहारका त्याग कर गुरुको साक्षी कर वीरशय्या स्वीकार की। वे मुनिराज पांडु सब जीवोंपर समताभाव रखते थे, सब जीवोंपर उनका मैत्रीभाव था, गुणी पुरुषोंको देखकर आनन्दित होते थे। विपरीत आचरण करनेवालों पर जिनका सदा ही मध्यस्थ भाव रहता था। दीन-दुःखियोंपर दयाभाव रहता था। उनका मन दर्पणवत् स्वच्छ था। उन्होंने प्रायोपगमन सन्यास धारण किया था, जिसमें कि शरीरका अपने आप या अन्य किसीके द्वारा सेवा-टहल नहीं की जाती थी। घोर तपश्चर्या करनेसे उनका शरीर अत्यन्त कृश होगया था, पंचपरमेष्ठीका निरन्तर ध्यान करनेसे उनकी आत्मा पवित्र बन गई थी। उपवासादिकसे कृशता आ गई थी यह बात सही है किन्तु की हुई प्रतिज्ञामें किसी प्रकारकी कृशता-कसतीपन नहीं हुआ था सो ठीक ही है उत्तम पुरुषोंकी प्रतिज्ञा ही इसी रूपमें होती है कि चाहे प्राण भले ही चले जांय किन्तु प्रतिज्ञा भंग नहीं होती। प्रतिज्ञा भंगका आचार्योंने सबसे बड़ा भारी दोष बतलाया है। मुनि पांडुके शरीरमें तप करते-करते ऐसी क्षीणता आगई थी कि उनका शरीर अस्थिचर्मावशिष्ट ही दिखाई देता था। घोरतर परीषहोंको सहन करनेसे उनकी आत्मामें आत्मबल प्रगट होगया था

चिन्ता नहीं गई, उसके मारे वे कर्त्तव्यमूढ़ होगई। स्त्रियोंकी ऐसी हालत देख-कर पांडुने उन्हे आश्वासन दिया और सबको कहा कि तुम दु:ख मत करो। मेरे वचनोंको सावधान होकर सुनो। इस संसार चक्रमे यह जीव कभी इस गतिसे उस गतिमें और कभी उस गतिसे इस गतिमे चक्कर लगाता हुआ घूमता फिरता है। फिर तुम मरण होनेमें क्यों दुःख करती हो। यह कोई नई बात तो है नहीं। विचारो कि भरतचक्रवर्ती जो कि छह खण्डका अधिपति था, जिसने तमाम भूमंडलको जीतकर अपने वशमे कर लिया, वह भी जब कालसे न बचा तो हमारी तुम्हारी तो बात ही क्या है? यह काल बली अजेय है। देखो न, सेनापति जयकुमार जिसने कि दिग्विजयमे सबको जीतकर मेघेश्वर देवता पर विजय पाई थी और अपने मेघेश्वर नामको वास्तवमें सार्थक किया था उसने भी प्राणोंको त्यागकर जहां कालका भय नहीं ऐसा जो मोक्ष स्थान प्राप्त किया तो बताओ हमारी तुम्हारी क्या कथा? और भी सुनो कि कुरुवंशके मुकुटमणि कुरुराजाने सब शत्रुओको तो नाश किया किन्तु उसका भी बल कालके सामने कुछ भी नहीं चला। यथार्थ बात तो यह है कि इस भवसागरमे चक्कर लगाता हुआ कोई भी पुरुष सनातन-शाश्वत नहीं रहा, इसलिये किसके लिये शोक किया जाय और किसके लिए नहीं किया जाय। यह तो स्वाभाविक बात है कि जो जन्मा है, वह अवश्य ही मरेगा, इसमे रत्ती भर भी फर्क नहीं है। फिर व्यर्थ शोक कर कर्म बांधनेसे लाभ ही क्या? तुम्हीं बताओ कि इस पृथ्वीको भोग-कर कौन नहीं चला गया और किसका हृदय भोगोंसे हताश नहीं हुआ? अब मेरी थोड़ी-सी आयु शेष रह गई है, इसलिये मैं कैसे इन भोगोंका विश्वास करूं? अब तो मुझे इनका छोड़ना ही उचित जंचता है। यह धन, मंदिर, चंद्र-बदनी स्त्रियां, वसन, भूषण, हाथी, घोड़े आदि सभी दुनियांकी चीजे विनाशीक है, कोई भी स्थिर नहीं है। ये सब ओसकी बूंदकी तरह है। इसप्रकार पंडित पांडुने सबको समझा-बुझाकर धनादिसे बुद्धिको हटाकर धर्मसे चित्तको लगाया। उससमय पांडुने अष्टद्रव्योंसे विघ्न-विनाशी जिनेन्द्रदेवकी भक्ति-भावसे पूजन की और पापसे भयभीत हो पूजनके साथ-साथ गीत-नृत्य, वादित्रादिसे बहुत उत्सव मनाया। जो साधर्मी जन थे उनको वित्तादि दे संतुष्ट किया एवं चार

प्रकारके संघको भक्तिभावसे चार प्रकारका दान दिया। दीन-दुःखियोंके दुःखको टाला, औरोंको भी यथायोग्य संतोषित किया। पश्चात् उसने अपने युधिष्ठिर आदि पुत्रोंको बुलाया और उन्हें राज्यभारसे विभूषित कर धृतराष्ट्रके सुपुर्द किया। पीछे धृतराष्ट्रसे कहा कि भाई! तुम मेरे इन पांचों पुत्रोंको अपना ही पुत्र समझकर इनका लालन-पालन करना। पश्चात् कुन्तीको भी शिक्षा दी और कहा कि तुम घरमें रहकर इन पुत्रोंका अच्छी तरह पालन-पोषण करना। इसप्रकार सबको योग्य शिक्षा देकर आप स्वयं संसार शरीर और भोगोंसे एकदम विरक्त हो परलोक साधनेके लिये तैयार होगया। इससमय मोहके वश हो युधिष्ठिर आदि सभी रुदन करने लगे। पांडुने उन्हें भी अपने राज्यकी यथावत् रक्षाके सम्बन्धमें समझाया। पश्चात् उस वीर आत्माने अपने कुटुम्बसे क्षमा मांगी और स्वयं सबको क्षमा दी, बाद सब परिग्रहको छोड़कर घरसे बाहर हो वनकी तरफ चल दिया। वह गंगातट पर गया वहां उसने एक प्रासुक स्थानपर बैठकर सन्यास धारण कर लिया। उसने आजन्म आहारका त्याग कर गुरुको साक्षी कर वीरशय्या स्वीकार की। वे मुनिराज पांडु सब जीवोंपर समताभाव रखते थे, सब जीवोंपर उनका मैत्रीभाव था, गुणी पुरुषोंको देखकर आनन्दित होते थे। विपरीत आचरण करनेवालों पर जिनका सदा ही मध्यस्थ भाव रहता था, दीन-दुःखियोंपर दयाभाव रहता था। उनका मन दर्पणवत् स्वच्छ था। उन्होंने प्रायोपगमन सन्यास धारण किया था, जिसमें कि शरीरका अपने आप या अन्य किसीके द्वारा सेवा-टहल नहीं की जाती थी। घोर तपश्चर्या करनेसे उनका शरीर अत्यन्त कृश होगया था, पंचपरमेष्ठीका निरन्तर ध्यान करनेसे उनकी आत्मा पवित्र बन गई थी। उपवासादिकसे कृशता आ गई थी यह बात जरूरी है किन्तु की हुई प्रतिज्ञामें किसी प्रकारकी कृशता-कसतीपन नहीं हुआ था। सो ठीक ही है उत्तम पुरुषोंकी प्रतिज्ञा ही इसी रूपमें होती है कि चाहे प्राण भले ही चले जांय किन्तु प्रतिज्ञा भंग नहीं होती। प्रतिज्ञा भंगका आचार्योने सबसे बड़ा भारी दोष बतलाया है। मुनि पांडुके शरीरमें तप करते-करते इतनी क्षीणता आगई थी कि उनका शरीर अस्थिचर्मावशिष्ट ही दिखाई देता था। घोरतर परीषहोंको सहन करनेसे उनकी आत्मामें आत्मबल प्रगट होगया था

जिससे उनको शारीरिक बलकी आवश्यकता भी नहीं थी, यह सब सच्चे ध्यान का ही प्रभाव था। वह ध्यानी सदा ही अपने मस्तकपर सिद्धोंको, चित्तमें जिनेन्द्रदेवको, मुंहमे साधुओंको, नेत्रोंमें परमात्माको धारण किये रहता था। वह कानोसे मंत्रोको सुनता था और उन्हींको जिह्वा इंद्रियोसे बोलता था। वह अपने मनोमन्दिरमे सदा ही निरञ्जनरूप अर्हतको विराजमान किये रहता था। ऐसी अवस्थामे ही उसने अपने प्राणोको त्याग दिया। वह शरीरके भारसे हलका हो धर्मके प्रसादसे सौधर्म स्वर्गमे देव हुआ व अन्तर्मुहूर्तमे ही युवावस्था धारण करली। वह उससमय गलेमे दिव्य हार, कानोंमें कुंडल, केयूर आदि आभूषणो से युक्त था। उसके शरीरकी कांति बहुत ही दिव्य थी उससमय उसके ऊपर कल्पवृक्षोने फूलोकी वर्षा की। दुंदुभि, बाजे बजने लगे, जिनके शब्दोंसे दसों दिशाये गुंजायमान हो गई। जल कण मिश्रित शीतल और सुगन्धित पवन वहां चलने लगी। उससमय उस देवने अपना दृष्टि प्रसार किया और उन चीजोको देखकर आश्चर्यमे आगया। वह विचार करने लगा कि यह सब क्या है, मै यहां कहां आया? मुझे ये लोग आकर नमस्कार करते है सो ये कौन है? और मै कौन हू? ये नृत्य कारिणी स्त्रियां कौन है? हे! किस स्थानसे आया हूं और यह कौन स्थान है? इस स्थानको देखकर मेरा चित्त बहुत ही प्रसन्न होरहा है यह क्या बात है? इसप्रकार उसके मनमे संकल्प-विकल्प उठने लगे कि इतनेमे ही उसे अवधिज्ञान होगया जिसकी वजहसे उसने सारा हाल जान लिया और यह भी समझ लिया कि यह सब धर्मका ही फल है। यह क्षेत्र स्वर्ग है मुझे प्रणाम करने वाले ये देव है और ये देवताओंके विमान है, ये नृत्यकारिणी अप्सराये है।

मतलब यह है कि उसके मनमे जितने भी प्रश्न उठे थे उन सबका समाधान अवधिज्ञानके द्वारा अपने आप ही होगया। इसके पश्चात् आज्ञाकारी देवगण हाथ जोड़ नमस्कार कर उस देवसे बोले कि प्रभो! पहिले स्नान कीजिये उसके बाद जिनेन्द्र भगवानकी पूजन कीजिये। पश्चात् इन सब देवसमूहो को देखिये जो कि आपकी सेनाके देव है। ये ध्वजाओसे शोभित नृत्य गृह है और यह देखिये ये नर्तकियां कैसा सुन्दर नृत्य कर रही है। हे देव! इससमय आप

इन सब विभूतिके स्वामी हैं। आपने देवत्वका फल पाया है इसलिये आप चलिये और ये सब क्रियायें कीजियें। देवतागणकी यह बात सुन वह देव अपने कर्तव्य कर्ममें लग गया। इसप्रकार वह सुखी देव कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए भोगोंको भोगता हुआ हृदयमें जिनेन्द्र भगवानकी भक्ति धारणकर समयको बहुत आनंद-पूर्वक बिताने लगा।

इधर पांडुकी स्त्री भी पतिके स्नेहसे सांसारिक भोगोंसे विरक्त होगई। उसने भी शुद्धमना हो पतिके साथ ही संन्यास धारण करनेकी इच्छा की। अपने नकुल और सहदेव दोनों पुत्रोंको एवं गृहस्थीके भारको कुन्तीके सुपुर्द कर संन्यास धारण करनेके लिये कुटुम्ब आदिके द्वारा मना करनेपर भी गंगाके किनारे पहुंची और वहां उसने आहार पानादिका त्यागकर संन्यास धारण कर लिया तथा दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओंको भाया और कठिन तपश्चर्या की, जिससे कि उसकी इन्द्रियां अत्यन्त क्षीण होगई। अन्त समय उसके प्राण भी पतिके संग ही चले गये और वह उसी प्रथम स्वर्गमें सुन्दर शरीरको धारण करनेवाली देवी हुई। वह वहां अपने पूर्वभवके भर्ताके साथ मन-वांछित सुख भोगती हुई। सो ठीक ही है पुण्यके उदयसे इसभव और पर-भवमें भी जीवको सुख ही मिलता है। पुण्यके बराबर संसारमें कोई भी चीज नहीं है यह सब पुण्यका ही माहात्म्य है।

इधर कुन्तीने अपने प्राणवल्लभ पांडुकी मृत्युके समाचार सुने तो वह विलाप करती हुई, छाती धुनती हुई, माथा पीटती हुई। यहां तक उसने विलाप किया कि कंठका हार तोड़ दिया, आभूषणोंको फैंक दिया, हाथोंको इधर-उधर पटकने लगी। उसके मुंहसे आहें पर आहे निकलने लगीं। वह विलापसे बेचैन होगई। वह पतिके स्नेहवश गंगा तटपर गई। वहां भी उसने भारी रुदन किया जिससे उसे कुछ भी अपना कर्तव्य न सूझने लगा। वह चीत्कार शब्दोंमें विलाप करने लगी कि हा नाथ, हा प्राणधार, हा कौरववंशरूपी आकाशके सूर्य पतिदेव, तुम मुझे अकेली छोड़कर कहां चले गये! मुझे क्यों नहीं तुमने साथ लिया, मैं तुम्हारे बिना अकेली कैसे रहूंगी, मुझे तुम्हारे बिना यह महल अच्छा नहीं लगता, न यह भोजन ही रुचता है, प्यास भी किनारा कर गई है। हे नाथ! मैं किधर

जाऊं, किधर ढूंढूं, कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। जीवन नाथ ! तुम्हारे बिना रातको नींद नहीं आती, अनवरत नयनोंसे नीर बहता है। प्राणनाथ ! एकबार दिखाई दो ! दिखाई दो ! अपनी प्रिया पर प्रसन्न हो अपने मधुर वचन एकबार सुना दो नाथ ! हा, मेरे सब दुःखोंको हरनेवाले, इससमय मेरे दुःखोंको क्यों नहीं हरते। तुम्हारी वह वीरता कहां गई ? हे चन्द्रवत् मुखवाले ! तुम मेरे विरहाग्निसे संतप्त हृदयको क्यों नहीं आकर शांत करते ? हा नाथ, जिसप्रकार चन्द्रके बिना रात्रिकी शोभा नहीं, मणिके बिना जैसे हारकी शोभा नहीं, ऐसे ही पतिके बिना स्त्रीकी शोभा नहीं। इसलिये प्राणाधार, एकबार तो आइये और अपने पुनीत दर्शन देकर मेर इन नेत्रोंको सफल बनाइये। स्वामिन्, मुझे आपके बिना कौन मान देगा, कौन मेरी इज्जत करेगा, कौन मुझे आदर की दृष्टिसे देखेगा। नाथ, तुम्हीं सोचो स्त्रीके लिये पति ही एक आधार है, वही उसका धन है, वही उसका प्राण है और वही सर्वस्व है। उसके बिना यह सारा संसार शून्य है, अन्धकारमय है। उसी एकके आधार पर स्त्रीका जीवन सार्थक है अतएव स्वामी, मुझे एकबार दर्शन दो, मैं तुम्हारे दर्शनके लिए तड़प रही हूं। नाथ, क्यों नहीं मुझे बताते कि मै अभागिनी क्या करूं, किधर जाऊं। मेरा शरीर इससमय तुम्हारे बिना कामसे पीड़ित हुआ जला जा रहा है, शांतिकी इच्छासे शीतप्रदेशमें जाती हूं तो वह शीतप्रदेश भी मेरे लिये अग्निकुंडका रूप धारण कर लेता है इसलिये हे नरोत्तम ! मुझपर प्रसन्न हूजिये, यह समय गुस्सा करनेका नहीं है। नाथ, ऐसे उत्तम राज्यको छोड़कर तुमने यह क्या किया ? तुम्हारे बिना तुम्हारे ये पुत्र क्या करेंगे ? कौन इनको शिक्षा देगा, कौन इनका पालन-पोषण करेगा ? नाथ, जिसप्रकार सूखे सरोवरकी कोई शोभा नहीं इसी-प्रकार मेरी भी तुम्हारे बिना अब शोभा नहीं।

इसप्रकार कुन्तीने पतिके वियोगरूपी महान् दुःखसे दुःखित होकर अत्यन्त करुण विलाप किया। कुन्तीके इस विलापको सुनकर सभी कौरव विलाप करने लगे। युधिष्ठिर आदि पांचों भाइयोंके नेत्र आंसुओंसे भर गये और वे भी बहुत रुदन करने लगे कि हे पूज्य ! जिस उत्तम राज्यको आपने छोड़ दिया है वह बिना आपके शोभा नहीं पाता। जिसप्रकार कि भोजन कितना ही स्वादु

ह एक-एक इन्द्रियके वशमें पड़े हुए जीवोंका दृष्टांत है किन्तु जिनकी सभी न्द्रियां प्रबल और बे लगाम हैं उनका तो फिर कहना ही क्या है ? इस तरह निराजका पवित्र उपदेश सुनकर धृतराष्ट्रने मुनि महाराजसे पूछा कि स्वामिन्, ह बताइये कि इस विशाल राज्यको मेरे पुत्र दुर्योधनादि भोगेंगे या पांडवगण ? भो ! मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि दुनियांमें जितने भी इष्ट-अनिष्ट दार्थ हैं वे सब नाशवान हैं क्योंकि वस्तुस्वभाव ही ऐसा है। स्वभावमें किसी ा जोर नहीं चलता। दूसरी बात यह भी मैंने अच्छी तरह समझ ली है कि ितने भी विशिष्ट पदवीधारी शास्त्रके ज्ञाता होगए हैं उन सबोंको इस दुष्ट ालबलीने खा लिया है और जो वर्तमानमें सुहावने दीख रहे हैं वे सब ही नियम नष्ट हो जायेंगे। किन्तु प्रश्न यह है कि आगे जो सत्पुरुष होंगे वे फिर होंगे नहीं ? एवं आगे पांडवोंकी स्थिति कैसे होनेवाली है तथा हमारे पुत्र दुर्यो-ादि राजा होंगे या नहीं ? कृपाकर इन प्रश्नोंका समाधान कीजिये। नाथ ! प सुव्रत है, सकल वस्तुको जाननेवाले हैं, आपसे कोई चीज अगम्य नहीं, प योगियोंके योगी, ध्यानी, परम तपस्वी हैं।

इस प्रश्नको सुनकर मुनिराजने कहा कि मगध नामका एक सुन्दर देश उसमें राजगृह नामक एक नगर है। उसमें बहुत ऊँचे-ऊँचे मकान बने हुए जिनमे श्रीमान् और दानी पुरुषोंका निवास है। वहांका विभूतिशाली राजा ासिंध था। उसकी रानीका नाम कालिंदसेना था। वह रूप रंगमें बहुत सुंदर स्त्रियोचित गुणोंसे युक्त थी। जरासिंधके अपराजित आदि कई भाई थे। ायवन आदि विजयी उसके पुत्ररत्न थे। इसप्रकार बंधु-बांधवोंके सहित ा जरासिंध राजगृहका राज कर रहा था। उसने अपने सारे वैरियोंपर य प्राप्त कर ली थी। स्वामी ! मैं यह पूछना चाहता हूं कि जरासिंधका ा सहज ही ह [illegible] किसीके द्वारा होगा ? कृपा कर यह बात भी मुझे [illegible] कि मेरा सब सन्देह दूर हो जाय। यह बात सुनकर [illegible] हारे मनकी सब बात समझ गया हूं, तुम धैर्य [illegible] कारण दुर्योधन आदि और पांडवोंमें बहुत [illegible] ड़ाई होगी। तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि

होते थे। राजा उन परम तपस्वी मुनिराजको देखकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हुआ। मुनिराजने भी उसको धर्मवृद्धि दी। इसके पश्चात् सुस्थिरचित्त हो बैठ गया। मुनिराजने उसे धर्म-पिपासु समझ धर्मका उपदेश दिया कि राजन्, इस संसाररूपी वनमें भ्रमण करते हुए इस संसारी जीवको कहीं भी सुख नहीं है। उन्हें हमेशा ही जन्म-मरणका चक्कर लगाना पड़ता है। जन्म-मरणके बराबर संसारमें कोई दूसरा दुःख नहीं है जिसप्रकार कि सागरमे लहर उठती है और उसीमें विलीन हो जाती है। ठीक उसीप्रकार संसारमें जीव जन्मते और मरते हैं। ये मोही जीव मोहके वशमें पड़कर संसारकी चीजोमें सुख-दुःखरूपी कल्पना कर लेता है परन्तु वह उसकी सच्ची कल्पना नहीं है। विवेकी राजन्! तुम स्वयं विचारकर देखो कि संसारके जीव सदा ही सुख-शांतिके लिये दौड़ते फिरते है, नानाप्रकारसे शरीरको कष्ट देते हैं, सदा उसके प्राप्त करनेके प्रयत्न मे संलग्न रहते हैं, तो भी वे कहीं भी सुख-शांति नहीं प्राप्त करते। जिसप्रकार प्याससे घबड़ाया हुआ हिरण मरीचिकाको देखकर जलकी आशासे इधर-उधर दौड़ लगाता है परन्तु वहां पानी नहीं पाता, पानीकी जगह गरमागरम बालूमे फंस जाता है। ठीक यही दशा इस मोही जीवकी है। राजन्! ये बांधव, वनिता, कुटुम्ब और सम्पत्ति आदि कोई भी जीवको सुख-शांति देनेवाली नहीं है यह निश्चय समझो। लोग व्यर्थ ही इस सम्पत्ति और राज्यादिकके लिए लड़ते-झगड़ते हैं। ये अज्ञानी जीव स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत होकर महान् दुःख पाते हैं, जिसप्रकार मदोन्मत्त हस्ती कागजकी बनी हुई हस्तिनीको देखकर गड्ढेमे पड़ जाता है और वहां नानाप्रकारके दुःखोंको उठाता है। इसीप्रकार रसना इन्द्रियके वश होकर मछली जैसे अपने प्यारे प्राणोंको कांटेमे लगे हुए किंचित् मांसको खानेकी लालसासे गमा देती है एवं घ्राण इन्द्रियकी लम्पटतासे भौरा जैसे अपने अमूल्य जीवनको नष्ट कर देता है तथा चक्षु इन्द्रियके वशीभूत हुआ पंतगा दीपककी सुन्दर सुहावनी शिखाको देखकर जलभुन करके खाक होजाता है और श्रोतृ इंद्रियके वशमे पड़कर हिरण या सर्प मधुर संगीत और सुन्दर-सुन्दर गानोंकी सुननेकी लालसासे पराधीन हो विपत्तिके फन्देमे पड़ जाते है, जिससे कि फिर आजीवन छुटकारा मिलना ही मुश्किल होजाता है। इसप्रकार

यह एक-एक इन्द्रियके वशमें पड़े हुए जीवोंका दृष्टांत है किन्तु जिनकी सभी इन्द्रियां प्रबल और बे लगाम हैं उनका तो फिर कहना ही क्या है ? इस तरह मुनिराजका पवित्र उपदेश सुनकर धृतराष्ट्रने मुनि महाराजसे पूछा कि स्वामिन्, यह बताइये कि इस विशाल राज्यको मेरे पुत्र दुर्योधनादि भोगेंगे या पांडवगण ? प्रभो ! मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि दुनियांमें जितने भी इष्ट-अनिष्ट पदार्थ हैं वे सब नाशवान हैं क्योंकि वस्तुस्वभाव ही ऐसा है। स्वभावमें किसी का जोर नहीं चलता। दूसरी बात यह भी मैंने अच्छी तरह समझ ली है कि जितने भी विशिष्ट पदवीधारी शास्त्रके ज्ञाता होगए हैं उन सबोंको इस दुष्ट कालबलीने खा लिया है और जो वर्तमानमें सुहावने दीख रहे हैं वे सब ही नियम से नष्ट हो जायेंगे। किन्तु प्रश्न यह है कि आगे जो सत्पुरुष होंगे वे फिर होंगे या नहीं ? एवं आगे पांडवोंकी स्थिति कैसे होनेवाली है तथा हमारे पुत्र दुर्योधनादि राजा होंगे या नहीं ? कृपाकर इन प्रश्नोंका समाधान कीजिये। नाथ ! आप सुव्रत है, सकल वस्तुको जाननेवाले हैं, आपसे कोई चीज अगम्य नहीं, आप योगियोंके योगी, ध्यानी, परम तपस्वी है।

इस प्रश्नको सुनकर मुनिराजने कहा कि मगध नामका एक सुन्दर देश है। उसमे राजगृह नामक एक नगर है। उसमें बहुत ऊँचे-ऊँचे मकान बने हुए है, जिनमें श्रीमान् और दानी पुरुषोंका निवास है। वहांका विभूतिशाली राजा जरासिंध था। उसकी रानीका नाम कालिंदसेना था। वह रूप रंगमें बहुत सुंदर थी, स्त्रियोचित गुणोंसे युक्त थी। जरासिंधके अपराजित आदि कई भाई थे। कालयवन आदि विजयी उसके पुत्ररत्न थे। इसप्रकार बंधु बांधवोंके सहित राजा जरासिंध राजगृहका राज कर रहा था। उसने अपने सारे वैरियोंपर विजय प्राप्त कर ली थी। स्वामी ! मैं यह पूछना चाहता हूं कि जरासिंधका मरण सहज ही होगा या किसीके द्वारा होगा ? कृपा कर यह बात भी मुझे समझाकर बतलाइये जिससे कि मेरा सब सन्देह दूर हो जाय। यह बात सुनकर मुनिराजने कहा कि राजन् ! मै तुम्हारे मनकी सब बात समझ गया हूं, तुम धैर्य के साथ मेरे वचनोंको सुनो। इस राज्यके कारण दुर्योधन आदि और पांडवोंमे बहुत विरोध होगा और आपसमे विकट लड़ाई होगी। तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि

कुरुक्षेत्रके रणस्थलमें मरेंगे और भी अनेक योद्धा मारे जायेंगे तथा पांडवोंकी उस युद्धमें विजय होगी। तेरे पुत्रोंको मारकर पांडव आनन्दके साथ हस्तिनापुर का राज्य करेंगे। तुमने जरासिंधका जो मरण पूछा है उस सम्बन्धमें यह उत्तर है कि इसी कुरुक्षेत्रमें नारायण कृष्णके साथ जरासिंधका युद्ध होगा उसी संग्राम में कृष्णके हाथ उसका मरण होगा। यह सारा हाल सुनकर धृतराष्ट्रको बहुत चिन्ता होगई और वह मुनिराजको नमस्कार कर सचिन्त घरको वापिस लौट आया। इसप्रकार गान्धारी देवीसे शोभित धृतराष्ट्र शास्त्रका मुनिराजसे पवित्र उपदेश सुनकर अपने गुणोंके द्वारा काम कलंकको दूर करनेमे लग गया और अपने कौरवकुलको समुन्नत बनाता हुआ अति शोभा पाता था। इधर धर्मराज युधिष्ठिर आदि नीति मार्गपर सदा चलते हुए उत्तम कार्योंके करनेमें सदा दत्त-चित्त रहते थे। धर्मका सदा ही आचरण करते थे सो ठीक ही है धर्म ही संसार में सबसे उत्कृष्ट जीवन है इसलिए हे धर्म ! तू सबकी रक्षा कर।

दसवा अध्याय समाप्त।

अथ ग्यारहवां अध्याय।

उन सुमतिनाथ स्वामीको नमस्कार है, जो जीवोंको सुमति सुष्टुमति-श्रेष्ठज्ञान देनेमें समर्थ है, जिनके चरणोंकी इंद्र, नागेन्द्र, अहमेद्र वन्दना कर, अपनेको धन्य समझते है। वे प्रभु मुझे सुमति दे।

इसप्रकार चिंतवान राजा धृतराष्ट्र निम्नप्रकार विचार करने लगा कि ये मेरे दुर्योधनादि पुत्र जो कि महाशूरवीर, नीतिज्ञ, विद्वान है एवं विद्वानों द्वारा सेवित है, लक्ष्मीके स्वामी हैं, संसारके पूज्य है और राज्यके भोक्ता है किन्तु जब ये भी राज्य छोड़कर युद्धमें मरेंगे। ओह ! धिक्कार है इस राज्यको और धिक्कार है इन पुत्रोको और धिक्कार है मेरे इस जीवनको भी। यह उत्तम राज्य धूलके समान है और ये विषय विषके समान हैं। यह लक्ष्मी बिजलीकी तरह चंचल है, ये सुन्दर मकान, मन्दिर चिताकी खानि है। ये स्त्रियां जीवन को नाश करनेवाली हैं और पुत्र सांकलके समान हैं। ये घोड़ोंकी घटा जेल-खानेके मानिंद है तथा हाथी जन्म-जराके आकर है। ये रथ महा अनर्थको करनेवाले है, ये प्यादे और सुभट विपत्तिके स्थान है। ये कुटुम्बी लोग शत्रुके

समान हैं। ये मन्त्रीगण शोकको देनेवाले हैं तथा नानारूपोंको धारण करनेवाले ये मित्रगण अपने स्वार्थको सिद्ध करनेवाले हैं। इसप्रकार विचार करते हुए धृतराष्ट्र धन-तन और भोगोंसे विरक्त होगया उसने गांगेयको बुलाकर कहा कि हे गांगेय ! जैसे चन्द्रमा सदा ही आकाशमें घूमता रहता है वैसे ही जीव भी संसारमें घूमता रहता है इसलिये मैं इस हेय राज्यको पुत्रोंको देकर अपना आत्म-हित करूंगा। उसने तुरन्त ही अपने विचारानुसार अपने पुत्रोंको व पांडवोंको बुलाया और गांगेय तथा द्रोणाचार्यके समक्ष उन्हें राज्यभार दे दिया।

पश्चात् वह अपनी माता सुभद्रा सहित वनमें गया, वहां जाकर सुव्रत नामक योगीन्द्रको नमस्कार कर केशलोंचकर जिनदीक्षा धारण करली। वे मुनिराज उससमय तेरह प्रकारके चारित्रको पालन करते थे एवं पर्वतके ऊपर खड़े होकर आत्माका जो चैतन्यगुण उसका चिंतवन करते थे, ध्यान करते थे। थोड़े ही समयमें उन्होंने समस्त आगमके अर्थको पढ़ लिया। वे धृतराष्ट्र योगीश्वर सदा ही मुनियोंके समागममें रहते थे और उन्हींके साथ विहार करते थे। इधर थोड़े दिन बाद गांगेयने दुर्योधनादि सौ पुत्रोंको और युधिष्ठिरको राज्य दे दिया। युधिष्ठिर न्याय-नीतिका ज्ञाता था अतः उसका सुशासन प्रजाके लिए बहुत ही रुचिकर था। उसने न्याय नीतिके द्वारा सर्वत्र ही धर्मका प्रसार कर दिया। उसके राज्यकालमें चोरीका नाम तो सुननेमें आता ही नहीं था। किसीको भी किसी तरहका भय नहीं था अर्थात् सब निर्भय थे। किसीकी भी लक्ष्मी चोरी नहीं जाती थी सिर्फ वायु फूलोंकी सुगन्धिको अवश्य हरती थी। उसके राजत्व कालमें मारण शब्द ही नहीं सुना जाता था यदि वहां कोई मारनेवाला था तो सिर्फ काल ही था। वह सदा ही सुपात्रोंको दान दिया करता था और बहुतसे परोपकारके काम किया करता, नित्य ही जिनेन्द्रदेवकी पूजन करता, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जीवके महान् वैरियोंको जीतनेमें सदा ही प्रयत्नशील रहता था, वह दयाका सागर और ज्ञानका भण्डार था।

द्रोणाचार्य सब पांडव और दुर्योधनादि कौरवोंके श्रेष्ठ गुरु थे। वे उन सब पुत्रोंको समान भावसे धनुर्विद्या, वाण छोड़ना, लक्ष्य बींधना, धनुष चढ़ाना आदि सिखाते थे किन्तु उन सबोंमें अर्जुनने ही सार्थक धनुर्विद्या सीख पाई थी,

क्योंकि वही उसके योग्य पात्र था। वह अपने गुरु द्रोणाचार्यका बड़ा भक्त था। उनकी सदा ही सेवा किया करता, उसीका यह प्रभाव था कि वह धनुर्विद्याका प्रकांड विद्वान बन गया सो ठीक ही है श्रेष्ठ गुरुकी भक्ति कामधेनुके समान मनवांछित फलको देनेवाली होती है। अर्जुनने अपने विद्याबलसे सबोंकी विद्या को विफल बना दिया था, वह उससमय शिष्योंके बीचमे ऐसा शोभता था जैसे कुलाचलोंके बीचमे सुमेरुपर्वत शोभाको प्राप्त होता है। अर्जुनको छोड़कर और भी शिष्योंने अपने-अपने क्षयोपशमक अनुसार विद्या सीखी। वे सब धनुष विद्या के विशारद परस्परमें धनुर्विद्याके द्वारा क्रीड़ा करते, बाण छोड़ते, लक्ष्यभेद करते थे किन्तु दुष्ट प्रकृति कौरवोंको पांडवोंकी राज्यबुद्धि सह्य नहीं हुई। वे उनसे नित्य प्रति डाह करने लगे और उनके वे पक्के विरोधी बन गये। सो ठीक ही है जो दुष्टप्रकृतिके होते है उनको दूसरोंका अभ्युदय सहन नहीं होता है। गांगेयने जब कौरव-पांडवोंका यह हाल देखा तो उन्होंने भविष्यके अहितकी चिन्तासे एवं वैर-विरोध मिटानेके लिये राज्यको कौरव और पांडवोंमे आधा-आधा बांट दिया, परन्तु मनोमालिन्य कम नहीं हुआ और बढ़ता ही गया। कौरवोंकी इच्छा यह थी कि सारा ही राज-पाट हमे मिल जाय। कौरवोंके अन्तरंगमे तो पांडवोंके प्रति पूर्ण द्वेष था किन्तु बाहरमे दिखानेके लिए वे चिकनी चुपड़ी बाते किया करते थे।

एक दिनकी बात है कि भीम अपनी इच्छासे कौरवोंके साथ वनमें क्रीड़ा करनेके लिए गया हुआ था। वहां उसने अपने शरीरको धूलसे पूर लिया और कौरवोंसे कहा कि जो कोई मुझे धूलमेंसे बाहर निकाल लेगा वही बलवानोंमे वीर समझा जायेगा। भीमकी यह बात सुनकर सब कौरव उसको धूलमे से निकालनेकी प्रतिज्ञा करने लगे परन्तु सबोंके जोर लगानेपर भी भीम वहांसे रंचमात्र भी टससे मस नहीं हुआ। सो ठीक ही हैं कि हजारों चूहे मिलकर चाहें कि हम सुमेरुको उठाकर फेंक दे तो क्या यह कभी सम्भवित है? यह हाल देख उन सबोंका मुंह फीका पड़ गया और वे अपना-सा मुंह लिये हुए अपने घर वापिस लौट गये।

एक दिन फिर भीम कौरवोंके साथ वन-क्रीड़ा करने गया था। वहां

ऐसे सघन वनमे पहुंचा कि जहां बहुतसे वृक्ष थे। जो वृक्ष पत्ते, फल और पुष्पों से परिपूर्ण थे। वहांके आमके पेड़ फलोंके भारसे नम गए थे वे ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानों अपने मालिकोंको नमस्कार ही कर रहे हों। उन आम्र वृक्षों पर मधुर गान करती हुई कोयलें बोल रही थीं। सो ऐसा प्रतीत होता था कि मानों फलार्थी पुरुषोंको बुला रही हों। वहांके खजूरवृक्ष ऐसे थे जो पकते ही फलोंको नीचे गिरा देते थे और भी अनेक प्रकारके वृक्षोंसे वह वन अत्यन्त शोभायमान होरहा था। ऐसे मनोहर वनमें पहुंचकर उन सबने खूब क्रीड़ा की। वहां भीमने एक आंवलेका वृक्ष देखा, जो बहुत विस्तृत था, जिसकी मोटी-मोटी डालियां थीं और बहुत ऊंचा था, वह पत्ते और फलोंसे परिपूर्ण था, उस वृक्ष के साथ भीम कौरवोको साथमें लेकर क्रीड़ा करने लगा। कभी वह उसपर चढ़ता था और कभी उतरता था, कभी उसे हिलाता और कभी उसे जेटमें भरता और कभी डरकर उससे दूर भी खड़ा होजाता था। उस वृक्षपर चढ़ने की सबोने बहुत कोशिश की परन्तु कोई भी उसपर नहीं चढ़ सका क्योंकि वह बहुत ऊंचा था। भीमने जब यह देखा कि कोई भी कौरव चढ़नेमें समर्थ नहीं है तो वह खुद उसपर चढ़ गया। उसका यह कार्य कौरवोंको बहुत बुरा लगा क्योंकि उससे उन्होंने अपना अपमान हुआ समझा। भीमको पेड़से गिरा देनेके अभिप्रायसे सामूहिक शक्ति लगाकर हिलाने लगे परन्तु वह हिलते हुए पेड़पर भी निर्भय हो बैठा रहा। सो ठीक ही है नदियां कितनी ही क्षोभयुक्त क्यों न हों तो भी क्या वे समुद्रको क्षोभ पहुंचा सकती है? कौरवोंके इस उद्योगको देखकर पेड़के ऊपर चढ़े हुए भीमने वहींसे कहा कि यदि तुममें शक्ति है तो इस वृक्षको उखाड़ दो। भीमके इतना कहनेपर भी वे कुछ नहीं कर सके, वे चुप-चाप नीचे खड़े रहे। भीम उनके दुष्ट अभिप्रायको ताड़ गया और वह वहांसे अपने घरको चला आया। इसके बाद किसी एकदिन भीम फिर कौरवोंके साथ उसी वृक्षके पास क्रीड़ा करनेको गया। वहां भीमने उन सब कौरवोंको उस वृक्षके ऊपर चढ़ा दिया और अपनी दोनों भुजाओंसे छातीका सहारा लगाकर उस वृक्षको खूब ही हिलाया और जड़से उखाड़ दिया। वृक्षके ऊपर जो कौरव चढ़े थे उनमेंसे कई एक तो नीचे मुख करके गिर पड़े और कई एक ऊपर मुंह

बांये गिर पड़े, कई एक पांवोंसे शाखाको दबाकर उस वृक्षसे ही लटक गये और कई एक भयके मारे शाखासे चिपट गए। कई एकको तो ऊपरसे गिर पड़नेसे पेटमें दर्द होने लगा, किसीको मूर्च्छा आगई जिसकी वजहसे वह मृत्युके नजदीक ही पहुंच गया। वहांपर बहुत जोरका हाहाकार शब्द मच गया। इसप्रकार भीमके इस कुतूहलसे वे लोग बड़े भारी दुःखी हुए। उनमेसे एक भीमसे विनम्र शब्दोंमें बोला कि हे भाई ! तुम अत्यन्त पवित्र आत्मा हो, करुणाके धारी हो और अत्यन्त गम्भीर हो इसलिए तुम्हें यह कुटुम्बवालोंके साथ ऐसा काम करना शोभा नहीं देता। यह बात सुन भीमने उन कौरवोंको मिष्ट वचनोसे आश्वासन दिया और उन्हे भयसे निर्भय कर दिया। पश्चात् वे सब लोग अपने घर वापिस चले आए। इसप्रकार भीम अमन-चैनसे अपने समयको बिताता हुआ। कौरव भीमके ऊपर बहुत ही चिढ़ गए थे इसलिए वे उसको मारनेके इरादेसे एक सरोवरके किनारे ले गए और वहां उन्होने उसको बातोमे लगाकर तालाब में ढकेल दिया परन्तु वह बलिष्ठ आत्मा पानीमें नहीं डूबा और अपने बाहुबल से तालाबको पारकर किनारे जा लगा। उसको तैरकर पार आया देख कौरव अत्यन्त भयभीत होने लगे और अपना कर्त्तव्य सोचने लगे।

एकसमय भीम कौरवोंको पानीमें डुबा देनेकी इच्छासे तालाबके किनारे ले गया और किसी छलसे उसने उन सबोंको तालाबमे ढकेल दिया। वे पानीमें गिरते ही डूबने लगे और बचाओ-बचाओ चिल्लाने लगे एवं बहुत रुदन करने लगे। इसप्रकार भीमके द्वारा उनकी बड़ी दुर्दशा हुई। अन्तमें वे येनकेन प्रकारेण इस तालाबको पारकर किनारे लग गये और वहांसे वे अपने घर चले गये। इसके बाद भीमसे भयभीत होकर दुर्योधनने अपने छोटे भाई और बुद्धिमान् मंत्रियोंसे यह मंत्रणा की कि देखो, भीम महा बलवान् है, इसके बराबर और कोई योद्धा नहीं है, इसकी शक्ति अजेय है, बहुत बुद्धिमान् है। वैरियोके नष्ट करनेके लिये यह सदा ही उद्यत रहता है। इसके जीते हुए हम सौ भाइयोंका जीना ही निरर्थक है जबतक यह जिन्दा रहेगा तबतक हम निष्कण्टक राज्य नहीं कर सकते है इसलिये इस भीमको जैसे भी बने मार डालना चाहिये। क्योंकि यह नीति है कि वैरी बढ़ने न पावे उसको पहिले ही नष्ट कर देना चाहिए,

नहीं तो रोगकी तरह भयंकर दुःखदायी हो जाता है, इसलिये इस भयंकर भीम को हमें अति शीघ्र ही मार डालना चाहिये। इस प्रकार विचार कर वह दुर्योधन भीमको मारनेके प्रयत्न में लग गया।

एक समयकी बात है कि भीम सुखकी निद्रा सो रहा था। दुर्योधनका मौका लग गया, उसने उसको सोते ही कपटसे बांध लिया और उसको गंगाके प्रवाहमें बंधा हुआ ही छोड़ दिया। भीमके शरीरमें जब गंगाका पानी लगा तब उसको होश हुआ और उसने कौरवोंकी इस कृतिको समझा। उसने अपने बन्धन तोड़ दिये और अपने बाहुबलके प्रतापसे तैरकर लीला मात्रमे गंगाके किनारे आ गया, पुण्यके प्रभावसे उसे थोड़ासा भी परिश्रम नहीं हुआ। वह छल कपटसे रहित था इसलिये जलको पारकर उन कौरवोंके साथ ही वापिस घरको लौट आया। छलके भरे कौरव ऊपरसे भीमके साथ चिकनी-चुपड़ी बातें लगाते थे किन्तु अंतरंगमे यही विचार रहता था कि किस तरह इसको नष्ट कर देवें। इस अभिप्रायसे उन्होंने एक दिन भीमको अपने यहां भोजन करनेका आमंत्रण दिया। भीम सरलचित्त था इसलिये उनके यहां भोजन करनेके लिये चला गया। वहां दुष्ट दुर्योधनने पहिलेसे ही हलाहल विषका मिला हुआ आहार तैयार करा रक्खा था, वह भोजन भीमको खिला दिया परन्तु वह उसके पुण्योदयसे रुचिकर अमृतके समान बन गया। यहां पर गौतम गणधर राजा श्रेणिकको सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि हे राजन्! देखो यह पुण्यका ही माहात्म्य है जो कि प्राणोंके हरण करनेवाला हलाहल विष भी अमृत बन जाता है। विषभी निर्विष हो जाता है। शाकिनी भूत-पिशाच आदि उपद्रव कोई भी पुण्यशाली जीवको नहीं होते हैं, वे उसको देखते ही भाग जाते हैं। धर्मात्मा पुरुषके पगतले धर्मके प्रभावसे भयानक फुंक्कार करता हुआ, क्रोधसे लाल हो गये हैं नेत्र जिसके ऐसा सर्प भी काँचली सा बन जाता है। भयानक अग्नि नीरके रूपमे परिणमन कर जाती है, सिंह सियार बन जाता है, समुद्र थल बन जाता है। धर्मका ही यह प्रभाव है कि धर्मात्माके चरणोंको राजा महाराजा चक्रवर्ती आदि तक पूजते हैं। धर्मके ही प्रभावसे यह जीव उत्कृष्ट राज और सुन्दर-सुन्दर आज्ञाकारिणी स्त्रियोंको प्राप्त करता है। उन्नत हाथियोंका मिलना, घोड़ोंका मिलना, धन

धान्यादिकी प्राप्ति होना एवं वस्त्राभूषणका मिलना उत्तम मकानादिकी प्राप्ति होना, आज्ञाकारी पुत्र होना आदि सांसारिक सुखोंका जितना भी प्राप्त होना है वह सब पुण्यके ही आधीन है। पुण्यके बिना तिलतुष मात्र भी भोगोपभोगकी सामग्री नहीं मिलती है। आज हम जिनको सुखी देख रहे है उन्होंने पूर्व जन्ममे पुण्य किया है उसीका इस समय भोग कर रहे हैं, इस समय पुण्य संचय करेंगे तो भविष्यमे भी इसी प्रकार भोग सामग्री मिलेगी। ग्रन्थकार कहते है कि हे भाइयों! यदि तुम सुखी होना चाहते हो तो मन-वचन-कायसे इस पुण्यको उपार्जन करो, पुण्य ही संसारमें सब कुछ चीज है ऐसे पुण्यकी प्राप्ति एक मात्र धर्म सेवन करनेसे ही हो सकती है।

इस प्रकार भीम निर्भय होकर पृथ्वीपर घूमता फिरता, कौरवोंके साथ क्रीड़ा-विनोद करता हुआ समय बिता रहा था कि इतनेमे मायाचारी कौरवोने भीमको एक बड़े भारी विषधर सर्पसे कटवा दिया किन्तु उसके पुण्योदयसे सॉप के विषने भी उसके ऊपर कुछ असर नहीं किया। वह विष उसके लिये अमृत तुल्य हो गया। उसको थोड़ी भी वेदना नहीं हुई।

इसके पश्चात् एक दिन गांगेय, द्रोणाचार्य, पांडव और कौरव सब मिलकर बन क्रीड़ा करनेके लिये गये थे। वे वहां सोनेके तारोंसे गुंथी हुई गोल मटोल गेंदसे हाथमे सोनेसे मढ़े हुए डंडेको लेकर खेल-खेलने लगे। इधरसे वे गेदको मारते तो उधरसे वे मारते थे। उस समय वें देवगण सरीखे जान पड़ते थे। इस प्रकार खेलते-खेलते वह गेंद किसीके डण्डेसे ताड़ित होकर एक अन्धेरे कूंए में गिर पड़ी, जिसमें न नीचे उतरनेके लिए सीढ़ियां थीं और न कोई चीज ही पकड़नेको थी, महान् अन्धकार था। वे सब चिन्ता करते हुए उस कूएँ पर गये और वहां जाकर गेदको देखनेके लिये नीचे झांकने लगे और वहां उनको गेंद दिखाई पड़ने लगी। वे आपसमे कहने लगे कि यदि किसीमे शक्ति है तो इस गेंदको कूएँमेसे निकाले। उनमे एक वाचालने कहा कि मै अभी गेदको निकाल लाता हूं। कोई यो कहने लगा कि इस गेंदके निकालनेकी तो क्या बात है मै अपनी दोनों भुजाओंसे कूंएको ही उठा लाऊंगा। कोई कहनेलगा कि इसकी क्या बात है मैं पातालके रक्षक धरणेंद्र तकको उसके आसन सहित ले आ सकता हूं।

इस तरह वे वाचाल लोग परस्परमें खाली बातचीत करते हुये किन्तु गेंदको लानेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ तथा सब उपाय कर करके रह गये किन्तु वह गेंद किसीसे नहीं निकली। यह देख गुरु द्रोणाचार्यसे नहीं रहा गया, उन्होंने उसी समय धनुष चढ़ाया और भृकुटि तक खींचकर उसको पृथ्वीपर छोड़ दिया। उसके भयानक शब्द को सुनकर जगतमें शोर मच गया। वे उस समय ऐसे दीख पड़ते थे मानों इन्द्रधनुषको ही हाथमें लिये हुए हैं। उसके भयानक शब्दोंको सुनकर हाथी अपने खूटोंको उखाड़कर इधर-उधर भागने लगे, गंधर्वोंके घोड़े हिनहिनाकर, बंधनोंको तोड़कर भाग गये, ये देख गंधर्व देव भी कांपने लगे। नगरके लोगोंने धनुषके शब्दको सुनकर यह समझा कि कोई शत्रु ही चढ़कर आ गया है इसलिये वे घर छोड़कर बाहरको भागने लगे। स्त्रियां अपने-अपने काममें लग रही थीं कि धनुषके शब्दको सुनकर वे इतनी डर गई कि उनके वस्त्र और आभूषण तक नीचे गिर गये। सो ठीक ही है भयसे क्या नहीं होता? जो नहीं होनेके काम है वे भी हो जाते हैं। इसके बाद द्रोणने धनुषको लेकर एक बाण और छोड़ा जो जाकर गेंदमें जा छिदा, पीछे एकके बाद एक बाण छोड़ना शुरू कर दिया, वे बाण गेंदसे लेकर ऊपर तक एक लम्बी रस्सीका रूप धारण कर गये, इस प्रकार वह गेंद आसानीसे निकल आई जिसको कि निकालने के लिए कौरव असमर्थ थे। उस समय द्रोणकी धनुर्विद्या की कुशलताको देख-कर देवगण और मनुष्य उनकी बहुत भारी प्रशंसा करने लगे, किन्नरगण गुफाओंमें बैठकर उनके यशका गान करने लगे। राजागण उनके गुणोंकी प्रशंसा करते हुये कहने लगे कि हमने ऐसी बाण-कुशलता कभी नहीं देखी। इसके बाद वे सब वहां कुछ समय तक ठहर अपने-अपने घर चले आये। कौरव लोग भीमके पुण्योदयको एवं उसकी शक्तिको देखकर जब उसका कुछ नहीं कर सके तो वे अपने आप शांत हो गये और क्षमा धारण करके बैठ गये सो ठीक ही है असमर्थोंके लिये और उपाय ही क्या होता है? इस तरह कौरवों और पांडवोंको राज्य करते हुए बहुत समय निकल गया सो ठीक ही है सुखके दिन बीतते हुये नहीं मालूम पड़ते है।

इसके बाद एक समय गांगेय तथा और भी राजाओंने द्रोणसे विवाहके

लिये प्रार्थना की कि हे गुरुवर्य ! आप अपना विवाह कर सद्गृहस्थ बनिये। द्रोणाचार्यने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया। गुरुकी सम्मति मिलने पर गांगेयने उनके लिये गौतमके पास जाकर उनकी कन्याकी याचना की। वह कन्या गुणवती और अत्यन्त सुन्दरी थी। द्रोणका उत्सवके साथ सविधि विवाह हो गया। विवाहमें भांति-भांतिके बाजोंकी धूम-धाम रही एवं मांगलिक गीत गाये गये। विवाहके बाद वे दम्पति आनन्दपूर्वक अपना समय विषय भोगोका सेवन करते हुये बिताने लगे। कुछ समय बाद उस दम्पतिके अश्वत्थामा नामका सुन्दर पुत्र रत्न पैदा हुआ। वह पुत्र बहुत बुद्धिमान्, धीर, वीर और धनुर्विद्या का प्रकांड विद्वान् था। एक समय द्रोणाचार्यने अपने प्रीतिभाजन अर्जुन आदि शिष्योको बुलाकर यह कहा कि देखो धनुर्विद्याके सम्बन्धमे सदाही मेरी आज्ञाके अनुसार चलना, कभी भी मेरी आज्ञाके विरुद्ध नहीं होना।

द्रोणाचार्य सब विद्याओंमे कुशल थे तथा धनुर्विद्याके पूर्ण पण्डित थे तब भी कौरव उनके वचनोंकी अवहेलना कर स्वतन्त्र रहने लगे किन्तु अर्जुन उनकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करने लगा सो ठीक ही था, विद्या गुरुकी भक्ति और उनकी आज्ञा पालन करनेसे ही प्राप्त होती है। द्रोणाचार्यने अर्जुन की भक्तिसे प्रसन्न हो उसको वर दिया कि हे पुत्र ! तुम मेरे समान ही धनुर्विद्याके पारगामी होओ। यह मेरी अन्तरंग भावना है, गुरुके इन कृपापूर्ण वचनोको सुन कर पवित्रचित्त अर्जुन बहुत ही कृतार्थ हुआ सो ठीक ही है जिस शिष्यपर गुरु की पूर्ण कृपा होती है उसके हर्षका कोई पारावार नहीं रहता। वह परमार्थके ज्ञाता गुरुको सदा ही अपने हृदयमे विराजमान कर धनुर्विद्याके अभ्यास में लगा रहा जिससे थोड़े ही दिनोंमें उसने कुल विद्यामे पूर्णज्ञान प्राप्त कर लिया।

कुछ दिनों बाद एक समय द्रोणाचार्य अपने शिष्य कौरव और पांडवो को साथ लेकर धनुर्विद्या सिखानेके लिये एक वन मे गये। वहां उन्होने ऊंची और लम्बी डालीवाले, फल और पत्तों से लदे हुए एक वृक्ष को देखा। उस वृक्ष पर बहुतसे पक्षी बैठे हुए थे। उनमें एक बीचकी डालपर एक कौवा भी बैठा हुआ था। उसको देखकर धनुर्विद्याके आचार्य द्रोणने कौरव और पांडवोंसे कहा कि तुममेंसे कोई इस कौएकी दाहिनी आंखका लक्ष्यबेध कर सकता है या नहीं ?

जो इसका लक्ष्य बेध करेगा वही धनुर्विद्याके विशारदोंमें अग्रणी समझा जायेगा। दुर्योधनादि गुरुकी यह बात सुनकर चुप हो गये और विचार करने लगे कि इस का निशाना लगाना बहुतही कठिन है। एक तो कौवा स्वतः ही चंचल होता है दूसरे उसकी आंख तो बहुत ज्यादा चंचल होती है और इसकी दाहिनी आंख ही बेध होना चाहिये सो यह कैसे हो सकता है, कौन बेध सकता है ? उनको इस तरह चुपचाप खड़े देखकर गुरुने कहा कि अच्छा तुममेंसे कोई भी इस लक्ष्यबेद को करने में समर्थ नहीं है तो मैं ही इसे बेधन करता हूं। यह कहकर उन्होंने हाथमें धनुषबाण ले लिया ज्यों ही उन्होंने कौवेकी दाहिनी आंखकी ओर अपनी दृष्टि बांधी त्योंही अर्जुन नमस्कार कर बोला कि हे धनुर्विद्या विशारद गुरुवर्य ! आप इस लक्ष्यको बेधन करनेके लिये सर्वथा समर्थ हो इसमे थोड़ा भी सन्देह नहीं है किन्तु आपका यह लक्ष्यबेध सूरजको दीपक दिखाने के समान है। जिस प्रकार सूर्यको दीपक दिखाना शोभा नहीं देता उसी प्रकार आपको यह कार्य शोभा नहीं देता। दूसरी बात यह है कि आपका मुझ सरीखा धनुर्धारी शिष्य मौजूद होनेपर भी यह कार्य करना शोभा नहीं देता क्योंकि जब आपका यह शिष्य ही इस कामको कर सकता है तो फिर आपको इस मामूली कामके लिये धनुष हाथमें क्यों लेना चाहिये, इसलिये गुरुवर्य ! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अभी आपके प्रसादसे प्राप्त हुई धनुर्विद्याके बलसे इस चंचल लक्ष्मीको भी आसानी के साथ बेध सकता हूं तो मेरे लिये यह लक्ष्य बेद करना क्या महत्व रखता है। अर्जुनकी यह बात सुन द्रोणाचार्यने अर्जुनको लक्ष्य बेद करनेकी आज्ञा दे दी। अर्जुन उसीसमय हाथमें धनुष लेकर वहां जाकर स्थिरचित्त हो बैठ गया जहां से उसे लक्ष्य-बेद करना था। उसने धनुष पर डोरी चढ़ाकर वज्रके समान शब्द जैसी गर्जना की। कौवा एक तो स्वतः ही चंचल था, वह क्षण क्षणमें अपनी गरदनको इधरसे उधर और उधरसे इधर मोड़ता था। उसके नेत्र तो और भी चंचलित थे ऐसी अवस्थामे लक्ष्य बेद करना कोई सरल बात नहीं थी तथापि अर्जुन ने उसे लक्ष्य बना अपना मनोयोग उधर लगा दिया जिससे कौवा उसकी तरफ नीचे गर्दन करके देखे। उसने जोरसे धनुष का शब्द किया। जिसे सुनकर कौवे ने ज्योंही नीचे देखा कि विद्वान अर्जुनने तुरन्त ही उसकी दाहिनी आंखको बेध

दिया। द्रोणाचार्य कौरव आदि उसकी कल्पनाको देखकर प्रशंसा करने लगे, वे कहने लगे कि अर्जुन तुम वास्तवमें धनुर्धारियोंमे श्रेष्ठ विद्वान् हो। इस प्रकार वे लोग अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए अपने घर चले आये किन्तु कौरवोंके अन्तरंगमे अर्जुनके प्रति उसकी इस सफलतासे बड़ा भारी डाह हो गया परन्तु वे कुछ कर नहीं सके।

इसके बाद एक समय बली अर्जुन हाथमे धनुष बाण ले बनकी तरफ निकला जहां कि लोगोंको हिंसक सिंह चीता बघेरा आदि जीव-जन्तुओं द्वारा भय उपजाया जाता था। पहिले तो उसने उन बनचर जीवोंको डराया जिससे कि लोग निर्भय हुये, पीछे घूमते फिरते वह गहन बनमें पहुंचा। वहां उसने सिंह के समान उन्नत एक कुत्तेको देखा जिसका मुंह बाणोंसे बींधा हुआ था। वह उसको देखकर विचार करने लगा कि यहां इस तरह बाण चलाने वाला कोई आदमी तो दीखता नहीं फिर इस बली कुत्तेका मुंह इसतरह बाणोंसे किस धनुर्विदने बेध दिया है। दूसरी बात यह है कि यह काम बिना शब्द बेध जाने नहीं हो सकता है और यहां कोई शब्द-बेधका ज्ञाता होना बहुत ही कठिन है, क्योंकि इस विद्याको मेरे गुरु द्रोणाचार्यके सिवा और कोई जानता ही नहीं है। यह विद्या बहुत ही कठिन है मेरे गुरुने सिवा मेरे यह विद्या दूसरे किसी शिष्यको सिखलायी ही नहीं। क्योंकि मै तो सदा ही उनके साथ रहता था। फिर यहां शब्द-बेध-कुशल व्यक्ति कैसे पाया जा सकता है ? किन्तु यह भी निःसंशय बात है कि इस कुत्तेको भोंकते समय ही किसीने बाण मारे हैं। आश्चर्य यह है कि उसका कहीं पता नहीं।

अर्जुन इस विचारमें मग्न हुआ उसकी खोजमे इधर-उधर घूमने लगा। उसने पहाड़ोंके दुर्गम रास्ते एवं पहाड़ोंकी चोटियां, कन्दराये, लता-वितान देख डाले। इतनेमे ही उसे एक भील दिखाई पड़ा जो कि बाये हाथमें धनुष लिये हुये था और सीधे हाथमे बाण लिये था तथा कमरमे तरकस बांधे हुये था वह बहुत बलवान् था और धनुष छोड़नेमें बहुत होशियार था। शरीर काला था, भयंकर मूर्ति था, उसका मुंह नीचे था, नाकका अग्रभाग बाणके अग्रभागके समान एकदम पतला था, नेत्र अरुण थे, बाल बढ़े हुये थे, भोजपत्रका लंगोट

लगाए हुए था और कुछ भी उसके शरीरपर कपड़ा नहीं था। उसको देखकर वीर अर्जुनने कहा कि हे मित्र तुम कौन हो और कहां रहते हो, और कौनसी विद्या जानते हो ? यह सुनकर वह भील विस्मयके साथ बोला कि मैं एक भील हूं और इसी बनमें रहता हूं। मैं धनुष बाणके बलसे सब प्राणियोंको बेधनेकी शक्ति रखता हूं। धनुर्विद्यामें मेरे समान पंडित संसारमें दूसरा कोई नहीं है और तो क्या मेरी वक्र भृकुटिको देखकर ही कई तो प्राण त्याग कर देते हैं। भील की यह बात सुनकर अर्जुन बहुत ही प्रसन्न हुआ और उससे पूछा कि हे शब्द बोध के ज्ञाता ! इस सिंह समान कुत्तेका मुंह तुमने ही क्या अपनी अपूर्व बाण-विद्याके बलसे बेध किया था ? अर्जुनकी यह बात सुन उस भीलने कहा कि हे सुन्दर नेत्रवाले, लक्ष्मीके स्थान, कलाओंके आश्रयभूत मैं तुमसे अपनी सारी कथा कहता हूं, तुम उसे ध्यानसे सुनोगे। मैं शांतचित्त हुआ कहीं जा रहा था इतनेमें मैंने उस कुत्तेका भयानक शब्द सुना उसको सुनकर मुझे कुछ रंज हुआ और उसी अवस्थामें मैंने उस कुत्तेका बाणों द्वारा मुंह बेध दिया। भीलकी इस बात से अर्जुनको उसकी शब्दबेधी विद्या पर बहुत आश्चर्य हुआ। उसने विस्मयके साथ उस भीलसे पूछा कि हे किरात ! यह तो बताओ कि यह शब्दबेधी विद्या तुमने किससे सीखी है, कौन तुम्हारा योग्य गुरु है ? इस समय तो मुझे कोई शब्दबेधी विद्याका जानकार प्रतीत नहीं होता है। अर्जुनकी यह बात सुनकर भील बोला कि हे लक्ष्मीके आलय, कामकी साक्षात् मूर्ति, शत्रुगणके नाशक ! मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं। मैंने उन्हींके प्रसादसे यह उत्तम विद्या पाई है। यह विद्या सिवा उनके और किसीके पास नहीं है। वे ही इस विद्याकी सकल विधि को बतलाने वाले मेरे सद्गुरु है और कोई नहीं। उसके इन वचनोंको सुनकर सफल मनोरथ पवित्रचित्त कुशाग्र बुद्धि अर्जुनने मनही मनमें यह विचार किया कि कहां तो कुटुम्बके लोगोंके साथ रंग महलमें निवास करने वाले, उत्तम भोगों को भोगनेवाले, सौम्यमूर्ति मिष्टभाषी, राजमान्य, राजपंडित विद्वान द्रोणाचार्य और कहां यह निर्दयी जीव संहारक विकराल मूर्ति बनमें रहने वाला भील, इन दोनोंका मिलाप होना बहुत ही कठिन है। पश्चात् किरातसे अर्जुनने कहा कि तुमने उन उत्तम गुणवाले द्रोणाचार्यको कहां देखा है ? उत्तरमें भीलने कहा

कि यहां एक सुन्दर मिट्टीका टीला है उसी टीलेको मैंने गुरु समझकर यह विद्या प्राप्त की है। यह कह कर भील अर्जुनको उस टीलेके पास ले गया और दिखाकर बोला कि देखो, यही पवित्र आत्मा धनुर्विद्याके पारगामी द्रोण मेरे परम गुरु हैं। इनके आश्रयसे ही लोहा सोनेका हो जाता है जैसे कि पारसके स्पर्श करनेसे हो जाता है। राजन् ! मैं सबेरे ही उठकर गुरुत्व बुद्धिसे इस टीले की प्रतिदिन वन्दना करता हूं; उन्हींके गुणोंके विचारमें मेरा दिन रात समय जाता है। राजन् ! मैं कार्य प्रारम्भमें गुरु द्रोणके अनगिनत गुणोंका विचार करता हुआ इस टीलेको नमस्कार करता हूं उस समय मेरे हर्षका ठिकाना नहीं रहता क्योंकि कहा है कि जो पवित्र मन होकर गुरुबुद्धिसे पवित्र चरणोंकी स्थापनासे पवित्र हुये स्थानकी सेवा सुश्रूषा अर्चना करता है वह पुरुष भी संसारमे उत्तम सुखोंका भोक्ता होता है, उसकोभी सब विद्यायें सहज मे आ जाती है। भीलकी यह बात सुनकर अर्जुन मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगा और कहने लगा कि सज्जन पुरुष कितने ही दूर क्यों न हों किन्तु सत्पुरुष उनके गुणों को ग्रहण कर ही लेते है क्योंकि इनका स्वभाव गुण ग्रहणका ही होता है जैसे कि चुम्बकका स्वभाव लोहा खींचनेका होता है। हे शवरोत्तम ! तुम महान् हो, महामान्य हो, गुरुभक्ति परायण हो और गुणवानोंमें श्रेष्ठ हो, गुरुभक्तिके आदर्श दृष्टान्त हो इस प्रकार अर्जुन उस भीलकी स्तुतिकर अपने घरको वापस चला आया। किन्तु उसके हृदयमे भीलवाली वह घटना उथल-पुथल मचाये थी। वह थोड़ी देर शांति लेकर गुरु द्रोणाचार्यके पास गया और वहां उसने उनको नमस्कार कर बनकी सारी घटना गुरु महाराजको निवेदन कर दी और अन्तमें कहा कि गुरुदेव ! वह भील बड़ा निष्ठुर है, दुरात्मा है, उसकी सभी चेष्टायें निंद्य हैं। वह नष्ट बुद्धि सर्वदा निरपराधी जीवोंको मारा करता है और घोरातिघोर पाप करता है। दुःख की बात तो यह है कि मायाचारी आपके उपदेशका सहारा लेकर अगणित जीवोंको व्यर्थ ही मारा करता है। अर्जुनके इन दुःख भरे शब्दोंको सुनकर द्रोणके हृदयको भारी दुःख हुआ और वह विचार करने लगे कि इस दुष्टको इस दुष्कृत्यसे रोकनेका क्या उपाय है ? कुछ देर विचारकर वे उसका दुष्कृत्य रोकनेके लिये अर्जुनके साथ उस बनको चल दिये

और रास्तेमें धनुर्धारी भीलोंको जाते हुये देखते बनमें पहुंच गये। वहां उनको उस भीलसे पहुंचते ही भेंट हो गई। भीलने उनको बहुत विनय के साथ नमस्कार किया किन्तु वह यह नहीं जानता था कि जिनको मैं गुरु मानता हूं वे द्रोणाचार्य गुरु ये ही हैं और कपट रूप धारणकर यहां आये हैं। इसके बाद वह गुरु के चरणोंमें विनम्र होकर बैठ गया। उससमय द्रोणने उससे पूछा कि तुम कौन जातिके हो और तुम्हारा गुरु कौन है? यह बात सुन वह भील मीठे शब्दोंमें बोला कि मैं बनचर भील हूं और मेरे नाना कलाओंके विशारद द्रोणाचार्य गुरु हैं। उन्हींके चरण-रजके प्रसादसे मैंने सर्व अर्थको देनेवाली यह धनुर्विद्या पाई है। यदि उन गुरुका मुझे साक्षात् दर्शन मिलजाय तो मैं अपनेको बड़ा सौभाग्यशाली समझूंगा। वे विशुद्ध आत्मा इससमय मेरे परोक्ष हैं तो भी इससमय मैं उनको प्रत्यक्ष रूप हुआ ही आराधना करता हूं, उनकी भक्ति, वन्दना, अर्चना करता हूं। मेरी भक्तिवश वे सदा ही मेरी दृष्टिके सामने रहते हैं, मैं उनको क्षणिक भी नहीं भूलता हूं। यह बात सुन द्रोणने फिर कहा कि किरात! यदि अपने गुरु द्रोणको साक्षात् देख पाओ तो तुम उनके प्रति क्या सेवा करोगे? इसके उत्तरमे भीलने कहा कि स्वामिन्! यदि मैं उनको इस समय प्रत्यक्ष देखूं तो मैं उनके चरणोंमें लोटपोट हो जाऊं और उनकी नाना तरहसे भक्ति-सेवा करूं और तो कुछ मुझमें परोपकार करनेकी सामर्थ्य है नहीं। मुझ सरीखे शक्तिहीन पुरुषको गुरु भक्ति और गुरु-सेवा ही पर्याप्त है। उसके कहने पर द्रोणने कहा कि तुम द्रोणके कुछ लक्षणोंसे यह पहिचान सकते हो या नहीं कि ये द्रोण हैं? उसने कहा कि हां मै पहिचान लूंगा। द्रोण बोले कि संसारमें विद्वानोंकें मान्य संसारके हितैषी मैं ही तुम्हारा गुरु द्रोणाचार्य हूं। उनकी यह बात सुनकर भील बहुत ही प्रसन्न हुआ, उसका उस समय मुखकमल एकदम विकसित हो गया। उसने गुरुदेवको अंग नवाकर—अष्टांग प्रणाम किया और उनके चरणोंकी पूजा की सो ठीक ही है चिरकाल पीछे श्रेष्ठ गुरुके मिलने पर कौन ऐसा बुद्धिमान् शिष्य है जो कि भक्ति नहीं करेगा वास्तवमें गुरुभक्ति से ही विद्या प्राप्त होती है। इसलिये जो मनुष्य विद्या चाहने वाले है वे गुरु-भक्ति करे तभी उनको विद्या प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं।

इसके बाद द्रोणने भीलसे पूछा कि तुम कुशलसे तो हो? उत्तरमें वह बोला कि नाथ, आपके चरणोंके प्रसादसे मै कुशलसे हूं। मुझे किसी भी तरहका कष्ट नहीं है। आपके दर्शनसे मुझे और भी प्रसन्नता है। इस प्रकार द्रोणने उस भीलकी अपने प्रति अत्यन्त भक्ति और प्रीति देखी तब वे न्याय मार्गके वेत्ता भीलसे बोले कि हे किरात, तुम वनके वासी हो, विघ्न समूहके नाशक हो, मेरी सेवा विधि ज्ञायक हो और मेरी आज्ञाके पालक हो। तुम्हारे समान विनयालु शिष्य मैंने दूसरा नहीं देखा, तुम मुझे बड़े ही अच्छे मालूम देते हो। देखो, मैं तुमसे यहां एक चीज मांगनेके लिये आया हूं। क्या वह चीज तुम मुझे दोगे? यदि देना स्वीकार करो तो मांगू? गुरुकी यह बात सुनकर भील कांपता हुआ बोला कि हे स्वामिन्, आपने क्या बात कही? मैं तो हर प्रकारसे आपकी आज्ञा का पालक हूं। मुझ शक्तिहीनके पास ऐसी क्या चीज है जो गुरुदेवके लिये देय न हो। भीलकी यह बात सुनकर द्रोण बोले कि सुनो, मै जो तुमसे चाहता हूं वह वस्तु तुम्हारे पास है। तुम देनेकी प्रतीज्ञा करो तो मै तुमसे मांगूं। उत्तरमे भील फिर बोला कि आपके लिये सर्वस्व अर्पण कर सकता हूं। आप निःसंकोच होकर कहिये। द्रोणने कहा कि ठीक है, मै मांगता हूं कि तुम अपने सीधे हाथके अंगूठेको जड़से काटकर मुझे दे दो, यही तुम्हारी गुरु-दक्षिणा है। यह बात सुन भक्तिके वश हो गुरुकी आज्ञाके अनुसार उसने तुरन्त ही बिना कुछ आगा-पीछा सोचे अपने दाहिने हाथके अंगूठेको जड़से काटकर गुरुदेवके सुपुर्द कर दिया। सो ठीक ही है गुरुभक्त शिष्यके लिये अंगूठा काटकर देना यह कोई बड़ी बात नहीं है वे तो अपना जीवन तक दे सकते हैं। द्रोण मूल सहित अंगूठेको प्राप्तकर बहुत सतुष्ट हुये तब उन्होने अपने अगूठा कटवानेके उद्देश्यको भीलसे कह दिया कि दाहिने हाथके अंगूठे के बिना अब तुम धनुषको नहीं चढ़ा सकते हो इसलिये इसके द्वारा जो तुम बनके जीवोको मारकर पाप उपार्जन करते थे यह पाप अब नहीं होगा। इसके बाद उन्होने विचार किया शब्द बेधी विद्या नीच पापी पुरुषो को देना कभी भी उचित नहीं है। इस विचारसे उन्होने उस विद्याका योग्य पात्र पार्थकोही समझा और उसको शब्द-बेधी विद्यामें पारंगत कर दिया अर्थात् वह विद्या उसको परिपूर्ण रीतिसे सिखायी। इसके बाद वे दोनो वापिस अपने

नगरको चले आये और बहुत आनन्दके साथ भोग-भोगते हुये अपना समय बिताते हुये। कौरव भी अन्तरंगमें विद्वेषकी भावना को रखते हुये बाहर मिष्ठ वचन बोलते हुये सुखसे समय बिताने लगे।

भीमके शरीरकी कांति सुवर्ण जैसी चमकीली थी, वह बड़े-बड़े विघ्न समूहोंको नष्ट करनेवाला था। उसके लिये विष अमृतके तुल्य, सर्प कंचुकी के समान और अगाध गंगाका जल घुटनों तक रह गया था यह सब उसके पुण्यका ही महत्व था। पुण्यवान पुरुषके लिये स्वतः ही अच्छे निमित्त मिल जाते हैं, धन सम्पत्ति आदिक जितनी भी भोगोपभोगकी सामग्री है वह दौड़ती फिरती है।

वह अर्जुन संसारमें सुशोभित हो जिसकी कीर्ति जगतव्यापिनी हो रही है। जो सब अनर्थोंको दूर करनेवाला है, जो धर्म और अर्थका उपार्जन करने वाला है, न्याय नीतिमार्गका अनुगंता है। जो धनुर्विद्याका प्रकांड विद्वान् है, शब्द बेधी विद्याका पूर्ण ज्ञाता है। जिसका कोई भी संसारमे वैरी नहीं है ऐसा वह शरवीर पार्थव संसारमे प्रसिद्ध हो।

अथ बारहवां अध्याय।

मेरा उन पद्मप्रभ जिनेन्द्रको नमस्कार हो, जो कि अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मीके स्वामी है। जिनके शरीरकी कांति लाल कमलके समान देदीप्यमान है। जो पद्मके चिन्हसे चिन्हित हैं एवं केवलज्ञानके बाद जिनके चरणकमलोंके नीचे देवतागण भक्तिवश सुवर्ण-कमल रचते है।

इतनी कथा हो जानेके बाद श्रेणिक महाराजने गौतमस्वामीसे प्रश्न किया कि हे नाथ, जिस समय की यह कथा है उस समय यादवोंकी विभूति कैसी थी, वे कहां रहते थे, क्या करते थे? इसके उत्तरमे परम दयालु गौतम स्वामीने अपनी पवित्र वाणी द्वारा कहा कि हे श्रेणिक अब तुझे यादवों का चरित्र कहा जाता है। उसको तुम ध्यानसे सुनो।

एक समय अन्धकवृष्टि संसारसे विरक्त हो गया उसने अपने बड़े भाई समुद्रविजयको राज्य दे दिया और स्वयं गुरुके निकट जा दीक्षा धारण करली।

समुद्रविजयका एक छोटा भाई वसुदेव था। एक दिन वह गन्धसिन्धुर

नामके हाथीपर चढ़कर बन क्रीड़ा करनेके लिये गया था, साथमें फौज-फन्नूस सभी थे। उसके ऊपर चमर ढुर रहे थे। शरीर एक तो स्वतः सुन्दर था, उस पर भी नाना प्रकारके आभूषण पहिने थे जिससे अधिक सुशोभित होते थे। उसकी अनुपम सुन्दरता को देखकर शहरकी स्त्रियां अपने-अपने कामोंको छोड़ कर उसकी शोभा देखनेमें तन्मय हो गई थीं, उन्होने उस समय अपनी सुधबुध सब बिसार दी थी बहुत सी ललनाये तो अपने पति को भोजन कराते एवं बहुत सी अपने बच्चोंको दूध पिलाते-पिलाते बीचमें ही उसको देखनेके लिये घरसे बाहर निकल भागीं। ऐसी अवस्थासे तंग आकर नगरके पंच लोगोंने राजासे इस सम्बन्धकी विनम्र प्रार्थना की और राजाने भी उनकी यह प्रार्थना सुनकर उन्हें आश्वासन दिया और कह दिया कि अबसे कुमार घरके बगीचेके भीतर ही क्रीड़ा करेंगे और टहलेंगे उनकी यह व्यवस्था भी राजाने करा दी।

एक दिन कुमार वसुदेव अपने घरके बगीचेमें क्रीड़ा कर रहा था। उसी समय निपुणमति नामके एक नौकरने बन जानेसे रोकनेकी बात कह दी। यह सुनकर वसुदेवने पूछा कि मुझे वन जाने के लिये किसने रोका है? उस नौकर ने पीछे बीती हुई सारी कथा कुमारको कह दी। कुमार उसकी सब बात सुनकर बाहर जाने के लिये प्रयत्नशील हुआ और वह ज्योंही थोड़ा आगे बढ़ा कि द्वार-पालने उसको रोक दिया और कहा कि आप बिना राजाकी आज्ञाके बाहर नहीं जा सकते है। तब कुमार ने अपनेको बन्धनबद्ध समझा। इसके बाद वह एक दिन रात्रिको किसी समय विद्या साधनेके छलसे घोड़ेपर सवार होकर नगरसे बाहर निकला। वह वहांसे अकेला निकलकर सीधा श्मशान गया। वहां उसने एक मुर्देको अपने सब आभूषण पहिना दिये और उसको जलाकर आप छिपकर आगे चल दिया। वह भ्रमण करता २ विजयपुर पहुंचा। रास्तेकी थकावटसे बहुत त्रस्त हो गया था। इसलिये वह अपनी थकावट दूर करनेके लिये एक अशोकवृक्ष के नीचे बैठ गया।

वहां मगध देशके राजाकी तरफसे एक भील रहता था, कुमारके अशोक वृक्षके नीचे बैठतेही भीलको निमित्तसे बतलाते हुये निमित्तज्ञकी सूचना मिली। वह तुरन्त ही राजाके पास गया और उसने कुंवरके आनेकी सूचना दी। राजा

उसी समय कुमारको लेनेके लिये वहां आया और बहुत ठाठबाटके साथ कुमार को लिवा ले गया और ले जाकर उसका ब्याह अपनी कन्या स्तोमलाके साथ कर दिया। विवाहके कुछ दिनों तक तो कुमार वहां ही आनन्दके साथ रहे पीछे वहां से मौका पा चल दिये और पुण्यरम्य उद्यानमें पहुंचे। वहां उन्होंने एक मदोन्मत्त बन हस्तीका मद उतारकर उसके साथ क्रीड़ा की। कुमारकी यह क्रीड़ा देख एक विद्याधर उनको विजयार्ध पर्वतके किन्नरगीतपुरमें ले गया। वहां अशनिवेग नामका एक राजा था जिसकी स्त्रीका नाम पवनवेग था। उनके श्यामा नामकी एक पुत्री थी। उसके साथमें कुमारका विवाह हो गया। श्यामाके साथ वह इच्छित भोगोंको भोगता हुआ कुछ दिनों तक तो वहां ही रहा। पीछे उसे एक दिन रातके समय एक दुष्ट अंगारक नामका विद्याधर हरण करके ले गया। श्यामाको जब यह मालूम हुआ तो वह सचेत हुई और अपने हाथमें ढाल और तलवार लेकर उस दुष्ट विद्याधरके पीछे तेजीके साथ दौड़ी और बड़े जोरसे उसको एक लताड़ बताई जिससे कि वह श्यामासे डर गया और मारे डरके उसने वसुदेवको आकाशसे नीचे छोड़ दिया। यह देख श्यामाने उनकी रक्षा के लिये पर्णलब्धि विद्याको भेजा। उस विद्याने जिनदेव का स्मरण करते हुये वसुदेवको गिरनेमें सहारा दिया, जिससे कि वो चम्पापुरी के तालाबमें पड़े और तालाबसे निकलकर चम्पापुरी में पहुंचे। वहां उस समय राजा चारुदत्तकी पुत्री गन्धर्वदत्ताका स्वयंवर मण्डप हो रहा था। वह भी स्वयंवर का समाचार सुनकर सभा-मण्डपमें पहुंच गया। गन्धर्वदत्ता वीणा बजानेमें और गानविद्यामें बड़ी चतुर थी। वसुदेवने गन्धर्वदत्तासे कहा कि हे सुमुखी, निर्दोष प्रमाणकी बनी हुई वीणा मुझे दो जिससे कि मैं तुम्हारे मन माफिक बजा सकूं। यह सुनकर गन्धर्वदत्ताने वसुदेवको तीन-चार वीणायें दीं, परन्तु वसुदेवने उनमें कोई न कोई दोष निकाल दिया और वे वापिस कर दीं। आखिरमें गन्धर्वदत्ता ने घोषवती नामकी एक निर्दोष वीणा दी। उसे लेकर कुमारने उसको इस खूबी के साथ बजाया कि जिसको सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई और उसने वरमाला वसुदेवके गलेमें डाल दी। इस प्रकार कुमारके द्वारा पराजित की गई गन्धर्वदत्ता उस समय बहुत ही अधिक प्रसन्न दिखती

थी, वह अपनी हारको जीतसे अधिक सराहनीय समझती थी। इस प्रकार उस कन्याका चारुदत्तने वसुदेवके साथ विवाह कर दिया। वसुदेव भी इस विवाहसे बहुत प्रसन्न हुए। कुछ दिन वहां वह आनन्दके साथ रहा। पीछे वह एक विद्याधरी के द्वारा हरा जाकर विजयार्ध पर्वतपर गया, वहां उस पुण्यशालीने विद्याधरों की सातसौ कन्याओंके साथ विवाह किया। सो ठीक ही है पुण्यके उदय होनेपर संसारमे ऐसी कौनसी चीज है जिसका कि मिलना उसे अलभ्य हो। वहां से चलकर वह अरिष्टपुर नामके नगरमे पहुंचा, वहांका राजा हिरण्यवर्मा और उसकी स्त्रीका नाम पद्मावती था। उनके रोहिणी नामकी पुत्री थी, जो कि रूप और गुणोंसे चन्द्रमाकी रोहिणीके समान मालूम देती थी। वहां उसका स्वयंवर रचा जा रहा था, सारे देश विदेशोसे राजा लोग स्वयंवरके लिये पधार रहे थे। वसुदेव भी स्वयंवर-मंडपमे पहुच गये और वहां वे अपने योग्य एक स्थान पर जाकर बैठ गये। इसके बाद हाथमे वरमाला लेकर वह कन्या स्वयंवर-मंडपमे आई और उसने तमाम राजाओंको छोड़ते हुए आगे चलकर जहां वसुदेव बैठे हुये थे वहां पहुंची और उनको देखते ही एकदम उसके हृदयमें प्रीति संचार होगया और उसने बड़ी उमंग के साथ उनके गले मे वरमाला डाल दी। यह देख वहां बैठे हुये प्रकृतिसे दुष्ट कुछ राजाओंके हृदयमें क्षोभ पैदा हो गया और वे युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। समुद्रविजय आदिक राजा भी अपनी मर्यादा छोड़कर युद्ध करने को सागरके समान उमड़ पड़े। समुद्रविजयको परिचय हो जाय इसलिये वसुदेवने सबसे प्रथम वह बाण चलाया, जिसपर कि उसका नाम लिखा हुआ था। समुद्रविजयने उस बाण पर लिखे हुये अक्षरोंको पढ़कर तुरन्त ही युद्ध बन्द कर दिया और अपने सब भाइयों सहित वसुदेवसे मिलकर परम आनन्दको प्राप्त होते हुये। इसके बाद सब भाईयोने मिलकर बड़े हर्षके साथ अपने छोटे भाई वसुदेवका विवाह-महोत्सव बड़े आनन्दके साथ किया। वे दोनो दम्पत्ति प्रीतिपूर्वक वहां आनन्दके साथ समय बिताने लगे।

एक दिन रोहिणीने शुभस्वप्नोंको देखनेके बाद शुक्र नामके स्वर्गसे च्युत हुये एक पुण्यशाली देवको गर्भमे धारण किया और क्रमसे जब गर्भके नौ मास पूर्ण होगये तब बलभद्र नामके विशेष पुण्यशाली पुत्रको जन्म दिया। इसके बाद

वे सब यादव वसुदेव सहित सुरपुरीमें आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन जरासिंधको देखनेकी इच्छासे वसुदेव वीर कंसके साथ राजगृहमें आये। वहां उन्होंने जरासिंध की इस आज्ञाको सुना कि जो कोई सुरम्य देशके पोदनापुरसे राजा सिंहरथको रणमें जीत बांधकर मेरे सन्मुख करेगा उसको मैं अपनी पुत्री जीवद्यशा व आधा राज्य दूंगा। जरासिंध की इस आज्ञा को सुनकर जितने भी वहां राजा थे वो चुपचाप अपने घर बैठे रहे, किसी का साहस नहीं हुआ कि वो सिंहरथसे युद्ध करे किन्तु यह मुनादी सुनकर वसुदेवसे नहीं रहा गया। वह तुरन्त ही जरासिंधका आज्ञा पत्र पाते ही साथमें कुछ सेनाको लेकर कंस सहित वहांसे निकल पड़ा और अपनी विद्याके बलसे सिंहों का रथ बनाकर उसपर आरूढ़ हो बातकी बातमें उसने सिंहरथको युद्धमें जीत बांध लिया और लाकर जरासिंधके सामने उपस्थित किया। जरासिंध वसुदेव के कार्यसे बहुत ही प्रसन्न हुये और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अपनी पुत्री जीवद्यशाको तथा आधे राज्यको वसुदेवको देनेके लिये व्यवस्था करने लगे। किन्तु वसुदेवने उस कन्याको अपने मनमें कुलक्षण जानकर जरासिंधसे कहा कि शत्रु को मैने नहीं जीता है किन्तु मेरे मित्र महाबली कंसने जीता है और वही उसको बांध कर यहां लाया है इसलिये वही पुत्री प्राप्त करनेका अधिकारी है अतः उसको ही पुत्री दीजिये। वसुदेवकी यह बात सुनकर जरासिंध विचारमें पड़ गया कि यह व्यक्ति कौन है, इसका क्या नाम है, इसकी कुल और जाति क्या है? इसके बाद कंससे पूछा कि तुम्हारे माता पिताका क्या नाम है? उसने उत्तर दिया कि मेरी मां मन्दोदरी हैं। यह सुन जरासिंधने मंदोदरी को बुलाया। वह अपने साथ एक सन्दूक लिये हुये आई और उस सन्दूकको राजा के सामने रखकर बोली कि महाराज! यह सन्दूक मुझे यमुना नदीके प्रवाहमें बहता हुआ मिला था। इसी सन्दूकमें इस बालकको पाया उसमे एक पत्र भी था जिससे मैंने इसके उत्तम कुल जातिका निर्णय कर लिया और यह भी जान लिया कि वह राजा उग्रसेन और उनकी रानी पद्मावतीका पुत्र है। मैंने इसका नाम कंस रख दिया। इस पुत्रका लालन-पालन किया है, वास्तवमें इसकी मां पद्मावती ही है। मंदोदरीकी यह बात सुनकर जरासिंधको सन्तोष हुआ और

उसने प्रसन्न होकर अपनी कन्याका विवाह उसके साथ कर दिया साथमें उसे आधा राज्य भी दे दिया।

इसके पश्चात् कंस अपने पितासे बदला लेनेके लिये बहुतसी सेना सहित मथुरा आया और क्रोधके वशहो उसने अपने मातापिताको बांधकर दरवाजेमे कैद कर दिया और स्वयं मथुराका राज्य करने लगा। कंसका वसुदेव पर बहुत प्रेम भाव था, इसलिये वसुदेवको मथुरा ही बुला लिया।

मृगावती एक सुन्दर देश है उसमे दशार्ण नामका एक नगर है, उसमें उग्रसेन नामका एक राजा रहता था, उसकी रानीका नाम धनदेवी था। उन दोनोंके देवकी नामकी कन्या थी। जिसके कि वचन कोयलके समान मीठे थे, नेत्र मृगके समान चंचल थे। कंसने प्रेरणा कर उस कन्याका विवाह वसुदेवके साथ कर दिया। समय पाकर वसुदेवके निमित्तसे देवकीके युगल तीन बारमें छह पुत्र उत्पन्न हुये और सातवां पुत्र कृष्ण पैदा हुआ जो कि बड़ा पराक्रमी और बुद्धिमान था। कृष्णका जन्म होते ही वसुदेव बलभद्रकी सम्मति अनुसार उसको कंसके भयसे गोकुलमें नंदगोप और यशोदाके यहां छोड़ आये जिससे कि उसका निर्भीकतासे भले प्रकार लालन पालन हो। पुण्यके योगसे कृष्णका नंदगोपके यहां अच्छी तरह पालन होता रहा। वह थोड़ेही दिनमे बहुत चतुर और कलादि गुणोंसे युक्त हो गया। उसकी कीर्ति चारोंतरफ फैलगई। वह शूरवीरों में प्रमुख गिना जाने लगा। उसने थोड़े ही समयमे चाणूर और कंसका निग्रह कर मथुरा का राज्य प्राप्त किया और बहुत आनन्दपूर्वक यादवोंके साथ सुख से रहने लगा।

रूपाचल पर्वतपर एक सुन्दर रथनूपुर नामका नगर है। उसका राजा सुकेतु और प्रिया स्वयंप्रभा थी। उसके सत्यभामा नामकी एक पुत्री थी, जो कि अति सुन्दर और गुणाढ्य थी। वह अपने शरीर की शोभासे इन्द्रकी इन्द्राणीको नीचा दिखाती थी। उसकी अनुपम सुन्दरताको देखकर उसके पिता सुकेतुने किसी एक विचक्षण निमितज्ञसे पूछा कि इसका पति कौन होगा? उत्तरमे उसने कहा कि तीन खंडके अधिपति कृष्णनारायणकी पट्टरानी होगी। ज्योतिष की यह बात सुनकर माता पिताको बहुत हर्ष हुआ और उन्होने एक

चतुरदूत के साथ पत्र व भेट वगैरह भेजकर सत्यभामाका कृष्ण के साथ पाणिग्रहण करने की प्रार्थना की। हरिने प्रार्थनानुसार सत्यभाभा का विवाह कर लिया। राजा सुकेतु इस कृत्यको करने के बाद संसार से विरक्त हो गया और कृष्ण सुन्दरी सत्यभामा को प्राप्त कर सुखसे भोग भोगने लगा। इस मौके पर राजा उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाकर कृष्ण यादवों के साथ सौरीपुर चले गये।

इसके बाद अपनी पुत्री जीवद्यशाके मुंह से जरासिंध ने जब कँसके मारने वाले का समाचार सुना तो उसको यादवो पर भारी क्रोध आया और क्रोध के आवेश में आकर उसने उसी समय अपने पुत्रों को यादवों के साथ युद्ध करने के लिये भेजा परन्तु वे यादवों के सामने नहीं ठहर सके और सबके सब नष्ट हो गये। यह समाचार पाकर जरासिंध का माथा और भी गरम हो गया। उसने उसी समय तीनसौ छियालीस प्रबल योद्धाओं के साथ अपने ज्येष्ठ पुत्र बली अपराजित को युद्ध करने के लिये भेजा, किन्तु यादवों की शूरवीरता और युद्ध-कुशलता के सामने उसकी कुछ भी नहीं चली और वे भी युद्ध-स्थल में पंचमगति-मृत्यु को प्राप्त हो गये। अबकी बार इन दुःखमय समाचारों को सुनकर जरासिंध स्वयं कवच वगैरह पहिनकर कौरवों के साथ युद्ध करने के लिये गया। यादव यह समाचार पाकर बहुत भयभीत हुए और वे अपने नगर को छोड़कर भाग गये। यह देख जरासिंध ने उनका पीछा किया किन्तु एक कुलदेवी ने छल के द्वारा जरासिंध को पीछे हटा दिया और यादवों को पश्चिम दिशा के समुद्रतटपर भेज दिया, जिससे कि वे वहाँ निरापद कालयापन कर सके।

इसके पश्चात् कृष्ण ने समुद्र में रास्ता पाने की कामना से सविधि आठ उपवास किये। व्रत के प्रताप से उनके पास नैगम नामका एक असुर आया और उसने आकर यह निवेदन किया कि प्रभो! आप इस अश्वभेषधारी देव पर सवार होकर समुद्र मे आइये, वहाँ आपको स्थान मिलेगा। असुर की यह बात सुनकर नारायण ने वैसा ही किया। जिस समय नारायण ने समुद्र में पैर दिया वैसे ही उनके पुण्य प्रताप से समुद्र का जल थल जमीन जैसा हो गया। सो ठीक

ही है भाग्यशाली जहां भी जाते हैं वहीं उनके प्रयोजन की सिद्धि होती है। नारायण समुद्र में होकर जिधर भी जाते थे समुद्र का पानी इधर-उधर होकर उनको रास्ता दे देता था। चलते-चलते नारायण वहाँ पहुंचे जहाँ कि इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने नेमिनाथ भगवान के उत्पन्न होने के लिये बारह योजन की लम्बी चौड़ी एक नगरी की रचना की थी। उस नगरी के चारों तरफ चमकते हुये रत्नो का विशाल एक कोट और उस कोट में सुन्दर थंभवाले दरवाजे बनाये गये थे तथा जिसके चारों तरफ खाई खोदी गई थी। नगरके भीतर यादवों के रहने के लिये सुंदर महल बनाये गये थे। बावड़ी तथा कहीं तालब कहीं-कहीं जिन मन्दिरों की भव्य रचना भी की गई थी। वह नगरी अनेक मनोहर दरवाजों से युक्त थी इसलिये उसकी द्वारिका नामसे प्रसिद्धि हुई। द्वारिका नगरी अपनी शोभा से इन्द्रपुरी को भी जीतती थी। उस नगरी मे समुद्र विजय आदि यादव कृष्ण सहित आनंद से रहते थे, वहाँ सुखसे निवास करने वाले समुद्र-विजय की अपूर्व शोभा थी। वह शत्रुओं को जीतनेवाला, मान मत्सर रहित, इन्द्रिय विजय, स्वअर्थ और परमार्थ सिद्ध करनेवाला, पवित्रमना जिनेन्द्र भक्त और उदारचित्त था। उसके शिवा देवी नामकी भार्या थी। जो कि संसार को आनन्द देने वाली और बुद्धिमती थी। कामदेवका वह केलिका स्थान था, उसका स्वर अत्यन्त मधुर था जिसको सुनकर कोकिल भी संकोचयुक्त हो जाती थी। जिसके चरण कमलों की शोभा को देखकर कमल इतने लज्जित हुये कि थल को छोड़कर जलमे रहने लगे। उनकी जंघाये केलेके थम्भो की तरह सरस और सुकोमल थीं। वे ऐसे मालूम देती थीं कि मानों कामदेव के महल को स्थिर रखने के लिये खम्भे ही बनाये गये हों। उसकी गहरी नाभि सरोवर की उपमा को धारण करती थी। जिस प्रकार सरोवरी-छोटी तलइया मे जल भरा रहता है उसी प्रकार नाभि मे लावण्यरूपी जल भरा था। तलइया में आवर्त—भँवर पड़ते हैं उसमे भी शंख चक्र आदि चिन्हरूप आवर्त थे। जिसकी नाभि रोमराजि मछली के समान थी। मतलब यह है कि उसकी नाभि बहुत सुंदर थी। मुख चन्द्रमा क समान सुशोभित होता था। जिस प्रकार चन्द्रमा शान्त—शीतल सुख देनेवाला है वैसे ही उसका मुंह भी सबों को सुख देने वाला था। उसके स्तन-युगल पहाड़ के समान कठिन थे।

कान सोने के आभूषणों से युक्त होने की वजह से अत्यन्त सुन्दर थे। मतलब यह है कि शिवादेवी सर्वांग सुन्दर थी, वह जगत की सुन्दरियों में मुकुटमणि थी। अपने पति की इच्छानुकूल वर्तनेवाली थी, उनको हर प्रकार से प्रसन्न रखती थी। इस प्रकार वे दम्पति एकमना होकर आनन्द से सुख भोगते हुये समय को व्यतीत करते हुए।

एक समय सौधर्म इन्द्र ने अवधिज्ञान के द्वारा यह जाना कि अब भगवान को गर्भ में आने के छह महिना शेष रह गये हैं तब उसने अपने कुबेर को आज्ञा दी कि तुम जाओ और द्वारिका में रत्नो की वर्षा करो। कुबेर इन्द्र की आज्ञा प्रमाण रत्नों की वर्षा करता हुआ। उसने पन्द्रह महिने—छह महिने गर्भ से पहिले और नौ महिने गर्भ धारण के समय तक रत्नों की दिन में तीन बार वर्षा की। आकाश से गिरती हुई वह रत्नों की वर्षा ऐसी जान पड़ती थी कि मानों जिनेंद्र की माता को देखने के लिये स्वर्ग से मूर्तिमान् लक्ष्मी ही आई हों अथवा यों कहिये कि वहां के विशाल भव्य मनोहर जिनमन्दिरों को देखने की इच्छा से ज्योतिषीदेवों की पंक्ति ही आई हो। रत्नों की वर्षा से भगवान के महल का आंगन परिपूर्ण रीति से भर गया। उसको देखकर लोगों को यही कहते बनता था कि यह देखो सब धर्मका ही फल है।

एक दिन शिवादेवी शय्यापर सुख की नींद सो रही थी, रात्रिका पिछला पहर था। उस समय उसने सोलह शुभ स्वप्न देखे। वे स्वप्न ये थे—

१—मदोन्मत्त ऐरावत हाथी, २ महा प्रचण्ड सफेद बैल, ३ चन्द्रमा के समान उछलता हुआ केहरी, ४ कमलयुक्त कलशों द्वारा दो हाथी जिसका अभिषेक कर रहे है ऐसी लक्ष्मी, ५ दो पुष्पमालायें, ६ तारागणों से सहित चन्द्रमा, ७ प्रतापी सूर्य, ८ सुवर्ण के दो कलश, ९ दो मछलियाँ, १० तालाब, ११ गम्भीर शब्द करता हुआ समुद्र, १२ उन्नत सिंहासन, १३ दीर्घ विमान, १४ धरणेन्द्रका भवन, १५ रत्नो की राशि, १६ वींधूम रहित अग्नि। इन स्वप्नों के देखने के बाद उसने एक हाथी को अपने मुंह में प्रवेश करते हुए देखा।

स्वप्नों को देखने के बाद उसकी निद्रा भंग हो गई थी। इधर प्रातःकालीन बाजों की ध्वनि होने लगी, देवांगनाओं द्वारा सुमधुर मंगल गीत गाये जाने

लगे, उनका शब्द उसके कानों में पड़ा जिससे वह देवी प्रबुद्ध हुई। देवांगनाओं ने उसको जगते हुए देखकर उसकी स्तुति करना शुरू किया कि हे मातः! जिस प्रकार तुम्हारे मुख की कान्ति से मानसिक अन्धेरारूप अज्ञान दूर हो जाता है, उसीप्रकार रात्रि के अँधेरे को नष्टकर यह सूर्य पूर्व दिशा से उदय हो जाता है और तुम्हारे गर्भस्थ तनय की तरह अपनी किरणों को फैलाते हुए संसार को कर्तव्य-कार्यका ज्ञान कराता है। देवी! तुम्हारे लिए यह प्रभात मंगल मय हो। देवांगनाओ के ऊपर कहे वचनों को सुनकर माता कोमल शय्या से उठी और प्रातःकालीन क्रियाओं के कर चुकने पर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो वह अपने स्वामी समुद्रविजय राजा के पास गई। वहाँ पहुँचकर उसने महाराज को नमस्कार किया और उनकी आज्ञानुसार आधे सिंहासन पर बैठ गई। उस समय शिवादेवी अत्यन्त प्रसन्नचित्त दीखती थी। उसने विनम्र शब्दों में महाराज से देखे हुये स्वप्न निवेदन कर दिये और उनका फल कहने के लिये प्रार्थना की। उत्तर में पुण्यशाली समुद्रविजय ने स्वप्नों का फल इस प्रकार बतलाया। पहले स्वप्न मे जो तुमने हाथी देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारे एक प्रतापशाली पुत्र होगा, दूसरा स्वप्न यह बतलाता है कि वह संसार में सर्वश्रेष्ठ होगा। सिंह देखने से वह बड़ा पराक्रमशाली होगा, माला देखने से धर्म तीर्थ का प्रवर्तक होगा, अभिषिक्त लक्ष्मी के देखने से उस पुत्रका अभिषेक सुमेरु पर्वतपर होगा। चन्द्रमा देखने से संसार को आनन्द देने वाला शान्तियुक्त होगा। सूर्य देखने से अत्यन्त तेजस्वी होगा। कुंभ देखने से निधियों का भोक्ता होगा। मछली देखने से सुखी होगा। तालाब से शुभ लक्षणोवाला होगा एवं समुद्र देखने से केवलज्ञानी होगा। सिंहासन देखने से राज्य का भोक्ता होगा। आकाश से उतरता हुआ विमान देखने से वह स्वर्ग से चयकर आयेगा। धरणेन्द्र भवन देखने से अवधिज्ञान का धारी ही उत्पन्न होगा। रत्नो की राशि देखने से गुणों की खानि होगा। धूम रहित अग्नि देखने से कर्मो को अग्नि की तरह जलाने वाला होगा। वह हाथी के आकार को लेकर के तुम्हारे गर्भ मे आवेगा और धर्मरूपी धुराको प्रवर्तावेगा।

इस प्रकार स्वप्नों का फल सुनकर शिवादेवी बहुत ही हर्षित हुई और उसके

रोमांच हो आये। इसके बाद उस रानी ने कार्तिक सुदी छठके दिन पिछली रात्रि में उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में गर्भ धारण किया। उस समय प्रभुको गर्भ में आया जान स्वर्ग के देव अपने चिन्हों सहित गर्भ कल्याण करने के लिये वहाँ आये और गर्भ कल्याणक की सब क्रिया कर वापिस अपने स्थान को चले गये। प्रभु गर्भ में आये तभी से इन्द्र ने छप्पन कुमारिका देवियाँ माता की सेवा करने के लिये भेज दीं, वे गर्भ समयकी क्रियाओं के करने में बड़ी दक्ष थीं। श्री देवी ने माता को श्री शोभा दी, ह्री देवी ने लज्जा दी, धृतिदेवी ने धैर्य दिया, कीर्ति देवी ने कीर्ति दी, बुद्धि देवी ने श्रेष्ठ बुद्धि दी एवं लक्ष्मी देवी ने प्रभु की माता को सौभाग्य दिया। इनके सिवा कोई देवी प्रभु की माता के आँखों में अंजन आँजती हुई, कोई पांव दबाती हुई, कोई मंगलमयी गीत गाती हुई, कोई माता के शरीर का संस्कार करती हुई, कोई शय्या पर फूल बिछाती हुई तो कोई सिंहासन रचती हुई, कोई फूलों का हार बनाती हुई, कोई नंगी तलवार लेकर माता की शरीर रक्षा के लिये खड़ी रहती थी। कोई हाथ जोड़े सामने खड़ी रहती थी, सुगन्धित द्रव्यों से माता का लेप करती थी, कोई रेशमी वस्त्र देती थी, कोई पहनाती थी, कोई घर मे बुहारी काढ़ती थी तो कोई एक सुगन्धित द्रव्यों से भूमिको छिड़कती थी। कोई माता को खाने के लिये स्वादिष्ट पकवान-लड्डू पेड़ा खाजे आदि बनाती थी। कोई पांव धोती थी, कोई दर्पण दिखाती थी, कोई माता को पान सुपारी इलायची देती थी। कई देवांगनायें माता को गीत नृत्य के द्वारा प्रसन्न रखती थीं। इस तरह नाना उपायों द्वारा वे देवियाँ माता की सेवा सुश्रूषा करने मे पूर्णरूप से संलग्न थीं। माता भी उनकी सेवा से बहुत प्रसन्न थी। वे भी देवियों के साथ अनेक प्रकार की रसभरी बातें करती थीं। इस प्रकार माता ने देवियों के साथ बहुत आनन्दपूर्वक गर्भ के आठ महीने पूरे किये, जब नौवां महीना प्रारम्भ हुआ उस समय वे देवियाँ गर्भिणी माता को रसपूर्ण उत्तम रचनावाले गद्य पद्यों को सुनातीं और उनका मन हरण करती थीं। माता से अनेक प्रकार के गूढ़ प्रश्न करतीं और विदुषी माता उन सब प्रश्नोंका उत्तर भले प्रकार विद्वत्तापूर्ण देती थी।

एक देवी ने माता से पूछा कि माता ऐसा उत्तर दो कि जिसका पहिला

अक्षर ही दूसरा हो। पुष्पों से गुंथी हुई क्या चीज है; शरीर को ढकता कौन है, देहको कौन जलाता-क्षीण करता है, माता उत्तर यथाक्रम से देती है कि स्रक्‌माला त्वक्-चमड़ा रुक्-रोग।

दूसरी पूछती है—जगत मे सुख कौन करता है, बिना पैरों के कौन चलता है, सब लोगो को कौन सन्तोष देता है। इन प्रश्नों का उत्तर ऐसा दीजिये जिनका आदिका अक्षर ही भिन्न हो। उत्तर में माता ने कहा—जिन, स्वन-शब्द, घनमेघ।

कोई पूछती है कि अच्छा माता यह बतलाओ कि इस लोक में आदि अन्त रहित कौन है? मुंह से क्या उत्पन्न होता है, जल सहित क्या होता है। उत्तर—संसार, व्यवहार-वचन और कासार-तालाब।

किसी ने पूछा कि—वित्तको कहने वाला कौनसा शब्द है, योद्धाओं को रणक्षेत्र में कौनसा पद प्राप्त होता है, अर्जुन को क्या कहते हैं। माता उत्तर देती है—धन, जय और धनंजय।

कोई देवी पूछती है कि माता यह बताओ कि निश्चयवाचक पद कौन है, तिर्यचों में सबसे छोटा कौन है, मोक्ष का साधक क्या है और सबको जलाने वाली क्या चीज है? विदुषी माता उत्तर देती है कि—वे श्वान, कुत्ता, नर, वैश्वानर-आग।

कोई यह प्रश्न पूछती है कि—जिनेन्द्र देव, चक्रवर्ती बलभद्र आदि पदवी-धारी पुरुषों के लिये सन्तोष देने वाला रमणीय फल क्या है? माता ने उत्तर दिया कि अमृत-मोक्ष।

इसप्रकार देवियों ने जिनमाता से अनेक प्रकार के गूढ़ प्रश्न किये और माताने उन प्रश्नों का अतिशीघ्र बुद्धिमत्ता पूर्ण उत्तर दिया। उसकी बुद्धि स्वतः ही एक तो निर्मल और कुशाग्र थी तथा प्रभु को गर्भ मे धारण करने से अत्यधिक निर्मल होगई थी। शरीर की शोभा-कांति गर्भ के तेज से अत्यधिक बढ़ गई थी। जिस प्रकार कि स्वभाव से कांतियुक्त खानकी शोभा रत्नो की चमकती हुई कांति से और भी बढ़ जाती है। यह देखने मे आता है कि गर्भ धारण करने से उदर की त्रिवली भंग हो जाती है किन्तु जिन-माता की त्रिवली भंग नहीं हुई थी। उसके

कुचों के चूचक—अग्रभाग भी काले नहीं पड़े थे जैसे थे वैसे ही रहे। न उसका मुंह ही पीला हुआ था किन्तु और अधिक सुहावना हो हो गया था। आलस की मात्रा छू भी नहीं गई थी। जैसी मन्दगति पूर्व में थी वैसी ही इस समय थी। सारांश यह है कि गर्भ धारण के समय जिस प्रकार अन्य स्त्रियों को शारीरिक कष्ट हो जाता है एवं मनमें दुःख हो जाता है, वे सब जिन-माता को नहीं हुई। सो ठीक ही है कि जिनके गर्भ में तीन लोक के नाथ संसार के रक्षक तीर्थंकर जैसे पुण्यशाली पुत्र विराज रहे हों तो फिर उनकी माता को किसी तरह का शारीरिक मानसिक दुःख हो यह कैसे हो सकता है?

इस प्रकार धीरे धीरे आनन्दपूर्वक जब नौ मास पूर्ण हो गये तब श्रावण सुदी छठके दिन चित्रा नक्षत्र मे उस जगत की माता शिवा देवी ने अवधिज्ञान के धारी पुत्र—रत्न को जन्म दिया। जिस प्रकार कि पूर्व दिशा प्रतापी सूर्य को जन्म देती है। प्रभु के जन्मते ही आकाश से मन्द मन्द सुगन्धित वायु चलने लगी, जिसके लगने से बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता था। पृथ्वी कण्टक और धूल रहित दर्पण की तरह स्वच्छ हो गई, स्वर्गों में अकस्मात् देवों के आसन कम्पा-यमान होने लगे। उनके मुकुट अपने आप नव गये एवं कल्पवासियों के यहां घण्टाका शब्द, ज्योतिषियो के यहाॅं सिंहनाद, व्यन्तरों के यहाॅं दुन्दुभिका शब्द और भवनवासियों के यहाॅं शंखनाद बिना बजाये ही बजने लगे, जिसको सुन कर उन्होंने द्वारिकापुरी में तीर्थंकर प्रभुका जन्म निश्चय किया और वे बहुत ही हर्षित हुए।

इसके बाद इन्द्रकी आज्ञा से सब देवलागण अपने अपने वाहनों पर सवार होकर आनन्द के भरे स्वर्ग से आकाशमार्ग के द्वारा द्वारिका में आये। वहाँ आकर इन्द्र की आज्ञा से इन्द्राणी गुप्त भेष से प्रसूतिगृह में गई, वहाँ प्रभुसहित माता को देखकर पहिले तो उसने नमस्कार किया पश्चात् प्रभु को सतृष्ण नेत्रो से निरखती हुई माता के सामने खड़ी हो गई और जिनमाता के पास एक मायामयी बालक को सुलाकर उसने प्रभु को गोद मे उठा लिया और बड़ी भक्तिपूर्वक इन्द्र को लाकर दे दिया। इन्द्र भगवान के रूप को देखकर दो नेत्रो से तृप्त नहीं हुआ इसलिये उसने सहस्र नेत्रों के द्वारा भगवान के अनुपम

रूप को मन भर देखा परन्तु तो भी तृप्त नहीं हुआ। अन्त में इन्द्र भगवान को अपनी गोदी मे लेकर सुमेरु पर्वत पर लेगया। वहाँ उसने प्रभुको अनादि निधन पांडुक बन मे पांडुक शिलापर विराजमान कर क्षीरसमुद्र के जल से सुवर्णके एक हजार आठ कलशो द्वारा महाभिषेक किया। पश्चात् सब देवी देवताओ ने गंधोदक अपने २ मस्तकपर चढ़ाया जिससे वे पवित्र हो गये। अभिषेक के बाद इन्द्राणी ने प्रभु के शरीर को पोंछकर उन्हे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहिनाये एवं नेत्रों में कज्जल लगाया। इस समय प्रभुका रूप इतना सुन्दर हो गया कि इन्द्राणी उनको देख कर तृप्त नहीं होती थी।

पश्चात् इन्द्राणी सहित इन्द्र ने बड़ी भक्तिपूर्वक प्रभु की स्तुति करना प्रारम्भ की कि हे प्रभो! आप स्वेदपसीना रहित हैं, मल रहित है, आपका रुधिर दूध जैसा सफेद है। नाथ! आप प्रथम संहनन और प्रथम संस्थान के धारक अभेद्य शरीर वाले हो! स्वामिन् आपके शरीर से ऐसी सुगन्धि निकलती है जिससे कि दशों दिशाये सुगन्धित हो रही है। आप एक हजार आठ शुभ लक्षणों से युक्त है। प्रभो! आपके शरीर के समान सुन्दर शरीरवाला संसार मे कोई दूसरा प्राणी नहीं है इसलिये निरुपम है। नाथ, आप गुणों के भण्डार हैं, वीर्य की खानि हैं, हित-मित और प्रिय वचन बोलने वाले है इसलिये प्रभो, मैं आपको पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। हे नाथ, आप जगत्पूज्य शिवादेवी के पुत्र है, दस अतिशयो से युक्त है, धर्मरूपी महारथ के आप धुरा है इसलिये आपका नाम अरिष्टनेमि हुआ है इसलिये प्रभो! मै आपको नमस्कार करता हूँ। इस तरह इन्द्र ने नाना प्रकार से भगवान की स्तुति कर तांडवनृत्य करना प्रारम्भ किया। इस नृत्य मे पद-पद पर भक्तिभाव झलकता था। पश्चात् वह उनको गोद मे लेकर देवतागण के साथ गाजे-बाजे पूर्वक द्वारिकाको वापिस आया। वहाँ आकर उसने प्रभुको उनके माता पिता के सुपुर्द किया और स्वयं ने भगवान के महल के आंगन मे तांडव नृत्य किया। पश्चात् जिनदेवकी सेवा करने के लिये उनके समवयस्क देवों को वहाँ नियुक्त कर वह अपने परिकर सहित स्वर्ग को चला गया।

इधर देवों द्वारा सेवित प्रभु गुणयुक्त शरीर आदि की कांति से शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त हुए। देवतागण प्रभु के साथ बच्चों का रूप धारण कर

नाना तरह के खेल खेलते थे, प्रभु का मन जैसे प्रसन्न रहे वैसी चेष्टायें करते थे, प्रभु गिरते पड़ते जमीन पर चलते थे तब बहुत सुहावने मालूम होते थे।

कुछ समय निकलने के बाद वे दृढ़ता से पाँव रखकर सुन्दर चाल से चलने लगे। प्रभुका मुख-मण्डल पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित होता था एवं ललाट और बाहु बहुत ही उन्नत थे, नेत्र कमल सरीखे सुन्दर थे, कानों में कुण्डल अनु-शोभा को धारण किये हुए थे। वक्षःस्थल बहुत विशाल और दृढ़ था। उनकी नाभि सुहावनी और गम्भीर थी। कटिभाग करधनी से सुशोभित था, जंघा हाथी के सुंडादन्ड के सामान सुन्दर थी, कमल की जैसी शोभावाले उनके पाँव बहुत सुन्दर थे मतलब यह है कि उनका शरीर संसार के सुन्दर-सुन्दर छाँटे हुए परमाणुओं से बना हुआ था इसलिये किसी के साथ मे उसकी उपमा नहीं दी जा सकती थी। वे प्रभु गुणों के पिटारे, अतुल विभूति के धारक, अनुपम शोभा से शोभित थे। ऐसे श्री नेमि जिनेश्वर हम सब प्राणियों की रक्षा करें एवं पवित्र बनावे।

॥ वारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

अथ तेरहवां अध्याय।

जो संसार के बन्धनों को तोड़कर मोक्ष सुख में स्थापन करनेवाले हैं, सब जीवों के हितरूप हैं गुणों के समुद्र है, सत्य सुधारसकी वर्षा करने वाले हैं एवं जिनके दर्शन मात्र से जाति विरोधी जीव अपना वैर भाव छोड़कर आपस में मैत्री भाव धारण कर लेते है, जो सांथिया के चिन्ह से चिन्हित हैं ऐसे सुपार्श्व प्रभु की मै स्तुति वन्दना करता हूँ। वे नाथ मेरे कार्य मे सहायक होवें।

एक दिन सब यादव आनन्दपूर्वक अपनी सभा में बैठे हुये थे, इतने में ही वहाँ नारदजी आगये। उन्हें देखकर कृष्ण आदि सब यादवों ने उनका स्वागत किया और नमस्कार किया। इसके बाद वे सत्यभामा के महल में गये। वहाँ यथोचित आदर सत्कार नहीं हुआ। इससे वे रुष्ट हो गये और उल्टे पैर ही वहां से वापिस लौट आये और कुण्डनपुर को चले गये। वहाँ पहुंचकर उन्होंने कुण्डनपुर के राजा भीष्म और उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती की पुत्री रुक्मिणी को देखा। उसे देखकर वे मन ही मन बहुत हर्षित हुए तथा वहां से

लौटकर वे फिर कृष्ण के पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कृष्ण से रुक्मिणी की सारी कथा कह दी, उसके रूपलावण्य एवं गुणादि की बहुत प्रशंसा की, जिससे कृष्ण के हृदय में रुक्मिणी के प्रति विशेष अनुरागभाव पैदा हो गया। यह बात बलदेव को ज्ञात हो गई थी। उन्होंने कृष्ण को कुण्डनपुर जाने की प्रेरणा की। अन्त में वे और कृष्ण दोनों ही कुण्डनपुर को रवाना हो गये। कृष्णजी चलते समय अपनी सेना को कुण्डनपुर पहुँचने को आदेश कर गये थे इसलिये उनकी सेना भी वहाँ जल्दी ही पहुँच गई। उधर भीष्म राजा शिशुपाल को पहिले से ही रुक्मिणी देने को वचनबद्ध हो चुका था इसलिये शिशुपाल प्रथम से ही आकर कुण्डनपुर को घेरे हुए पड़ा था।

इधर रुक्मिणी एक दिन नागदेवकी पूजा करने के लिये नाग-मन्दिर में गई हुई थी। वहाँ कृष्ण ने उसको आया देख उसका हरण कर लिया और अपने शंखध्वनि द्वारा सबको रुक्मिणी के हरे जाने की सूचना कर दी। पश्चात् वे बलदेव के साथ वहाँ से चल दिये। रुक्मिणी के हरे जाने के समाचार जब रुक्मि और राजा शिशुपाल को मालूम हुये तब वे बहुतसी सेना साथ में लेकर कृष्ण और बलदेव के साथ युद्ध करनेके लिये तैयार होगये। इधर द्वारिकासे आई हुई कृष्णकी सेना तैयार थी ही। दोनों में घमासान लड़ाई होने लगी दोनों ही तरफके प्रबल योद्धा अपनी-अपनी तीक्ष्ण कटारों द्वारा एक दूसरेका घात करने लगे। सो ठीक ही है कि स्त्रीके पीछे लोग संसार में कौनसे अनर्थ नहीं करते है ? इसी समय लड़ाई करते हुये रुक्मि कृष्ण के सामने आ गया यह देख रुक्मिणी ने अपने भाई रुक्मिका परिचय अपने स्वामी को दिया जिससे कृष्णने उसे मारा तो नहीं किन्तु उसे अपने नागफाससे बाँध रथ के नीचे डाल दिया। इसके बाद अपराधी शिशुपालको कृष्णने अपने अजेय बाहुबलसे कालका ग्रास बना दिया और लड़ाई को उसी समय बन्द करने की आज्ञा दे दी। क्योंकि व्यर्थ ही प्राणि वध करने कराने का क्या प्रयोजन ? इसके बाद वे अपनी सेना-सहित गिरनार पर्वतकी तरफ रवाना हो गये। वहाँ पहुँचकर कृष्ण ने रुक्मिणी के साथ सविधि विवाह कर लिया और द्वारिका वापिस लौट आये। एक समय प्रसन्नचित्त हो दुर्योधन राजा ने यह कहकर अपना एक दूत कृष्ण नारायण के पास

भेजा कि यदि मेरे पहले पुत्री हो और आपके पुत्र हो अथवा मेरे पुत्र हो और आपके पुत्री हो तो उन दोनोंका आपसमें विवाह-सम्बन्ध कर दिया जाय। दूतने दुर्योधनके कहे अनुसार कृष्णसे जाकर प्रार्थना की। कृष्णने उत्तरमें कहा कि जैसी दुर्योधन महाराज की इच्छा है वह मुझे स्वीकार है। इसके बाद कृष्ण ने आये हुए दूतका यथोचित आदर-सत्कार कर उसको वापिस हस्तिनापुर भेज दिया।

इसके बाद कृष्णके यहाँ रुक्मिणी के गर्भ से महाप्रतापी पुत्र प्रद्युम्न हुआ किन्तु वह जन्मते ही उसके पूर्व भवके बैरी किसीके द्वारा उसका हरण कर लिया गया और विजयार्ध पर्वतपर रहनेवाले किसी विद्याधर के द्वारा उनका पालन-पोषण किया गया। वहाँ वह सोलह वर्षकी अवस्था तक रहा और उसने सोलह लाभ भी प्राप्त किये। एक दिन भाग्यवश उसको नारदजी का दर्शन हो गया और वह उनके साथ द्वारिकापुरी चला आया। वह वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

इसके बाद कृष्णकी रानी सत्यभामाने भानुकुमारको जन्म दिया। भानुकुमार भानु सूर्य के समान प्रतापी और तेजस्वी था।

इधर कौरव और पांडव अपने-अपने राज्यका सुख शान्तिसे उपभोग कर रहे थ। इनमें पांडव बड़े चतुर थे, समयानुसार काम करनेवाले थे, नीतिज्ञ थे एवं सदा ही नीति मार्गपर चलनेवाले थे किन्तु कौरव इनसे भिन्न प्रकृतिके थे। वे सदा ही पर के अभ्युदयको देखकर जला करते थे। उनके अदेख सखाभाव बहुत प्रबल था। वे सदा ही सज्जन पुरुषों की निन्दा किया करते थे। उनके हृदय में यह बात शल्यकी तरह चुभ रही थी कि हम तो सौ भाई और ये पांडव पाँच भाई फिर ये आधा आधा राज्य क्यो ? यह अन्याय ही नहीं महा अन्याय है। इस राज्यके एकसौ पॉच भाग करके बॉटा जाय। बस इस शल्यने उनके हृदय मे पॉडवोके प्रति वैमनस्यकी मात्रा प्रबल कर दी और वे दिन-रात इसी उधेड़बुन मे लगे रहे कि-किस प्रकार यह काम ठीक करें।

दुर्योधन आदि कौरवकी इसप्रकार विषभरी बातों को जब बली पांडवों ने सुना तो उनके हृदय मे किंचित् दुःख हुआ किन्तु वे बहुत गम्भीर और बुद्धिमान पण्डित थे इसलिये वे तो उतावले नहीं हुए किन्तु उनमेसे भीमसे किसी

तरह भी नहीं रहा गया। वह मारे क्रोधके इधर-उधर घूमने लगा, उसका मुंह लाल हो गया और भौंहें चढ़ गईं वह आवेशमे आकर बोला कि सदा ही शंकित रहने वाले कौओंकी तरह ये बिचारे कौरव हम सरीखे शक्तिशाली पुरुषोंके रहते हुये भला क्या कर सकते है ? पूज्य भाई ! यदि आपकी आज्ञा हो तो इन सबोंको अभी क्षण मात्रमें भस्म करदूं क्योंकि आप जानते हैं कि आगका एक छोटासा कण भी उग्र रूप धारण कर बड़े-बड़े जंगलोंको बातकी बातमे भस्म कर देता है। आप कहिये तो इन सौओंको एक साथ उठाकर समुद्रमे फेकदूं जिससे कि इनका काम खतम हो जाय। इस प्रकार भीमको क्रोधाग्निसे भभकते हुये देखकर बड़े भाई युधिष्ठिरने उसको मधुर सुशीतल वचनरूपी जलसे शान्त किया। इधर भीमको शान्त किया तो उधर अर्जुनकी क्रोधाग्नि भभक उठी जिस प्रकार कि तृणका संयोग पाकर अग्नि जल उठती है, वह बोला कि जिस प्रकार हजारों कौओंके लिये एक पत्थर का टुकड़ा काफी है इन बिचारे सौओंको मेरा एक बाण ही भयभीत करनेके लिये पर्याप्त है। ये अल्प शक्तिवाले जुगनू कौरव तभी तक उछलते कूदते है और अभिमान करते है जब तक कि प्रतापशाली महा अन्धकारको नष्ट करने वाला सूर्यकी तरह मैं क्रुद्ध नहीं हुआ हूँ। मेरे क्रोधके सामने इन बिचारों की क्या ताकत है जो यहां ठहर सके। क्या प्रबल आँधी के चलने पर तृण समूह ठहर सकता है ? यह कहने के साथ ही अपने हाथमे धनुष उठाया और उसपर बाण चढ़ाकर लड़नेके लिये एकदम तैयार हो गया। उसका उस समय यह उद्यम देख स्थिरबुद्धि युधिष्ठिरने उसे बहुत शान्त वचनों से समझा बुझाकर शान्त किया। सो ठीक ही है सज्जन पुरुषों का प्रकृति-जन्य स्वभाव ही है कि वे बैर विरोधको जहाँ तक होता है बढ़ने नहीं देते बल्कि उसको शान्त करनेका ही यत्न करते है। इस तरह समझा बुझाकर युधिष्ठिर ने अर्जुन का क्रोध शांत किया तो इतने मे कुलीन नकुल बोला कि मैं अभी कौरव कुलरूपी वृक्षको जड़से ही नष्ट किये देता हूँ। ये तो बिचारे पतंगो के समान हैं और मै आगके समान हूँ। इनको नष्ट करने मे मुझे किंचित् भी प्रयत्न करने की जरूरत ही नहीं है। इसी बीच मे सहदेव भी बोल उठा कि मेरे इस तीक्ष्ण कुल्हाड़े के सामने इन बिचारे कौरवोकी क्या ताकत है जो ठहर सके ?

अभी अपने कुल्हाड़ेको उठाता हूं और इनके टुकड़े-टुकड़े करके दशों दिशाओं को बलि दिये देता हूं। इन ज्ञानहीन पिशुन-चुगली करने में दक्ष झूठे अभिमानी कौरवोंको मैं जब तक मृत्यु शय्यापर नहीं सुला दूंगा तबतक मुझे चैन नहीं होगी। ये अभिमानी सर्पके समान दुष्ट हैं, मै इनके लिये गरुड़के समान हूं। ये मेरे सामने भला कितने ही फण उठावें और मुझे अपनी फुंकारोंसे डरावें तो मेरा क्या कर सकते हैं? इस प्रकार क्रोधाग्निसे जलते हुये नकुल और सहदेव को युधिष्ठिरने अपने वचनरूपी वर्षासे शान्त किया। इस प्रकार युधिष्ठिरके समझाने बुझाने पर वे चारों भाई अशुद्ध मतिको छोड़कर शुद्धमति हो स्थिर चित्तसे पूर्व की तरह राज्यको भोगते हुये।

इधर दुष्ट दुर्योधन युधिष्ठिर आदि पांचों भाईयोंकी चिन्तामें अपनी बुद्धिको खर्च करने लगा। उसका ध्येय ही उस समय बन गया कि जिस प्रकार भी बने इन पांडवोंका जल्दी विध्वंस कर दूं। अपने उद्देश्य सिद्धिके लिये उसने कपटसे एक लाखका महल बनवाया जो कि बहुत सुन्दर था। उस महलके ऊपर बड़े ऊंचे और विशाल कूटों की रचना की जिस पर कि मनोहर कलश चढ़वाये। उस महलमें जालीदार झरोखे बनवाये जो ऐसे जान पड़ते थे कि मानों पांडवोंकी दीप्तिको हरण करनेके लिये अपने नेत्र ही खचित कर दिये हों। उस महलमें जगह-जगह तोरण बन्धे हुये थे, वे ऐसे प्रतीत होते थे कि मानों दुर्योधन ने पांडवोंका रण देखनेके लिये यह मूर्तिमान रण ही तोरणके छलसे यहां खड़े किये हों। उसमें नाना प्रकारके चित्र अंकित हो रहे थे वे ऐसे प्रतिभासित होते थे कि मानों शत्रु ही खचित कर दिये गये हैं। महलके चारों ओर एक परकोटा बना हुआ था और परकोटा एक निर्मल जल पूरित खाईसे वेष्टित था। जो कि बहुत ही सुहावना प्रतीत होता था। मतलब यह है कि इस महलको बनवानेमें एवं उसकी सजावट करनेमें दुर्योधनने भरशक्ति प्रयत्न किया, किसी बातकी कमी नहीं रक्खी। यह महल बहुत जल्दी बनवाया गया था जिससे किसीको ऊहापोह सन्देह करने का मौका ही न मिले।

इसके बाद कौरव विनम्र हो शान्तचित्त भीष्मपितामह के पास आये और उन्हें कहने लगे कि पितामह! हमने एक सुन्दर महल बनवाया है, उसके

शिखर इतने उन्नत हैं कि मानों आकाशको ही छू रहे हों। उनपर सुन्दर ध्वजायें फहरा रही हैं जो ऐसी मालूम देती हैं मानों आदमियोंको ही बुला रही हों। यह अपने स्तम्भरूपी हाथों से ऐसा शोभा पाता है कि मानों शत्रुओंके महलोंकी सम्पत्तिको ही हरण कर रहा हो। पूज्य! हमने यह उत्तम महल पांडवोंके रहनेके लिये बनाया है इसलिये आपसे हमारा यही निवेदन है कि आप इस महलको पांडवोंको रहने के लिये दे दीजिये। हमारी अन्तरंग इच्छा है कि स्थिरचित्त युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई इस सुहावने महल में निवास कर सुखसे राज्यका भोग करें और हम अपने घरमे रहकर सुखसे रहें। कौरवों के इन मधुर वचनोंको सुनकर उदारबुद्धि पितामहने कहा कि तुमने जो विचार कर मुझे सलाह दी है वह तुम्हारी सलाह मुझे बहुत पसन्द आई है, कारण मैं यह समझता हूँ कि तुम दोनोंका एक जगह रहकर निर्वाह होना बहुत ही कठिन है। क्योंकि मनमे जब थोड़ा-सा भी फरक पड़ जाता है वहाँ फिर छोटी-छोटी-सी बातोंकों लेकर बड़ा भारी उपद्रव मच जाता है जिसका फिर सम्भलना शक्तिके बाहर हो जाता है इसलिये बैर-विरोध मिटाने के लिये तुम दोनोंको जुदा-जुदा रहना ही श्रेयस्कर है। जिस परिवारमें सदा ही लड़ाई झगड़ा हुआ करता है भला उस परिवारमें शान्ति कहाँ रह सकती है? और जहाँ शान्ति नहीं है वहाँ सुख नहीं है। दृष्टान्तके लिये भरत चक्रवर्ती और उनके छोटे भाई बाहुबलीको ही देख लो, कुटुम्ब की कलह से ही भरत चक्रवर्ती को नीचा देखना पड़ा। प्रीतिका संचार दूर रहने से ही अधिक होता है यह निश्चित है इसलिये मैंने भी यही विचार किया है कि तुम लोगोके जुदा रहने मे ही हित है और ऐसा करने से शान्तिपूर्वक राज्य भोगा जा सकता है।

इस प्रकार मनमे विचार निश्चित कर राजसिंह वृहस्पतितुल्य पितामहने पांडवोको अपने पास बुलाया और उनसे कहा कि हे धनुर्विद्यामे विशारद अखण्ड प्रतापी पांडवगण! तुम मेरे वचनोंको ध्यान देकर सुनो, वे तुम्हारे लिये हितकर होंगे। पांडव बड़ी उत्सुकताके साथ पितामहके वचन सुनने लगे। उन्होने कहा कि तुम लोग बहुत जल्दी मुहूर्त दिखलाकर इस नूतन महल मे सुखसे रहो, जिससे तुम्हारे आपसी सभी झंझटे मिट जायेगी और फिर कोई टण्टा फसाद नहीं

रहेगा क्योंकि 'न रहेगा बाँस न बजेगी बान्सरी' वाली कहावत के अनुसार आपसी विरोधका कारण एक जगह रहना ही दूर किया जायगा तो उसका कार्य लड़ाई झगड़ा स्वतः ही नहीं होगा। तुम अलग रहनेमें किसी तरहका भय न करो। मेरा दृढ निश्चिय है कि तुम्हे जुदे रहनेमें ही सुख एवं शान्ति है। गुरु की आज्ञाका अक्षरशः पालन करनेवाले उन बुद्धिमान् पांडवोंने बिना कुछ विचार किये ही, गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य किया अर्थात् उन्होंने उसीसमय ज्योतिषज्ञ से शुभ मुहूर्त शुभ दिन दिखलाकर नूतन महल में प्रवेश किया। उनके प्रवेशके समय बड़ा भारी महोत्सव मनाया गया। उस समय भेरियोंका मनोहर शब्द दशों दिशाओंमें गूंज रहा था, नट हर्षित होकर नृत्य कर रहे थे, विशाल मृदंग ताल कँसाल आदि मनोहर बाजे बज रहे थे, गायक लोग मंगलगीत गा रहे थे, जिनको सुनकर चित्त बहुत ही प्रसन्न होता था। इस प्रकार मगंलगानपूर्वक पांडवगण नूतनगृहमें रहने लगे। वहाँ रहकर वे उत्तम कुलमें पैदा हुए त्यागी व्रतियोंको चार प्रकारका दान भाव-भक्तिपूर्वक निरन्तर करते रहते थे एवं पूज्य पुरुषोंकी पूजा आदि सत्कार में सदा ही अग्रणी रहते थे। सदा ही निर्मल चित्त हो धार्मिक कार्यों को करनेमें प्रोत्साहन युक्त होते हुए भावीसे नहीं डरते हुये आनन्दसे वहाँ रहते थे। उनके हृदय में थोड़ा भी कपटजाल नहीं था, वे अपने समान सबको निष्कपटहृदयी जानते थे! वे यह नहीं जानते थे कि दुष्ट कौरव हमारे साथमें बड़ा भारी मायाजाल रच रहे हैं किन्तु विद्वान् विदुरको उनका यह मायाजाल किसी प्रकार विदित हो गया। वे कौरवों दुष्ट अभिप्राय को समझ गये उन्होंने तुरन्त ही अपने पास बनमें युधिष्टिरको बुलाया और उससे कहा कि वत्स! सज्जनोंपर ही विश्वास करना चाहिये भूलकर भी दुर्जनोंका विश्वास नहीं करना चाहिये। अन्यथा पीछे पछताना पड़ता है। दुष्ट पुरुष अपना विश्वास जमानेके लिये सामने तो ऐसी मीठी-मीठी चिकनी-चुपड़ी बातें बनाते हैं किन्तु जिस समय उनका दाव लगता है तो वे सर्पकी तरह काट लेते हैं, फिर उनसे उद्धार पाना बड़ा कठिन हो जाता है। एक तरह सर्पका सहवास तो अच्छा है किन्तु विश्वासघाती दुष्ट पुरुषोंका सहवास अच्छा नहीं कारण कि सर्प डस लेगे तो हमारी वर्तमान पर्याय ही तो नष्ट होवेगी और तो

हमारा कुछ अहित नहीं होगा किन्तु दुष्टपुरुषोंका सहवास तो भव-भवमे इस जीवको दुःख देनेवाला होता है इसलिए भूलकर भी दुष्टोंका साथ करना अच्छा नहीं है। जैसे कि कोई पुरुष काई लगे हुये पत्थर पर भूलसे पैर रखदे तो उस पर से गिरेगा ही। ठीक यही हाल दुष्ट पुरुषोंके साथ सहवास करनेका है। पुत्र! नीति शिक्षा देती है कि राजा लोगों को कभी भी दूसरे लोगोंका विश्वास नहीं करना चाहिये किन्तु जो सुखपूर्वक अपना समय बिताना चाहते हैं उनको तो भला अपने शत्रुका विश्वास किस माफिक करना चाहिये? नीतिके ग्रन्थोंमें बतलाया है कि राजा लोगों को अपने हृदयका भी विश्वास नहीं करना चाहिये फिर भला माता-पिता भाई बहन लड़का स्त्री इनका विश्वास तो दूर रहा, उसमें भी दुष्ट पुरुषोका भरोसा तो नितान्त दूर है, भूलकर भी नहीं करने योग्य है, इसलिये मैंतुम्हें यह शिक्षा देता हूँ कि तुम इन कलहकारी कौरवों का विश्वास मत करो। ये दुष्ट तुम्हें इस लाखके बने हुये महलमे रखकर तुमको मार देंगे और तुम्हारे कुलका सर्वस्व हरण कर लेंगे। वत्स! यह तो मुझे निश्चय हो गया है कि महल लाख का बनाया गया है किन्तु किस गुप्त अभिप्राय से यह महल बनाया है सो अभी तक पता नहीं चला है सो ठीक ही है मायावियों की मायाका पता पाना कोई सरल काम नहीं है अस्तु, मेरा कहना सिर्फ तुम लोगोंसे इस समय यही है कि तुम लोग इस महलमे नहीं रहो, नहीं तो भविष्यमे तुम्हे भारी दुःख उठाना होगा। दूसरी एक यह बात भी कर सकते हो कि तुम प्रतिदिन सावधान होकर बन-क्रीड़ा के मिस से बनमे जाया करो, वहाँ दिन-भर हमारे पास रहा करो और रात्रि के समय महलमे जागते हुए रहा करो। जागने की जरूरत इसलिए है कि निद्रावस्था मे कुछ होश नहीं रहता वह अवस्था एक प्रकारसे मुर्दाके समान हो जाती है। उस समय शत्रु आसानी से अपना बदला चुका सकता है। नीतिमे भी कहा है कि बुद्धिमान् पुरुषो को रात्रिके समय शत्रुके घरपर रहना ही नहीं चाहिये और यदि कदाचित् रहे भी तो रात्रिभर जागरण करना चाहिये। इस प्रकार हितैषी पांडवोके चाचा विदुरने बनमे बैठकर युधिष्ठिरको यह सुख को करनेवाली शिक्षा दी। इसके बाद उठकर अपने घर चले आये। इतना कहने पर भी विदुरकी चिन्ता कम न हुई। उसका

विचार, उसकी चेष्टा सदा पांडवोंको बचानेके लिये रहा करती थी क्योंकि वह दुष्ट कौरवोंके स्वभावसे भले प्रकार परिचित था। पांडवोंकी रक्षाके निमित्त उसने एक उपाय स्थिर किया, वह यह कि उनके रहनेके महलसे लेकर जगंल तक एक सुरंग बनवा दी जाय, जिससे मौका आनेपर वे लोग उस सुरंगसे निकल अपनी रक्षा कर लेवें। उसने अपने स्थिर विचारोंके अनुसार चुपचाप ही सुरंग खोदनेवाले कारीगरों को बुलाया और उन्हें खोदने खुदानेकी सब विधि समझा दी, स्थान वगैरहका भी उन्होंने मौका देखकर निश्चय कर लिया क्योंकि वे इस कार्यके पूर्ण पण्डित थे। उन्होंने थोड़े ही दिनोंमें बिना किसीको मालूम हुए इतनी बड़ी सुरंग खोदकर तैयार कर दी कि जो आने-जाने के उपयुक्त थी। जिसप्रकार शिवपुरके जानेके लिये स्याद्वादरूपी सुरंग उपयुक्त होती है। सुरंग तैयार हो गई देखकर विदुरकी चिन्ता मिटी। इस उपायसे उसने पांडवोंको निर्भय कर दिया और स्वयं भी चिन्ता रहित हो गया। किन्तु सुरंग तैयार गई यह बात विदुरने पांडवोंको नहीं कही, वे कहना भूल गये और वह तैयार होते ही मिट्टी आदि से ढक दी गई थी। इसके बाद वे पांडव शोक विषाद आदि से रहित हो वहाँ आनन्दपूर्वक कुन्ती सहित रहने लगे। वहाँ रहते हुये उन्हें एक साल हो गया, जो कि न कुछ समयके समान लगा। सो ठीक ही है कि सुखसे रहने से निश्चिन्त पुरुषोका समय जाता हुआ मालूम नहीं देता है।

इधर धृतराष्ट्रके दुष्ट पुत्र दुर्योधनादि पांडवोंको मार डालनेके लिये महलमें अग्नि लगानेका विचार करने लगे। उन्होंने विचार किया कि महल में अग्नि लगा देनेसे लाख पिघल जायगी और उसके भीतर रहनेवाले पांडव उसमें भस्म हो जायेंगे। ऐसा दृढ़ संकल्प कर उसने इस बातकी अपने मंत्रियोंसे मंत्रणा की। मंत्रणाके बाद निश्चय कर लेने पर उसने तुरंत ही रात्रिके समय एक अर्ककीर्ति कोटवाल को अपने यहाँ बुलाया। वह कोटवाल बहुत दयालुचित्त और धार्मिक था। कोटवालसे दुर्योधनने बहुत अनुरागपूर्वक यह कहा कि तुम इसी समय पांडवोंके इस महल को जला दो। इस कार्यमें थोड़ा भी विलम्ब न करो। कुछ भी आगा-पीछा सोचने की तुम्हे जरूरत नहीं है। तुम इस कामको कर दो। यह काम हो जानेके बाद तुम मुझसे जो इच्छा करोगे मैं तुमको निश्चय

से दूंगा। ग्राम, धाम, धन आदि जो चाहोगे सो सब तुमको दिया जायगा। बस देर एक क्षणकी भी मत करो।

दुर्योधनके इन अनिष्ट वचनोंको सुनकर कोटवालने कहा राजन्! आपका यह विचार नितान्त अनुचित है। इस कार्यसे बुद्धिमान तुम्हारी निन्दा करेंगे, तुम्हारा संसारमे अपयश फैल जायगा। न्यायी पुरुषोके लिये ऐसा करना उचित नहीं है। जो मनुष्य जीवनके लिये धन संग्रह करते हैं वह जीवन भी तो ओसकी बूंदके समान क्षणभंगुर है। जिस प्रकार कि मेघ-पटल देखते-देखते नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार यह जीवन भी नश्वर है और धन तो नश्वर है ही। आप जिस धनका लोभ देकर मुझसे इन महापुरुषोको मार डालनेके लिये कह रहे है, भला वह लक्ष्मी क्या सदा मेरे पास रहेगी? वह कुतियाके समान घर घरके टुकड़े खानेवाली है या व्यभिचारिणी स्त्रीके समान है। उस घरसे इस घर और इस घरसे उस घर फिरनेवाली है उसका यही स्वभाव है। प्राणीवध-जैसे अनर्थकारी कार्यसे जीवोको भव-भवमें महान दुःख उठाने पड़ते हैं। राजन् ऐसे धनसे क्या काम जिससे जन्म-जन्मांतरमे दुःख उठाने पड़े। इसलिये महाराज, मुझपर प्रसन्न हूजिये और धन सम्पदाकी बात छोड़कर और जो कोई आज्ञा हो उसको कीजिये, यह सेवक आपकी आज्ञा शिरोधार्य करनेके लिये तैयार है। कोतवाल की यह बात सुनकर दुर्योधनके क्रोधका पारावार नहीं रहा वह आपेसे बाहर होकर बोला कि रे नीच! तू यह क्या बात कहता है। सबसे अच्छा और सच्चा सेवक वही कहलाता है कि जो मालिक की आज्ञाको पूर्णरूपसे मानता है। उसको उस आज्ञाके सम्बन्धसे भला बुरा विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है। इसलिये तुम्हे इस समय ऐसा ही काम करनेकी जरूरत है, इसीमे तुम्हारी भलाई है। तुम आगा पीछा मत विचारो, जो तुम्हे आज्ञा की है उसको तुरन्त बजाओ। क्या तुम्हे यह बात मालूम नहीं है कि काम पड़नेपर नौकरोकी, विपत्ति पड़नेपर बन्धु बांधवो की संकटके समय मित्रोकी और दरिद्रताके समय स्त्रीकी परीक्षा हो जाती है। यह मौका उनके स्वभावका परिचय देनेके लिये बहुत ही उपयुक्त है। इसलिये याद रक्खो, यह समय तुम्हारी भी परीक्षाका है। मेरी आज्ञानुसार काम करनेस तुम्हे अतुल सम्पत्ति मिलेगी, जिसे पाकर तुम

सुखी होगे वर्ना महान विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

अपने उत्तरके प्रत्युत्तरमे दुर्योधन के उत्तेजित वचनोंको सुनकर अपने प्राणों की तनिक भी पर्वाह न कर कोतवाल बोला कि राजन्! चाहे मुझे देश निकाला करदो, चाहे मेरी सम्पत्ति लुटवालो, मेरा अपमान, मेरा मस्तक जुदा करदो, चाहे मुझे भारी से भारी दण्ड दो, परन्तु स्वामिन्! महल में आग लगा कर पांडवोंको मै भस्म करदूं, यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा, इसके लिये मै क्षमा चाहता हूँ। यह कहकर कोतवाल चुप हो गया। कोतवालके इस उत्तरको सुन-कर दुर्योधनके गुस्सेका कोई ठिकाना नहीं रहा, उसने उसे ऊपरसे नीचे तक सांकलोंसे मजबूत बाँधकर जेलखाने में डलवा दिया।

इसके बाद दुष्ट अभिप्राय वाले दुर्योधनने लोभी अपने प्रोहितको बुलवाया और उसे नाना प्रकारके बहुमूल्य वस्त्राभूषण भेटमें देकर उससे कहा कि प्रोहित-जी! आप राजप्रोहित कहलाते हो, आपसे सारे संसारके जीवोंके काम सिद्ध होते हैं, यह तुम्हारी कीर्ति चारों तरफ फैल रही है। आज हमारा भी एक काम आ पड़ा है। वह काम आपको चुपके चुपके बहुत जल्दी कर देना होगा। मुझे विश्वास है कि वह कार्य आपसे ही हो सकता है। वह कार्य यह है कि यह जो पांडवों का लाख का बनाया हुआ महल है उसे रातोंरात जलाकर भस्म करदो। इससे मुझे भारी प्रसन्नता होगी। इस काम को करके आप मुझसे इच्छित इनाम लो, ऐसा कह दुर्योधनने पहिलेसे ही मनमाना धन दे दिया। द्विज लाख के महलको जला देनेका आदेश ले वहांसे चल दिया और वह पापी लोभके वशी-भूत हो उस महल को जलानेका प्रयत्न करने लगा। ग्रन्थकार कहते है कि हा, यह लोभ कितना बुरा है कि इसके वशमें पड़ा हुआ जीव कृत्य अकृत्यरूप कार्य का कुछ भी विचार नहीं करता। यह लोभ ही जीव को महान दुःखदायी है, लोभी पुरुषके ऊंचनीचका कुछ भी विवेक नहीं रहता। संसारके सारे अनर्थ इस एक मात्र लोभसे ही होते हैं और तो क्या लोभी पुरुष भाई, बहन, माता, पिता, स्त्री, पुत्र, नौकरचाकर, राजा, गुरु आदि किसी भी प्यारेसे प्यारे अपने निकट-सम्बन्धियोंको भी मारनेसे नहीं हिचकता, इस विषय के अनेक दृष्टान्त है कि सगी बहिनने लोभके वशमें पड़ अपने सगे भाईको मार दिया, पुत्र न पिता

को मार दिया आदि । वास्तवमें लोभ ही सब पापोंका बाप है । इसीसे क्रोध, काम, मोह पैदा होते हैं और लोभसे ही अन्तमें नाश हो जाता है । मतलब यह है कि लोभी पुरुषसे संसारमें जो भी अनर्थ न हो जाय सो थोड़े है । एक समय वह था कि नर-पुंगव—मनुष्योंमें जो श्रेष्ठ होते थे वे जरा सा निमित्त पाकर भारीसे भारी राज्य-विभूति, हाथी, घोड़ा, मकान, रुपया-पैसा, कुटुम्ब आदि को तृणवत् त्यागकर मुनिपद धारण कर लेते थे और आज यह दशा !

इसके बाद उस पापी लोभी द्विजने पांडवोंके महलके चारों तरफ आग लगा दी सो ठीक ही है दुर्जन मनुष्य क्या नहीं अनर्थ करते ? क्या नहीं भंड वचन बोलते ? इसके बाद वह दुष्ट प्रोहित आग लगाकर वहांसे चम्पत हो गया सो ठीक ही है, पापी पुरुषकी आत्मा सदा ही भयभीत रहती है, वह निडर होकर खड़ा नहीं रह सकता । इधर अग्निने भयंकररूप धारण कर लिया, उसकी ज्वाला आकाश तक ऊपर उठने लगी, जो दूर-दूरसे देखी जाने लगी । ऐसी अवस्था होनेपर भी पांडवगण नींद से जाग्रत नहीं हुये—अचेत निद्रामें पड़े रहे । इधर प्रबल अग्निने बातकी बातमें महलकी सुन्दर-सुन्दर वस्तुओंको जला कर खाक कर दिया । धीरे-धीरे अग्नि महल की दीवारोंको जब जलाने लगी तब उसका कुछ असर पांडवोंपर हुआ और वे निद्रासे जगे, जगते ही उन्होंने यह भयानक कांड देखा । यह अग्निकांड उस समय प्रलयकी अग्निके समान दीख पड़ता था । उस समय पांडव अपने निकलने के लिये इधर-उधर जगह देखने लगे परन्तु अग्निकी तीव्र ज्वालाके सामने उनका एक पैर भी आगे नहीं बढ़ता था । उस तड़-तड़ शब्द करती हुई अग्निने सब जगह अपना आवास बना लिया था । इधर-उधर खोजखाज करनेपर जब उनको रक्षाका कोई उपाय नहीं सूझा तो धर्मबुद्धि युधिष्ठिर स्थिरचित्त हो पंचपरमेष्ठीका ध्यान करने लगे । वे उस समय कर्मोंकी विचित्रताका चिन्तवन करने लगे कि ओह ! संसार में कर्म इतना विकट है कि उसपर सज्जन पुरुषोंका भी वश नहीं चलता । उनको भी कर्म रस देता है । कर्मोदयके सामने किसी बलीका बल काम नहीं देता है, फिर भी हे आत्मन् ! तू इन कर्मोंके करनेमें प्रयत्नशील रहता है यह एक बड़े आश्चर्य की बात है । अब तो मुझे इस कर्मसे पिंड छुड़ाना चाहिये । अरे कर्मोंके फँदे में पड़

कर ही तो सगर चक्रवर्तीके पुत्र दुःखी हुये थे, इन्हींके वश में पड़कर भरत चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिको सेनापति जयकुमारने बन्धनबद्ध किया था, इनके सिवा और भी अनेक राजा महाराजा एवं तीर्थंकर तकको यह असाता कर्म बिना फल दिये नहीं छोड़ता है तो और की तो क्या बात है? आज हम भी इन्हीं कर्मो की कृपासे अग्निकी ज्वालाके भीतर पड़े हुये हैं और अब यह विकट अग्नि थोड़ी देर मे हमें भस्म किये देती है। इसलिये अब हमें भी मरनेकी चिन्ताको हृदयमें दूर कर कर्मोको छेदनेवाले उन सिद्ध प्रभूका ध्यान करना चाहिये जो मोक्षरूपी वधूके स्वामी हो गये है। मरनेका हमें डर क्यों करना चाहिये, आत्मा तो अमर है-मरना ही है तो फिर डर कैसा ?

इस प्रकार चिन्तवन करते हुये सम्यग्दृष्टि युधिष्ठिर स्थिरचित्त बैठे ही थे कि इतनेमें सहसा अग्नि की ज्वालासे संतप्त हुई कुन्ती निद्रासे उठी और महल को जलते हुये देखकर रोने लगी कि हाय, मैने पूर्व भवमें ऐसा कौनसा पाप कर्म किया था जिसके प्रभावसे मुझे और मेरे पुत्रोंको यह भयानक दुःख मिल रहा है। आश्चर्य है कि यह प्राणी पापके फलसे तीव्र दुःखोंको भोगते हुये भी फिर उन्हींको उपार्जन करनेमें लग जाते है। ऐसी इस अज्ञानी जीवकी बुद्धिको एक बार नहीं शतबार धिक्कार है। मेरी दशा इससमय प्याससे व्याकुलित हुआ हिरण जैसे वन मरीचिकाको देखकर दौड़ लगाता है ठीक वैसी हो रही है। मैं किधर जाऊँ, किधर न जाऊँ, मुझे कुछ भी रास्ता प्राण रक्षाका नजर नहीं पड़ रहा है इस प्रकार माथा धुनते हुये कुन्ती भयानक रुदन करती हुई। उस समय भीमने माताको बहुत समझाया बुझाया और वह अपने आसनसे उठकर इधर-उधर बाहर जानेका रास्ता देखने लगा। वहाँ अग्नि बड़ी जोरसे धधक रही थी जिसे देख वह कुछ डरा किन्तु पुण्ययोगसे वहाँ उसको देखते-देखते वह सुरंग जो पृथ्वीके अन्दर विदुरने खुदवाई थी मिल गई। उसको देखते ही उनका संताप मिट गया और वे सब पांडव मय कुन्तीके भगवानका हृदयमे ध्यान करते हुये उस सुरंगके रास्ते से बहुत शीघ्र पार होकर बनमे पहुँच गये। जिस प्रकार कि भव्यगण संसारको पारकर थोड़े ही समयसे मुक्तिको जाते है। देखो पुण्य का फल कितना मीठा है कि जिसके प्रभावसे अनजानी सुरंग भी समयपर हाथ

आ गई। इस पुण्यसे ही आग जल हो जाती है, समुद्र थल बन जाता है, शत्रु मित्र बन जाता है, विष निर्विष हो जाता है। मतलब है कि जो नहीं होनेके कार्य है वे भी आसानीसे हो जाते हैं, पुण्यका बड़ा भारी-अचित्य माहात्म्य है।

इसके पश्चात् वे पांडव माता कुन्ती सहित स्मशान भूमिमें गये। वहाँ पहुँच कर भीम ने अपनी रक्षाके लिये एक उपाय सोचा और उस विचारके अनुसार तुरन्त ही कार्य करनेको प्रयत्नशील हुआ। वह स्मशान भूमिसे छह मुर्दो को उठाकर उन्हे जलते हुये महलमें डाल आया, जिससे कि लोग यह समझ लें कि पांडव इस अग्निमें जलकर मर गये। इस कामको करनेमें उसने इतनी फुर्ती की कि किसी को पता भी नहीं चला। इसके बाद वे पाँचों पांडव माता कुन्ती सहित वहांसे चुपचाप निकल गये।

इधर हस्तिनापुरमें प्रभात हुआ, नगरके सब नरनारी जगे। कौरवगण बाहर से दुःख प्रकाशनका ढोंग करते हुए पांडवोको देखनेके लिये महलके पास आये वहाँ आकर खेद प्रगट करने लगे सो ठीक ही है दुष्ट पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है कि उनके अन्तरंग में दूसरे ही भाव होते है और बहिरंगमें लोग दिखाऊ दूसरे रूपसे ही क्रिया होती है। महलकी और उसमें पांडवोके जलने की बात सारे नगरमे फैल गई। इस बातको सुनकर पुरवासी लोग हा हा कार कर कहने लगे अब यह नगर सज्जनरहित होगया। न जाने किस दुष्टने यह काम किया है। पुण्यशाली पांडव कितने अच्छे पण्डित थे, कितने पराक्रमशाली, शुद्धचित्त, तेजस्वी एवं धनुर्विद्यामे विशारद थे कि उनकी शानीका कोई संसार मे दूसरा नजर नहीं आता था। उनके बाहुबलके आगे बड़े-बड़े राजा महाराजा नतमस्तक होते थे अर्थात् उन्होने बड़े से बड़े राजाके ऊपर विजय प्राप्त करली थी। दुःख है कि ऐसे प्रतापशाली पुण्यवान् महान पुरुषोको भी इस दुष्ट कर्मने अपने चुंगलमे फँसा लिया। हे कर्म तेरी चतुराई को धिक्कार है, एक बार नहीं हजार बार धिक्कार है। इसप्रकार पाडवोके वियोगजन्य दुःखसे सभी दुःखी हुये। उनमे कोई तो यह कहता कि मुझे तो इसमे यह सन्देह है कि पांडव इतने चतुर और पराक्रमी होकर किसप्रकार भस्म हो गये, कौन उनको जलानेकी ताकत रख सकता है ? मुझे यह भी सन्देह है कि

ऐसे महान पुरुषों का मरण इस रीतिसे हो ? यह कभी नहीं हो सकता । कोई कहता कि भाई यह जरूर सन्देहास्पद है कि पुण्यशाली कभी अल्पायु नहीं होते और यदि हों भी तो मरण इसप्रकार नहीं होता । आज ये नगर उनके न रहने से कैसा उजाड़ सरीखा दीख रहा है। ऐसे ऊजाड़ नगरमें हम कैसे रह सकेंगे । हमें तो ऐसा मालूम देता है कि मानों मेघकी बराबरी करने वाला मेघेश्वर नरेश आज ही मृत्यु द्वारा कवलित किया गया है एवं श्री शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने आज ही इसे अनाथ बना दिया है। अथवा हम लोगों के दुःख को न सह सकनेके कारण ही आज शान्तनुराजा और व्यास ये दोनों काल कवलित हुये हैं। कोई आश्चर्य भरे शब्दोंमें कहता कि क्या सच ही आज पांडवोंकी मृत्यु हो गई है ? इस प्रकार इन समाचारों को सुनकर नगरके अधिवासी और कुटुम्बी जनोंने बड़ा भारी विलाप किया।

गांगेयने जब इन दुःख भरे समाचारोंको सुना तो उसका हृदय शोकसे परिपूर्ण हो गया और तीव्र मोह के उदयसे यह समाचार पाते ही उसे मूर्छा आगई और वह अचेत हो जमीन पर गिर पड़ा। वह उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानों उसके शरीरमें मृत्यु ही लिपट गई हो । इसके बाद चन्दन आदि शीतलोपचार से उसकी मूर्छा दूर हो गई और उसके दूर होने पर वह दीन हीन की तरह आँसुओकी धारा बहाने लगा । उस समय उसको जो कष्ट हुआ वह न कहा जा सकता है और न लिखनेमें ही आ सकता है वह उस समय दुःखित मन हो करुण विलाप करने लगा कि हे पुत्रों, तुम सकल वस्तुके ज्ञाता थे फिर किस तरह जला दिये गये ? यह अयुक्त कार्य विधिनाने क्या किया ? तुम्हीं बतलाओ और जल्दी बतलाओ कि तुम्हारे बिना अब हम कैसे सुखसे रह सकेंगे ? हमें इस बातमें सन्देह है कि तुम सरीखे अतुल पुण्यशाली पुरुषोंकी मृत्यु और सो भी अग्निमें जलकर ? उचित यह था कि यदि तुम्हारा मरण ही इस समय होना निश्चित था तो शत्रुके अभिमान चूर करनेवाले युद्धमें होता अथवा निदानको छोड़कर ही धारणाके साथ दीक्षा धारणकर सन्यासपूर्वक मृत्यु होती । इसके सिवा और कोई मृत्यु होनी नहीं थी । मालूम पड़ता है कि तुम लोगोंको दुष्ट कौरवोंने ही जला दिया है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

पापी पुरुषोंकी वृद्धि सदा ही पापरूप कार्यके करनेमे जाती है व कुमतिसे प्रीति करते है और सुमतिसे रुष्ट रहते है। उनके विचार और उनकी क्रियायें विवेक-शून्य—हिताहित के विचारसे रहित होती है।

पांडवोंकी मृत्युके समाचार पाकर द्रोणाचार्यको भी महान दुःख हुआ और उस दुःखसे दुःखित हो उनको भी मूर्छा आगई। पश्चात् मूर्छाके वे विलाप करने लगे, उनके विलापसे दशो दिशायें शब्दमय हो गई। उन्होने विचार किया कि नीच काम करनेवाले पापात्मा कौरवों, तुमने यह काम भद्रताका नहीं किया, निश्चयसे तुम्हारा ही यह काम है और किसी से ऐसा होना सम्भव नहीं था। द्रोणके इन स्पष्ट वचनोको सुनकर कौरवोने अपना सिर नीचा कर लिया और वे बहुत ही लज्जित हुये। किन्तु वे अपनी सफाई दिखानेके लिये इस प्रकार कहने लगे कि गुरुदेव,आप यह अयुक्त बात किस प्रकार कहते हैं, ऐसा कार्य हम क्यों करेंगे? सो ठीक ही है दुष्ट मनुष्य अपना पाप छिपानेके लिये चाहे जैसा कह सकते है। इस समय चारो तरफसे नगरके लोग महलकी आगको बुझानेके लिये वहाँ आ गये और वे बड़े परिश्रमके साथ उस अग्निको बुझाने लगे, बुझाते २ वहाँ उन्होने पड़े हुये मुर्दके कंकालों को देखा। उन्हें देखकर शोकातुर हो कहने लगे कि अरे यही तो स्थिरचित्त युधिष्ठिरका शरीर है! कोई कहने लगा कि अरे यह तो महाबली भीमका शव है। यह निर्मल-चित्त अर्जुन है। अरे देखो; ये सरलचित्त नकुल और सहदेव है और यह सुकेशी उनकी जननी कुन्तीका मुर्दा शरीर पड़ा है। देखो यह सती कैसी निर्मल चित्त और दयार्द्र परिणामवाली थी। इस प्रकार ये सब मनुष्य इन अधजले मुर्दोंको देखकर स्वयं ही मारे शोकके अर्धमृतक सम हो गये, उनके हृदयमे यह काड देख महान दुःख हुआ। वे लौट-लौटकर इन मुर्दो को देखने लगे और आखरीमे उन्होने यही निश्चय किया कि पांडव जल गये है। इस महान् शोकके कारण पुरवासी लोगोने उस दिन अन्न पानी आदि कुछ भी ग्रहण नहीं किया और अपना व्यापार धन्धा आदि सब ही बन्द रक्खा। उस समय के शोकका क्यावर्णन किया जाय? शहरके जितने भी स्त्री पुरुष बाल-बच्चे पशु-पक्षी जितने भी थे उन सबोकी हाय-हाय की ध्वनिसे आकाश गूँज गया।

उधर पांडवोकी मृत्युके समाचार पाकर धृतराष्ट्रकी रानी गांधारीको बड़ा

ही सन्तोष हुआ। उसनें विचार किया कि अब तो सारा राज्य मेरे पुत्रोंको ही मिलेगा, इस खुशीमें उसने एक उत्सव भी किया। इस प्रकार पांडवोंके जल मरनेकी बात सारे संसारमे फैल गई और कुछ समयसें वह समुद्रके मध्य द्वारिकापुरीमें भी समुद्रविजय आदि भाइयोंको एवं बलभद्रके कानों तक पहुँच गई। इस बातको सुनकर उनको बड़ा भारी दुःख हुआ। इस दुःखसे दुःखी होकर भयानक बड़वानलसे क्षोभको प्राप्त हुये समुद्रवत् समुद्रविजयसे नहीं रहा गया। उसको कौरवोंका अन्याय सह्य नहीं हुआ। इसलिये समुद्रकी लहरोंकी तरह सेनारूप तरंगोंसे लहराते हुये द्वारिकासे हस्तिनापुरको रवाना हो गये। उनकी तैयारी को देखकर बलभद्र भी उसी समय साथमें आयुधवाले महान योद्धाओंको लेकर तैयार हो गया। सो ठीक ही है क्षत्री पुरुषोंका समयपर क्षत्रीपना जाग्रत होता ही है। इसी प्रकार नारायण भी कवच पहिनकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। इस अघटित घटनाको सुनकर और भी सब यादवोंको महान दुःख हुआ। उनका शरीर एकदम संत्रस्त हो गया, आँखोंसे आँसुओंकी धारा अविरल बहने लगी, उन्होने दुःखित होकर संग्राम करनेके लिये रण-भेरी बजवाई। उस रण-भेरीके शब्द सुनकर विद्वान् मंत्रीगण यादवोंके पास आये, जहाँ कि समुद्र-विजय, बलभद्र, नारायण आदि सभी एक जगह बैठे हुये थे। उन्होंने नमस्कार कर कहा कि प्रभो! हमारी एक प्रार्थना है सो सुनिये। आपने जो यह उद्यम किया है किस वास्ते किया है? बुद्धिमान् पुरुष योग्य उद्यमको ही करते हैं। जो इस बातका विचार न कर सहसा अयोग्य उद्यम करनेके लिये तैयार हो जाते है वे चाहे जो भी हों उनको पीछे पछताना पड़ता है। उनकी इस बातको सुनकर अपने शरीरकी कांतिसे सूर्यकी तुलना करनेवाले नारायण बोले कि आप यह क्या कहते है? मैं कौरवोंको यहाँ बाँधकर ले आऊँगा। और उनको धधकती हुई बड़वानलमे डाल दूंगा अथवा संग्राममे उनका पराजय करके उनके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके दिशाओंको बलि चढ़ा दूंगा। मै यह निश्चयसे कहता हूँ कि जिस प्रकार क्रुद्ध हुये सिंहके रहने पर हाथियोका कहीं गुजारा नहीं रहता उसी प्रकार मुझ सरीखे समृद्धिशाली बलवान क्रुद्ध हुये योद्धाके होने पर पांडवोंको मारनेवाले दुर्योधनादि कौरव कहाँ रह सकेंगे? उन्हे कहीं भी जगह नहीं मिलेगी। ये दीन

निष्प्रभ कौरवरूपी मेंढक तभी तक गरजते—टर-टर करते हैं जब तक कि इन्होने मुझ सरीखे भयानक विषधरका दर्शन नहीं किया है। इनका मद मेरा दर्शन करते ही काफूरकी तरह उड़ जायगा। कृष्णके इन वचनोंको सुनकर सब बातो का ज्ञाता एक विद्वान् बोला कि राजन्! आपका यह कहना तो सर्वथा ठीक है परन्तु नीति इस बातको कहती है कि छिद्र पाकर ही शत्रुका विनाश करना चाहिये। जैसे कि खाली घड़ेके छेद को पाकर उसके द्वारा उसमे शीघ्र जल भर जाता है अथवा बिना छिद्रके मोती नहीं पोया जाता उसी प्रकार शत्रु भी बिना छिद्र पाये शीघ्र वशमे नहीं होता है। उसका वशमे करना अत्यन्त ही कष्ट साध्य हो जाता है। दूसरी बात यह है कि कौरवोको अपनी सेनाका भारी बल है उनके साथ सेना भी बहुत है, शारीरिक बलका भी अभिमान है, इतना होने पर भी उन्हे सबसे बडा सहारा जरासिंधका है इसलिये वे और भी इस समय उद्धत है। जिस प्रकार कि किसी मेढ़कको नागदमनी—सर्पको वशमे करने वाली जड़ी मिल जाय तो वह साँपोंके शिरपर नाचने लगता है सो ठीक उसी प्रकार कौरवोंका हाल हो रहा है। इसलिये बुद्धिसागर, नीतिकुशल महानुभाव! अभी आपका कौरवोंके साथ लड़ाई करना ठीक नहीं जान पड़ता है। अभी कुछ दिनके लिये और ठहर जाइये पीछे जब आप जरासिंधके साथ संग्राम करेंगे उस समय इन कौरवोंका निग्रह आसानीसे हो जायगा। आप जानते ही है कि जोकाम धीरे होता है वह अच्छा और पूर्ण सफलतापूर्वक होता है, यदि आप इस समय हठपूर्वक युद्ध करनेको तैयार हो जायँगे तो उधर जरासिंध भी तैयार हो जायगा और इस समय उसे छेड़ना सोते हुये सिंहको जगाना है। इसलिये हे धैर्यवान्! अभी आप धैर्य धरकर ही रहे। पीछे जब समय आयगा तब मैं ही उनका विध्वंस कर दिखाऊँगा। आप जानते है कि हर एक कार्यके लिये योग्य समय की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार उस वाग्मी विद्वान्के समझाने पर नीतिको जाननेवाले यादव लोग संग्राम करनेसे रुक गये। सो ठीक ही है कि समझदार पुरुष योग्य पुरुषोंके वचनोंको मानते ही है, उनमे गुणग्राहकता गुण विशेष रूपसे पाया जाता है।

इधर प्रतापी पांडव भेष बदलकर भस्मसे ढँकी हुई अग्निकी तरह छिपे हुये

वहाँसे पूर्व दिशाकी तरफ चले आये। वे पांडव बड़े तेजस्वी थे, उनकी भुजायें हाथीके सुण्डादण्डकी तरह लम्बी और मजबूत थीं। उनका पराक्रम सब दिशाओंमे व्याप्त हो गया था। उनका विक्रम चक्रवर्ती जैसा था। वे अपनी माता कुन्तीके साथ धीरे-धीरे चलते थे। चलते-चलते कुन्तीको जिस समय खेद होने लगता था तो उस समय वे भी खेद खिन्न हो जाते थे। रास्ते की थकावट से कुन्ती जहाँ खड़ी हो जाती वहाँ ये भी खड़े हो जाते वह बैठ जाती तब आप भी बैठ जाते। देखो कर्मकी कैसी विचित्रि गति है कि जो कुन्ती फूलोंकी शय्या पर सोनेवाली थी, जिसकी शय्यामें फूलका एक डण्ठल भी रह जाता था तो वह उसको तकलीफ पहुँचाता था, वही कुन्ती आज भेष बदले वन पहाड़ोंकी पैदल यात्रा कर रही थी। कर्म जो न करावें सो थोड़ा है।

इस प्रकार वे पांडव धीरे-धीरे चलते हुये गंगा नदीके पास पहुँचे। उस समय गंगा अथाह जलसे भरी हुई थी। उसका प्रवाह मंद और बड़ा गम्भीर बह रहा था। उसके किनारे पर शोभायुक्त शाल वृक्ष लगे हुये थे जो कि खूब ही फल फूलोंसे लदे हुये थे। गंगा नदीकी शोभा उस समय ठीक एक नवोढ़ा स्त्री के समान जान पड़ती थी। उसके अथाह जलको देखकर पांडव पार करनेमें असमर्थ हो उसके किनारे पर ही ठहर गये और वहाँ वे पार करनेवाले किसी धीवर की खोज करने लगे। भाग्यवश उन्हे एक धीवर मिल गया और उसको बुलाकर कहा भाई, तुम बहुत जल्दी अपनी नौका यहाँ ले आओ और हमे गंगाके उस पार कर दो परन्तु यह ख्याल रखना कि नौका बिना छिद्रकी होनी चाहिये जिससे कि हम निरापद पार हो जांय। पांडवों की बात सुनकर धीवर चटसे नौका ले आया और उस पर पांडवोंको चढ़ाकर गंगा पार करने लगा। कुन्ती भयसे अपने पुत्रोंका हाथ पकड़ लेती थी, उसे बहुत डर लगता था किन्तु पांडव निडर थे। थोड़ी ही देर मे नौका बीच मझधारमे पहुँच गई और वहाँ पहुँचकर वह अटक गई। धीवरने उसके चलानेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु वह वहाँ से जरा भी टससे मस नहीं हुई। जिस प्रकार कि हठी कुटला स्त्रीको डण्डोंके द्वारा कितना ही मारा पीटा क्यों न जाय परन्तु वह एक कदम नहीं सरकती—वहाँकी वहीं मचला करती है अथवा जिस प्रकार कालज्वर के चुंगलमें

फँसे हुए रोगीका शरीर बिलकुल भी नहीं चलता उसी प्रकार वह नौका भी लाख प्रयत्न करने पर भी तिलमात्र उस जगहसे नहीं चली।

यह देखकर पांडवोंने धीवरसे कहा कि भाई! यह क्या बात है? यह नौका इतना उपाय करने पर भी क्यो नहीं चलती? क्यों ऐसी इस जगह अटक गई है, जिसप्रकार कि अच्छे शास्त्रोंमें खोटी बुद्धि अटक जाती है। पांडवोंके वचनों को सुनकर धीवर ने कहा कि स्वामिन्! इस जगह एक जलदेवी रहती है, उसका प्रगट नाम तुण्डिका है और इसी गंगा नदीमे उसका घर है। इस समय यह देवी नौकाको बीचमें रोककर अपनी भेट चाहती है और न्याय भी यही है—कि हक-दार लोग अपना हक लेकर ही दूसरोंका काम करते हैं। इसलिये प्रभो, आप इसको हक देकर नौकाको चालू करवा दीजिये और शीघ्र ही उस पार पहुँचिये, इसीमे आपका हित है। धीवरकी की यह बात सुनकर युधिष्टिरने कहा कि भाई, तो देवीको भेट देने के लिये हमारे पास कोई चीज है नहीं। यहाँसे किनारे तक चलो, वहाँ पहुँचकर हम नाना प्रकार का व्यंजन-पकवान बनावेगे और फिर यहाँ आकर आदरपूर्वक देवीकों भेट चढ़ायेगे। भला तुम्हीं बतलाओ कि इस अथाह जलमें हमे देवीके भेट करने योग्य कौनसी चीज मिल सकती है? और मिलती हो तो तुम हमे ला दो। युधिष्ठिरके वचनोंको सुन धीवर ने कहा कि प्रभो, यह तुण्डिका देवी मिश्री आदिके बने हुये पकवानोसे तृप्त नहीं होती है किन्तु यह तो मनुष्य-बलि चाहती है। इसको तो मनुष्यका मांस दिया जाता है तभी यह सन्तुष्ट होती है। इसलिये नाथ, आप भी इसको मनुष्यबलि देकर सन्तुष्ट कीजिये और उस पार शीघ्र चलिये नहीं तो अनर्थ होनेकी सम्भावना है।

धीवरके ऐसे वचन सुनकर युधिष्ठिरके मनमें भारी चिन्ता पैदा हो गई और वे अपनी मृत्यु को सामने खड़ा देखकर इस प्रकार विचार करने लगे कि जब हमारे दुष्कर्म राहुकी दृष्टि ही हमारे ऊपर वक्र है तो हमारा दुःखोसे पिंड छूट ही कैसे सकता है? कर्म ही संसार में सबसे प्रबल शत्रु है। उसके बराबर और किसीमें भी उतनी शक्ति नहीं है। देखो न कर्मकी विचित्रता, पहले तो हम लोगोके कौरवोंके साथ लड़ाई हुई और उसमे हमारी विजय हुई और पीछे

लाखके द्वारा निर्मित महलमें जलाये गये, वहाँ से किसी प्रकार सुरक्षित निकल आये और आकर इस नदीके किनारे आये और इस नाव में बैठकर स्वतः ही मरनेके लिये इस तुण्डिकाके चक्करमें आ फँसे। आश्चर्य तो इस बात का है कि हम लोग बड़े-बड़े अनिष्टोंसे तो बचकर आ-गये किन्तु यहाँ छोटेसे निमित्तको पाकर हम सब लोग काल कवलित हुये जाते हैं। यह कार्य तो इसप्रकारका हो रहा है कि जैसे कोई समुद्रको तो पार करले और छोटेसे तालाबमें डूबकर प्राण गंवा दे। ठीक यही दशा इस समय हमारी हो रही है। सच है कर्मोदयके आगे किसी बलीका बल काम नहीं देता है ? यह बात तो ऐसी हुई कि जैसे किसी धीवर के हाथसे मछली छूटकर तालाबमे गिर पड़ी तो वहाँ किसी के जालमें फँस गई और जालसे भी जिस तिस प्रकार निकली तो बगुलेने उसे भक्षण कर लिया।

पश्चात् सचिंत और कर्तव्य-विमूढ़ युधिष्ठिरने अपनी एक निगह बली विपुलोदर भीमकी ओर डाली और कहा कि प्रिय भाई भीम ! इस भयसे भी अब कोई छुटकारा पानेका उपाय है ? यदि है तो बतलाओ जिससे कि सुखसे उस पार पहुँचे। देखो न, क्या तो विचार किया था और अब यह क्या हो गया। यह तो बात ऐसी हुई जैसे कोई विप्र राजकन्याके प्राप्त करनेकी इच्छासे घरसे बाहर निकला और रास्ते में उसे किसी व्याघ्रने खा लिया। इसलिये भाई, विघ्न-विनाशनका कोई शीघ्र उपाय करो नहीं तो थोड़ी ही देरमें हम सब लोगों के सर्वनाश हो जानेकी सम्भावना है। मै इस समय कर्तव्य विमूढ़ हो गया हूँ, मेरी समझमे कोई उपाय नहीं जँचता। यह बात सुनकर निर्भय भीमने भृकुटि चढ़ा कर कहा कि पूज्यपाद, इस समय अवसर देखकर काम करनेमे ही बुद्धिमत्ता है। मैंने इस महान विपत्तिसे उद्धार पाने का एक बहुत अच्छा तरीका निकाला है। आप उसको शीघ्र ही कार्य रूपमे परिणत कीजिये। इस कामके करने से न तो अपयश ही होगा और न किसी तरहका अपमान ही होगा, किन्तु मेरी कीर्ति अवश्य होगी। वह उपाय यह है कि यह धीवर अत्यन्त बूढ़ा, दरिद्री और विट्-रूप है इसलिये इसे ही देवीकी बलि चढ़ा देना देना चाहिये। अब रही नौका चलानेकी बात सो आप कुछ चिन्ता नहीं कीजिये। मुझे विश्वास है कि हम

लोग अनायास ही इस नौकाको पार कर ले जायेंगे। भीमके इन वचनोंको सुन धीवर थर-थर कांपने लगा; उसके होश-हवाश एकदम उड़ गये, वह निष्प्रभ हो गया सो ठीक ही है अपने नाशकी शंका प्रत्येक प्राणीको दुःखदायी हुआ करती है, चाहे वह गरीब हो चाहे अमीर। वह गिड़-गिड़ाकर दबी जबानसे विनम्र शब्दोंमे प्रार्थना करने लगा कि स्वामिन्, मेरे मारनेसे कुछ भी लाभ नहीं है किन्तु अनिष्ट होने की सम्भावना है। मेरे बिना आपको नदीके किनारे कौन लगायेगा ? दूसरी बात यह है कि मेरे मारे जानेसे आपकी संसारमें अकीर्ति हो जायेगी कि देखो इतने बड़े राजाने एक दीन हीन धीवरको मार दिया–भला करते बुरा दिखाया। राजन्, यह आप ख्याल रखिये कि मुझको यदि आप मार देवेंगे तो मेरे कुलका कोई भी आदमी आप लोगोंको इस गंगाके पार नहीं पहुँचावेगा। तब आपको गंगामे ही स्थिति करनी पड़ेगी। आपही सोचिये कि एक बार ठगाया हुआ मनुष्य क्या फिर उस मार्गको ग्रहण करता है ? नहीं करता।

इस प्रकार धीवरकी बात सुनकर दयालु युधिष्ठिरने भीमसे कहा कि वत्स ! तुम इतने चतुर और गुणाढ्य होकर भी यह कैसी बात कर रहे हो ? तुम्हारी बातको सुनकर मेरा हृदय कंपित हो रहा है। जिस प्रकार कि यमराजका नाम सुनकर यह शरीर दहल उठता है। तुम खुद विद्वान् हो, विद्वानोंमे आदर पाते हो। शुभाशुभ कर्मोदय को एवं उनके अच्छे-बुरे फलको भले प्रकार समझते हो, इसके लिए हमे अधिक तुम्हे यहाँ समझाने की आवश्यकता नहीं है। देखो जो दयार्द्र परिणामवाला पुरुष है वह पुण्योदयसे प्राप्त हुई अतुल सम्पत्तिका भोक्ता होता है, जो निर्दयी अव्रती पुरुष है वे पापोदयसे जीवों को मारते है, सदा ही दुःखी रहते है। तुम खुद विचारकर देखो यह धीवर कितना गरीब और अन्नादिकी पीड़ासे दुःखी हो रहा है। यह तो खुद बिचारा अपने किये पूर्वोपार्जित कर्मोंके फलको भोग रहा है। दूसरे यह तो हमारा उपकारी है क्योंकि यह नदीसे हमको पार कर रहा है इसलिये हे दयालु प्रिय भाई, इसे मारना कैसे उचित कहा जायगा। उपकारीके प्रति तो उपकार करना ही कर्तव्य है न कि उसका सर्वनाश कर देना। भाई, इसे मारना तो मुझे किसी तरह भी उचित नहीं

जँचता है। इसलिये अब तुम इस विचारको छोड़कर कोई दूसरा ही नदी पार होनेका उपाय सोचो।

अपने पूज्य भाई युधिष्ठिर की यह बात सुनकर भीम मुस्करा कर बोला कि प्रभो! आप दूसरा उपाय सुनिये। इस तुण्डिका देवीको तृप्त करने के लिये युद्धमे अपण्डित ऐसे नकुलको अथवा कुलकी रक्षामें असमर्थ ऐसे सहदेवको भेंट दे दीजिये और सुखसे उस पार चले चलिये। भीमकी यह बात सुनकर महामना युधिष्ठिर भीमसे बोला कि हे भीम! तुम्हारे मुँहसे यह भयानक बात कैसे निकली? मुझे तो यह दोनों छोटे भाई पुत्रोसे अधिक प्यारे हैं। हाय, सुखसे रहनेवाले मैं इन प्यारे भाईयोको कैसे मार सकता हूँ? ये तो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं, भाई यदि उनको मारकर हम नदीके बाहर जाते है तो हमारी यह अपकीर्ति संसारमे फैल जायगी कि देखो यह युधिष्ठिर राजा अपने प्राणोंको प्यारा समझ कर अपने छोटे भाईयोको देवीके भेंट दे आया है। इस कामसे सब लोग हमें धिक्कार देंगे और अपयशका ढिंढोरा संसारमे पीटेंगे। अरे इस दयाहीन जीनेको फिर शतबार धिक्कार है, हे निर्दय भीम, तुम इस दयाशून्य विचार को हृदयसे निकाल दो, मै नहीं समझता कि तुम्हारे मुंहसे ऐसे कुत्सित विचार क्यों निकलते है? भाई तुम्हे तो सदा ही दया सहित व्यवहार करना चाहिये। मेरे विद्वान् भाई, कोई ऐसा अच्छा उपाय सोचो कि जो सु—कर हो।

युधिष्टिरकी यह बात सुनकर चतुर भीम बोला कि देव, यदि आपको मेरी यह बात नहीं रुची तो आप देवीको तृप्त करनेके लिये समर्थ अर्जुनको भेटमे दे दीजिये जिससे कि देवी फिर कोई विघ्न उपस्थित न करे। भीम के इन वचनोंको सुनकर युधिष्ठिर का माथा उस समय घूम गया और वह इस प्रकार कहने लगा कि हे पवित्र आत्मन् भीम, तुम यह क्या निंद्य वचन कहते हो। इससे तो हमारे उज्ज्वल यशमे धब्बा लग जायगा और सारी सुख शान्ति धूलमे मिल जायगी। तुम तो जानते ही हो कि यह पार्थ कितना तेजस्वी और धनुर्विद्याका प्रकांड विद्वान् है कि जिसके बराबर आज संसारमे दूसरा धनुर्विद नहीं पाया जाता है। शब्दबेध करनेमे अत्यन्त प्रवीण है, बहुत धर्मात्मा है और धीर वीर जिसको बड़े-बड़े राजा महाराजा अच्छी तरह जानते है और उसका

आदर सत्कार करते है । इसके जीते रहनेपर तो कभी फिर अपना राज्य वापिस भी आ सकता है इसलिए यह कभी मार डालने के योग्य नहीं है। तुम्हारी उसको मारनेकी राय देना नितांत अनुचित है।

पूज्य बड़े भाईकी यह बात सुनकर भीम फिर बोला कि आप किसीको मारना नहीं चाहते तो कमलके समान कोमल इस माता कुन्तीको ही देवी के भेंट दे दीजिये जिससे हम सब लोग विपत्तिसे छूट जांय। उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा कि भीम, यह बात भी तुम्हारी उचित नहीं है। यह जननी हम सबको जन्म देनेवाली है। सदा ही उसके चरण कमल पूजे जाने योग्य है। दयालु है, धर्मिष्ट है, इसने हम सबको नौ मास गर्भमें रक्खा है और जन्म देकर महाकष्टसे हमारा पालन पोषण किया है। यह जगतकी पुण्यमयी माता है। देखो संसारके महान पुरुष जननीको तीर्थ कहते हैं तो क्या हमे उसे मार डालना चाहिये ? यह कौनसी न्याय नीति की बात है ? भाई भीम, तुम तो दयाके सागर हो, न्याय नीतिके वेत्ता हो, लोक व्यवहारके जानकार हो। इसलिये भाई, तुम कोई विचारकर युदतपूर्ण बात कहो और वैसा ही कोई उपाय करो।

इसके बाद गम्भीराशय युधिष्ठिरने विचारकिया कि भीमने जो अपने भाईयो और पूज्य माता को मारने के लिये कहा है वह तो ठीक नहीं है किन्तु इस समय मुझे ही अपनी बलि दे डालना चाहिये। यह विचार कर वह पवित्र आत्मा अपनी बलि देने के लिये तैयार हो गया और सब भाईयोंको बुलाकर इस प्रकार शिक्षा देने लगा कि भाईयों, तुम सब माताकी मन लगाकर भक्ति-भावसे सेवा करना। माताकी सेवा करनेसे सब मनोरथ सिद्ध होते है और इच्छित सम्पत्ति मिलती है। परोपकारमे अपने चित्तको लगाना, भूलकर भी कौरवोंका विश्वास मत करना क्योंकि ये सब बड़े विश्वासघाती हैं, दूसरो के मनोरथमे विघ्न डालनेवाले है, ये आशीविष सर्पके सामान है। इनके ऊपर विश्वास करना मानों हमेशा ही खतरे मे रहना है। इसप्रकार युधिष्ठिरने भीम आदिको भले प्रकार न्यायनीतिकी शिक्षा दी।

इसके बाद युधिष्ठिर अपने शरीरको गीले वस्त्रसे साफकर और मनके मैल को धोकर धर्मध्यानमे तल्लीन हो गये और उस समय पंचपरमेष्ठिका नाम जपनेलगे।

उस समय उनके मनमें न राग और न द्वेष रहा। वे शरीरसे भिन्न आत्मा की भावना भाते हुये तथा सांसारिक इच्छाओंका संवरण कर आत्मध्यानमें रत हो गये। वे संसारकी सारी चीजोंको एवं कुटुम्बादिको अपनेसे भिन्न समझने लगे। वे उस समय दो प्रकारके सन्यास धारण कर निर्भय हो गये। पश्चात् उन्होंने सब भाईयोंसे क्षमा करा कर स्वयं सबको क्षमा प्रदान की और माता को नमस्कार किया। इतना करनेके बाद वह बली अपनी बलि देनेको तैयार हो गया। भाई की यह क्रिया देखकर भीम आदि सब बड़े दुःखी हुये और उनका उस समय शरीर थरथर काँपने लगा। वे कहने लगे कि तात! यह क्या आपने संकट का कारण उपस्थित कर दिया जिसका कि हमको स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था। हे देव! आपका यह प्रयत्न हमारे लिये बड़ा ही दुःखदायी है। हम तो यह जानते थे कि अपना बनवास समाप्त कर फिर वापिस अपने नगर को आवेंगे और दुष्ट कौरवोंको युद्धमे हराकर कालके गालमे पहुँचावेंगे और अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करेंगे। नाथ! यह मनका विचार तो मनमें ही रह गया और यह अतर्कित घटना सामने दिखाई देने लगी। हा, इस दैवको धिक्कार है जिसके सामने पुरुषार्थकी कौड़ी कीमत भी नहीं है। अपने पुत्रकी यह दशा देख कुन्ती करुणासे आर्द्रचित्त हो विलाप करने लगी कि हा पुत्र, हा दया के निधि पवित्रात्मन्, हा राज्ययोग्य पुत्र युधिष्ठिर, तुम्हारे बिना इस कुरुजाँगल देशकी कौन रक्षा करेगा? पुत्र! तुम बलियोंमे महाबली, पण्डितोंमे महापण्डित, तुम्हारे बिना शत्रुओंको मारकर कौन इस राज्यको स्वाधीन करेगा? इस प्रकार बिजली की प्रभाके समान प्रभावाली कुन्ती रोती हुई और अपने हाथोंसे छाती पीटती, माथा धुनती हुई मोहवश मूर्च्छासे मूर्च्छित हो जमीनपर गिर पड़ी। सो ठीक ही है यह मोह ऐसा प्रबल है जो मनुष्यकी बुद्धिको हर लेता है। कुन्ती इधर तो मूर्च्छामें पड़ी हुई थी कि इतनेमें युधिष्ठिर जलमें कूदनेके लिये उद्यत हो गया।

पूज्य युधिष्ठिरकी यह अवस्था देख दुःखसे विह्वल होकर भीम बोला कि स्वामिन्, आप तो स्थिरचित्त हो पृथ्वीका पालन कीजिये, हे कुरुवंशरूप आकाश के चन्द्र, आप मुझे गंगामें कूद पड़ने की आज्ञा दीजिये, मैं अभी अपने बाहुबलसे तुण्डिकाको सन्तुष्ट कर दूंगा। उसपर युधिष्ठिरने कहा कि भाई भीम, तुम्हें

व्यर्थ ही यमके मुंहमे पड़ने की आवश्यकता नहीं है। उत्तरमे भीमने कहा कि मै उस आसुरी तुण्डिकाको मेरे वज्रोपम हाथोंके प्रहारोंसे ताड़ित करके अभी उसे पददलित किये देता हूँ और देखता हूँ कि उसमे कितनी ताकत है। यह कहकर निर्भय भीमने देवीको सम्बोधन करके कहा कि हे तुण्डिके, लो अब मेरी बली लो और प्रसन्न हो। वह गंगाके अथाह जलमे कूद पड़ा, उसको सचमुचमें ही गंगा मे कूदा हुआ देखकर युधिष्ठिर आदि चारों भाई और माता कुन्ती हाहाकार करके रुदन करने लगे। हा भीम, हा महाभाग, हा पराक्रमी, हा शत्रु समूहके विनाशक भीम, तुमने यह क्या किया, तुम्हारे बिना हमे यह संसार शून्य दिख रहा है। हा अब तुम्हारे बिना इस दुःखरूपी सागरको किस प्रकार पार कर सकेगे? भीमके गंगामें कूदते ही देवीने नौका छोड़ दी। थोड़ी देरमे नौका गंगा के किनारे लग गयी। वे सब तो किनारे लग गये परन्तु भीमके वियोग से वे सब दुःखी और चिन्तातुर थे उनकी दृष्टि भीमकी तरफ लग रही थी। भीमके गुणोंका मुहुर्मुहु चिन्तवन करते हुये उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी परन्तु कुछ वश नहीं था। आखिर नौकासे उतर कर और बहुत देर तक भीमकी बाट देखकर वे वहाँसे आगे चलते हुये।

इधर भीमके गंगामे पड़ते ही तुण्डिका मगरका रूप धारण करके उसकी तरफ लपकी। उसको अपनी ओर आते देख भीम अति क्रोधित हो उसकी तरफ दौड़ा। वह जल पर तरते हुये उसके साथ युद्ध करने लगा। भीम और तुण्डिका का आपस मे पैरोंके आघातो द्वारा खूब संग्राम हुआ। वे दोनों लड़ते हुये ऐसे जान पड़ते थे कि मानों दो प्रचंड मल्ल ही लड़ रहे हों। इस समय भीमने अपने पावों द्वारा तुण्डिकाको तहस–नहस कर दिया। इस पर तुण्डिकाको बड़ा भारी गुस्सा आया। उसने भीमको एकदम ही निगल लिया। उस समय भीम के क्रोध का पारावार नहीं रहा। उसने अपने वज्र जैसे हाथो के प्रहारो द्वारा उस देवी का पेट ही फ़ाड़ दिया और उसकी पीठ की सुदृढ़ हड्डी को तोड़ दिया, जिससे कि वह आराम के साथ पेट से बाहर निकल आया। तुण्डिका भीमकी मारसे बहुत ही व्याकुल हो गई और जब उससे कुछ नहीं बन पड़ा तो वह गगाके दूसरे रास्ते से निकल भागी। इसप्रकार देवीको पराजित कर भीम किनारे आ

लगा। उसे आता हुआ देख युधिष्ठिर आदिको बहुत प्रसन्नता हुई। भीमने उनके पास पहुँचकर सबके चरणोंको नमस्कार किया, हर्षके साथ गले मिला। पश्चात् युधिष्ठिरने पूछा भाई भीम! तुमने गंगाके अथाह जलमें बिना हथियार के किस प्रकार देवीको पराजय किया? भीमने कहा हे महाभाग! आपके चरण रजके प्रसादसे मैंने हाथोंके प्रहारों से ही उसको हरा दिया और गंगाको तैरकर यहाँ आपके पास आ गया।

इसप्रकार गंगाके अथाह जलको तिर, तुण्डिकाको जीत, शत्रुओं पर विजय करके पांडव बहुत ही आनन्दित हुये। ग्रन्थकारकहते हैं कि यह सब श्रेष्ठ धर्मका ही प्रभाव है, धर्मकी जड़ सदा हरी रहती है। संसारमें कोई ऐसी अलभ्य वस्तु नहीं जो धर्म पालनसे न मिले। धर्मात्मा पुरुषोंको सांसारिक जितनी भी सम्पत्तियां हैं वे सब खोज-खोजकर अपना स्वामी बनाती है। मतलब यह कि धर्म के प्रभाव से जीवोंको सारी अनुकूल भोग्य सामग्री मिलती है, धर्मके बराबर संसारमें दूसरा धन नहीं है।

जो प्राणी अन्तरंग भावोंसे धर्मको धारण करता है वह संसारके सुख, योग्य स्त्री पुत्र आदि कुटुम्ब, सम्पत्ति व निरोग शरीरको पाता है एवं वही मोक्ष प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करता है। वही देवोंके द्वारा रक्षा किया जाता है, सज्जन पुरुषों द्वारा वन्दनीय होता है। अतः सदा धर्ममें मन लगाओ, एक समय भी बिना धर्मके न जाने दो, न मालूम किस समय इस जीवका क्या होने वाला है।

॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

अथ चौदहवां अध्याय।

चन्द्रमा की प्रभाके समान है प्रभा जिनकी, जो चन्द्रमाके चिन्हसे चिन्हित हैं, जिनकी सुरेन्द्र नरेन्द्र खगेन्द्र आदि सभी सेवा करते हैं, जो संसारमें अद्वितीय चन्द्रमाके नामसे प्रख्यातकीर्ति है ऐसे अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभस्वामी को हमारा नमस्कार है। वे प्रभु हमें शान्ति-प्रदान करें, हमारे कर्म कलंकको समूल नष्ट करें।

इसके बाद वे पांडव ब्राह्मणका रूप धारण करके कुन्तीके साथ साथ धीरे

धीरे वहाँसे चलकर कौशिकपुरीमे पहुँचे। वह पुरी अत्यन्त शोभायुक्त थी; उसमे बड़े उन्नत महल बने हुये थे जो ऐसे मालूम देते थे कि मानों स्वर्गसे चलकर देवोके विमान ही आये हों। उस नगरीका कोट बहुत सुन्दर और ऊँचा बना हुआ था, जो कि मानों स्वर्ग को जीतने की ही स्पर्धा कर रहा हो। मतलब यह है कि पुरी की रचना बहुत सुन्दर थी, जो कि अत्यन्त चित्ताकर्षक थी। वहाँ के राजाका नाम वर्ण था, जो कि सुन्दर शरीरवाला श्रीमान् धीमान् और शक्तिशाली था। उसकी रानीका नाम प्रभाकरा था। वह भी अपने पति जैसे योग्य गुणरूप आदिसे सुशोभित थी। उनके एक कमला नामकी पुत्री थी। वह कमला—लक्ष्मीके समान शोभायुक्त थी। वह सौंदर्यकी प्रतिमा थी, उसके नेत्र बहुत ही सुहावने थे, वह गुणोंकी खान थी। उसका शरीर अत्यन्त कांतियुक्त था।

एक समय कमलाके मनमें बन-क्रीड़ा करने की लालसा उत्पन्न हुई। वह अपनी सहेलियों को साथमे लेकर जहॉ नाना तरहके उत्तमोत्तम चम्पा, चमेली, जुही आदिसे सुगन्धित फल फूल रहे थे, नाना तरहके वृक्ष फलफूलोसे लद रहे थे, ऐसे एक सुन्दर प्रमद नामके उद्यानमें गई। वहॉ पहुँचकर उसने सखियोंके साथ मनचाही बन-क्रीड़ा की, झूला झूलकर मनको बहलाया।

इसके बाद उसने दूरसे एक जिन-मन्दिर देखा, वह मंदिर बहुत ही सुन्दर और सुहावना मालूम होता था। उसके शिखरके ऊपर सुवर्णके कलश चढ़े हुये थे। उन्हें देखकर उसकी इच्छा हुई कि वहॉ जाकर उसकी वन्दना करे। वह जिनालयके दर्शन करनेके लिये वहॉसे चल दी। इतनेमे पांडव भी वहाँ आ पहुंचे और वे इस जिन-मन्दिरको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुये। उन्होने मन्दिरजी मे श्री चन्द्रप्रभस्वामीकी मनोज्ञ प्रतिमाको देखकर शुद्ध-जलसे स्नान कर 'निःसहि निःसहि का उच्चारण' करते हुए मन्दिर मे प्रवेश किया। वहॉ पहुँचकर उन्होंने भगवानकीपूजा-वन्दना की। पश्चात् परमोदयको देनेवाले विचित्र विचित्र स्तोत्रोंके द्वारा भक्ति भावसे भगवानकी स्तुति की कि हे जिनेन्द्र, हे भव्य जीवों के जीव-नाधार, हे तीन लोकके पूज्य, हे जन्म जरारूपी रोगोके नाशक, तीन लोकके स्वामी प्रभो! तुम्हारी जय हो। हे भगवन्! आप अशरणके शरण हैं, कर्मरूपी

योद्धाओंको जीतनेमें महाबली है। हे नाथ, आपके शरीरकी कान्ति इतनी तेजयुक्त है कि उसने चन्द्रमाको भी जीत लिया है, नहीं तो चन्द्रमा चिन्हके मिससे आपके पुनीत चरणोंकी सेवा ही क्यों करता ? चन्द्रमा कालिमायुक्त होने से सदोष है किन्तु आपकी आत्मा सदा ही निर्मल है इसलिये नाथ आप अद्वितीय चन्द्रमा हो। प्रभो आप समस्त चराचर लोकको देखनेवाले केवलज्ञानी हो, संसारके उद्धारक हो, इसलिये नाथ हमारी रक्षा करो। हमें संसारसे पार कर इन भीषण दुःखोंसे छुड़ाओ। इसप्रकार भगवानकी स्तुति कर उन्हें बहुत ही आनन्द हुआ जिससे उन्होंने सातिशय पुण्यका बन्ध किया।

इसके पश्चात् वे सब पुण्यात्मा वहाँ बैठे ही थे कि इतनेमें सखियों सहित कमला वहाँ भगवानका दर्शन करनेके लिये आई, उसका मुख कमल प्रसन्न था, नेत्र कमल खिल रहे थे, गलेमें सुन्दर हार शोभा पा रहा था। वह अपने पैरोंके गहनेके शब्दसे कोयलको भी लज्जित करती थी। वह अपनी मंद मंदगतिसे हथिनी की चालको भी जीतती थी। उसकी कमरमे पड़ी करधनी बहुत ही शोभा दे रही थी। वहाँ पहुंचकर वह जिन-मन्दिरके भीतर गई और वहाँ उसने यथाविधि से हृदय में भक्तिभाव धारण कर प्रभुकी वन्दना एवं चंदनादि सुगन्धित द्रव्योंसे जिन पर कि भौंरे गूँज रहे थे, भगवानके चरण-कमलोंकी पूजा की तथा उनके चरण कमलोंमे केतकी, कुन्द, कमल, चम्पक मल्लिका आदि सुगन्धित पुष्प चढ़ाये और भगवानकी पूजन की। सब दिशाओंको सुगन्धित बनाने वाली धूपको अष्ट-कर्म जारनेकी इच्छासे अग्निमे क्षेपण किया, जिस धूपकी शिखाने आकाशको व्याप्त कर लिया, उत्कृष्ट श्रीफल आदि मनोहर फलोंको भगवान के आगे चढ़ाया। इसप्रकार प्रगाढ़ भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा कर वह वहाँसे बाहर निकली। वहाँ उसने पवित्र पांडवोंको देखा। वह उन सबोंमें अधिक तेजशाली रूप गुणमें सुन्दर युधिष्ठिरको देखकर मोहित हो गई और मन-ही-मन विचार करने लगी कि यह कौन है ? सुर है या सुरेश, चन्द्रमा है या सूर्य है, नगेन्द्र है या किन्नर देव है ? देव तो मालूम नहीं देते हैं क्योंकि इनकी आँखोंके पलक चपल हैं, टमकार सहित हैं, है तो कोई मनुष्य पर सुन्दरता मे देव तुल्य दीख पड़ते हैं। मनुष्य भी मामूली नहीं है विशेष पुण्यशाली हैं। इन महापुरुष ने मेरे मनको चुरा

लिया है इसलिये मैं अब इनके बिना बिलकुल अधीर हूँ, अपने प्राणोंकी भी रक्षा करने में असमर्थ हूँ। इस प्रकार वह कन्या कामोंके प्रखर बाणों द्वारा अच्छी तरह घायल हो गई, जिससे अब उसको अपने घर पहुँचना भी मुश्किल हो गया। वह कहीं तो पैर रखती थी और कहीं जाकर पड़ता था, सखियाँ जिस तिस प्रकार उसका हाथ पकड़कर उसे घर तक ले गई। वहाँ पहुँचकर उसका शरीर आलसयुक्त हो गया। वह मुग्धा न तो कुछ खाती और न पीती और न किसी से कुछ बोलती ही थी। कभी वह रोने लगती, कभी सो जाती, कभी उठ बैठती कभी हँसती, कभी गिरती और कभी पड़ती थी। पुत्रीकी ऐसी अवस्था देखकर उसकी माताने सखियोंके द्वारा उसका सारा हाल जान लिया और जानकर वहसब समाचार अपने स्वामीसे कह सुनाया। राजाने पुत्रीकी दशा जानकर तुरन्त ही मंत्रियोंको बुलाया और उसने परामर्श कर पांडवोंको अपने घर बुलाना निश्चय किया। निश्चयके अनुसार उसने किसी संभ्रान्त व्यक्तिको भेजकर आदरपूर्वक उनको अपने घर पर बुलाया और उनसे प्रीतिपूर्वक मिला और वस्त्र आभूषण आदि देकर उनका यथा योग्य आदर सत्कार किया। पांडव राजाके प्रेमवश कुछ दिन ठहर गये इसके ही बीचमें राजाने अवसर पाकर राजा युधिष्ठिरसे कन्या वरण करनेकी प्रार्थना की और उनकी स्वीकारताके अनुसार शुभ मुहूर्त मे सविधि कमलाका विवाह युधिष्ठिरके साथ कर दिया और साथ में बहुत धन भी दिया।

कमलाके साथ पाणिग्रहण करके युधिष्ठिर उसके साथ दिव्य भोगोंको भोगते हुये माता और भाईयों सहित वहाँ बहुत दिन तक रहे। इस बीचमे एक दिन राजा वर्णने युधिष्ठिर से पूछा कि प्रिय दर्शन ! आप कौन हैं और आपके साथ ये चार पुरुष कौन है ? आप लोग कहाँसे आये हैं ? यह बात सुनकर युधिष्ठिरने कहा कि हे महाभाग ! आप हमारा परिचय पाकर आश्चर्य करेगे। हम पांचो पांडु राजाके पुत्र है। हमे कौरवोने धोखा देकर लाखके बने हुए महलमे जलवा दिया था किन्तु हम पुण्योदयसे वहाँ से बच-कर निकल आये। अब हम द्वारिकापुरी को जा रहे हैं। द्वारिकाके राजा समुद्र-विजय हमारे मामा लगते है और उनके पुत्र नेमिनाथ तीर्थंकर तथा कृष्ण

और बलदेव ये हमारे भाई होते हैं। हमें उनके पुनीत दर्शनोंकी भारी अभिलाषा है इसलिये हम द्वारिका जायेंगे। इसतरह अपनी सारी गई गुजरी कथा सुनाकर वे धर्मात्मा सत्यनिष्ठ कमलाको वहीं छोड़कर वहाँसे चल दिये।

इसप्रकार वे महाभाग पांडव जहाँ-जहाँ भी गये वहाँ-वहाँ उनका बड़ा ही सम्मान हुआ। लोग स्वत: ही उनके सामने नाना प्रकारकी भोग्य सामग्री—आशन, शयन, भोजन, वाहन आदि ला-लाकर उपस्थित करते थे। सो ठीक ही है, भाग्य-वान् जहाँ भी जॉय और कैसी भी हालत उनकी क्यों न हो सब जगह उनका सत्कार होता ही है। रास्तेमें उनके जो भी जिन मन्दिर आता था उनका वे दर्शन पूजन करते हुए आगे जाते थे। इसप्रकार वे चलते चलते फल-फूलोंसे व्याप्त एक मनोहर पुण्यद्रुम नामके बनमे पहुँचे। उस बनके ठीक मध्य भागमें बहुतसे जिन मन्दिर बने हुये थे। वे मन्दिर बहुत ही मनोज्ञ और चित्ताकर्षक थे। धर्म—पिपासु पांडवोंने उन मन्दिरोंको दूरसे ही देखकर उन्हे नमस्कार किया और वे उनकी तरफ मनोयोग लगाकर चल दिये। थोड़े ही समयमें वे वहाँ पहुँच गये और उन्होंने मन्दिरजीमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सुवर्ण और चांदीकी बनी हुई भव्य सुन्दर नासाग्रदृष्टि मूर्तियों का दर्शन किया। उस समय उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। इसके बाद उन्होंने नीरादिक आठ द्रव्योंके द्वारा बड़ी भक्ति-भावसे जिनेन्द्र भगवान की पूजन की एवं पवित्र स्तोत्रों द्वारा प्रभु का गुणगान किया और उन्हें नमस्कार किया। पश्चात् वहाँ विराजमान परम दिगम्बर गुरु महाराजकी वन्दना की और उनसे पूजाके फलको पूछा। उत्तरमें मुनिराजने कहा कि हे भव्य! अब मैं तुम्हे पूजाके फलको कहता हूँ सो ध्यानसे सुनो।

जो प्राणी भक्ति भावसे शुद्ध मन हो जिनेन्द्र भगवानकी पूजन करते है वे निश्चयसे मोक्ष प्राप्त करते हैं, उन्हें कोई मानसिक और शारीरिक कष्ट नहीं होता। जिन पूजाका अचिन्त्य माहात्म्य है। देखो, जो भगवानके चरण कमलोंके आगे जलकी धारा देता है उसकी कर्मरज शान्त हो जाती है। जो सुगन्धित चन्दनसे जिनेन्द्रके चरण कमल चरचता है—पूजन करता है उसका शरीर अत्यन्त सुगन्धित होता है। जो प्रभुको अक्षत-बिना टूटे तंदुलोंके द्वारा पूजता है उसको

अक्षय सुख—नहीं नाश होने वाला सुख मिलता है, जो पुष्पोंके द्वारा जिनेन्द्रकी अर्चना करता है वह पुरुष स्वर्गमें देवोंके द्वारा नाना तरहकी फूल-मालाओंसे सुसज्जित किया जाता है। नैवेद्य—पकवान लड्डू, पेड़ा, बर्फी आदि से पूजाका फल निरोग शरीरकी प्राप्ति एवं धनादिकी प्राप्ति होना है। दीपसे पूजाका फल केवलज्ञानकी प्राप्ति एवं तेजयुक्त शरीरका मिलना है। धूपसे पूजा करनेका फल कर्मोका नाश तथा सुन्दर तेजयुक्त नेत्रोंका मिलना है। फलकी पूजाका फल मोक्षफलका मिलना है और अर्घ्यसे पूजा करनेका फल वेशकीमती पदका मिलना है। इस तरह मुनिराजके मुखारविंदसे पूजाके अचिंत्य फलको सुनकर शांतचित्त श्रावकव्रत के धारी पांडवोंको महान् हर्ष हुआ।

इसके बाद पांडवोंने वहां एक पुण्यमूर्ति अर्जिकाको देखा। उन्होंने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और वे उसके आगे बैठ गये। माता कुन्ती भी एक तरफ बैठ गई, वहां सुन्दर लक्षणोंसे युक्त एक कन्या भी बैठी हुई थी। उसक शरीर व्रतादि अनुष्ठानोसे कृश हो गया था। विद्या पढ़नेका आरम्भ उस अभीसे किया था। उस सुन्दरी कन्याको देखकर कुन्तीने अर्जिकाको नमस्का कर पूछा कि हे अर्जिके! धर्म ध्यानके करनेवाली यह साध्वी कन्या कौन है जो कि इस छोटीसी उम्रमे तप तपनेमें लगी हुई है। क्योंकि इसकी यह यौवना वस्था जिसमे कि कामदेवका प्रबल जोर रहता है तप तपनेकी नहीं है, को कारण दूसरा ही यहाँ होना चाहिये, क्योंकि बिना कारण के कार्य नहीं होता है यह अभी रंगीन वस्त्र पहने हुई है इससे यह तो जाना जाता है कि यह अभी दीक्षित नहीं हुई है किन्तु फिर भी यह स्थिरमना आपके पास बनमे किस कारण रहती है? कन्याके रूप गुण को देखकर कुन्ती के मनमे उसको अपनी पुत्रवधू बनानेकी भावना पैदा हो गई इसलिये उसने अपने सतृष्ण नेत्रोसे उस कन्याकी तरफ एकटक दृष्टिसे देखा। उधर कन्या भी चुपचाप अपने चपल नेत्रोसे युधिष्ठिर की तरफ देख रही थी और युधिष्ठिर भी उसकी तरफ देख रहा था। फल यह हुआ कि दोनो की चार आँखे हो गई, वे मन ही मन एक दूसरेको चाहने लगे। इतनेमें अर्जिकाने कुन्तीके प्रश्नोंके उत्तरमे कहा कि हे सुधर्मिन, अब मै तुझे इस कन्याका संक्षेपमे चरित्र सुनाये देती हूँ। तुम उसे ध्यान देकर सुनना।

यह जो पुरी दीख रही है उसका नाम कौशाम्बी है। इस नगरीमें उत्तम पुरुषों का निवास है। यहाँ राजा विंध्यसेन है और रानी विंध्यसेना है। दोनों ही योग्य गुणोंसे परिपूर्ण है। उनके वसन्तसेना नामकी पुत्री है, जो सर्व गुण सम्पन्न सुन्दर नेत्र वाली सर्व कलाओंमे विशारद है, यह वही कन्या है। राजा विंध्यसेनने इसका विवाह युधिष्ठिरके साथ करना निश्चय किया था किन्तु थोड़े दिनों बाद यह समाचार सर्वत्र फैल गया कि पांडवोंको कौरवोंने लाखके महलमें अग्नि लगाकर जला दिया है। उसको सुनकर वसन्तसेनाके मनमें बहुत दुःख हुआ। उसने उस समय विचार किया कि इसमें सिवा मेरे दुष्कर्मके उदय के और कुछ भी कारण नहीं है। ऐसा विचारकर उसने यह निश्चय किया कि मैं सिवा युधिष्ठिरके और किसीको अपना स्वामी नहीं बनाऊँगी। उनको छोड़कर बाकी पुरुष मेरे पुत्र पिता और भाईके समान है। वे तो अब जल गये, मिलनेके नहीं हैं, इसलिये मेरे लिये तप तपना ही श्रेष्ठ है जिससे कि मै अपना आत्मकल्याण तो कर सकूँ, जिससे कि फिर मेरे यह निंद्य कर्म तो नहीं बंधें। यह विचारकर वह दीक्षा लेनेको तैयार हो गई। उसकी यह क्रिया देखकर उसके माता पिताको बड़ा भारी दुःख हुआ। उन्होंने पुत्रीको नाना प्रकार से समझाया कि तुम्हारा यह अत्यन्त कोमल शरीर है और यह जिनदीक्षा अत्यन्त कठिनतर है, तलवार की धारके समान तीक्ष्ण है इसलिये इसका पालन करना बहुत ही कठिन है। पुत्र, तुझे यदि ऐसा करना है तो तू थोड़े दिन तक ठहर और किसी साध्वी अर्जिकाके पास रहकर शास्त्रोका अभ्यास कर। कदाचित् तेरे पुण्योदयसे युधिष्ठिर निर्विघ्न ही हों, उनके ऊपर आई हुई विपत्ति टल गई हो! मुझे यह निश्चय है कि पुण्यशाली धर्मनिष्ठ पुरुष अल्पायु नहीं होते, वे दीर्घजीवी होते है। वे यदि जीवित होंगे तो तुझे अवश्य ही मिलेंगे और तू आनन्दपूर्वक अपनी घर गृहस्थीके सुखका अनुभव करना और नहीं तो दीक्षा लेकर तप तपना, परन्तु अभी तू जल्दी न कर और मेरी आज्ञानुसार कुछ दिन दीक्षा न ले।

इस तरह माता पिताके समझाने पर वसन्तसेना मान गई और उसने अपने निश्चय किये हुये विचारोंको बदल दिया किन्तु वह प्रतिदिन आकर कायक्लेश के द्वारा शरीरको सुखाती है, व्रतोंको पालती है, रसोंको त्यागती है, कठिन

कठिन तपोको तपती है। यह साध्वी शीलवती और चारित्रवान है। शास्त्रोंको मन वचन कायको लगाकर सुनती है। इधर वसन्तसेनाने मनमें विचार किया कि क्या ये ही तो माता कुन्ती और पाँचों पांडव नहीं है? वह अपने मनोगत भावोंको दबा नहीं सकी। उसने माता कुन्तीसे स्पष्ट शब्दोंमे पूछा कि माता आप कौन है और ये पाँचों महाभाग कौन है? कन्याकी यह बात सुनकर कुन्तीने उत्तर दिया कि बेटी, हम सब ब्रह्मण है—ब्राह्मविद्याके जानकार हैं। मेरे वचनों पर विश्वास करना। अपनी सब बातें कहकर आखिरमें कुन्तीने कुछ हँस कर वसन्तसेनासे यह कहा कि पुत्री, तुम आजन्म शीलव्रतको धारण करो और दीक्षाकी आशाको छोड़कर श्रावकके व्रतोंमें अनुराग करो। सम्भव है कि बेटी तेरे पुण्यकर्मके संयोगसे तेरा भर्तार तुझे आकर मिल जाय, क्यों कि संसारमें वह महापुरुष है, पुण्यवान् महापुरुषोंको मनुष्यकी तो क्या बात देवता भी नहीं मार सकते है। यह बात सुनकर कान्तिहीन वह कन्या बहुत खेद खिन्न हुई और अपने पूर्वोपार्जित कर्मोकी निंदा करती हुई और भी कठिन तपस्या करनेमे आसक्त हो गई।

इधर प्रतापी पाँचों पांडव माता कुन्ती सहित वहाँ से चल दिये। प्रकृतिकी मनोहर शोभाको देखते हुये त्रिश्रृंग नगरमें पहुँचे। यह नगर बहुत ही सुन्दर और सुहावना बना हुआ था। यहाँ का प्रतापी राजा चंडवाहन और उसकी स्त्रीका नाम विमला रानी था। यह दम्पति बहुत ही योग्य और गुणादिसे सम्पन्न थे। उनके दश पुत्री थीं जो कि बहुत शिक्षिता गुण सम्पन्ना थीं। उन सब पुत्रियो मे गुणप्रभा नामकी पुत्री सबसे बड़ी थी, वह बहुत ही गम्भीर विदुषी और गुणज्ञा थी। बाकी सुप्रभा, ह्री, श्री, रति, पद्मा, इन्दीवरा, विंबा, आश्चर्या और अशोका ये नौ कन्याये भी रूप और सौभाग्यशाली थी। पुत्रियोंको यौवनवती देखकर राजाने एक निमित्तज्ञसे पूछा कि इनका स्वामी कौन होगा? इसके उत्तरमें निमित्तज्ञने कहा कि महाराज! इनका पति युधिष्ठिर नामका पांडव होगा। यह बात सुनकर उन कन्याओने अपना पति युधिष्ठिरको ही निश्चितकर लिया और व आनन्दपूर्वक वहीं रहने लगीं। परन्तु कुछ दिनों बाद उन्हें पांडवोंके सम्बन्धमे कुछ दूसरी ही बात सुननेमें आई, जिसे सुनकर

उन्हें बहुत ही दुःख हुआ।

उसी नगरीमे प्रियमित्र नामक एक सेठ रहता था, वह बहुत ही धनी और प्रतिष्ठित था। उसकी प्रियाका नाम सौमिनी था। उनके नयनसुन्दरी नामकी एक कन्या थी। वह यथा नाम तथा गुणवाली थी। उसके नेत्र मृग-नेत्रोंके समान थे, उसका मन बहुत ही निर्मल था। सेठने भी राजाकी तरह निमित्तज्ञानीके वचनोंके अनुसार वह कन्या युधिष्ठिरको देनी कर रक्खी थी। इसलिये वह भी पांडवोंके अग्निमें जल जानेके समाचार सुनकर बहुत ही खेद खिन्न हुई और वह गुणप्रभा आदि राज-कन्याओं के साथ रहने लगी। वे ग्यारह कन्यायें धर्ममें लीन होकर अनेक व्रत उपवास करने लगीं। एक दिन उन्होंने चतुर्दशीके दिन सोलह पहरका उपवास किया और वे उस दिन बनके एक जिन-मन्दिरमें गई, जहाँ किसी तरहका उपद्रव नहीं था। वहाँ उन्होंने धर्मध्यानपूर्वक कायोत्सर्ग धरकर रात और दिनको व्यतीत किया तथा जिनेन्द्र भगवान् चक्रवर्ती बलभद्र नारायण आदि महापुरुषोंकी कथा श्रवण कर रात निकाली और प्रातःकाल सामायिक आदि क्रियाये कीं। इसके बाद गुणप्रभा राजकन्याने सबों से कहा कि आज हम लोग यहीं पारणा करेंगी और आज यदि मुनिदान द्वारा हमारा पारणा सफल हो जाय तो हमारा जन्म सफल हुआ समझना चाहिये। दूसरी बात यह है कि हम मुनिको आहारदान देकर उनके पास ही दीक्षा धारण कर लेंगी। इस तरह वे शुद्धमन हो पवित्र भावना भाने लगीं और आपसमे इस तरह विचार करने लगीं कि देखो यह संसार बड़ा विचित्र है, इसमे मोहके वशवर्ती हुये प्राणी अपने आत्मस्वरूपको भूलकर ममत्व करने लग जाते है। सब पर्यायों मे यह स्त्री पर्याय अत्यन्त निंद्य है, पाप कर्मके उदयसे ही यह मिलती है। कन्या जन्मते ही माता पिताके लिये चिन्ता पैदा कर देती है। इसके बाद जब वह सयानी हो जाती है तब उसके विवाह की चिन्तामे जलना पड़ता है और जब विवाह हो जाता है तब माता-पिताको यह चिन्ता लगी रहती है कि यह पतिके समागम से सुखी होगी या नहीं ? पति अच्छा हुआ तब तो कुछ बात ही नहीं है और कदाचित् पति दुर्व्यसनी, मूर्ख, रोगी, क्रोधी, अविनयी, दरिद्री, दुष्ट स्वभावका, दुर्नीति, दुर्मति भी और व्यभिचारी हुआ तो उस बिचारीके दुःख

का कोई पारावार ही नहीं रहता है। ऐसे पति–समागमसे उसे जो दुःख होता है उसे वही जानती है। कदाचित् पति बुद्धिमान् भी मिला किन्तु उसे कहीं सौतका समागम मिल गया और उसमें आसक्त हो गया तब उसे और दुःखका सामना करना पड़ता है। सौतके समान स्त्रियोंको कोई दूसरा दुःख नहीं है, न हुआ और न होगा ही। यदि कदाचित् स्त्री पतिकी प्यारी भी हुई, लेकिन वंध्या हुई तो वह कुल नाशिनी कहलाती है और दूसरोंके द्वारा तिरस्कृत की जाती है। वंध्या भी नहीं हुई तो उसे नौ महीना तक गर्भ धारण कर कष्ट उठाना पड़ता है। पश्चात् जिस समय बालक होता है, उस समय जो असह्य वेदना होती है, उसका अनुभव वही करती है, वह दुःख कहनेसे कहा नहीं जाता। कदाचित् भर्तारका वियोग हो जाय, तो उसे वैधव्यका भारी दुःख उठाना पड़ता है। वैधव्यके दुःख के बराबर भी स्त्रियोंको और कोई दूसरा दुःख नहीं है। मतलब यह है कि कन्याका जन्म ही दुःखमय है, उस दुःखका वर्णन करनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं है। परन्तु विचारो तो इन दुष्टकर्मोकी क्रूरताको कि जो हम बिना विवाह के किये ही विधवा होगई, इसलिये धिक्कार है इस स्त्री पर्यायको। बहिनों, और भी सुनो! यह स्त्री सर्वथा और सर्वदा ही पतिके आधीन रहती है। पतिकी प्रसन्नता से ही उसके मनोरथ सफल होते हैं। जो स्त्री पतिके प्रतिकूल चलती है, उसको कभी भी सुख नहीं मिलता, वह सदा चिन्तासे जलती-भुनती हुई अपने शरीरको कृश करती रहती हैं। पतिकी प्रसन्नता ही स्त्रीके धर्म, अर्थ और कामकी पूर्णतामें साधक है। पतिके बिना स्त्री का जन्म ही व्यर्थ है, बिना उसके उसका निर्वाह किसी तरह भी नहीं हो सकता है इसलिये बहिनों! अब हम लोगोंके हितका रास्ता संयम पालनके और कोई दूसरा नहीं है। हमें विषय-भोगकी कामनाओंको एकदम तिलांजलि देकर अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये और जप तप संयम आदिके करनेमें अपना चित्त लगाना चाहिये, जिससे कि हम इस निंद्य स्त्री पर्यायको छेदकर मनुष्य-भव प्राप्त कर मुक्तिको प्राप्त कर सकें।

गुणप्रभाके इन युक्तिमत वचनोंको सुनकर दीक्षा लेनेको उद्यत दूसरी राजकन्या बोली कि हे सखी! तुमने जो भी कहा है वह बिलकुल ठीक है। यह

सुनकर फिर भी गुणप्रभाने कहा कि सखी, तुम और भी सुनो। पतिके स्नेहसे होने वाले सुखकी आशासे ही स्त्री गृहस्थी में रहती है, उसको जो भी बल होता है वह एक पतिका ही बल है। उसके बिना कौन स्त्री गृहस्थीकी झंझटें उठायेगी। सखी! विधवा स्त्री मनुष्य-समाजमे ऐसे शोभा पाती है जैसे कि कोई अविवेकी मनुष्य अथवा लोभी साधु। विधवा स्त्रीको ताम्बूल खाना, हाथों में मेहदी रचाना, श्रृंगारादि करना, टीमटामसे रहना, गरिष्ठ भोजन करना आदि सब कार्य अनिष्टकर और निंदास्पद हैं। विधवाके शरीरपर सिवा सफेद वस्त्र के और वस्त्र शोभा ही नहीं देता है इसलिये पतिके मर जानेपर या परदेश चले जानेपर श्रेष्ठ स्त्रियोंको उचित है कि वे संयम पालन करे। वे तपके द्वारा शरीरको सुखावे और इन्द्रियों को वशमें करें।

इस प्रकार वे कन्यायें आपसमे बात-चीत कर रही थीं कि इतनेमें उस जिनालयमे एक दमतारि नामके परम तपस्वी—मुनिराज आये। उन्हें देखकर वे कन्यायें बड़ी प्रसन्न हुई सो ठीक ही है, अभीसिप्त अर्थकी सिद्धि होनेपर किसको प्रसन्नता नहीं होती है? उन्होंने मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दीं और उन्हे भक्ति भावसे नमस्कार किया। पीछे उन कन्याओंने विनम्र शब्दोंमें मुनिराजसे यह प्रार्थना की कि स्वामिन्, आप परम दयालु हो, गुणों के सागर हो, कृपाकर हमें आप दीक्षा दीजिये। उत्तरमे मुनिराजने कहा कि पुत्रियों, अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है और यह जिनदीक्षा तीक्ष्ण असिधारा है, इसलिये तुमसे इसका निर्वाह होना बहुत कठिन है। दूसरी बात यह है कि तुम सुकुमार अवस्थामे क्यों दीक्षा धारण करती हो इसका कोई कारण होना चाहिये? मुनिराजकी यह बात सुन कर कन्याओंने पांडवोंके जल जानेके समाचार उनसे कह दिये और उनसे प्रार्थना की कि स्वामिन्, भर्तारके जल जानेपर कुलीन शीलवान् स्त्रियोंका यह कर्तव्य है कि वे जिन-दीक्षा स्वीकार करें, इसीमे हमारा कल्याण है। इसके उत्तरमे अवधिज्ञानी उन मुनिराजने कहा कि पुत्रियों, जल्दीबाजी मत करो, इसी मुहूर्त वे पांचों पांडव यहाँ निश्चयसे आयेगे और उनके साथ तुम्हारा समागम होगा। मुनिराजकी यह बात सुनकर वहाँ जितने भी श्रावक श्राविका थे सब ही बड़े आश्चर्यमे पड़ गये। यह बात यहाँ हो रही थी कि इतनेमे वे पाँचों पांडव श्वेत

वस्त्र पहने हुये निःसहि–निःसहि की ध्वनि करते हुये वहाँ आ पहुँचे। वहाँ आते ही उन्होंने सर्व प्रथम मुनिराज के दर्शन किये और उनकी भक्ति–भावसे पूजन की। यह सब हाल देखकर कन्याये मुनिराजके ज्ञानकी अतीव प्रशंसा करने लगीं। पीछे इन्द्र जैसी शोभाको धारण करनेवाले महाभाग युधिष्ठिरको देख कर कन्याओको बड़ा सन्तोष हुआ। वहाँ जितने भी बैठे हुये थे उन सबका चित्त प्रसन्न हुआ।

इधर चण्डवाहन राजाको पांडवोंके आनेका समाचार जान भारी प्रसन्नता हुई। उसने ज्यो ही उनके आनेके समाचारको सुना वह त्यों ही उनसे मिलनेके लिये आतुर हो उठा। वह तुरन्त ही अपने महलसे निकलकर उनसे मिलनेको चल दिया। वहाँ पहुँचकर उसने मुनिराजको नमस्कार किया, उनकी वन्दना की पश्चात् पांडवोंसे गाढ़ आलिगंन करके भेंट की। आपसमे कुशल-वार्ता पूछी पश्चात् राजा उन सबको साथमे लेकर पुत्रियों सहित अपने नगरको चला आया। वहाँ आकर उसने पांडवोंका भोजन आदिसे बहुत आदर–सत्कार किया और उन्हें एक मनोहर महलमे ठहरा दिया। कुछ समय बाद राजाने युधिष्ठिरसे अपनी कन्याओंके साथ पाणिग्रहण करनेकी प्रार्थना की तथा वह प्रार्थना स्वीकार भी हो गई।

इसके बाद राजाने विवाहोत्सवके लिये एक सुन्दर मण्डप बनवाया, जिसमें मगंलिक गीत हो रहे थे, नटियोके मनोहर नृत्य हो रहे थे, मण्डपमे जगह-जगह मोतियोकी झालरे लगी हुई थीं, अनेक प्रकारके चित्रोंसे चित्रित था। इस तरह सुशोभित मण्डपमे युधिष्ठिरने राजाकी दस कन्या और सेठकी एक कन्या इस प्रकार ग्यारह कन्याओंके साथ विवाह किया। वे उस समय युधिष्ठिरके पास खड़ी हुई ऐसी शोभा देती थीं जैसे कल्पवृक्षके पासमे खड़ी हुई कल्पलता ही हो। यहाँपर ग्रन्थकार कहते है कि इस जीवको इसलोक और परलोकमे जो सुख मिलता है वह सब पुण्यरूपी वृक्षका ही सुमधुर फल है। इसलिये जो प्राणी सुख चाहते है उन्हे सदा ही धर्म कार्यमे लगे रहना चाहिये। देखो धर्मके फलका ही यह जीता–जागता दृष्टान्त है जिससे कि युधिष्ठिर संसारमें प्रख्यात कीर्ति हुये, उन्हे श्रेष्ठ बन्धुओंका लाभ हुआ, उनके लिये जगंल भी मंगल बन गया, जहाँ

भी वे जाते राजा महाराजा उनका आदर करते, जगह-जगह उनको भेंट मिलती और कन्यायें भी मिलतीं। देखो, कहाँ तो वह हस्तिनापुर और कहाँ यह कौशिकपुरी जहां से कि युधिष्ठिरको कन्या लाभ हुआ और कहाँ यह कौशांबीपुरी जहाँसे कि वसन्तसेनाकी प्राप्ति और कहाँ यह त्रिश्रृंगपुर नगर जहाँसे कि इनको ग्यारह सुन्दर कन्याओंकी प्राप्ति। यह सब पुण्यका ही फल है इसलिये हे भव्य जीवों, यदि तुम सन्तोषप्रद भोगोपभोग की अनुकूल सामग्री चाहते हो तो पुण्य कार्य करने में सदा ही प्रयत्नशील बनो।

॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥

अथ पन्द्रहवां अध्याय।

उन पुष्पदंत प्रभुको मेरा नमस्कार है जो सुबुद्धिको देनेवाले, थावर और जंगम जीवोंकी रक्षा करने वाले हैं एवं जिनकी दंतावलि कुन्द पुष्पके समान निर्मल, शरीरकी कान्ति कुन्द पुष्पके समान उज्ज्वल है, जो जीवोंको कर्मरूपी मैलसे रहित मोक्ष प्राप्तिमें परम सहायक हैं, वे मेरी आत्माको निर्मल करें।

कुछ दिन बाद वे बुद्धिमान पांडव त्रिश्रृंगपुरकी गली बाग बाजार आदिकी शोभा देखते हुये वहाँसे चल दिए और वे एक बड़े भारी अरण्यमे पहुँचे। वहाँ पहुँचकर मार्गकी थकावटसे एवं कड़ी धूप पड़नेकी वजहसे युधिष्ठिरको पानी की प्यास लगने लगी, प्यासकी वजहसे उनकी गति भी रुकने लगी और वे घबड़ाकर जमीनपर बैठ गये। संध्याका समय था सूर्य भी अस्ताचल पर पहुँच गया और काले काले अन्धकारके समूहने चारों तरफ अपना अधिकार जमा लिया।

तृषासे अत्यन्त पीड़ित हो युधिष्ठिरने भीमसे कहा कि भाई भीम! तुम मुझे कहींसे भी जल्दी लाकर ठण्डा जल पिला दो जिससे मेरी यह तृषा शान्त हो जाय, मेरेसे अब आगे एक कदम भी नहीं रखा जाता है, यह कह वे जमीनपर लेट गये। उनकी यह अवस्था देखकर भीमको भारी चिन्ता होगई और वह पानी की खोजमें एक बर्तन लेकर दूसरे बनमें गये। वहाँ उनको एक तालाबके चिन्ह दिखाई दिये जिससे उनके हृदयको धैर्य बंधा, वे शीघ्र ही जलाशयके पास गये

और वहाँ पानी भरकर वापिस लौट आये, इतनेमें युधिष्ठिर प्याससे व्याकुल हो एक वटवृक्षके नीचे सो गये थे। उनको सोता हुआ देखकर उसके मनमें थोड़ा दुःख हुआ और वह इसप्रकार विचार करने लगा कि देखो यह संसार कैसा विचित्र है। इस संसाररूपी नाटकगृहमें वह जीव कर्मके वशमे पड़कर नाना स्वांग रचता है। देखो न जो युधिष्ठिर कौरवोके शिरोमणि है, पांडवों के राजा है, वे ही आज जमीन का बिस्तर लगाकर बड़े आनन्दके साथ सो रहे हैं, इनको इस समय न खानेकी फिकर है न पानी पीनेकी चिन्ता है और न किसी की तरफ दृष्टिपात तक करते हैं, इन्हे क्या हो गया है, समझमे नहीं आता। मेरी बुद्धि इस समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही है।

भीम वहाँ खड़ा हुआ यह विचार कर ही रहा था कि इतनेमे एक विद्याधर अपनी कन्याको साथ मे लेकर वहाँ आकर खड़ा हो गया। भीम बिंबाफल के समान होठवाली, चन्द्रमुखी मृगनयनी और पीनस्तनी कन्याको देखकर आश्चर्यमे पड़ गया और विचार करने लगा कि यह कौन है? देव कन्या है, लक्ष्मी है, अथवा शक्ति है, पद्मा है या रोहिणी है? इस तरह विचार करते हुये भीमको देखकर वह विद्याधर उसके चरणोंमे नमस्कार कर बोला कि हे देव! आप इस कन्याको सविधि विवाहकर ग्रहण कीजिये। विद्याधरकी यह बात सुनकर भीमने कहा कि तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और यह कन्या कौन है एवं इसके माता पिता कौन है और आप किस कारण से मुझे देना चाहते है? कृपा कर आप मेरे प्रश्नोंका उत्तर दीजिये पीछे मै आपकी बात पर विचार करूँगा। इस बातको सुनकर विद्याधरने कहा कि हे महाभाग, मै अब इस कन्याके चरित्रको आपके सामने निवेदन करता हूँ।

राजन्! यहाँ एक संध्याकार नामका नगर है, वहाँका राजा सिंहघोष है और उसकी रानीका नाम लक्ष्मणा है। उनके उत्तम लक्षणोंवाली हिडम्बा नामकी एक कन्या है, वह कन्या रूप और गुणोंसे शचीको भी जीतती है। उसकी चाल गजगामिनी सी है, शरीरकी कान्ति अँधेरेको दूर करती है, वह कामदेवका एक निवास स्थान है। इसप्रकार सुन्दर वस्त्राभूषण पहिने हुये वह कन्या एक दिन अपनी सहेलियोके साथ गेंद खेल रही थी कि इसके पिताने इसको देख लिया। इसे

देखकर उसका पिता विचार करने लगा कि अब यह कन्या युवती होगई है, अब इसका विवाह किसी योग्य वरके साथ कर देना उचित है। सो ठीक ही है कौन ऐसा बुद्धिमान पुरुष है जो कन्याको युवती देखकर भी निश्चित बैठा रहेगा ? उसने शीघ्र ही एक निमित्तज्ञको बुलाकर उसके विवाहके सम्बन्धमें यह पूछा कि इस कन्या का वर कौन होगा ? ज्योतिषीने विचारकर उत्तर दिया कि राजन्, जो पुण्यशाली महाभाग इस पिशाच वटके नीचे ठहरकर भी निश्चित हुआ जागता रहेगा अथवा वटवृक्षपर रहनेवाले पिशाचको जो अपने बाहुबलके द्वारा जीतेगा वही इस कन्याका वर होगा। इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है। ज्योतिषीके वचनोंपर विश्वासकर राजा सिंहघोषने मुझे इस बातकी निगरानी करनेको रक्खा है, इसलिये स्वामी मैं आपको इस वटके नीचे जागता हुआ देखकर इस कन्याको यहीं ले आया हूँ। नाथ, आप इसको ग्रहण कीजिये और स्वर्गीय सुख का अनुभव कीजिये। इस समय हिडम्बाने भी संकोच छोड़कर कहा कि स्वामिन्, आप मेरा पाणिग्रहण करनेमे देर नहीं कीजिये, आपके हृदयमें किसी प्रकारका सन्देह हो उसे दूर कीजिये। शीघ्रताका कारण यह है कि वटवृक्षमें एक पिशाच रहता है जो कि महान दुष्ट है, दूसरे कोई एक विद्याधर एक दिन आकाश मार्गसे चला जा रहा था, ज्यों ही वह उस वृक्षके नीचे होकर निकला कि उसकी सारी विद्यायें नष्ट होगई, इसलिये वह भी विद्या सिद्ध करनेके लिये यहीं रहाता है, वह भी महाक्रोधी और अभिमानी है, वह मनुष्योंको सदा कष्ट दिया करता है. मुझेभी कष्ट देने लगेगा और वह दुष्ट पिशाच आपके वचनोंको सुनकर आप पर भी क्रोधित होगा। इसलिये प्राणाधार, आप अब कुछ न कह कर मुझे स्वीकार कीजिये।

हिडम्बाके इन वचनोंको सुनकर भीमने वहाँ बड़ी भारी गर्जना की, जो गर्जना पिशाचके कानोंको फाड़ देनेवाली थी। गर्जनाके बाद पराक्रमी भीमने पिशाचको सम्बोधन करते हुए कहा कि हे पिशाच, यदि तेरी भुजाओंमे शक्ति है तो बाहर निकल और अपना बाहुबल जल्दी मुझे दिखा, जिसके बलसे तू लोगोको कष्ट दिया करता है। भीमकी इस गर्जनाको सुनकर वह भयानक काल मुँह किये हुये विकराल मूर्ति किलकिलाहट शब्द करता हुआ भीमके

नजदीक आया और क्रोधित हो उसके साथ युद्ध करनेको तैयार होगया। दोनों मे महा भयानक युद्ध होने लगा। इधर यह युद्ध तो चल ही रहा था कि इतने मे वह विद्याधर जो कि विद्या सिद्ध करनेके निमित्ति बटमें रहता था, हिडम्बा के पास आकर उसे पीड़ा देने लगा। उस दुष्टने कहा कि हिडम्बा, मेरें यहाँ रहते हुये तू दूसरेसे विवाह करे यह कैसे हो सकता है? ज्यो ही उस नीचने हिडम्बाको पकड़नेके लिये हाथ बढ़ाये त्यों ही भीमने उसे दाहिने हाथके घूँसेसे दूर हटा दिया और उधर पिशाचकी पीठमें एक जोरकी लात मारी जिससे वह जमीनपर गिर पड़ा किन्तु वह निर्लज्ज फिर उठकर उनके साथ लड़ने लगा। उधर वह विद्याधरभी आगया। इस प्रकार भीम अकेला और ये दोनो आपसमे युद्ध करने लगे। परन्तु बली भीमने दोनोंके मदको चूर्ण कर दिया। विद्याधर ने अपने अपराधोकी क्षमा मांगी और भीमको प्रणाम किया जिससे उसको कितने ही गुणोंकी प्राप्ति हुई और वह विद्या सिद्ध कर अपने घर चला गया। उधर युधिष्ठिर महाराज जाग उठे और उन्होंने भीमका हिडम्बाके साथ पाणि-ग्रहण करा दिया। इसके बाद युधिष्ठिर आदि पांडव बहुत दिनो तक वहीं रहे, भीमने हिडम्बाके साथ साथ मन चाहे भोग भोगें, फलतः हिडम्बाके गर्भ रह गया। जब गर्भ के दिन पूरे होगये तब उस कोमलांगीने पुत्ररत्नको जन्म दिया। पुत्र जन्मसे सब लोगोको बड़ी भारी प्रसन्नता हुई, वह पुत्र बहुत पराक्रमशाली, बुद्धिमान् और गुणाढ्य था, उसका नाम घटुक रक्खा गया।

इसके बाद वे पाँचो पांडव माता कुन्ती सहित वहाँसे चल दिये और चलते चलते वे बड़े भारी गहन बनमे पहुंचे जहाँ कि सिंह चीता आदि हिंसक जन्तुओं का संचार था, वहाँ एक भीमासुर नामक देव रहता था। वह बहुत अधिक दुष्ट नीच प्रकृति और पूर्ण बलशाली था। वह इनको बनमे आया हुआ देखकर मेघके समान गर्जना करता हुआ अपने घरसे निकला और इनसे कहने लगा कि क्या तुम यह नहीं जानते हो कि यहाँ मै रहता हूँ। बताओ, तुम यहाँ क्यो आये हो, क्या तुम मेरे इस बनको अपवित्र बनाना चाहते हो? मै यह जानता हूँ कि इतनी सामर्थ्य वाला कोई व्यक्ति मुझे नहीं दीखता है जो मेरे इस पवित्र बनको अपने चरणरज द्वारा अपवित्र बना सके। इसलिये तुम लोग

यहाँ से शीघ्र चले जाओ।

भीमासुरकी गर्व भरी बातोंको सुनकर भीमने कहा कि हे राक्षस! तू व्यर्थ क्यों गर्व करता है, तू हमें अपवित्र कहकर खुद पवित्र बनना चाहता है यह तेरा झूठा अभिमान है। अरे हम अपवित्र नहीं हैं, हमने मनुष्य पर्याय धारण की है। हम सदाचारी है जैसे कि जिनेन्द्र चक्रवर्ती नारायण अदि होते हैं। रे दुष्ट, यदि तेरेमे कुछ शक्ति है और तुझे असुरपनेका अभिमान है तो हमारे साथ युद्ध कर। इसप्रकार दोनों तरफ से गरमागरमीकी बात-चीत होकर वे आपसमें युद्ध करने लगे। उसके भयंकर शब्दो को सुनकर बनके सिंह वगैरह भी अपने प्राणोंको लिये हुये इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे। बहुत देर तक भीम और असुरमें घन-घोर युद्ध हुआ। आखिरमें भीमने मुष्ठिप्रहारसे भीमासुरको निर्मद कर दिया। इसके बाद उसने भीमके चरणोंमें नमस्कार किया और उसके दासत्वको स्वीकार कर अपने स्थानको चला गया। इधर पांडव भी उस बनसे शीघ्र ही चल दिये।

वे वहाँसे चलकर श्रुतपुर नामके एक नगरमें आये। वहाँ उन्होंने एक भव्य चैत्यालयमे जाकर भगवानकी प्रतिमाओं का पूजन अभिषेक किया और भक्ति भावसे उनकी स्तुति की। वहाँ वे कुछ देर ठहरे पश्चात् रात्रिमे रहने के लिये एक वणिकके घर गये। उनका शरीर मार्गकी थकावटसे बहुत त्रस्त हो गया था, अतः वे कुछ आराम करना चाहते थे, रात्रिको उसकी कुटीमें ही ठहर गये। वे पांडव संध्या होते ही वहाँके चैत्यालयोंके सम्बन्धमें कुछ बात-चीत कर रहे थे कि इतनेमें उस घरवाले वैश्यकी स्त्री महान शोकसे विह्वल हो अत्यन्त दीनता पूर्वक रुदन करने लगी। दयालु कुन्ती उसके पास गई और उसे हर प्रकारसे धैर्य बँधाने लगी तथा उससे इसप्रकार अश्रु परिपूर्ण रोदनका कारण भी उस वैश्य भार्यासे बड़े प्रेमके साथ पूछा। भार्याने कहा कि माता! मैं तुम्हें अपने दुःखपूर्ण रोदनका कारण बतलाती हूँ।

इसी श्रुतपुर नगर मे एक बक नामका राजा रहता था, बगुलेकी तरह धार्मिक बना हुआ था। उसे माँस खाने की बहुत चाट पड़ गई थी और वह इतनी जबरदस्त पड़ गई थी कि उसकी समूची बुद्धि ही इसी काममे खर्च होती थी, वह बड़ा निर्दयी पापी था। उसका रसोईया उसे सदा ही पशुका माँस

माँ और बेटेकी आपसमें बाते हो ही रही थी कि इतनेमें एक कोतवाल गाड़ीमे सवार होकर वहाँ आया और कहने लगा कि हे वैश्य, तुम जल्दी गाड़ीमें सवार होकर उस मनुष्य राक्षसकी बलि चढ़नेके लिये मेरे साथ चलो, थोड़ी देरके जीवनके लिये विलम्ब करना ठीक नहीं है।

कोतवालकी बात सुनकर भीमने कहा कि आप जाइये । मै अभी जाकर उस नरपिशाचको अपनी बलि दे दूंगा । कोतवाल इन वचनोंको सुनकर हर्षित हो वहाँ से चला गया । तबतक पूर्व दिशासे सूर्य भी उदय हो आया, वह ऐसा प्रतीत होता था कि मानों बक राजाका दुश्चरित्र देखनेके लिये ही करुणा कर आया हो । सो ठीक ही है, दयालु पुरुषों के कर्तव्य दूसरोंके सुधारके लिए हुआ करते हैं।

इतनेमे एक गाड़ी वहाँ सजाई गई और उसमे कढ़ाई भरकर भोजन लादा गया और उस पर भीम निर्भयतापूर्वक बैठकर वहाँसे चल दिया । जब वह राक्षसके सामने पहुँचा तब वह राक्षस क्रोधसे गर्जना करता हुआ भीम पर झपटा । इसप्रकार उस राक्षसको क्रोधयुक्त देखकर भीम बोला कि हे दानव, आज मै तुम्हारा बाहुबल देखकर ही तुम्हे अपनी बलि दूंगा । मुझे इस बातका खेद है कि तुमने अब तक इन निरपराध मनुष्योको सताया सो ठीक ही है, गरीबों पर ही बलवानोंका जोर चलता है, बलीके सामने तो बगले झांकनी पड़ती हैं।

इसप्रकार क्रोधसे उद्धत हुये वे दोनों आपसमे ताल ठोक कर भिड़ गये। वे कभी तो मस्तकके द्वारा, कभी हाथोंके प्रहारोसे, कभी लातोंसे कभी कोहनियों से एक दूसरेका शिर फोड़ने लगे । उन दोनो मे घमासान युद्ध हुआ । अन्तमे भीम ने उस नर पिशाचको तृणके जैसा निःसत्व कर दिया—उसके मस्तक पर ऐसा जोरका प्रहार किया कि जिसकी मारसे हतप्रभ हो जमीन पर गिर पडा, उसको फिर उठने की हिम्मत नहीं हुई । भीमने ऊपर से एक जोरकी लात और मारी जिससे वह तिड़ीबिड़ी हो लुढकता डोला, और इतना होनेपर भी भीमने उसका पिण्ड नहीं छोड़ा वह उस नर—पिशाचके दोनों पैर पकड़कर आकाशमें घुमाने लगा, वह उसको जमीनपर पछाड़ना ही चाहता था कि वह दीन—हीन शब्दोंमें हा—हा करने लगा, जीवन—दानकी भिक्षा मांगने लगा । उसकी यह दशा

देख दयालु भीमने जो लोग युद्ध देखनेके लिये वहाँ आये थे उनके सामने अपना दासत्व स्वीकार करा भविष्यमें वह कभी भी मनुष्यघात न करेगा इसकी प्रतिज्ञा कराकर उसे छोड़ दिया। उसको इस प्रकार निर्मद देखकर दर्शकोंको बड़ा भारी हर्ष हुआ सो ठीक ही है, अपने भक्षकका नाश या पराभव होनेसे प्रसन्नता होती ही है। वे लोग भीमकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करने लगे, चारों तरफसे भीमका जय जयकार शब्द होने लगा। कहने लगे हे नाथ! अब तक हमारा यहाँ जीना ही कठिन था सदा ही जीवनका खुटका लगा रहता था परन्तु महाभाग्य अब हम आपके प्रसादसे निश्चिंत हो गये। अब हम अपने जीवनको आनन्दके साथ बिता सकेंगे। आपने हम लोगोंके प्रति बड़ा भारी उपकार किया है-जीवन दान दिया है, हमे अभय दिया है सो ठीक ही है, सज्जन पुरुषोंके जितने भी कार्य है वे दूसरोके उपकारके लिये ही होते हैं। इसप्रकार उन लोगोंने भीम की जी-भर स्तुति की और अतुल धन सम्पदा दी।

इसके बाद लोगों से प्राप्त द्रव्य पांडवोने वहीं एक भव्य जिनालयके निर्माण करानेमे लगा दिया सो ठीक ही है, पुण्यशाली पुरुषोंको धन-सम्पत्ति साथमें लेकर फिरनेकी क्या आवश्यकता है? वे तो जहां भी जाते है वहां लक्ष्मी इनकी दासी बनकर आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती है। इतनेमे ही वर्षायोग—चातुर्मास लग गया। चातुर्मास लग जानेसे इतस्ततः जीवोका संचार बहुत होने लगा, पानीकी वर्षा से नदी पर्वत सब एक हो गये, पथ्वीपर जल ही जल दिखाई देने लगा। इसलिये पांडवोने वहाँ पर ही रहकर चार महीने धर्म-ध्यानपूर्वक अपने बनाये हुये जिनालय मे बिताये। इसप्रकार चातुर्मास समाप्त करके वहाँ से चल दिये।

चलत-चलत माता कुन्ती सहित व पुण्यवान पाडव प्रसिद्ध नगरी चम्पापुरी मे आये। वहाँ राजा करण था। वे वहाँ आकर एक कुम्भकार कुम्हार के घर ठहर गये। वहाँ विनोदसे भीमने कुम्हारके स्थास कोश कुशूल आदि से घटकी पर्याय कैसे बनती है यह देखनेके लिये उसन उसके चक्रको चलाया और हाथमें डण्डा ले वहाँ पर रक्खे हुये मिट्टी के बहुतसे बर्तनोंको फोड़ दिया। उनके फूटनेकी आवाज सुनकर पवित्रमना कुन्ती वहाँ दौड़ी आई और भीमके प्रति रोष और भय दिखाकर कहने लगी कि भीम! तुम बहुत ही नटखट हो, तुम्हारे हाथ कभी

स्थिर रहते ही नहीं । जहाँ भी देखो कुछ न कुछ उपद्रव करते ही रहते हो। यहाँ और कुछ नहीं तो इस बिचारे कुम्हारके बर्तन ही फोड़ डाले, सिवा अपराध के दूसरा काम ही नहीं करना जानते। माताके रोष भरे उपालम्भको सुनकर भीम चुपचाप हो गया, मुंहसे चूं तक भी नहीं की। वह माताकी मर्यादा के डरसे उसी वक्त वहांसे नगरकी तरफ चल दिया। उस समय भीमको भूख सताने लगी थी जिससे वह एक हलवाईकी दुकान पर गया और वहाँ पहुँचकर उसे एक सुवर्ण की मुहर देकर कहने लगा कि भाई, तू मुझे जल्दी भोजन करने के लिए मिठाई दे दे। मेरे भाई भूखसे दुःखी हो रहे हैं और मुझे भी भूख सता रही है। हलवाई सुवर्णकी मुहर पाकर बहुत प्रसन्न हुआ, उसने तुरन्त ही उसके लिये एक आसन बिछा दिया बहुत विनयके साथ एक भोजनका थाल उसके सामने परोस दिया। भीम भूखा तो था ही उसने खूब आनन्दके साथ जितना उससे खाया गया खाया उसकी थोड़ी भी चीज बाकी नहीं छोड़ी। खा पीकर जब वह तैयार हो गया तब हलवाईसे भाई बन्धुओंके लिये भोजन माँगा। हलवाई यह बात सुन कर बहुत डरा और उसने नम्र शब्दोंमे यह निवेदन किया कि अब मे आपको क्या दूं, कुछ बचा तो है नहीं आप कृपा कर थोड़ा यहाँ ठहरिये। मै अभी बनाकर आपको भोजन दिये देता हूँ। उसकी इस प्रार्थनानुसार वह वहाँ थोड़ी देर ठहर गया।

इतनेमे ही कर्णका एक मदोन्मत्त हाथी साँकल तोड़ निरंकुश हो वहाँ से निकल भागा। वह बाजारमे घूमता हुआ भारी उपद्रव मचाने लगा। उसके सामने जो भी मकान वृक्ष आदि आ जाते थे उनको जड़मूलसे उखाड़ देता था, हाथीका यह उपद्रव भीमने भी सुना और वह तुरन्त ही उसके पास पहुँचा। भयत्रस्त लोग उसे दखते ही उससे प्रार्थना करने लगे कि हे स्वामिन्! आप हमारी रक्षा कीजिए। हम इस हाथीके डरके मारे थरथर काँप रहे है। आप महाबली है, पराक्रमी है, रक्षा करने मे समर्थ है इसलिये प्रभो रक्षा कीजिए। उन पुरुषोकी करुण विनतीको सुनकर भीम उस मदमत्त गयन्दको वशमे करनेके लिये तैयार हो गया। उसने अपने वज्र जैसे मुष्टि प्रहारोंके द्वारा एवं पैरोके प्रहारोंसे उस हाथीका मद क्षणमात्रमे उतार दिया और उसके दातोंको उखाड़

कर निर्मद बना दिया, सो ठीक ही है, पुण्यवानोंका पुण्य फल प्रदायि होता ही है, उनकी सर्वत्र विजयका होना निश्चित है। भीम का इस प्रकार अतुल पराक्रम देखकर एक मनुष्यने कर्णसे जाकर सब हाल कह दिया। उसने कहा कि स्वामी! जिस मत्त हाथीको युद्धमे कोई भी जीत नहीं सकता था उस हाथीको बातकी बातमे उस बली विप्रने निर्मद कर दिया। नाथ वह बड़ा बलवान है सम्भव है कि वह कभी राज्यमे उपद्रव खड़ा कर दे, इसलिए मेरा यह निवेदन है कि आप उसका किसी छल द्वारा निग्रह कीजिये। राजा कर्ण बहुत बुद्धिमान था, इस लिए उसने उसकी बात अनसुनी कर दी और उसे समझा बुझाकर वहाँसे टाल दिया और स्वयं महलके अन्दर चला गया। सो ठीक ही है, बुद्धिमानोंकी बुद्धिमत्ता इसीको कहते है।

इसके पश्चात् वे विजयी पांडव कुछ दिन तक तो वहाँ रहे बादमें वहाँसे चलकर वे वैदेशिक नगर में आए। वहाँका राजा वृषभध्वज था, जो कि बहुत धर्मात्मा था, उसकी रानीका नाम दिशावली था। उसके दिशानन्दा नामकी कन्या थी, जो कि अपनी सुन्दरता एवं गुणगरिमासे प्रसिद्ध थी। वह अपने सघन-जघन और उन्नत स्तनोंके भारसे मन्द-मन्द चाल चलती हुई हथिनी सरीखी मालूम देती थी। वहाँ पहुँचकर पांडव भूखे और थके हुये किसी शान्तिके स्थान पर बैठ गये। उनको उसी स्थान पर बैठा छोड़कर भीम अकेला ही भिक्षाके लिये नगरमें गया। वह अपना ब्राह्मणका वेश बना राजाके महलके नीचे पहुँचा। उस समय वह राजसुता दिशानन्दा झरोखेमें बैठी हुई थी, उसे देखते ही वह विचार करने लगी कि क्या यह मनुष्यरूप धारण करके कामदेव ही तो भिक्षा मांगनेके छलसे नहीं आया है? क्योंकि सुन्दर रूप दूसरेका तो देखनेमें आता नहीं। वह कन्या उसके रूप लावण्यपर मुग्ध हो गई। उसकी यह अवस्था राजाको भी मालूम हो गई। उसने उसी समय भीमको बुलाया और पूछा कि विप्र! तुम यहाँ किसलिये आये। यदि तुम वास्तवमे भीख मांगनेके लिये आये हो तो ये बहुत गुणयुक्त मेरी पुत्रीको भीखके रूपमें ग्रहण करो। कहकर उसने दिशानन्दा को बुलाकर भीमके सामने खड़ा कर दिया। यह अवस्था देखकर भीमने कहा राजन् मै इस सम्बन्धमें कुछ नहीं जानता हूँ। मेरे बड़े भाई जो कुछ मुझे आज्ञा

करेंगे वही मै करूंगा। इसके उत्तरमे राजाने फिर पूछा कि आपके बड़े भाई कहाँ है। भीमने कहा कि वे नगरके बाहर एक प्रदेशमे ठहरे हैं। राजा भीमके साथ वहाँ गया जहाँ कि पांडव ठहरे हुये थे।

श्री युधिष्ठिरके पास पहुँचकर राजाने उन्हें नमस्कार किया और कुशल समाचार पूछे बादमे बड़े आदर और स्नेहके साथ उनको अपने घर चलनेकी प्रार्थना की। पांडव भी उसकी प्रार्थनानुसार उसके घर चले आये। वहाँ आकर राजाने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और उनको बड़े प्रेमसे भोजन कराया। इसके बाद मौका पाकर एक दिन राजाने युधिष्ठिरसे भीमके साथ अपनी कन्या का विवाह करने के लिये प्रार्थना की। युधिष्ठिरने इस बातको योग्य समझकर स्वीकारता दे दी। राजाने शुभ मुहूर्त शुभ दिनमें बड़े ठाटबाटके साथ उन दोनोंका विवाह कर दिया। अहो पुण्यका कितना माहात्म्य है कि कहां तो भीम भिक्षाके निमित्त गया हुआ था और कहाँ उसे कन्या रत्नकी प्राप्ति हुई।

इसके बाद पांडव कुछ दिनों तक वहाँ ठहरे, पीछे वहाँसे चल दिये और वे नर्मदा नदीको पार कर विंध्याचल पर्वतके पास आ गये। वहाँ उन्होने विंध्याचल पर्वत के शिखर पर बने हुये जिनालयको देखा, जो कि बहुत सुन्दर बना हुआ था। यद्यपि रास्तेकी थकावटसे त्रस्त हो गये थे तथापि भक्तिवश वहाँ तक पहुँच ही गये। वहाँ पहुँचकर देखते है कि जिन-मन्दिरका एक सुन्दर परकोटा बना हुआ था और उस पर आने जानेके लिये सोनेकी मनोहर सीढियाँ बनी हुई थीं किन्तु उस जिनालयके दरवाजे के किंवाड़ बन्द है यह देखकर उन्हे थोड़ा दुःख हुआ। भीम किंवाड़ खोलनेके लिये ज्यों ही उनके पास गया और अपने हाथका स्पर्श किया त्यों ही किंवाड़ खुल गये यह देख पांडवोके हर्षका कोई ठिकाना नहीं रहा। वे जय निःसहि नि:सहि कहकर जिनालयके भीतर चले गये और वहाँ उन्होंने मनोहारी भव्य-प्रतिमाओंका पुनीत दर्शन किया और फल पुष्पादि से भगवानकी भक्तिपूर्वक पूजन की पश्चात् शान्तचित्त हो अतिशय युक्त पाठोंके द्वारा भगवानका गुण-स्तवन किया। पश्चात् जिनालय से बाहिर निकले। इतनेमे ही वहाँ मणिभद्र नामका एक यक्ष हाथ जोड़कर आगे खड़ा हो गया और नमस्कार कर बोला कि प्रभो, आप बड़े बलवान है, विवेकी

हैं, नरोत्तम हैं और पुण्यात्मा जीव हैं। स्वामिन् आपने इस जिनालयके
खोले हैं यह मैंने अपनी आँखोंसे देख लिया है। आपके विषय में जैसा मुनान्द्रने
कहा था वैसा ही ठीक आपके गुणोंको यहाँ देखा। यह बात कहकर उस यक्षने
भीमको एक शत्रु-विनाशिनी गदा दी। उसके बाद उस यक्षने रत्नोंकी वर्षा कर
पाँचों ही पांडवोंको मणिमुक्तादि आभूषण भेंटमें दिये और साथमें अरिके मदको
नाश करने वाली विद्या भी दी। यक्ष द्वारा प्रदत्त इन दोनों चीजोंको प्राप्त कर
पांडव बहुत ही प्रसन्न हुये। इस प्रकार वह महाबली भीम योद्धा सदाकाल
जयवन्त रहे जो कि अनेक देशोंकी स्त्रियोंको प्राप्त कर सुख की पराकाष्ठा तक
पहुँच गये। जो युद्धांगणमें शत्रुओंको जय कर विजय लक्ष्मीके भर्तार बने,
जिनका पवित्र यशगान दिग्-दिगंत में व्याप्त हो रहा है। जिन्होंने कि महा
भयानक नर-पिशाचको वश किया एवं विद्याधरको भय-चकित कर हिडम्बा
नामकी विद्याधर कन्याको प्राप्त किया तथा मदोन्मत्त हस्तीका मद उतारा,
यशोनन्दाका कर-ग्रहण किया, जिनालयके किंवाड़ोंको खोला, यक्षसे गदा और
निर्दोष विद्या प्राप्त की, ऐसे वे भीम सदा जयवन्त रहे।

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

अथ सोलहवां अध्याय।

संसारमें लोग मलयागिरि चन्दन, चन्द्र-किरण और हारयष्टिको शीतल
कहते हैं परन्तु नाथ, ये जितनी भी चीज हैं वे सब बाह्य सन्तापको दूर करती
हैं, अन्तरंगके सन्तापको दूर करने वाले तो आप ही हैं। हे शीतलनाथ स्वामी!
आप शीतलक स्वामी हैं, मनोहर शरीरके धारी है, जीवोंको परम शान्ति देने
वाले हैं और श्रीवृक्षके चिन्हसे चिन्हित है इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो।

इसके पश्चात् युधिष्ठिर महाराजने उस यक्षसे पूछा कि तुमने जो भीमको
गदा दी है इसका क्या कारण है? उत्तरमें यक्षने कहा कि इसी भरतक्षेत्रके
बीचमें विजयार्द्ध नामका ऊँचा पहाड़ है। वह पूर्वसे पश्चिम तक लम्बा है। वह
अपने दोनों तरफके कोनोंसे लवण समुद्रको छू रहा है। वह ऐसा प्रतीत होता
है कि मानों भरतक्षेत्रको नापनेके लिये दण्ड ही हो। वह पच्चीस योजन ऊँचा
और पचास योजन विस्तारवाला है एवं छह योजनकी उसकी जड़ है। उसकी

दक्षिण श्रेणी और उत्तर श्रेणी ये-दो श्रेणियाँ हैं। दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर नामका एक सुन्दर नगर है, उसका राजा मेघवाहन था, उसके प्रीतिमति नामकी एक भार्या थी। इन दोनोके घनवाहन नामका एक पुत्र था। घनवाहन बहुत प्रतापी और बलवान योद्धा था। उसके पास उत्तमोत्तम वाहन थे उसका चित्त विद्या साधनमे सदा ही लगा रहता था। उसने अपने विद्याबलसे बहुत से शत्रुओंको तो वशमे कर लिया था, बाकी और शत्रुओं को जीतनेके लिये तैयार था वह इसलिये गदा देनेवाली विद्या को सिद्ध करने के लिये विंध्याचल पर्वत पर गया हुआ था। वहाँ उसने बहुत दिनों तक विद्या साधी, फलतः यह प्रसिद्ध गदा उसे प्राप्त हुई। इसी समय चतुर्णिकायके देव आकाश मार्गसे चले जा रहे थे। उनको जाते हुये देखकर इस विद्याधरने पूछा कि ये देव कहाँ और किसलिये जा रहे हैं। इसपर एक देवने कहा कि इसी विंध्याचल पर्वतपर क्षमाधर नामके योगिराजको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है और उसी उत्सव को मनानेके लिये एवं धर्मामृत पान करनेकी इच्छासे ये सब वहाँ जा रहे हैं। यह बात सुनकर विद्याधर भी वहाँ गया। वहाँ उसने तरण तारण योगिराज को नमस्कार किया एवं उनसे धर्मामृतका पान किया। जिससे कि वह संसारके सुखोंसे विरक्त हो गया और दीक्षा लेनेके लिये मुनिराजसे प्रार्थना की। उसकी यह अवस्था देख उस गदाविद्याको बड़ी चिन्ता हुई और उसके पास आकर कहने लगी कि हे विचक्षण! आप यह क्या करते हो, बड़े परिश्रम और प्रयत्न से तो आपने मुझे सिद्ध कर पाया और अब मुझसे कुछभी फल न लेकर दीक्षा धारण कर रहे है। सो यह क्या आपको उचित है? यदि ऐसा ही करना था तो व्यर्थ ही मुझे सिद्ध करनेके लिए प्रयास क्यों किया? आपको ज्ञात होना चाहिये कि यह गदा युद्धमें जय दिलाती है, संसारमे कीर्तिका विस्तार करती है, लक्ष्मीको देती है और भोगोपभोगो को देती है। इसके प्रभावसे और तो क्या देव तक आकर चाकरी बजाते हैं। इसलिए नाथ, आप मुझसे विरक्त न हूजिये और यथेच्छ फल प्राप्त कीजिये। विद्याके यह वचन सुनकर उसने उत्तर दिया कि हे विद्ये! तुमसे मैंने सबसे उत्तम फल प्राप्त कर लिया है कि मुझे तुम्हारे प्रभावसे ही मुनिराजके दर्शन हुए हैं यदि मै तुम्हे सिद्ध नहीं करता तो यह निश्चित है कि

मुझे यह समागम कदापि नहीं मिलता। विद्याधरको अपने विचारानुसार निश्चल जान वह विद्या फिर विनम्र प्रार्थना करने लगी कि प्रभो, मैं आपके पुण्य प्रताप से अपने पतिको छोड़कर तुम्हारे पास आई हूँ और तुम मुझे छोड़ना चाहते हो। तब तो मैं दोनो तरफसे भ्रष्ट हुई अब आप बतलाओ कि मैं क्या करूं? मेरी तो दशा इस समय ऐसी हो रही है जैसे कि कोई राजा अपना राज-पाट छोड़कर दीक्षा धारण करले पीछे दीक्षासे भी भ्रष्ट हो जाय तो वह जिस तरह बेकाम हो जाता है उसी तरह मै भी हो गई हूँ। उस विद्याके इसप्रकार दीन हीन वचन सुनकर मैंने उन परम तपस्वी मुनिराजसे यह प्रश्न किया कि स्वामिन्! अब इस विद्याका कोन नीतिज्ञ पुरुष पति होगा? उत्तरमें मुनिराजने कहा कि इसका स्वामी महापुरुष भीम होगा। फिर मैंने मुनिराजसे पूछा कि स्वामी, यह तो बतलाइए कि हम उसे कैसे जानेंगे कि यही भीम हैं, उत्तरमें मुनिराजने इस प्रकार कहा कि:—

इसी भरतक्षेत्रमें एक हस्तिनागपुर नामका सुन्दर नगर है, वहाँका राजा पांडु है, उसीका पुत्र वह भीम है। वह भीम अपने भाईयो और माता सहित अभी इस चैत्यालयके दर्शन करनेके लिये यहाँ आने वाले है। वह ज्योंही यहाँ आयेंगे और दर्शन करनेको भीतर जायेंगे तब उनको किंवाड़ बन्द मिलेंगे। भीम उन किंवाड़ोंको खोलनेके लिये अपने हाथका स्पर्श करेगा कि किंवाड़ स्वतः ही खुल जायेंगे, तुम उसीको भीम समझना, वही इस गदा विद्याका स्वामी होगा। इसप्रकार विद्याको समझा बुझाकर वह आत्म-हितैषी विद्याधर तो मुनिराजके निकट दीक्षित होगया और मै उसी समयसे इस गदाकी रक्षा करता हुआ, आपके दर्शनोंकी प्रतीक्षामें यहाँ बैठा हुआ हूँ। आज बहुत दिनों बाद आप लोगोंको यहाँ आया हुआ देख कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ है। मुनिराजके कहे अनुसार मैंने यह गदा भीमको दे दी। इसके बाद उस यक्षने वस्त्र आभूषणादिके द्वारा उनका पूजा सत्कार किया और उनके गुणोका स्मरण करता हुआ अपने स्थानको चला गया।

इसप्रकार पांडव दक्षिण दिशाके देशोमे विहार करते हुए पुण्यके फलों को भोगते हुए हस्तिनागपुर जानेको तैयार हुये। वे विहार करते हुये माकन्दी नाम-की नगरीमें आये। उस नगरीमें देवों जैसे सत्पुरुषोंका और देवांगनाओंके समान

ललनाओंका निवास था। उसके चारों और एक सुन्दर परकोटा बना हुआ था। जिसप्रकार स्त्रियोंके माँगमें लगा हुआ सिंदूर शोभाको प्राप्त होता है उसी प्रकार उसी नगरीमे उत्तम वर्णके लोग रह रहे थे, अर्थात् वहाँ पर कोई भी अकुलीन, नीच और विजाति नहीं था। मतलब यह है कि वह नगरी ऐसी सुन्दर सजी हुई थी जो कि अमरपुरीके समान दिखाई पड़ती थी। वहाँ पहुँचकर ब्राह्मण वेशके धारी पांडव एक कुम्हारके घर ठहर गये। कुछ समय बाद वे उस नगरी की शोभा देखनेके लिये वहाँसे निकले। उसकी शोभाको देखकर वे बहुत ही सन्तुष्ट हुये। उस नगरीका राजा द्रुपद था। वह राजा बहुत पराक्रमी, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और शत्रुओंको युद्धांगणमें जीतनेवाला था। उसकी भार्याका नाम भोगवती था, यथा नाम तथा गुणवाली थी। अर्थात् वह भोगोंकी खानि थी। उसके धृष्टद्युम्न आदि उत्तम गुणोंसे युक्त कई पुत्र थे। इनके सिवा उनके द्रौपदी नामकी एक कन्या भी थी, जो कि उत्तम गुणोंसे युक्त थी। वह अपनी मन्द चालसे हँसिनी की चालको भी जीतती थी, चरणोंसे कमलोंको और जंघाओंसे केलेके थम्भोंको एवं जघनोंसे कामदेवके क्रीड़ा स्थलको और नितम्बोंसे स्वर्णशिलाको जीतती थी। बहुत कहाँ तक उसके शरीरकी सुन्दरता का वर्णन करें, संसारमें कोई ऐसी चीज ही नहीं थी जिससे कि उसके साथ उपमा दी जा सके।

एक दिन द्रुपदने देखा कि पुत्री अब योग्य वयस्का हो गई है इसलिये इसका जल्दी ही विवाह कर देना उचित है। यह विचार कर उसने तुरन्त ही अपने मन्त्रियोको बुलाया और उनसे इन सम्बन्धमे परामर्श किया। उन्होंने अपनी-अपनी सूझ और बुद्धिके अनुसार सलाह दी और बहुतसे राजाओंके नाम कहे और कहा कि राजन्! इनमेसे आप जो पसन्द करें उसीके साथ कन्याका विवाह करदे। मन्त्रियोंके साथ-साथ राजाने भी वर निश्चय करनेमे अपनी बुद्धि दौड़ाई किन्तु याचना भंग होनेकी वजहसे उसने यही निश्चय किया कि स्वयंवर होना चाहिये। निश्चयके अनुसार उसने तुरन्त ही एक सुन्दर स्वयंवर मण्डपकी रचना करवाई और दूतोको बुलाकर उन्हें निमन्त्रण पत्र देकर कर्ण और दुर्योधनादि राजाओंके पास भेज दिया।

खगाचल पर्वत पर एक विद्याधर राजा रहता था, उसका नाम सुरेन्द्रवर्धन

था। उसके एक कन्या थी। एक समय उसने किसी एक निमित्तज्ञसे पूछा कि मेरी इस कन्याका पति कौन होगा? उत्तरमे नैमित्तिज्ञने कहा कि हे राजन्, माकन्दीपुरीमे आकर जो बलवान महापुरुष गांडीव धनुषको चढ़ावेगा वही पुण्य-शाली महाभाग तुम्हारी कन्याका और द्रुपदकी कन्याका वर होगा। यह सुनकर वह विद्याधर गांडीव धनुषके साथ अपनी कन्याको लेकर माकंदीपुरीमें आया और वहाँ राजा द्रुपदके पास जाकर उसने अपनी और उनकी दोनोंकन्याओंके सम्बन्ध की सारी बातें द्रुपदको कह दीं और उसने गांडीव धनुषको भी उन्हें दे दिया।

इसके बाद वहाँ मनोहर स्वयंवर मण्डप बनकर तैयार हो गया। उसमें सोनेके खम्भे लगे हुये थे और सोनेके ही तोरण बंधे हुये थे एवं नानाप्रकारके चित्रों से सुशोभित हो रहा था। उसमे सुन्दर-सुन्दर चन्दोवा लगे हुये थे, पताकाये फहरा रही थीं, उसके ठीक बीचमें एक सुन्दर वेदी बनाई गई थी। मतलब यह है कि स्वयंवर मण्डपकी रचना बहुत ही आश्चर्यजनक हुई थी।

स्वयंवरके दिन कर्ण, दुर्योधन आदि सब यादव तथा जालन्धर, मगधाधीश, कौशल आदिके सब राजा वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर मण्डपमें आ विराजे। ब्राह्मणके वेशमे वे पाँचों पांडव भी वहीं ठहरे हुये थे, वे भी शोभा देखनेके लिये वहाँ आये। इसी समय द्रुपद और सुरेन्द्रवर्धन विद्याधरने नगरमें यह घोषणा करवा दी कि जो कोई गांडीव धनुषको चढ़ाकर राधा वेध करेगा वही पुण्यशाली इन दोनों कन्याओंको वरेगा। इस मुनादीको सुनकर जो बलवान राजा वहाँ विराजे थे वे सब उस धनुषको देखने लगे। धनुष इतना तेजयुक्त था कि उसको देखना भी असह्य प्रतीत होता था, स्पर्श करना और उसको चढ़ाना तो बड़ा बेढब काम था।

इसी समय अनेक प्रकारके आभूषण और बहुमूल्य वस्त्रोंसे सुसज्जित हो अपने शरीरको ओढ़नी आदिसे ढँककर द्रोपदी राजाओको देखनेकी इच्छासे वहाँ आई। उस समय उसकी शोभा अपूर्व ही मालूम होती थी। वह पैरोंमें नूपुर पहिने हुये थी जिससे चलते समय रुणझुण शब्द होते थे, वे बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते थे। उसकी नासिकाके अग्रभागमें मुक्ताओंसे जड़ी हुई सुवर्ण की सुन्दर नथ सुशोभित हो रही थी। उसकी सुन्दरताका विशेष वर्णन कहाँ

तक करें वह रूप लावण्यकी खानि थी। उसके चारो ओर उसकी सखियाँ थीं। धायके हाथमे मणियोंकी माला दे रखी थी। ज्योंही द्रौपदीको राजाओने देखा कि उनका मन उसकी ओर खिच गया। वे मन ही मन विचार करने लगे कि ऐसी सुन्दरी स्त्री तो हमने आज तक नहीं देखी। वहाँ उस समय जितने भी राजा बैठे हुये थे उनकी द्रौपदीके देखने मात्रसे विचित्र ही दशा हो गई। कोई तो उसकी तरफ अपने कटाक्ष फैंकने लगा, कोई जँभाई लेने लगा, कोई अपना मुकुट सम्भालने लगा, कोई अपनी मूछें ही ऐंठने लगा। और कोई अपने शरीरको ही मोड़ने लगा। इस प्रकार नाना तरहकी चेष्टा करते हुये वे राजागण वहाँ बैठे हुये थे। इतनेमे ही वीणा मृदंग बाँसुरी नगाड़े आदिके सुन्दर शब्द सुनाई पड़ने लगे।

इसके पश्चात् सुलोचना नामकी धायने जो कि हाथमें वरमाला लिये हुये थी, वहाँ बैठे हुये राजाओंमेंसे क्रम क्रमसे एक एकका परिचय द्रौपदीको कराया। वह कहने लगी कि देखो पुत्री, ये सूर्यवंशमें शिरोमणि इन्द्र सरीखी शोभाको धारण करनेवाले अयोध्याके राजा है। ये शत्रु पक्षको नाश करनेवाले बनारसके राजा हैं। ये सुवर्णके समान कान्तिको धारण करनेवाले चम्पापुरी के राजा कर्ण हैं। ये हस्तिनागपुरके राजा दुर्योधन है और इन्हींके भाई ये दुश्शासन है। ये देखो मगध देशके राजा हैं और ये जलन्धर देशके राजा है और ये वाल्हीक देशके राजा हैं। पुत्री मैं नहीं कह सकती कि इन राजाओंमेंसे कौन राजा इस धनुषको चढ़ाकर राधा बेध करेगा? बहुतसे राजातो धनुषमेसे निकलती हुई अग्निकी ज्वालासे डरकर ही उसके पास आनेमे भयभीत होते थे। बहुतसे नागोंकी फुंकारसे दूर भाग जाते थे। कोई साहस कर पास भी जाते तो वहाँ पहुँच कर मूर्छित हो जाते। कोई कहते हमें यह कन्या नहीं चाहिये, हमतो सकुशल अपने घर पहुँच जाँय तो वहाँ दीन दरिद्रियोंको दान देवे। कोई कहते कि हमें यह सुन्दरी द्रौपदी नहीं चाहिये हम तो अपनी स्त्रीके साथ ही काम-क्रीड़ा एवं मनोविनोद करेगे। कोई कहते कि हमे ऐसी कन्यासे काम क्या जिसके पीछे हमें प्राणोंकी आहुति देनी पड़े, हमें विषय-सुखकी इच्छा नहीं है, हम तो अपने घर जाकर ब्रह्मचर्य से रहे यही उत्तम है, कोई कहते कि यह कन्या नहीं है यह तो विषको उगलनेवाली सर्पिणी है।

यह देखकर अभिमानी दुर्योधन बोला कि मेरे सिवा इस राधा बेधको करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? इतना कहकर वह लाल-लाल आँखे करके धनुष के पास पहुँचा। किन्तु वहाँ पहुँचते ही धनुषसे निकली हुई महा ज्वालाको न सह सकनेके कारण जमीन पर गिर पड़ा और बड़े कष्टसे उठकर अपने स्थान पर चला गया। इसीप्रकार कर्ण आदि राजा भी उस धनुषकी ज्वालाको न सह सकनेके कारण अभिमान छोड़ अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। जब कोई भी राजा उस गांडीव धनुषको नहीं चढ़ा सका तब युधिष्ठिरने हर्षित हो अपने छोटे भाई अर्जुनको आज्ञा की कि तुम धनुषको चढ़ाओ। मालूम देता है कि इन उपस्थित राजाओंमे कोई भी धनुष नहीं चढ़ा सकता है, इसलिये ये सब चुपचाप बैठे है अतः प्रिय वत्स ! उठो और इस गांडीवको चढ़ाओ। तुम्हारे सिवा इस प्रचंड गांडीव को चढ़ानेमे और कौन समर्थ हो सकता है ? पूज्य भाईकी यह बात सुनकर निर्मल बुद्धि पार्थव प्रथम मगंलदायी सिद्धोंको और अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको नमस्कार कर उठ खड़ा हुआ। उस समय उस ब्राह्मण वेषधारीको कामदेवसे भी अधिक सुन्दर रूपशाली देखकर द्रोपदी उसके रूपपर मोहित हो काम के तीव्र बाणोंके द्वारा बेधी गई।

इसके पश्चात् अर्जुन सब राजा महाराजाओंको उल्लंघता हुआ वहाँ पहुँचा जहाँ कि धनुष रखा हुआ था। वहाँ पहुँचते ही उसके पुण्य-प्रतापसे धनुषसे निकलती महा ज्वाला एकदम शान्त हो गई और उसपर जो काले काले महा भयानक सर्प लहलहा रहे थे वे सब न जाने कहाँ छिप गये। सो ठीक ही है, पुण्यात्मा पुरुषोंके सामने भयानकसे भयानक विघ्न स्वयं शान्त हो जाते है और वे यदि शूर-वीर हों तब तो कहना ही क्या है ? इसके बाद अर्जुनने उसी समय झटसे उस गांडीव धनुषको हाथमे उठा लिया और उसकी प्रत्यंचा—डोरीको खींच कर जोरका शब्द किया। जिसे सुनकर वहाँ बैठे राजा बधिर—बहरे हो गये, बँधे घोड़े भड़ककर इधर उधर भागने लगे, हाथी चिघाड़ने लगे, दिग्गज सुण्डादण्ड उठाकर गर्जना करने लगे। मतलब यह है कि धनुषकी आवाजसे सारा संसार क्षोभित हो गया। उस शब्दको सुनकर द्रोणाचार्य रोकर बोल उठे कि क्या यहाँ मरा हुआ अर्जुन आ गया है ? इसके बाद अर्जुनने धनुष पर बाण

चढाया और घूमते हुए राधाकी नाकके मोतीको बातकी बातमें बेध दिया। और उस मोतीके साथ ही बाणको जमीन पर गिरा दिया। यह देखकर गुणग्राही राजा लोगोंको जो वहाँ बैठे थे भारी हर्ष हुआ और वे उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। द्रुपद राजा तथा उसके पुत्र भी मन ही मन बहुत आनन्दित हुए। इसके बाद ही द्रोपदीने अपनी धाय सुलोचनाके हाथमें से वरमाला लेकर आदरके साथ अर्जुनके गलेमे डाल दी। उस समय वायु बड़ी जोरसे चल रही थी इसलिये वह वरमाला वायुके प्रबल-वेगसे टूट गई और टूटकर पासमे बैठे चारों पांडवोकी गोदमें उसके मोती जा पड़े। इसी बातको लेकर मूर्खजन द्रोपदीको पंचभर्तारी कहते है। यह कहना उनका नितान्त अनुचित है।

इस समय अर्जुनके पास खड़ी हुई वह द्रोपदी ऐसी शोभती थी मानों मूर्तिमान लक्ष्मी ही खड़ी हो। अथवा इन्द्रकी इन्द्राणी ही हो। अर्जुनकी आज्ञाको पाकर वह द्रोपदी कुन्तीके पास जाकर बैठ गई। यह सब बात दुर्योधनको सह्य नहीं हो सकी सो ठीक ही है दूसरोके अभ्युदयको देखकर कुढ़ना ही तो दुर्जनता है। अतः प्रकृतिसे लाचार वह दुष्ट दुर्योधन दुर्मुख आदि राजा लोगोंको भड़काता हुआ कि क्या तुम्हे लज्जा नहीं आती है कि यहाँ इतने राजा बैठे रहने पर भी यह दीन ब्राह्मण इस कन्या रत्नको वरे। क्या तुम जानते नही कि उत्तम वस्तु राजाओंके ही उपयोगकी चीज है ? इस दीन हीन ब्राह्मणको अधिकार ही क्या है कि वह राजाओंकी सभामे आकर राधा बेध करे। इसप्रकार उस दुर्योधनने अन्य सब कौरवोसे विचारकर द्रुपद राजाके पास चन्द्र नामके एक दूतको भेजा। उस दूतने राजा द्रुपदके पास पहुँचकर यह निवेदन किया कि महाराज ! ये सब राजा मेरे द्वारा आपके प्रति यह कहलाते है कि इस स्वयंवर मण्डपमें द्रोण दुर्योधन कर्ण यादव आदि अनेक राजा महाराजाओंके रहते हुए भी कन्याने जो एक दीन ब्राह्मणको वरा है यह अन्याययुक्त कार्य हुआ है। वह परदेशी है, उसकी न कोई जातिका ठिकाना है और न पाँतिका ठिकाना है। यह तो एक लोभी ब्राह्मण है, जैसे कि अन्य ब्राह्मण होते है इसलिये आप इस ब्राह्मणको रत्न वगैरह भेंटमे देकर यहाँ से विदा कर दीजिये और राजाओंके योग्य इस कन्याको किसी योग्य राजाको दीजिये। यदि यह बात आपसे नहीं हो सकती है

तो आप युद्धका निमंत्रण स्वीकार कीजिये। यह बात कहकर वह दूत चुप हो गया। उत्तरमे द्रुपदने क्रोधमें दूतसे कहा कि न्यायनीति और स्वयंवर विधिको समझनेवाले राजाओंकी ऐसी बात मुंहसे निकालना ही महा अन्याय है। इस सम्बन्धमे हमें इतना ही कहना है कि सती साध्वी द्रोपदीने स्वयंवर विधिके अनुसार जिस किसीको भी अपनी इच्छानुसार वरा है वही उसका पति है और होगा, वह चाहे ब्राह्मणवर्णी ही क्यों न हो, हम इस विषयमें थोड़ा भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं? इसमें उन राजाओके युद्ध करने की कौनसी बात है? यदि इस बातमें वे राजी न हों और युद्ध करनेमे ही अच्छापन समझते हों तो मैं उनको युद्धके लिये निमन्त्रण देनेको तैयार हूँ। यह सुनकर दूत वापिस दुर्योधनादिके पास आया और उनको द्रुपदकी कही हुई बात ज्यों की त्यों सुना दी। इस बात को सुनकर वे राजा बहुत क्रुद्ध हुए और युद्ध करनेके लिए तैयार होगये। उन्होने उसी समय युद्धके बाजे बजवा दिये और खुद युद्धकी सामग्रीसे लेस हो कर बाहर निकले। वे राजा लोग अपनी विशाल सेनासे युक्त हो अपने-अपने वाहनो पर सवार थे। उनके साथ योद्धाओमे कोई तो हाथियों पर, रथोंपर और कई एक पैदल थे। वे नाना प्रकारके आयुधोंको बाँधे हुए थे। कोई क्रोध में आकर कहता कि इस द्रोपदीको पकड़ लो, कोई कहता कि इन ब्राह्मणोंको मार दो, कोई कहता द्रुपदको मार दो। यह बात सुनकर द्रोपदी थर-थर कांपने लगी, उसके शरीरमे पसीना आगया। वह अपने भर्तार अर्जुनकी शरणमें आगई। उसको भयावह देखकर भीमने कहा कि तुम भय मत करो। प्रसन्न हो और मेरी भुजाओंके पराक्रमको देखो। मैं एक क्षणमें इन सब शत्रुओंको भगाये देता हूँ जिसप्रकार कि वायुके प्रबल वेगसे रूईका कोई ठिकाना नहीं रहता है।

इसके बाद युद्धांगणमे जमी हुई उभयपक्षकी सेनामे बाण छोड़े जानेका भारी कलकलाहट शब्द होने लगा, द्रुपद आदि भी लड़नेके लिए तैयार हो गये। उस समय द्विजोत्तम युधिष्ठिर ने द्रुपदसे कहा कि आप हमें अस्त्र शस्त्रोंसे पूर्ण पाँच रथ दीजिए। यह सुनकर धृष्टद्युम्न आदि मन ही मन विचार करने लगे कि जब यह ऐसा कह रहे है तो ये कोई महापुरुष मालूम होते हैं। इसके पश्चात् धृष्टद्युम्न द्रोपदीको अपने रथमें बिठाकर रक्षा करने लगा। इधर युधिष्ठिर

रथमे आरूढ़ हो इन्द्र सरीखा शोभने लगा और गांडीव धनुष पर बाण चढ़ाये हुए सफेद घोड़ोंके रथपर सवार हुवा अर्जुन प्रतीन्द्र खरीखा शोभने लगा। इसी प्रकार द्रुपद भी सुवर्ण निर्मित कवच पहिनकर शत्रुओंको विनाश करने के लिये तैयार होगया।

भीम शत्रुकी सेनाको अपने ऊपर चढ़ आई देखकर एक वृक्षको जड़से उखाड़कर उन पर प्रहार करने लगा। वह अपने आघातों से सामने आनेवाले राजाओंको, उनके घोड़ोंको, उनके हाथियोंको, रथोंको चकनाचूर कर चक्ररहित कर देता था। वहाँ ऐसा कोई नहीं बचा जो भीमके आघातोसे अधमरा नहीं हुआ हो। वह शत्रुओंको इस प्रकार मारने लगा कि जिस प्रकार कोई घसियारा घासको छीलता है। उसके असीम पराक्रमको देखकर बहुतसे मध्यस्थ राजा उसकी जय-जय ध्वनिके साथ प्रशंसा करते थे। इसप्रकार भीम द्वारा अपनी सेनाको नष्ट होती देखकर दुर्योधन गुस्सा होकर उठा। उधर बहुत सी सेना को लेकर कर्ण भी धनंजयपर टूट पड़ा और उसने उसपर बाणोंकी वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया, उधर अर्जुन भी कर्णके छोड़े हुये बाणोंको बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ छेदता जाता था, क्योकि वह लक्ष्य-बेध करने मे बड़ा ही चतुर था। जिस प्रकार वायु मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है उसीप्रकार अर्जुनने उनके समस्त बाणोंका वारण कर दिया। उसके इसप्रकार धनुष-बाण कौशलको देखकर कर्णको बड़ा भारी अचम्भा हुआ। उसने विचार किया कि मैने आज तक ऐसा धनुष-बाण चलाने वाला कोई पुरुष नहीं देखा है। वह अपने मनोगत भावोंको छिपा नहीं सका। हँसकर बोला कि हे द्विजेश, तुम धनुष विद्याके प्रचण्ड विद्वान मालूम पड़ते हो। तुम्हारी प्रशंसा हम नहीं करते हैं किन्तु तुम सारे संसार के स्तुत्य हो।

हे द्विजेश! यह तो बताओ कि यह महोन्नत विद्या तुमने किससे सीखी है जो तुम्हारे आत्माके अलौकिक चमत्कारको दिखाती है। हे द्विजोत्तम, क्या तुम पुण्यके उदयसे स्वर्गसे तो नहीं आये आये हो क्योंकि तुम्हारे धनुष विद्याका पण्डित और कहीं नहीं देखा है। क्या तुम इन्द्र हो या दिनकर—सूर्य हो या अग्नि हो अथवा मरे हुये अर्जुन ही यहाँ जीवित होकर आगये हो? सच कहो

कि–तुम कौन हो ? यह सुन अर्जुनने कहा कि हे राजन् ! मैं ब्राह्मण ही हूँ, लेकिन मैने जो यह विद्या सीखी है वह अर्जुन का सारथी बनकर सीखी है। इस पर कर्ण ने कहा कि अच्छी बात है, पहिले तुम अपने बाणोंको चला लो पीछे मेरे बाणों को सहन करना। इसप्रकार आपसमें कहन सहन होकर वे दोनों एक दूसरे पर बाण छोड़ने लगे। अन्तमें पार्थने कर्णकी ध्वजा भंग कर दी एवं छत्र कवचको भी छेद डाला। उधर द्रुपदने भी कौरवोंकी सारी सेनाको बाणोंसे पूरित कर दिया। इसीप्रकार धृष्टद्युम्न आदि भी बड़ी मुस्तैदीके साथ शत्रुओंसे युद्ध करने लगे। इधर रथमें बैठकर भीमने दुर्योधनका सामना किया और बात-ही-बातमें उसका बख्तर छेदकर उसे हतप्रभ बना दिया। उस महा समरमें ऐसा कोई भी शत्रुपक्ष का आदमी हाथी घोड़ा आदि नहीं बचा जो कि पांडवोंके बाणों से बेधा नहीं गया हो। इसप्रकार अपनी सेनाको नष्ट हुई देखकर गंगा–पुत्र भीष्म पितामह युद्ध करनेके लिये अर्जुनके सामने आये और वे अपनी रण कुशलता से शत्रु सैन्यकी कुशलताको नीचा करते हुये। उनको इसप्रकार युद्धमें उतरा हुआ देख अर्जुन ने अपने बाणों द्वारा उन्हें आगे आने से रोक दिया और उनके जितने भी बाण आते थे उनको निष्फल करने लगा यह हाल देखकर गुरु द्रोणाचार्यने कहा कि हे दुर्योधन ! देखो, घोड़ोंके टापोंसे उठी हुई धूलिसे यह आकाश कैसा व्याप्त हो गया है और युद्धमें अद्भुत क्रीड़ा करनेवाला यह पराक्रमी बीर कैसी रण कुशलता दिखा रहा है, मालूम पड़ता है कि यह अर्जुन ही है क्योंकि बिना उसके अन्य किसीमें इतनी धनुष कुशलता कहाँसे आई ? पांडव लाखके महलमे जल गये यह बात बिलकुल झूठ मालूम देती है। वे मरे नहीं हैं किन्तु जीते ही वहाँसे निकल गये हैं और वे ही इस युद्धमें आकर संग्राम कर रहे है। गुरुजी की यह बात सुनकर दुर्योधनका चित्त बहुत ही घबराया और उसका मस्तक घूमने लगा। वह आश्चर्य हो द्रोणसे हँसता हुआ बोला कि गुरुदेव ! यह बात आप कहते हैं पांडव तो लाखके महलमें कबके जल गये अब वे भला कैसे यहाँ आ सकते है ? आश्चर्य है गुरुदेव, आपके मोहको जो कि अब भी मरे हुए अर्जुनकी रटन्तको नहीं छोड़ते है और उसे अभी तक निर्द्वन्द्व निरामय समझते है।

इस प्रकार दुर्योधनकी मर्मभेदी वाणी सुनकर द्रोणाचार्य ने हाथमे धनुष बाण

लेकर अर्जुनसे रोष भरे शब्दोमे कहा कि हे वीर ! अब तुम मेरे साथ संग्राम करनेके लिए तैयार हो जाओ । उनको संग्राम करनेके लिये सन्मुख देखकर अर्जुनने विचार किया कि यह मेरे गुरु द्रोणाचार्य है इन्हींके प्रसादसे तो मैने धनुष-बाण विद्या सीखी है और इसी वजहसे मैने इस संग्राममें विजय प्राप्त की है और अब इनके साथ ही मै संग्राम करूंगा यह मुझ जैसे विचारशील पुरुषको उचित नहीं है । मै नहीं कह सकता कि वे कृतघ्न पापी कौनसी दुर्गतिमें जायेगे जो अपने परम हितैषी गुरुओंके असीम उपकारोंको भूल जाते है । वे महा कृतघ्न है, उनके बराबर संसारमें कोई दूसरा पापी नहीं । ऐसा विचार कर अर्जुनने सात पैड आगे चलकर गुरु द्रोणके चरणोमे नमस्कार किया और उनके पास अपने हाथका लिखा हुआ पत्र बाणके साथ ऐसा छोड़ा जो कि गुरुके पास ही जा पड़ा । गुरुने उसे देखते ही तुरन्त उठा लिया और उस पत्रको पढ़ा । उसमें लिखा था "हे गुरुदेव, आपके चरणों में मेरा नमस्कार है । मै कुन्तीका पुत्र आपका अन्यतम शिष्य अर्जुन हूँ । गुरुदेव आपसे मेरी यह विनम्र प्रार्थना है, कृपा कर आप उसे सुनेगे । वह प्रार्थना यह है कि आप जानते है कि इन दुष्ट कौरवोने हमे छलसे जला देनेकी पूरी तैयारी की थी. तैयारी ही नहीं जला भी दिया था किन्तु हम तो पुण्ययोग से बच गये और वहाँ से किसी प्रकार निकल आए । पश्चात् नाना देशोंमे घूमते हुये इस माकन्दी नगरीमे आए और यहाँ आज आपके पुण्यमयी दर्शन हुए जिनका हमे बहुत ही हर्ष है । अन्तिम प्रार्थना मेरी आपसे यही है कि आप थोड़ी देरके लिये ठहर जाईए और अपने इस विनम्र शिष्य के बाहुबल को देखिये जिससे कि मै सफल हो जाऊँ और इन दुष्ट दुर्योधनादि राजाओसे संग्राम कर सकूँ और उनको पांडवोंके जलानेका फल चखा दूं ।"

उस विनयपूर्ण पत्रको पढ़कर द्रोणाचार्यके नेत्र अश्रुओ से भर आये। उन्होंने उसी समय कर्ण और दुर्योधनादिसे पत्रका सारा समाचार कह दिया। पत्रके समाचार सुनकर कर्णने कहा कि ठीक है सिवा अर्जुनके दूसरे किसमें इतनी सामर्थ्य थी कि जो रणमे बाणोके द्वारा शत्रुओंके मस्तकको छेदन कर सके । इसी प्रकार भीम युधिष्ठिर आदि सभी पांडव रणमें शत्रुओका संहार करनेमें समर्थ है । इस मर्मभेदी समाचारोंको सुनकर दुष्ट दुर्योधन कुछ देरके

लिये किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया, उसकी अन्तरात्मामें बड़ी भारी चिन्ता पैदा हो गई। इतने में द्रोण पांडवोके पास पहुँच गये। पांडवोंने उनको देखते ही बड़ी भक्ति प्रगट की, उनका आलिंगन कर चरणोंमें नमस्कार किया और अपने पर बीती हुई सारी कथा उन्हे सुना दी। उनकी सब बातों को सुनकर बहुत ही हर्ष हुआ, पश्चात् द्रोणाचार्य ने भाई भाईयोंके युद्धको बन्द करा दिया। इसके बाद उन्होने पांडवोंसे कहा कि अब तुम सब मेरी बात पर ध्यान दो। देखो, अब तुम्हें ऐसा काम करना उचित है जिससे हित हो, द्वेष और रोषको बढ़ाने वाला कार्य कोई नहीं करना चाहिये। तुम लोग विशेष पुण्यशाली हो इसीलिये तो जलते हुए लाखके महलसे निकले और जहाँ-जहाँ भी गये वहाँ-वहाँ तुम्हारा आदर सत्कार हुआ। कन्या, धन सम्पत्ति आदिकी प्राप्ति हुई। तुम्हारा पुण्य इतना प्रबल है कि उसके आगे तुम्हारा कोई भी तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता है। इस प्रकार यहाँ द्रोण और पांडवोंमें बात चीत हो रही थी कि इतने मे भीष्म कर्ण कौरव आदि राजा भी वहाँ आ पहुँचे और वे सव बड़े हर्ष प्रकर्षके साथ प्रीति पूर्वक आपसमे मिले किन्तु गर्व रहित हुए कौरव मारे लज्जाके नीचे मुख किये चुपचाप बैठे रहे सो ठीक ही है, पापियोंका शिर हमेशा ही नीचे रहता है।

इसके बाद भीष्म पितामह, द्रोण आदिने कौरव पांडवोकी आपसमे क्षमा करवाई। सो ठीक ही है, सज्जन पुरुषोका प्रयास अच्छे कामोको करनेमें ही होता है। आखिर दुर्योधनने अपनी सफाई दिखाते हुये कहा कि मैने लाखके महलमे आग नहीं लगाई, मै इस बातको श्रीजीकी साक्षीपूर्वक कहने को तैयार हूँ। मैं तो कहता हूँ कि जिस दुष्टने पांडवोंके घरमे आग लगाई हो वह दुर्बुद्धि नरकमे पड़े और वहाँ घोरातिघोर वेदना पावे। यह तो बड़ी अच्छी बात हुई कि आप लोगोसे फिर समागम हो गया इससे हमारा अपवाद दूर हो गया। नहीं तो यह कलंक का टीका हमारे माथे पर लगा रहे थे कि उन्होंनेही पांडवोंको जलादिया है। यह तो बिलकुल सच बात है पूर्वमें किये कर्मोको कौन टाल सकता है? वे तो अपना फल देगे ही, उनसे चाहे जीवोकी कीर्ति हो चाहे अपकीर्ति। इस प्रकार ऊपरसे मीठे वचन कहकर कौरवोने अपनी सफाई सबोंके सामने पेशकर दिखलाई सो ठीक ही है, दुष्टकी दुष्टता कभी नहीं छूटती, उसके लिए चाहे जितना

प्रयत्न क्यों न किया जाय ।

इसके बाद वे राजागरण कुम्हारके घर जाकर माता कुन्तीको भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हुए, इसी प्रकार दुर्योधनादिने भी माताको झुककर नमस्कार किया और उसे सन्तोषित कर आगे बैठ गये । उस वक्त कुन्तीने दुर्योधनसे कहा कि तुमने राजा धृतराष्ट्रके पवित्र महान वंशमें कालिमा क्यो लगाई ? क्यो अपने कुलके भाईयोंको जलानेका प्रयत्न किया । जो दुर्जन अपने कुलका नाश कर सुखकी इच्छा करते हैं उनका कुल स्वतः ही नष्ट हो जाता है । न्याय-नीतिपूर्वक चलनेवाले ही राज्यको पाते है, बिना इसके उनको सर्वत्र दुःखों का ही सामना करना पड़ता है । जानते हो यह राज्य वास्तवमे तृण में लगी हुई ओसकी बून्दोंके समान ही नश्वर है । फिर न जाने लोग क्यों अपने वंशको नष्ट कर उसे प्राप्त करना चाहते है ऐसा करनेवाले स्वार्थी अधम पुरुषोंके जीवनको एक बार नहीं अनन्तों बार धिक्कार है । कुन्तीके यह वचन सुनकर दुर्योधनादि का मुंह एकदम काला पड़ गया मानों किसीने मुंह पर स्याही ही पोत दी हो, वे मारे लज्जाके नतमस्तक हो गये ।

इसके बाद द्रुपद भी वहाँ आगये । वहाँ आकर उनको मालूम हुआ कि ये ब्राह्मण भेषधारी पाँचों पांडव है उनको यह बात जानकर बड़ी भारी प्रसन्नता हुई । उन्होंने तुरन्त ही द्रोपदीके शुभ विवाह की तैयारी कराई । पांडवोको एक सुन्दर महलमें ठहराया इसके बाद शुभ दिन शुभ मूहूर्त नक्षत्र मे उस विद्याधरकी पुत्री सहित अपनी कन्या द्रोपदीका शुभ विवाह अर्जुनके साथ मे कर दिया । विवाह के समय नाना प्रकारके बाजों की गर्जना हुई, जगह जगह मनोहर नृत्य हुए, आगन्तुकोंका यथा योग्य आदर सत्कार किया एवं भेट आदि दी गई । इसके बाद भीष्म कर्ण आदि विवाहोत्सवकी शोभा देखकर अपने अपने घर चले गये । कौरव भी चतुरंग सेना सहित हस्तिनापुरको रवाना हो गये ।

जिस समय पांडवोने अपने नगर हस्तिनापुर में प्रवेश किया उस समय शहरमे जगह-जगह अपूर्व शोभा हो रही थी । सबोके घर पर तोरण बँध रहे थे, द्वार पर मंगल कलश सुशोभित हो रहे थे । इसप्रकार पांडव बड़े ठाटबाटके साथ अपने नगरमे आये और बड़े आनन्दपूर्वक रहने लगे ।

यहाँ ग्रन्थकार कहते हैं कि देखो द्रोपदी कितनी पवित्र, सती और विदुषी थी। वह एकमात्र अर्जुन को ही अपना पति मानती थी। यदि वह और पांडवों पर आसक्तचित्त होती तो सती कैसे कहलाती ? क्या वह सतियोंकी गणना में मुख्य कही जाती ? इस सम्बन्धमें जो मूर्ख पुरुष द्रोपदीको पंचभर्तारी कहते हैं वे बड़ाभारी पापार्जन करते हैं। भला विचारने की बात है कि जो पांडव इतने बली धनी मानी श्रीमान् और धर्मनिष्ठ थे वे एक स्त्री पर कैसे आसक्त हो सकते है ? उनसे ऐसा अधम कार्य कैसे बन सकता है ? उनके किस बातकी कमी थी ? सामान्य पुरुषोंके भी जब भिन्न-भिन्न स्त्रियाँ होती हैं तब उन पाँचोंके एक स्त्री कहना कितना आश्चर्य पैदा करता है, द्रोपदीके पवित्र शीलव्रतमें इसप्रकार दूषण लगाना पाप नहीं महापाप है। जो अपने मतानुसार द्रोपदीको पंचभर्तारी कहते है वे महापातकी हैं, भगवान जाने कि वे पापी कौनसी दुर्गतिमें जाकर सड़ेंगे।

जो जीवोंको सुख देनेवाला, शुभ गतिको प्राप्त करनेवाला, उत्तम पुरुषों द्वारा सेवनीय, सब गुणों का भूषण शीलधर्मका आदर करता है, पालता है, वह कभी शोक सन्तापको प्राप्त नहीं होता उसे कोई भी संसारी शक्ति तकलीफ नहीं दे सकती, वह अन्ततोगत्वा रत्नत्रयको धारण कर मोक्षको नियम से प्राप्त करता है। शीलकी अचिन्त्य महिमा है इसलिए मनुष्यको चाहिये कि वह शीलधर्मको उन्नत बनावे

।। सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।

अथ सत्रहवां अध्याय ।

मै उन श्रेयांसनाथ भगवान को नमस्कार करता हूँ जो कल्याणों को करने वाले है, पापोंको नाश करनेवाले है, धर्मके नायक है, जन्म–जरारूपी दुःखोंसे रहित हैं, जो अन्तरगं बहिरंग लक्ष्मीके पति है। वे प्रभु मुझे श्रेय–कल्याण के रास्ते पर लगावें।

बाद पांडव और कौरव आधा-आधा राज बाँटकर आनन्दके साथ एक दूसरे से हेलमेल बढ़ाते हुये रहने लगे। पांडवोंने भी अपने राज्यके पाँच हिस्से कर लिये और वे अपने हिस्सेके राज्य की रक्षा करते हुए जुदे–जुदे रहने लगे।

उनमेंसे स्थिरचित्त युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ–देहलीमें रहने लगे, गम्भीराशय भीमसेन तिलपथ नगरमें तथा विचारशील अर्जुन स्वर्णपथ–सुतपतमें रहने लगे। नकुल जलपथमें रहते थे और सहदेव वणिकपथमें रहते थे। जब सबोंके रहने की ठीक ठीक व्यवस्था हो गई तब युधिष्ठिर और भीमने जहां-जहां कन्याओं से विवाह किया था उन सबको अपने यहां बुला लिया। कौशाम्बी नगरीसे विंध्यसेन राजा की पुत्री वसन्तसेनाको भी बुला लिया और उनके साथ युधिष्ठिरने विवाह कर लिया। इस प्रकार भीमसेन आदि युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार पृथ्वीको पालते हुये सदा ही उत्तम सुखोको भोगते थे और उनकी सेवा करनेमें सदा ही तत्पर रहते थे। इन महानुभावों को धनकी इच्छा नहीं रहती थी किन्तु सदा ही अपनी सेना-हस्ती तुरंग, प्यादे आदिकी वृद्धिमें दत्तचित्त रहते थे। इनका आत्मा सदा ही उज्ज्वल रहता था इसलिये वे प्रसन्नचित्त रहते थे, राज्य का बिलकुल ही गर्व नहीं था। वे सदा ही गुरु गांगेयकी सेवा–सुश्रुषामे दत्तचित्त रहते थे, इसलिये पितामहका भी इन पर विशेष अनुराग रहता था। दुर्योधनको यह बात सह्य नहीं हुई। उसने एक दिन एकांत पाकर पितामहसे कहा कि हे दुर्मयी! यह आपने क्या आरम्भ कर रक्खा है जब कि आप कौरव और पांडवोंकी राज-सम्पत्तिको समानरूपसे भोगते है तब फिर आपका विशेष स्नेह पांडवोंकी तरफ ही क्यो है, इसका क्या कारण है? इस प्रकार दुर्योधनके क्रोधयुक्त वचनोको सुनकर गांगेयने कहा कि इसका भी कारण है कि ये पांडव सत्पुरुष है, धर्मामृत के पिपासु है, सरल स्वभावी है, गुणाढ्य हैं, न्याय नीति के विचारक है, बीती हुई और भविष्यमे होनेवाली बातोकी व्यर्थ चिन्ता नहीं करते है, वर्तमानके ऊपर ही दृष्टि देते है। इन्हीं कारणो से ये मुझे अधिक प्यारे है।

एक समय की बात है कृष्णने प्रेमके वश हो अर्जुनको गिरनार पर्वतपर क्रीड़ा करनेके लिये बुलाया। वह गिरनार पर्वत अत्यन्त उन्नत और बहुत शोभायुक्त था। कुछ समयमे इधरसे तो कृष्ण वहां पहुंचे और उधरसे अर्जुन भी आगये। दोनोने सप्रेम एक दूसरेका आलिगन किया और वहां वे अमन–चैनके साथ नाना प्रकार की क्रीड़ा करने लगे। क्रीड़ा करते हुये वे दोनो ऐसे सुहावने प्रतीत होते थे कि मानो इन्द्र प्रतीन्द्र ही हों। कभी वे वनमे इधर-उधर खेलते,

कभी पानीमें डूबते निकलते, कभी चन्दन कुंकुमके मिश्रित जलकी पिचकारी एक दूसरे पर छोड़ते, कभी गिरनार पर्वत पर चढ़ते–उतरते, कभी सुखकारी गीत और नृत्योंके द्वारा मनोविनोद करते और कभी गेंद खेलते थे। मतलब यह है कि वहां उन दोनोंने स्नेहके साथ मनको प्रफुल्लित करनेवाली क्रीड़ा विनोद किया।

पश्चात् कृष्णके साथ अर्जुन भी द्वारिका में आगये। द्वारिका में जिससमय इन्होंने प्रवेश किया उस समय वे इन्द्र सरीखे जान पड़ते थे। अर्जुन मनोविनोद करता हुआ कृष्णके साथ बहुत दिनों तक द्वारिकामें रहा, कभी वहां घोड़ों पर चढ़ता, कभी हाथियों पर चढ़ता था। इस प्रकार आनन्द से उनके दिन बीते।

एक समय महत्त्वशाली अर्जुनने स्वच्छमना भद्र विचारों वाली अत्यन्त शोभायुक्त सुभद्राको देखा। उसके रूप लावण्य और चाल ढालको देखकर वह विचार करने लगा कि यह सुन्दरी कौन है? इसकी सुन्दरतासे तो यह मालूम पड़ता है कि स्वर्गसे इन्द्राणी आ गई है क्या? इसके रुणझुण शब्द करते हुये नूपुर देवांगनाओंकी शोभाको भी जीतते हैं। इसके अक्ष विक्षेप–कटाक्ष इतने चञ्चलित हैं जो कि ध्यानाग्निसे जलाये हुये कामको भी पुनः जीवित कर देते हैं। नहीं मालूम पड़ता कि यह रूप सौन्दर्यकी अनुपम प्रतिमा कौन है, रति है या लक्ष्मी, पद्मावती है या रोहिणी या सूर्यकी प्रिया है अथवा कोई किन्नरी है? जो भी हो, टह मृगनयनी मुझे किसी प्रकार प्राप्त हो तभी मेरा जीवन सार्थक है। मैं इसे किसी न किसी उपाय द्वारा अपनी प्राणवल्लभा बनाऊंगा। वह इस तरह मन ही मन विचार कर रहा था कि इतनेमे उसने दामोदर–कृष्णसे पूछा कि महाराज! यह साक्षात् लक्ष्मी जैसी सुन्दर लक्षणवाली किस महाभाग्य की पुत्री है। उत्तरमे कृष्णने कुछ मुस्कराकर कहा कि क्या अर्जुन तुम नहीं जानते कि यह रूप और शीलकी खानि मेरी सुभद्रा नामकी बहिन है। यह सुनकर पार्थने हंसकर कहा कि तब तो यह सुन्दरी मेरे मामाकी पुत्री है और विवाह-सम्बन्धके योग्य है। इसके उत्तरमे कृष्णने कहा कि अच्छा अर्जुन मुझे तुम्हारी राय पसन्द है। यह लक्ष्मी मैने तुम्हे दे दी, तुम इसे स्वीकार करो। कृष्ण की यह बात सुन अर्जुन का मुख–कमल एकदम विकसित हो गया सो ठीक ही है,

मनचाही चीज मिलने पर किसको प्रसन्नता नहीं होती है ? पश्चात् वह सतृष्ण कृष्णके मुख की ओर देखने लगा। कृष्णने झट उसका अभिप्राय जान लिया और उसने तुरन्त ही वायु के समान शीघ्र चलनेवाले घोड़ों के एक सुन्दर रथको मंगाया और वह अर्जुन के सुपुर्द कर दिया। अर्जुन सुभद्राको रथमे बैठाकर वहां से वायुके वेगके समान चल दिया। यादवोंने जब सुभद्राके हरे जानेके समाचार सुने तो उन्हे बहुत ही क्रोध आया और वे कोई भाला, कोई तलवार और कोई धनुषबाण ले अर्जुन के पीछे भागे। कोई रथमें सवार होकर, कोई घोड़ों पर सवार होकर और कोई पैदल ही चल पड़े। यह कहते हुये कि यादवो की कन्याको लेकर अर्जुन जायेगा किसके पास ?

इस प्रकार समुद्रके समान गम्भीर और चतुरंग सेनारूप तरंगोसे तरंगित समुद्रविजय अपने भाई बन्धुओको साथमें लेकर चल पड़ा। इधर बलदेव और नारायण भी अपने धनुषबाण लेकर और पांचजन्य शंखका धीरे–धीरे शब्द करते हुये ससैन्य चल दिये। और भी बहुतसे राजा उनके साथ रवाना हुए। नारायण तो इधर उधर घूमकर अपनी सेना सहित वापिस द्वारिकामे आगए और बलदेव आदिको बुलाकर उनसे समझाकर कहा कि—बहुत बातको बढ़ाने से इस समय कुछ फायदा नहीं है, उत्तम तो यही है कि हरे जाने के दोषसे दूषित हुई बहिन सुभद्राको पार्थसे ही विवाह दीजिये। अर्जुन अपना भानजा भी लगता है इसलिये यह सम्बन्ध योग्य ही है। अर्जुनके साथ इस मामले को लेकर लड़ाई झगड़ा करना व्यर्थ है। इन दोनों का बिवाह–सम्बन्ध अपने हाथो से कर देना ही ठीक है। कृष्णकी यह बात सुनकर सबोने यही कहा कि हां यह ठीक है। इसके बाद चतुर मन्त्रियोको बुलाकर उनको लेनेके लिये भेज दिया। मन्त्रियोंने अर्जुनके वहां पहुंचकर पहिले तो उन्हे प्रणाम किया पीछे हरिने जो समाचार कहे थे वे सब कह दिये। अर्जुन कृष्णके कहे अनुसार सुभद्रा को साथ ले वापिस द्वारिका आये।

इसके बाद विवाह की तैयारियां होने लगीं, एक सुन्दर विवाह मण्डप निर्मापित किया गया। उसमे शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न, शुभ बेलामे अर्जुनने प्रसन्न-चित्त हो सुभद्रा का पाणिग्रहण किया। विवाहोत्सव के समय नाना प्रकार के

बाजे बज रहे थे, नृत्यकारिणी मनोहर नृत्य कर रही थीं, मंगल गीत गानेवाली ललनायें मंगल गीत गा रही थीं, चारों तरफ जिधर भी देखो उधर ही नाच गान हो रहे थे। इस विवाहमें पांडवोंको बुलाए सभी पांडव शामिल हुए थे। इस प्रकार अर्जुन अपनी प्यारी सुभद्राको प्राप्त कर उसके साथ भोग भोगता हुआ समय बिताने लगा। इधर भीमसेनने भी लक्ष्मीवती और शेषवती इन दो कन्याओं का पाणिग्रहण और किया तथा नकुलने विनया का और सहदेवने सुरतिका पाणिग्रहण किया।

इस प्रकार विवाहोत्सव हो जानेके बाद सब राजा अपने अपने स्थान को चले गये। एक दिन कृष्ण अर्जुनके साथ उपवनमें क्रीड़ा करनेको गये थे। वहां उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक जल क्रीड़ा की, एक दूसरे पर जल डालने लगे, इतनेमें ही एक ब्राह्मण वहां आया और वह इस प्रकार अर्जुनसे कहने लगा कि हे पार्थ, मुझे भोजन आदि उत्तम वस्तुओं द्वारा सन्तुष्ट करो।

उस द्विजने यह भी कहा कि राजन्, मैं दावानल हूं और तुम क्षत्रिय पुत्र हो। मैं चाहता हूं कि तुम अपने सेवकोंके साथ लेकर इस वनको जलाकर नष्ट कर दो। ब्राह्मण की यह बात सुनकर अर्जुनने कहा कि हे द्विज, मेरे पास इस समय न रथ है, न धनुष है और न बाण ही है। यह सुनकर उस द्विजने पार्थको एक बानरके लक्षणों से युक्त रथ दिया जो कि वज्रमयी था, किसीके द्वारा जीता नहीं जा सकता था, इसके सिवा उसने अर्जुनको वह्नि, वारि, भुजंग, तार्क्ष्य, मेघ और वायु आदि बाण दिये एवं नारायणको उसने एक गदा और एक गरुड़की ध्वजा से चिह्नित रथ दिया तथा नाना तरह के बहुत से रत्न भेंट दिये। इस प्रकार इन बाणों को प्राप्त कर अर्जुनने उस वनको जलाने के लिए एक बाण छोड़ा। बाणके छोड़ते ही दावानल जोरसे धधकने लगी और वन जलने लगा। सारे वनमें शोर मच गया। वनके पक्षी, मृग, मृगेन्द्र आदि को जलाती हुई वह ज्वाला आकाशमें बहुत ऊंचे तक जाने लगी। उसने थोड़ी ही देरमें वनके सारे वृक्ष और तृण समूह को जलाकर खाकमें मिला दिया। सो ठीक ही है भूखा यम जब क्रोध करता है तब देव दानव मनुष्य पक्षी आदि किसीको भी नहीं छोड़ता है। इसके बाद उस ब्राह्मण ने अर्जुन को एक बाण और दिया

और उससे कहा कि आप इस बाण को चला कर सबों को जला सकते है, इससे कितनी ही शक्ति का धारी कोई क्यों न हो नहीं बच सकता है।

इस प्रकार बनको जलता हुआ देखकर एक तक्षक नामके नागको बड़ा भारी गुस्सा आया और उसने उसी समय सब देवताओं को इकट्ठा किया और इस महान उपद्रवको शीघ्र रोकनेके लिये कहा। देवताओं को भी पार्थके इस काम पर बहुत गुस्सा आया और उन्होने पार्थसे ललकार कर कहा कि महानुभाव पार्थ, अब तुम कहां जाओगे यह कहकर उन्होने समूचे आकाश मण्डल को मेघोंसे भर दिया। उस समय अर्जुनने कृष्ण से कहा कि देखिये अब मै इस मेघ मालाको एक बाणके द्वारा ही छिन्न भिन्न किये देता हूं। ऐसा कहकर उसने गांडीव धनुष हाथमें उठाया और उसे चढ़ाया और उसे चढ़ाकर एक जोरदार शब्द किया, जिसको सुनकर वे देवतागण बहुत क्रोधित हुये और अर्जुनको डराते हुए कहने लगे कि हे अर्जुन, तुमने कपटसे वनको जलाया है इसलिये हम जैसे पराक्रमशाली देवोंसे बचकर अब तुम कहां जा सकते हो, यह कहकर देवो ने मूसलाधार जलकी वर्षा करना शुरू कर दी जिससे सारी पृथ्वी जल ही जल रूप हो गई। यह देख अर्जुनने बाणोंके समूह द्वारा एक ऐसा मण्डप बनाया जिसमे पानीकी एक बून्द भी दावानल पर नहीं पड़ने पाती थी। देवोंने उससमय बहुत ही घनघोर वर्षाकी, परन्तु दावानल थोडी भी शान्त नहीं हुई।

इस अवसर पर कृष्णने क्रोधयुक्त हो एक वायुबाण छोड़ा जिससे मेघोंको बड़ा भारी त्रास हुआ, इधर अग्निने भी अपने बाण चलाये जिससे सब मेघ नष्ट हो गये। जिस प्रकार गरुड़को देखकर सर्प का कहीं पता नहीं चलता है इस प्रकार तिरस्कृत हुए वे देव अपने स्वामी इन्द्रके पास गये और जाकर इन्द्रसे प्रार्थना की कि हे नाथ। अर्जुनने आपके क्रीड़ा करनेका सारा बन भस्म कर दिया है, हमने उसकी रक्षाका बहुत उपाय किया किन्तु वह कुछ भी फलित नहीं हुआ, उलटा हमे उसके द्वारा तिरस्कृत होना पड़ा। अतः अब हम भयातुर हो आपकी शरणमे आये है। इन्द्रको यह बात सुनकर बहुत ही क्रोध हुआ वह तुरन्त ही ऐरावत हाथी पर चढ़कर अपने परिकर सहित हाथमे वज्र लेकर चल दिया। रास्ते मे उसे एक असुरेश मिला, उसने कहा कि हे सुरेश ! तुम स्वर्गोको

छोड़कर साथमें इतना बड़ा भारी परिकर लेकर कहां जाते हो ? यह जानते हो कि अर्जुनने उस वंशमें जन्म लिया है कि जिसमें प्रसिद्ध तीन लोकके स्वामी नेमिनाथ तथा कृष्ण नारायण और पांडव जैसे महा-पुरुष पैदा हुए हैं। तुम अर्जुन को थोड़ा भी विघ्न उपस्थित नहीं कर सकते हो। यह सुनकर इन्द्र तो वहां का वहां अपने स्थान पर रह गया। इधर अर्जुन भी विघ्नोंको दूर कर प्रेमके साथ हस्तिनापुर आगया। उधर कृष्ण भी नगरी को चले गये। अपनी नगरीमे पहुंचकर अर्जुन सुभद्राके साथ नाना प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ। कुछ समयके बाद ही सुभद्राके गर्भसे उत्तम लक्षणोंवाला एक पुत्र-रत्न हुआ, जिसका नाम अभिमन्यु था।

एक समय दुर्योधन राजाने कपटसे पांडवोंको अपने यहां बुलाया और उनमें से युधिष्ठिरसे स्नेहभरे वचनो मे कहा कि हे कौन्तेय ! आइये, हम और आप दिल बहलानेके लिये अक्षक्रीड़ा करे अर्थात् जुआ खेलें। सरल स्वभावी युधिष्ठिरने यह बात मंजूर करली, अब ये दोनों आपसमें जूआ खेलने लगे। कपट से कौरव जो पाँसे फेकते थे वे अनुकूल ही पड़ते थे। यह देखकर वे ऐसे जान पड़ते थे कि मानों दोनों तरफसे पाँसे उनके सिखाये हुये आज्ञाकारी चाकर ही हों, कभी कभी भीमकी हुँकारसे इधर उधर पड़ जाते थे उससे जाना जाता था कि मानों शब्दोके डरसे ही वे स्थिर नहीं होने पाते हैं और वे उल्टे पड़ जाते है। यह देखकर कौरवोंने मनमें विचार किया कि इस भीमको किसी बहानेसे यहाँ से निकाल देना चाहिये। उन्होंने ऐसा ही किया बादमे वे निःशंक हो जूआ खेलने लगे। थोड़ी देरमे छली दुर्योधनने युधिष्ठिरको जीत लिया और वे अपना सर्वस्व हार गये-कुण्डल केयूर हार, कंकण, धन, धान्य, रत्न, मुकुट, भण्डार, बर्तन, हाथी, रथ, प्यादे, सेना, देश आदि जो भी धन सम्पत्ति थी वह सब जूआमे हार गये। यहाँ तक कि सर्वस्व खोकर भी उन्होंने यह खेल बन्द नहीं किया और अन्त मे वे अपनी रानियोंको एवं प्यारे भाईयोंको भी दांवपर रखनेको तैयार हो गये। इतनेमे हुँकारता हुआ भीम आ पहुँचा। वहाँ आकर उसने देखा कि भाई युधिष्ठिर जूआमें सारी सम्पत्ति हार गये हैं और जो कुछ बाकी है उनको दाव-पर लगा रखा है। उसने भयभीत हो युधिष्ठिर से कहा कि महाराज, आप यह

क्या कर रहे है ? क्यों यह समूल हानि करनेवाला द्यूत प्रारम्भ कर रखा है ? महाराज, इस द्यूत के कारण ही मनुष्यकी संसारमे अपकीर्ति फैल जाती है, जीवोंको पद-पद पर हानि उठानी पड़ती है। पूज्य, सब अनर्थो की जड़ यह जूआ ही है। इस लोक और परलोक दोनोंको बिगाड़नेवाला है इसलिये सात व्यसनों में सबसे प्रथम इस द्यूतका नामोल्लेख किया गया है, यह महान दुःखोंकी जड़ है इसीलिये पण्डितोंने इसे मद्यकी तरह हेय बतलाया है। इससे बड़ा संसारमें न कोई पाप हुआ है और न होगा। भीष्मके इसप्रकार युक्तिमत वचनोंको सुनकर युधिष्ठिर वहाँसे उठ आये और व्यथित मन हो अपने घर आ गये।

इतनेमे दुर्योधनने एक दूतको बुलाकर युधिष्ठिरके पास भेजा और कहलवाया कि महाराज दुर्योधन आपको कहते है कि आप बारह वर्षके लिये सारी पृथ्वी जूआमे हार चुके हो इसलिये आप सब जने बारह वर्षके लिये यहाँसे चले जाँय और ऐसे चले जाँय कि इतने दिनो तक आपका कोई नाम न सुन पावे। इसीमें आपकी कुशलता है आप लोग आज ही रात्रिको अपने घरसे चले जाँय अन्यथा तुम्हारे लिये भारी अनर्थ होगा इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है। इसप्रकार दूत युधिष्ठिर महाराजसे निवेदन कर वापिस चला गया।

इसके बाद दुष्ट दुःशासन क्रोधयुक्त हो द्रोपदीके महलमें चला गया। वहाँ वह द्रोपदीको वेणी चोटी पकड़ महलसे बाहर खींचने लगा। उस समय वह दुष्ट ऐसा जान पड़ता था कि जैसे कोई कमलमे रहने वाली लक्ष्मीको ही कमलसे बाहर निकाल रहा हो। यह कृत्य देख भीष्म पितामहने कौरवोंसे कहा कि रे रे कौरवो ! यह काम करना तुम्हे युक्त नहीं है ऐसा काम करनेसे तुम्हारी सारे संसारमे अपकीर्ति फैल जायेगी। यह तुम्हारे भाईकी स्त्री है अतः तुम्हारी भावज है, पवित्र है, माताके समान है, जिसको तुमने अमानुषी कृत्यसे घरसे बाहर निकाल दिया है याद रक्खो भावजके अपमानसे दुर्गतिके भयानक दुःख भोगने पड़ते है।

इतनेमे द्रोपदी अपनी इस दुरावस्थासे दुःखी होती हुई और आँसू नाँखती हुई पांडवोंके पास आई और कण्ठ भरे शब्दोमे कहती हुई कि जितना आप लोगोका तिरस्कार नहीं हुआ है उससे भी कहीं अधिक तिरस्कार चोटी खींचकर महलसे

बाहर निकालनेके कारण मेरा हुआ है। हा, जिसके सामने मैं मुंह तक नहीं उघाड़ती थी उसने आज मेरा सिर खोलकर चोटी खींची ! अब बतलाईये मेरा बचा ही क्या है ? उसने मेरी सारी इज्जत आबरू मिट्टी में मिला दी। मैं उस दुष्ट दुःशासनके आगे क्या कर सकती थी। उस दुष्टने थोड़ासा भी भय आपका नहीं किया। हा भीम, मुझे यह निश्चय है कि इस अपमानका बदला तुम्हारे सिवा और कौन चुका सकता है, द्रोपदीके इस प्रकार तिरस्कार भरे वचनोंको सुनकर क्रोधमें आ भीमने कहा कि महाराज युधिष्ठिर मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अभी शत्रु समूहको जड़ से नष्ट किए देता हूं। यह बात सुनकर पार्थ भी गरज कर उठ खड़ा हुआ। सो ठीक ही है स्त्रियोंका पराभव नहीं सहन होता है। यह देख युधिष्ठिरने कहा कि ऐसा करना हमें उचित नहीं है। जिसप्रकार प्रबल वायु चलने पर समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता है इसी प्रकार उत्तम पुरुष वे चाहे किसी भी अवस्थामें क्यों न हों मर्यादा नहीं छोड़ते। इस प्रकार युधिष्ठिरके शांत वचनोंसे वे इस समय शान्त हो गये। युधिष्ठिरने समझाया कि भाइयों, अभी कुछ धैर्य रक्खो, समय आयेगा और उस समय हम शत्रुओंको बातकी बातमें नष्ट कर देगे। इस समय यह मेरी परीक्षा का मौका है। चाहे जो कुछ भी हो मैं अपने वचनों की रक्षा करूंगा। मेरे प्यारे वीर भाइयों ! मेरी आज्ञा है कि हम सब जने यहां से शीघ्र चल दे और बनमें डेरा करें। अब हमें बन ही अपना घर बनाना पड़ेगा।

अपने पूज्य बड़े भाई युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनकर वे सब भाई गर्व छोड़कर बन चलनेके लिये उठ खड़े हुये। माता कुन्तीको रोती बिलखती हुई विदुरके घर छोड़ दिया। अपमानसे दुःखित द्रोपदीको भी उनका वहीं छोड़नेका विचार था किन्तु वह वहां नहीं ठहरी इसलिये उसे साथ लेना पड़ा, मान रहित धर्मात्मा पांडव मनही मन भगवानका स्मरण करते हुये एवं संसारकी अवस्थाका विचार करते हुये द्रोपदीकी गतिके अनुसार धीरे-धीरे चलते हुये, वे कभी वन उपवन, कभी पहाड़ोंकी चोटी पर निर्भय रहने लगे। वे रास्तेमे नदी का जल पीते हुये, वृक्षोंके फलोंको खाते हुये और वृक्षोंकी छालको पहिनते हुये, समयको निकालते हुये सिंहकी तरह विहार करने लगे।

इस प्रकार मार्गके दुःखोंको झेलते हुये भांति–भांतिके वृक्षोंसे सुशोभित कालिञ्जर नामके बनमें गये। वहां उन्होंने सघन छाया वाला एक बटका वृक्ष देखा और उसकी सुशीतल छायाके नीचे भूख प्याससे थके हुये बैठ गये। ग्रन्थकार कहते है कि देखो द्यूतके ही कारणसे पांडवोंको बन–बन भटकना पड़ रहा है और नाना प्रकारके दुःख झेलने पड़ रहे हैं। वास्तवमे जूआ नरक ले जानेका सीधा रास्ता है, धर्मका ध्वंसक है, पापोंका बाप है। आपत्तियोंका घर है, हिताहितकी बुद्धिको नष्ट करने वाला है, झूठ और व्यभिचारका रास्ता दिखाने वाला है। चोरी करना सिखाता है, मांस मदिराकी तरफ रुचि करता है पर स्त्रीकी चाह पैदा कर देता है यानि यह जूआ ही सब पापोंका सरदार है इसलिये इसका जीभपर नाम भी नहीं लाना चाहिये।

॥ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

अथ अठारहवां अध्याय।

उन वासुपूज्य स्वामीको मेरा नमस्कार हो, जो स्वामी वसुपूज्यके पुत्र है, जिनके चरणकमलों की इन्द्र नरेन्द्र आदि सभी पूजा करते हैं, भक्तिसे नमस्कार करते है, जो स्वामी राग द्वेष आदि दोषोसे रहित हैं तथा जिन्होने मोहरूपी गाढ़ अन्धकारको सूर्यके समान नष्ट कर दिया एवं जिनके मुखारविन्दसे सब जीवोंके हितकारी वचन निकलते है। ऐसे वे प्रभु मुझे संसार-समुद्रसे पार करे।

इसके पश्चात् वे पॉडव जहाँ ठहरे थे वहीं एक दिगम्बर मुनियों का संघ आया। वह मुनिसंघ ईर्या शुद्धिका धारक और परम तपस्वी था। उस संघको देखकर पांडवोंके हृदयमे बड़ा भारी हर्ष हुआ और वे उसी समय मुनियोंके दर्शन और बन्दना करनेके लिये गये और वहां पहुंच कर उनको नमस्कार कर आगे बैठ गये। इसके बाद युधिष्ठिर अपने मनमें विचार करने लगा कि मैं अब क्या करूं, बनमे हूं। मेरा ही जब भोजन बन–फल पर निर्भर है तब मैं इन मुनिराजोंको आहारदान कैसे दे सकता हूं? धिक्कार हैं इस धनहीन जीवनको। संसारमे दरिद्री और मुर्दोकी एक गणना है। अतः मेरा मरना ही अच्छा है।

युधिष्ठिरके मनमें ऐसे विचार उथल-पुथल हो रहे थे कि तबतक संघके नायक महामुनिने कहा कि युधिष्ठिर ! जब कि तुम भले प्रकार संसारकी परिस्थितिसे अभिज्ञ हो तब तुम्हें इस सम्बन्धमें चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। हे विनयके आगार, वात्सल्य-गुणके भण्डार भव्य ! हमारा और तुम्हारा इस समय जो समागम हुआ है वह भी धर्मका ही माहात्म्य समझो, इसे तुम साधारण मत समझो। ऐसा समागम हर किसी को नहीं मिलता है। दूसरी बात यह है कि तुम अशुभकर्मके संयोगसे आगे और भी कठिन दुःख उठाओगे परन्तु इससे चलित न हो धैर्य पूर्वक सहन करना क्योंकि सज्जन पुरुषोंका यही कर्तव्य है कि उनके ऊपर कितनी ही आपत्ति क्यों न आवे उससे विचलित कभी नहीं होते।

इसके पश्चात् मुनि-संघ तो जहां कि शार्दूल सिंह हस्ती आदि बहुतसे भयावह जीवोंका निवास था ऐसे सद्गिरि नामक पहाड़के ऊपर चला गया और न्याय-नीतिके ज्ञाता युधिष्ठिर आदि पांडव धर्मका आश्रय लेकर बहुत दिनों तक उसी वनमें रहे।

एक समय अर्जुन हाथमें गांडीव धनुष लेकर वन-क्रीड़ा करनेके लिये वहांसे निकला। निर्भय होकर रास्तेमें चला जा रहा था, उसे एक मनोहर नाम का एक पहाड़ दिखाई दिया जो कि बहुत ही अगम्य था। अर्जुन बातकी बातमें ऊपर चढ़ गया और जोरकी गर्जन करता हुआ बोला कि यहां कोई देव विद्याधर या मनुष्य है ? यदि है तो मेरे सामने उपस्थित हो और मुझे ऐसा कोई उपाय बतलावे जिससे मेरे अभिलषित कार्यकी सिद्धि हो। यह सुन ऊपरसे आकाशवाणी हुई कि अर्जुन, मेरी बात सुनो।

इसी भरत-क्षेत्रमें वैताढ्य नामका सुन्दर पर्वत है, उसकी उत्तर-श्रेणी और दक्षिण श्रेणी नामकी दो श्रेणियां हैं। वहां तुम जाओ, वहां तुम्हारे सौ शिष्य ऐसे होंगे जो तुम्हारे मनोरथको पूर्ण करेंगे किन्तु वहाँ पांच वर्ष तक रहना पड़ेगा, इसके बाद तुम्हारे बन्धु-बान्धवोंसे नियमसे मेल-मिलाप होगा। ऐसी आकाशवाणीको सुन वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और वहीं बैठ गया। इतनेमें एक विकरालमूर्ति कृष्णकाय भील वहां आया। उसके हाथमें प्रचण्ड धनुष-बाण था, नेत्र चढ़े हुये थे। उसे देखकर अर्जुनने कहा कि यह धनुष-बाण तो मेरे योग्य

है इसलिये मुझे दे दे, व्यर्थ ही तू यह बोझा क्यों लिये फिरता है? अर्जुनकी बात सुनकर भीलको बहुत क्रोध आया और वह उसके साथ लड़ने को तैयार हो गया। उसने क्रोधित हो तुरन्त ही धनुष टंकार किया जिससे बनके पशु-पक्षी डरने लगे।

अर्जुन और भीलका आपसमें युद्ध छिड़ गया वे आपसमे एक दूसरे पर तीक्ष्ण बाणो द्वारा प्रहार करने लगे। दोनों तरफसे इतने बाण छोड़े गये कि उनका एक मण्डपसा बन गया, अर्जुनने जितने भी बाण छोड़े वे सब बली भील ने निष्फल कर दिये। उसको धनुष-बाणसे अजेय समझ अर्जुन उसके साथ मल्लयुद्ध करनेके लिये उसकी ओर झपटा। बनचरने भी लड़नेको अपनी भुजा और ताल ठोंकी और आ-आ कहकर एक दूसरेसे भिड़ पड़े, दोनोंकी खूब गुत्थम गुत्था होने लगी। इस युद्धमें भी अर्जुनने भीलराजको जब अजेय समझा तब उसके मनमे चिन्ता हुई किन्तु हिम्मत नहीं छोड़ी। इतनेमे उसका दाव लग गया, उसने झटसे भीलके दोनो पांव पकड़कर उसे चारों तरफ खूब घुमाया जिससे वह अधमरेके समान हो गया। अर्जुन उसे पृथ्वीपर पछाड़ना ही चाहता था कि इतनेमे वह बनचर आभूषण आदिसे भूषित हो दिव्य रूपसे प्रगट दिखाई पड़ा। उसने पार्थको पृथ्वी तक मस्तक झुकाकर विनय पूर्वक नमस्कार किया और कहा कि हे नराधीश अर्जुन, मै तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूं तुम जो मांगना चाहो मांगो। मै इस समय तुम्हे सब कुछ देनेको तैयार हूं। यह सुन पार्थने कहा कि मै तुमसे यही चाहता हूं कि तुम मेरे सारथी बनकर रहो। उत्तरमें उस विद्याधरने कहा कि अच्छा जो तुम कहते हो वह मुझे स्वीकार है। उसके इस प्रकार बचनोको सुनकर अर्जुन को भारी प्रसन्नता हुई। उसने प्रेमपूर्वक विद्याधरसे पूछा कि भाई तुम कौन हो? कहांसे आये हो, युद्ध तुमने किस प्रयोजनसे किया? उत्तरमे विद्याधरने कहा कि आप ध्यानसे सुनेगे।

भरतक्षेत्रमे विजयार्द्ध नामका एक सुन्दर पहाड़ है। उसकी दक्षिण श्रेणी मे एक रथनूपुर नामका नगर है, जो विशाल कोट आदिसे अत्यन्त शोभायमान है। वहांका राजा विद्युत्प्रभ था, जो नमिके वंशका था। वह राजा गुणोंका धाम विद्याधरोका अधिपति था। उसके इन्द्र नामका एक पुत्र था, जो बहुत

शक्तिशाली था। उसके विद्युन्माली नामका एक पुत्र था, वह भी शत्रुओंके नाश करनेमें पूर्ण समर्थ था। एक समय कारण पाकर विद्युत्प्रभ संसारके भोगों से विरक्त हो गया और उसने उसी समय ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रको राज-पाट दे तथा विद्युन्मालीको युवराजका पद दे जिनदीक्षा धारण कर ली।

इसके पश्चात् युवराज विद्युन्मालीने प्रजा पर बहुत ही अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। वह नगरके लोगोंकी स्त्रियोंका अपहरण करने लगा, किसी का धन, आभूषण और किसीका वस्त्र छीन लेता एवं नाना प्रकारसे पुरवासियों को पीड़ा देने लगा। फल यह हुआ कि सारे नगरमें उपद्रव ही दीखने लगा। यह कांड देख इन्द्रने छोटे भाईको एकान्तमें बुलाकर बहुत-कुछ समझाया-बुझाया परन्तु उसका असर उस पर कुछ भी नहीं पड़ा सो ठीक ही है, जिस जीवका भवितव्य ही अच्छा नहीं है उसको योग्य शिक्षा भी रुचिकर नहीं होती। वह तो समझनेकी जगह उल्टा इन्द्रसे बैर रखने लगा। एक दिन तो तीव्र क्रोधके आवेशमें आ उस नगरीको ही छोड़कर वहांसे चला गया। बाहर रहकर लोगों को लूटने खसोटने लगा। बादमें वह विद्युन्माली खरदूषणके वंशके लोगोंके साथ स्वर्णपुरमें चला गया और वहीं रहने लगा।

वह विद्याधर अर्जुनसे कह रहा है कि राजन्, मैं उसी इन्द्रके एक सेवकका पुत्र हूं। उसका नाम विशालाक्ष और मेरा नाम चन्द्रशेखर है। मेरे पिताका स्वामी शत्रुदलके भयसे सदा ही चिंतित रहता था। मै उनकी यह अवस्था नहीं देख सका। इसीलिए मैंने किसी एक निमित्तज्ञसे पूछा कि विद्वन्, इन्द्र के शत्रु समूहका विनाश किसके द्वारा और कब होगा? निमित्तज्ञानीने कहा कि जो मनोहर नामके पहाड़ पर तुझे युद्धमें जीतेगा वही इसके शत्रुओंका विनाशक होगा। बस मै उसके वचन पर विश्वास कर गुप्त वेशमें इस गिरि पर रहता हूं। आज पुण्योदय से आपका दर्शन हुआ अतः अब आपसे प्रार्थना है कि मेरे साथ चलिये और वहां पहुंच कर अपने कर्तव्य योग्य कार्य करिये क्योंकि आप समर्थ योद्धा हैं।

पश्चात् वे दोनों विमानमें चढ़कर वहांसे चल दिये और थोड़ी देर में विजयार्द्ध महागिरि पर पहुंच गये। इन्द्रने पार्थके आनेके समाचार सुने तो बड़े स्नेह

के साथ उससे मिलनेके लिये सन्मुख आया। दोनों आपसमें बड़े प्रेमपूर्वक मिले। इधर इन्द्रके शत्रुओंको यह खबर लगी कि अर्जुन आया है, तो वे उसी समय विमानों पर चढ़कर वहां आये और उन्होंने वहां आकर सब दिशाओंको घेर लिया। उधर तबतक अर्जुन इन्द्रके साथ विमानमें बैठकर शत्रुओंके सन्मुख आया और उसने रणकी घोषणा करदी। उस घोषणाको सुनकर शत्रुदलके योद्धा अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिए तैयार हो गये। दोनों तरफसे युद्ध छिड़ गया, युद्ध महा भयानक था, जिससे अर्जुनको यह मालूम पड़ गया कि शत्रुदल साधारण शस्त्रोंके द्वारा नहीं जीता जा सकता है अतः उसने दिव्यास्त्रों का प्रहार करना शुरू किया। उनमेंसे बहुतसे शत्रुओंको तो उसने नागपाशमें बांध लिया, बहुतोंको अग्निसे जलाकर भस्म कर दिया, कई एकको अर्धचन्द्र बाणके द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया इस प्रकार इन्द्रको शत्रु रहित कर दिया तब जीत के नगाड़ोंकी आवाज सहित इन्द्रके साथ रथनूपुर आ गया। रथनूपुरमे घुसते ही सौभाग्यवती स्त्रियां मंगल गान करती हुई। इस प्रकार अर्जुन की जय कीर्ति चारों तरफ फैल गई। गायक लोग पांडवों का यशोगान करते हुये। पश्चात् विद्याधरों ने बड़ी भक्ति भावसे अर्जुनकी पूजा प्रशंसा सत्कार किया।

इसके बाद अर्जुन बहुतसे विद्याधरोंके साथ विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंको देखनेके लिये गया और उनको देख दाखकर वह वापिस रथनूपुर आगया, इस प्रकार विद्याधरों के आग्रहसे अर्जुनने वहां पांच वर्ष बिताये। पश्चात् वह वहां से धनुष विद्या सीखनेवाले चित्रांगद आदि अपने सौ मित्रों सहित जहां उसके पूज्य भाई युधिष्ठिर वगैरह निवास कर रहे थे वहां आया। उन्हें देखकर वह विमानसे उतरा और उतर कर उन्हे भक्ति-भावसे यथायोग्य नमस्कार किया। वे लोग भी जब से अर्जुन चला गया था तभीसे महादुःखी हुए शोक-सागरमें पड़े थे। उन्हे उसके समागमसे भारी हर्ष हुआ। सो ठीक ही है कौन पुरुष संसार मे ऐसा है कि जिसको अपने प्रिय बन्धुके समागमसे सुख न हो ? इसके बाद वह पुण्यात्मा पार्थ द्रोपदीसे मिला जिससे उसे बहुत शान्ति प्राप्त हुई।

उस समय धनुर्विद्या-विशारद चित्रांगद आदि शिष्य पार्थकी सेवा में सदा ही खड़े रहते थे तथा महामना युधिष्ठिर की आज्ञाको शिरोधार्य करते थे।

कुछ दिनों बाद यह समाचार दुर्योधनको मालूम हुआ कि पांडव बनमें आ गये हैं और उनकी सहायतामें विद्याधर है। उसको ये समाचार सुनकर बहुत गुस्सा आया और वह बहुत–सी सेनाको लेकर उनका विनाश करनेके लिये घर से निकला।

इसी समय ऋषितुल्य नारद इन सब समाचारोंको देनेके लिये चित्रांगदके पास आये और उससे बोले कि चित्रांगद ! तुम लोग इस भयानक जंगलमे किस लिये रहते हो ? गंधर्व आदिको भी उन्होंने सम्बोधित करके कहा कि भाई तुम भी बताओ कि तुम लोग इन पांडवोंकी सेवामें इसप्रकार क्यों संलग्न हो रहे हो ? उत्तरमे चित्रांगदने कहा कि स्वामिन्, पार्थ हमारा गुरु है। इस महान बलीने ही शत्रु–समूहको निवारण करके हमारे स्वामी इन्द्रको राजगद्दी दिलाई इसलिये ये हमारे मालिक है और हम इनके सदाके लिये सेवक हैं। सो ठीक ही है, उपकारी के प्रति कृतज्ञता दिखलाना यह बुद्धिमानों का काम ही है। उनकी यह बात सुनकर नारदजीने फिर कहा कि देखो भाई, यहां दुर्जन दुर्योधन अपनी सेना सहित पांडवोंके साथ युद्ध करनेके लिए आ रहा है इसलिये तुम्हारा वास्तविक शिष्यपना तभी समझा जायेगा जब कि तुम लोग प्राणपनसे उस दुष्ट दुर्योधनको उसके साथियों सहित मार भगाओगे। वे दुष्ट कलह प्रिय कौरव अपने पूज्य पुरुष भीष्म पितामह, चाचा विदुर और परम-पूज्य द्रोणाचार्य आदि किसीकी भी बात नहीं मानते है। वे लोग इनको युद्ध न करनेके लिये पुनः पुनः वारण करते हैं किन्तु वे किसीकी भी बात पर कान नहीं देते है और अपनी मनमानी करते हुये युद्ध करनेके लिये यहां जल्दी ही आ रहे है इसलिये भक्तिवत्सल पार्थ के शिष्यों, तुम भी युद्ध करनेके लिये जल्दी तैयार हो जाओ।

ब्रह्मर्षि नारदके वचन सुनकर चित्रांगद क्रोधके मारे आग बबूला हो गया और वह उसी समय शत्रु–समूहरूपी जंगलको जलानेके लिए युद्ध की तैयारी करता हुआ। इतनेसे दुर्योधन चतुरंग सेना सहित युद्ध करनेके लिये वहां आ गया, साथमे उसके सब भाई थे, जो जी जानसे युद्ध करनेको प्रस्तुत थे।

दुर्योधनकी सेनाको देखकर चित्रांगद क्रोधसे संतप्त हो उठा और वह क्रोधित हो गन्धर्व सहित शत्रु सैन्य पर टूट पड़ा जिससे दुर्योधनकी सेनामें भारी

खलबली मच गई और उसने समूचे सैन्य-समुद्रको इस प्रकार सुखा दिया कि जिस प्रकार अगस्त्य मुनिने समुद्रको सुखा दिया था।

इस प्रकार अपनी सेनाको नाश होती देखकर शल्य, विशल्य और दुःशासन आदि बलशाली योद्धा युद्ध करने के लिये उठे और उन्होंने खूब ही बाणोंकी वर्षा की किन्तु वीर चित्रांगद उनके छोड़े हुये बाणोंको बड़ी कुशलता के साथ छिन्न भिन्न करता जाता था। दोनों तरफसे बाणोंकी अपार वर्षा हुई जिससे किसीके तो हाथ टूट गये, कोई पंगु हो गया, किसीको मूर्छा आ गई और कई प्राणोंसे हाथ धो बैठे। इस भयानक संग्राममे बहुतसे योद्धा तो बाणोसे, कोई तीक्ष्ण गदाओंसे, कोई भालाओंसे, कोई तीक्ष्ण तलवारो से एक दूसरे के साथ लड़ते थे। एक दूसरे को अनिष्ट पहुँचाने मे किसी तरह की किसी तरफ से कमी नहीं थी।

इस समय गन्धर्वने देखा कि कौरवोंके तीक्ष्ण बाणोसे मेरी सेना बेधी जा रही है तब उसने गुस्से मे मोहन बाण छोड़ा, जिसके छोड़ते ही सब कौरव मूर्छित हो गये सिर्फ दुर्योधन अच्छी अवस्था में बाकी रहा। अपनी सेनाको इस तरह मूर्छित देखकर दुर्योधन बहुत ही चिंतित हुआ और वह मान-मर्यादा रहित इधर-उधर घूमने लगा। यह देख चित्रांगद द्वारा उसको बड़े जोरकी एक ललकार बताते ही उसे भी क्रोध आ गया और उन दोनोका परस्परमे बाणों द्वारा भीषण युद्ध होने लगा, जिसे देखकर ऊपरसे देवगण उन दोनोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार चित्रांगदको युद्धमे धीरता और दृढ़तासे डटा हुआ देखकर अर्जुन को बहुत प्रसन्नता हुई और उसकी खूब ही प्रशंसा की। सो ठीक ही है योग्य गुरुओ को शिष्यकी सफलता पर प्रसन्नता होती ही है। उस समय अर्जुनने और शिष्योंको युद्धके लिये आदेश किया। लक्ष्य-बेधी गंधर्वको इस समय अच्छा मौका मिल गया। उसने तुरन्त ही शीघ्रगामी बाणो के द्वारा बातकी बातमे दुर्योधनकी ध्वजाको छेद दिया और बाणोंकी वर्षा जारी रक्खी, जिससे थोड़ी ही देरमे उसके रथके घोड़ो को बेधकर रथको भी बेकार बना दिया। इसके बाद वह गन्धर्व दुर्योधन से बोला रे नीच! अब तू भाग कर कहां जायेगा, रे दुष्ट तूने अपनी

दुष्टतासे सारे संसारको दुष्टरूप बना दिया अब तुझे देखता हूं कि तुझमें कितना पराक्रम है ? दुष्ट, तूने बहुतसे आदमियोंको व्यर्थ ही बे अपराध वध किया अब तुझे पापका मजा मिल जाता है चिन्ता न कर, उसी पापसे तू निःशस्त्र हुआ दीन हीनकी तरह खड़ा हुआ है। इस प्रकार दुर्योधनको बहुत शर्मिन्दा करके उस ने नागपाश में उसे बांध लिया। राजाकी यह दशा देख वहां जितने भी योद्धा थे सब डरके मारे भाग गये।

इस प्रकार दुर्योधनको बांध लेनेसे गन्धर्वकी कीर्ति सारे संसारमें फैल गई। सब लोग उसकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करने लगे सो ठीक ही है न्यायकी सदा विजय होती है। दुर्योधनके पकड़े जानेपर उसकी तरफसे जितनेभी योद्धा, सवार महावत, हाथियों पर चढ़े हुये कौरव थे सब शोक सागर में डूब गये। उधर दुर्योधनकी स्त्री भानुमतिको ज्यों ही पतिके पकड़े जानेके समाचार मालुम हुये तो वह फूट फूट कर रोने लगी। वह चित्रांगद आदिके पास रोती हुई गई और उनसे बोली कि आप लोगों ने मेरे पतिको बांध लिया है उससे आपको क्या लाभ होगा ? आप मेरे स्वामीको छोड़ दीजिये नहीं तो आपकी संसारमें अप-कीर्ति फैल जायेगी।

भानुमति का इस प्रकार करुण रुदन सुनकर भीष्म पितामहने कहा कि क्यों इतना रुदन करती है धैर्य धारण कर यदि तुझे अपने पतिकी रक्षा करनी है तो मैं जो कुछ कहता हूं उसके अनुसार काम कर तब तो तेरा पति बन्धन से छूट जायेगा। तू सब लोगोंके पास न जाकर युधिष्ठिरकी शरणमे जा और वहां अपना दुःख रो, यद्यपि तेरे पतिने उनके साथमे भारी अन्याय किये है परन्तु फिर भी वे धर्मात्मा हैं, दयालु हैं, परोपकारी और सज्जन है इसलिये अपराधी कौरवोंको वे अवश्य ही क्षमा कर देवेगे क्योकि सज्जन पुरुषोंका ऐसा स्वभावही होता है कि वे अपकारी के प्रति भी उपकार ही करते हैं। मुझे उनका स्वभाव देखकर पूर्ण आशा है और विश्वास है कि दुर्योधनको अवश्य ही छोड़ देवेगे।

भीष्म पितामहकी बात सुनकर भानुमती युधिष्ठिरके पास गई। वे महाराज उस समय अपने भाई-बन्धुओं के सहित विराजे थे। वहां पहुंचकर उसने युधि-ष्ठिरसे करुण-प्रार्थना की कि हे दयासागर ! मेरे भर्तारकी मुझे भीख दीजिये और उनके सब अवगुणोंको एक दम भूल जाइये। आप विवेकी है, परोपकारी

है जब तक मैं जीती रहूंगी आपके गुणोंका बराबर स्मरण रक्खूंगी।

इतनेमे गन्धर्व–विद्याधर दुर्योधनको बांधकर और उसे रथमें अपनी नगरी इन्द्रपुरीमें ले गया। यह समाचार सुन भीमने हंसकर कहा कि अच्छा ही हुआ जो दुर्योधन पकड़ा गया। इस विषयमे शोक करनेकी कौनसी बात है ? जिसका वध मुझे या तुम्हे करना था उसका वध दूसरोंके ही द्वारा हो गया यह तो अच्छी ही बात हुई। इसप्रकार हंसकर कहते हुये भीमको युधिष्ठिरने वारण किया और कहा कि प्रिय भाई, ऐसा शब्द अपने मुंहसे निकालना उचित नहीं है क्योंकि जो सज्जन पुरुष होते हैं वे हर्ष और विषाद इन दोनों ही अवस्थामे थोड़ा भी विकार युक्त नहीं होते है। इसके बाद धर्मात्मा युधिष्ठिरने पार्थसे कहा कि भाई, इस समय तुम दुर्योधनको छोड़ देनेका प्रयत्न करो, जिससे संसारमे यह न कहने पावे कि पांडवोने अपने कुटुम्बके प्रति ऐसी निष्ठुरताका व्यवहार किया। तुम जल्दी जाओ और वह जबतक मर न जाय उसके पहिले ही उसे बन्धन–मुक्त कर दो। पूज्य भाई की आज्ञा प्राप्त कर पार्थ दौड़ा हुआ गन्धर्व के पास गया और उसने कहा कि तुम दुर्योधनको इसी समय और यहीं छोड़ दो अर्जुनके यह वचन सुनकर गन्धर्वने प्रत्युत्तरमें कहा कि हम शक्तिमान् योद्धा है, हम ऐसे हरगिज भी नहीं छोड़ेंगे। यदि तुममे ताकत हो तो अपनी धनुर्विद्याके बलसे इसे छुड़ा लो।

यह देख अर्जुनका ही एक शिष्य उससे विपरीत भाव हो रथमें बैठकर उसकी तरफ आया। उसको आता हुआ देखकर अर्जुनने शिष्यके साथ खूब युद्ध किया। दोनों तरफसे इतने बाणोंकी वर्षा हुई जिससे आकाश-मण्डल व्याप्त हो गया। उस विद्याधरने 'मै आपके धनुर्वेदको देखता हूं' कहकर अपने बाणोंसे अर्जुनको ढक दिया। इस समरमे चित्रांगदने अर्जुनके ऊपर जो भी तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाण चलाये वे सब पार्थने विफल कर दिये यह देख वे दोनो ही वीर दिव्य हथियारों द्वारा भीषण युद्ध करने लगे। चित्रांगदने दावानल बाण छोड़ा तो उसको अर्जुनने जलद बाणसे वारण कर दिया, पीछे चित्रांगदने वायुबाणके द्वारा अर्जुनके जलद बाणको छेद दिया तो फिर धनंजयने बाणव बाणसे उसके उस बाण को छेद दिया। इधरसे नाग बाण छोड़ा तो पार्थने गरुड़ बाणसे उसे हटा दिया। मतलब यह है कि अर्जुनने अपनी धनुर्विद्याकी कुशलतासे चित्रांगद

के छोड़े हुये सभी बाण निवारण कर दिये तो विजय लक्ष्मी स्वयं ही अर्जुनके हाथ आ गई और सब उपस्थित लोग उसको साधुवाद देने लगे। यह देख शिष्योंने पार्थकी बड़ी भक्ति भावसे पूजा-स्तुति की। पश्चात् पार्थने मिष्ट वचनों द्वारा दुर्योधनको विश्वास दिलाया और उसी समय बाणोंकी सीढ़ी बना कर दुर्योधनको पहाड़की चोटीसे नीचे उतारा और उसे युधिष्ठिरके पास ले आया वहां लाकर उसको बन्धन रहित कर दिया। इस महान उदारताके उपलक्षमें दुर्योधनने युधिष्ठिरकी बहुत ही प्रशंसा की और उन्हें नमस्कार किया। युधिष्ठिरने भी उसकी कुशलता वगैरहके समाचार पूछे उत्तरमें दुर्योधनने कहा कि नाथ, मुझे बन्धन-बद्ध होनेका उतना दुःख नहीं था जितना कि अब बन्धन से मुक्त होने का हुआ है। क्योंकि इससे मुझे बहुत ही नीचा देखना पड़ा है। महाराज, संसारमे मान भंगके समान और कोई दुःख नहीं है। उसकी ऐसी बात सुनकर युधिष्ठिरने उसे वापिस हस्तिनापुर भेज दिया। वह दुःखी होता हुआ अपने नगरमे तो पहुंच गया किन्तु उसका मन चिन्तामे तन्मय था। वह विचार करने लगा कि हाय मेरा यह मनुष्य जन्म, यह सुन्दर देह सब क्षण-भरमें नष्ट हो गया। वहां तो मै कौरवोंका अधीश्वर कहलाता था किन्तु अब वो सब बातें इस रणमें धूलमें मिल गई। मेरा सब महत्त्व मिट्टीमे मिल गया। मुझे इतना दुःख रणमे बंधनेका नहीं है जितना कि अर्जुनके छुड़ानेका है। मैं नहीं कह सकता कि कौन वीर मुझे इस दुःखसे छुटकारा देगा। उसने पुकार कर इस बातको कहा कि क्या कोई ऐसा वीर पैदा नहीं हुआ है जो कि इन पांडवोंको मारकर मेरे कष्ट का निवारण करे? जो वीर इस कामको करेगा उसको मैं अपना आधा राज्य दे दूंगा।

यह बात सुनकर एक कनकध्वज राजा ने कहा कि महाराज, मैं इस काम को करनेके लिये तैयार हूं। मैं विश्वास दिलाता हूं कि आजसे सातवें दिन मै पांडवोंको कालके गालमे भेज दूंगा और यदि मै यह काम नहीं कर सका तो प्रतिज्ञा करता हूं कि अग्निके कुण्डमें जलकर भस्म हो जाऊंगा। यह प्रतिज्ञा कर वह दुष्ट—बुद्धि वहांसे बाहर चल दिया और बनमे जहां कि ऋषियोंका एक आश्रम था वहां पहुंचा। वहां जाकर वह होम मंत्र आदिकी विधि से कृत्या विद्याको सिद्ध करने लगा।

इस बात का अनुसन्धान जब नारदजीको लगा तो वे उसी समय पाडवोंके पास आये और उनसे कहने लगे कि देखो, तुमको मारने के लिये कनकध्वज राजा कृत्या–विद्याको सिद्ध कर रहा है, इसलिये तुम सावधान हो जाओ।

नारदकीयह बात सुनकर पवित्र बुद्धि धर्मात्मा युधिष्ठिर अपनी समस्त इच्छाओं को विषय भोगों हटाकर धर्म ध्यानमे तल्लीन हो गया। वे मेरूवत निश्चल खड़े हो नासाग्रदृष्टि कर आत्माका ध्यान मनन चिन्तन करने लगे तथा भाइयोंको भी कहा कि तुम भी धर्म ध्यानमें अपने मनको लगाओ। यह धर्म इस लोक और परलोकमे जीवोंको सुख देने वाला है। इस धर्मके प्रसादसे जितने भी अमंगल है वे सब नष्ट हो जाते हैं और दिन प्रतिदिन नये मंगल होते रहते हैं। धर्म के प्रभावसे ही दुःख सुखरूप परिणमन हो जाता है जिस प्रकार कि ग्रीष्मऋतुकी प्रखर किरणोंके लगनेसे वृक्ष फलता है। धर्म धारणसे ही इन्द्रका आसन कम्पायमान होता है यह बात यहां युधिष्ठिर अपने भाइयोंसे कह रहे थे कि इतने मे एक देवका आसन कम्पित हुआ और उसने अवधिज्ञानके बलसे यह जान लिया कि पांडवोंपर एक आकस्मिक आपत्ति आनेवाली है। यह जानकर वह देव तुरन्त ही वहां आया और उसने संकल्प किया कि पांडवोंकी इस कष्टसे अवश्य रक्षा करूंगा। इसके बाद वह देव प्रगट हो कहने लगा कि तुम लोग निश्चित हो क्यों मेरे स्थान पर ठहरे हो। क्या तुम मेरा बल नहीं जानते हो कि मरे सामने कोई भी योद्धा एक क्षण भी नहीं ठहर सकता है। इस प्रकार कहकर उस पवित्र आत्माने सती द्रोपदी का हरण कर लिया। उसके द्वारा द्रोपदीका हरण हुआ देखकर वे उस पर बहुत क्रोधित हुये और उसको पकड़नेके लिये पीछे लग गये। वह देव द्रोपदीको जहां जहां भी ले जाता वहां वहां उसके पीछे नकुल सहदेव दौड़े चले जाते। दौड़ते दौड़ते वे दोनों निर्जन बनमे पहुंच गये, वहां उन को बड़ी भारी प्यास लगी। अब वे जलकी खोजमे बनमें इधर उधर घूमने लगे इतनेमे ही उन्हे एक सुन्दर तालाब दिखाई पड़ा, जिसमे कि कमल खिले थे। जो कि देवने बना रखा था ज्यों ही उन्होने उस तालाबका पानी पिया कि वे मूर्छित हो गये। बहुत देर तक जब उन दोनों भाइयो को लौटा हुआ न देखा तो अर्जुन बहुत दुःखित होकर बोला कि हाय, मेरे दोनों भाई कहां गये अभी तक लौटकर नहीं आये, न जाने क्या बात हो गई ? मै जाकर अभी उनकी

खबर लाता हूं। ऐसा कहकर और बड़े भाईके चरणोंमें नमस्कार कर वह वहां से चल दिया और वन तालाब नदी नालोंको देखता हुआ वह उसी वनमें पहुंच गया और उस तालाबके पास अपने भाइयोंको निर्जीव-सा पड़ा हुआ देखा। यह देख उसे बड़ा भारी दुःख हुआ और उनके वियोगसे शोक सागरमें डूब गया और उसकी आंखोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी। वह भ्रातृ मोहसे इतना अन्धा हो गया कि उसको अपनी भी कुछ सुध-बुध नहीं रही। जब उसका हृदय जी भर रो लेनेसे कुछ शांत हुआ तो वह क्रोधमे आकर अपने धनुष गांडीवको उठा कर गर्जना करता हुआ बोला कि जिस दुष्टने मेरे इन भाइयोंको प्राण रहित किया है—वह दुष्ट मेरे सामने आवे मै भी तो उसको देखूं कि वह कैसा योद्धा है, मै उसे अभी यमपुरी भेज देता हूं।

अर्जुनकी यह गर्जना सुनकर धर्मबुद्धि-देव प्रच्छन्न होकर बोला कि वीर पार्थ, तुम्हारे दोनों भ्राता मैंने ही मारे है और तुमसे भी कहता हूं कि यदि तुममें भी ताकत हो तो तुम क्रोध छोड़कर मेरे कहे माफिक इस तालाब का पानी पी लो, तब मै समझूंगा कि हां तुम बलवान योद्धा हो। देवकी यह बात सुनकर अर्जुनने क्रोधित हो उस तालाबका पानी पी लिया और पीते ही उसे मूर्छा आ गई। जिस प्रकार विष भरे जलके पीने से आदमी गिर जाता है वैसे अर्जुन भी जमीन पर गिर पड़ा।

उधर बहुत समय बीत गया और अर्जुन भी वापिस नहीं पहुंचा तब युधिष्ठिरने खेद खिन्न हो भीमसे कहा कि भाई अर्जुनको आनेमें इतनी देर क्यों लगी? इसका सन्धान लगाना चाहिये। तुम जल्दी जाकर इसकी मुझे खबर दो। भीम भाई की आज्ञा प्राप्त कर अपने पैरोंसे पृथ्वीको कम्पाता हुआ खोजते खोजते वहीं पहुंच गया जहां कि वे बेसुध पड़े थे।

भीम उनकी मरी हुई जैसी अवस्था देखकर बहुत ही खेद खिन्न हुआ और वहां भारी विलाप करने लगा। उनकी ऐसी अवस्था देखकर उसका हृदय एकदम टूट गया और वह अपने दुर्दैवको दोष देने लगा कि रे दुष्ट, तूने ये हमारे साथ क्या अन्याय किया? आज मुझे मालूम पड़ रहा है कि ये तीनों भाई ही नहीं किन्तु सारा ही संसार नष्ट हो गया। अब तू ही बता कि बिना भाइयों के हम कहां रहें, कहां जांय, क्या करे क्या न करें कुछ भी समझमे नहीं आता इस

प्रकार वह विलाप करता हुआ मूर्छासे आविर्भूत हो पृथ्वी पर गिर पड़ा, जिस प्रकार कि कोई कटा हुआ वृक्ष जमीन पर गिर पड़ता है। इसके बाद शीतल वायुके लगनेसे उसको कुछ संज्ञा हुई तो उठकर भोंचक्के की तरह सब दिशाओं को देखने लगा और बोला कि जिस दुष्टने मेरे इन भाइयोंको मारा है, मै उस को यदि देख पाता तो कभी जिन्दा नहीं छोड़ता। भीमके इस प्रकार गर्वयुक्त वचनोको सुनकर आकाश से वह देव बोला कि मै उसे ही शक्तिशाली समझूंगा जो निर्भय होकर इस तालाबका पानी पीवेगा।

देव प्राणी सुनते ही वह महाबली तालाबके पास गया और उसने निर्भय हो स्नान किया और उसका पानी पिया। इसके बाद ज्यों ही तालाबसे निकला उसकी भी वही दशा हो गई अर्थात् मूर्छित हो बेहोश हो गया। यह बात बिलकुल ठीक है कि विपत्तिके समय पर बुद्धिमानों की बुद्धि भी मलिन हो जाती है।

उधर जब बहुत समय बीत गया और भीम भी वापिस लौटकर नहीं आया तो युधिष्ठिर भारी चिन्ता मे मग्न होगये। उनका चेहरा फीका पड़ गया। वे उसी समय भाइयोंकी खोज करनेके लिये चल पड़े और उसी स्थान पर पहुच गये जहां कि उनके भाई मृतके समान पड़े हुये थे। उनको ऐसी अवस्थामे देखकर उन्हे एकदम मूर्छा आ गई। सो ठीक ही हुआ, उस समय मूर्छा भी बड़ा काम निकालती है इसके बाद जब वे सावधान हुये तब बहुत विलाप करने लगे और कहने लगे कि क्या मेरे भाई इस तालाबका पानी पीकर मूर्छित हो गिर पड़े है ? खेद है कि सड़ी गली वस्तुओं मे लग जाने वाला घुन आज इन वज्रोपम खम्भोमे कैसे लग गया ? हा, आज पांडव वंशका सर्वनाश होगया। आज दुर्योधन पांडवों के मर जानेकी खबर पाकर फूला न समायेगा वह समूचे ही राज्यका अधीश्वर बन जायेगा और मनमानी घर जानी करने लगेगा। उसके अन्यायोंको रोकने वाला अब इस पृथ्वी पर कोई नहीं रहा। उस दुष्ट दुर्योधनको विद्याधरोने बांध लिया था, किन्तु दयासे आर्द्रीभूत हो मैने उसे दैवके हाथसे छुड़ा दिया, किन्तु आज दैवने मेरे ही प्राण प्यारे भाइयोंको मृत्युका ग्रास बना दिया। रे दैव ! तुझे कुछ तो हमारे प्रति दया करनी थी यह अनीति और असद्-व्यवहार क्यो तूने हमारे साथ किया, हमने तेरा क्या बिगाड़ा था।

इस प्रकार देवके प्रति उपालम्भ सुनकर वह देव बोला कि धर्मराज ! तुम निश्चयसे समझो कि तुम्हारे भ्राता मैंने ही मारे हैं और यदि तुममें भी कुछ शक्ति हो तो इस तालाबका पानी पिओ, अन्यथा व्यर्थ के टर्रानेमें क्या पड़ा है। देवकी आश्चर्य भरी बातोंको सुनकर युधिष्ठिर निर्भय हो तालाब में घुस गया और उसका पानी पी लिया। पीने के थोड़ी देर बाद उसको भी अन्य भाइयों की तरह मूर्छाने आ घेरा और वह उसी समय धाराशायी हो गया। देखो कर्म की विचित्रताको कि वह बलिष्ठ योद्धाओंको भी किस प्रकार नाच नचाता है।

इधर कनकध्वजको मन्त्रादि साधने से सातवें दिन कृत्या विद्या सिद्ध हो गई और उसके पास आ आज्ञा मांगने लगी कि काम बताओ। कनकध्वजने कहा कि यदि तुझमें अतुल शक्ति है तो तू पांचों पांडवोंको मारकर हमारी अभिलाषा पूरी कर। उसके आदेशको पाकर वह कृत्या क्रोधयुक्त हो वहां झटपटसे जा पहुंची जहां कि पांचों पांडव मरे सरीखे पड़े थे। इसी समय वह देव शोकातुर हो भीलका रूप बनाकर वहाँ आया और वह उन्हें इधर उधर लौट पलौटकर देखने लगा जिससे कृत्याको यह निश्चय हो गया कि पांडव तो मर गये हैं। वह भीलको देखकर कहने लगी कि मुझे कनकध्वज राजाने पांडवों को मारने के लिये भेजा था, परन्तु मैं यहां देखती हूं कि ये तो स्वतः ही मरे हुये पड़े है। अब तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूं। उत्तरमें उस भीलने कहा कि वह दुष्ट अत्यन्त नीच है, इसलिये तुम उसी कनकध्वजके पास जाकर उसका काम तमाम करदो। भीलकी यह बात कृत्याको जंच गई और वह उसी समय उसको मारनेके लिये वापस लौट गई और कनकध्वजके शिर पर जाकर पड़ गई जिससे उसका मस्तक फट गया। जैसे कठोर वज्रके पड़नेसे पहाड़ चकनाचूर हो जाता है।

इसके बाद भीलके रूपमें उस देवने उन पांडवोंको अमृत नीरसे छींटा देकर उनकी मूर्च्छा दूर की और जब वे पूरे सावधान हो गये तब युधिष्ठिरने कहा कि हे भीलराज ! तुम अपनी बात कहो, तुम्हारे समान हमे उपकारी संसारमे कोई दूसरा नहीं दीखता है, तुमने हमारे प्रति बहुत भारी उपकार किया है। यह बात सुनकर भीलने कहा कि स्वामिन् ! मै सौधर्म इन्द्रका प्रतिपात्र एक देव हूँ। आपने अभी जो दृढ़तापूर्वक धर्मका आराधन किया था उसीके प्रभावसे अव-धिज्ञानके द्वारा आपके ऊपर आनेवाली भयानक आपत्तिको जानकर उसे दूर

करनेके लिए मैं यहां आया हूँ। सो ठीक ही है, धर्मका फल ही ऐसा है इसको मन वचन कायको वशमें कर एकाग्र मनसे पालन करता हो तो उसको किसी प्रकारकी आपत्ति आ ही नहीं सकती है।

पश्चात् उस देवने कहा कि स्वामिन्! मैंने यहाँ आकर उस दुष्ट कृत्या विद्या का वारण किया जो कि यहाँ आपके प्राण लेने को आई थी। मैंने आपको तो मूर्च्छित कर दिया जिससे उसे यह प्रतीत हुआ कि ये तो स्वतः ही मर गये और उसे यह सम्मति दी कि तुम दुष्ट नीच पापी कनकध्वजको ही नष्ट कर दो। उसने मेरी सम्मति मान ली और वापिस लौटकर उस पापीका काम तमाम किया। इस प्रकार सारा समाचार कहकर उस देवने द्रोपदीको अर्जुनके सुपुर्द कर दिया और उनके चरण कमलोंमे नमस्कार किया। पश्चात् वह देव अपने स्थानको चला गया।

इसके बाद वे पांडव वहांसे चलकर मेघदलपुरमे आये। वहांका राजा सिंह बहुत प्रतापी और शूरवीर था। उसके काञ्चनाभा नामकी रानी थी जो कि कंचन-सुवर्णके समान आभावाली थी। उसके कनकमेखला नामकी एक सुशीला गुणोंसे सम्पन्न कन्या थी। एक समय भीम यहां भोजनके निमित्त गया हुआ था। उसके रूप गुण और चातुर्यको देखकर राजा उसे अपनी कन्याको देने लगा, तब भीम ने कहा कि इस बातको तो हमारे बड़े भाई साहब जाने। पश्चात् राजाने उनकी आज्ञा प्राप्त कर कनकमेखला का शुभ विवाह भीमके साथ कर दिया।

इसके बाद पांडव बहुत दिनों तक तो वहीं रहे और उन्होंने कौशल देशको खूब अच्छी तरह देखा-भाला। पीछेसे वहांसे चल दिए और चलकर रामगिरि पहाड़ पर आये। वहां घूमघाम करके विराट नगरमे पहुंचे। वह नगर बहुत ही उत्तम था जो देखने वालोको इन्द्रपुरी सरीखा मालूम देता था। वहां पहुच कर उन्होने विचार किया कि हमारे बारह वर्ष तो वनचरोकी तरह व्यतीत हो गये अब एक वर्ष और है इसलिये इस वर्ष अपना भेष बदलकर गुप्तरूपसे यही रहना चाहिये। इस निश्चित् विचारके अनुसार युधिष्ठिरने कहा कि मै तो धर्म प्रोहित का रूप धारण करूंगा। भीमने कहा कि रसोई बनानेवाले रसोईयाका रूप मैं धारण करूंगा और अपना नाम सारबल्लभ रक्खूंगा। अर्जुन ने कहा कि मैं नाटकको नायिका बनूंगा। अंगिमा-कांचली और साड़ी पहने रहूंगा, नाम बृह-

त्रला रक्खूंगा। नकुलने कहा कि मैं घोड़ोंकी रक्षा करनेको तैयार रहूंगा। छोटे भाई सहदेवने कहा कि मै गौधनकी रक्षा करूंगा। पश्चात् द्रोपदीने कहा कि मैं माला गूंथनेवाली मालिन बन जाऊंगी।

इस प्रकार सबोंने अपना अपना भेष बदलना निश्चय कर तदनुसार भेष बदल लिया और उसी भेषके अनुसार कपड़ा-लत्ता आभूषण आदि पहिन लिये एवं अपना चाल ढाल भी तद्रूप ही बना लिया। वे इस भेषमें राजाके महलमें गये। राज महल सुन्दर रूपसे सजा हुआ था, नाना प्रकारके चित्र झाड़-फानूस आदि साधनों से सुशोभित था। वहांका पराक्रमी गुणज्ञ राजा विराट था। वे गुप्त भेषी पांडव वहीं पहुंच गये जहां कि राजा विराजा हुआ था। राजाने उठ कर उनका आदर सत्कार किया और उनकी इच्छानुसार उनको उनके योग्य अपने यहांके कामोंमें लगा लिया। वे भी अपनी बुद्धिमत्ता और कार्य कुशलता और परिश्रमसे अपने अपने कामोंको बड़ी मुस्तैदीके साथ करते थे जिससे राजा उनसे बहुत प्रसन्न रहता था। इसप्रकार वहाँ उन्होंने आनन्दके साथ बारह मास बिता दिये। इधर द्रोपदीने चतुरता से विराटकी रानी सुदर्शना को प्रसन्न रख कर अपना समय सुखसे बिता दिया। देखो कर्मोकी विचित्रता कि कहां तो पांडव और द्रोपदी अनेक सेवकों द्वारा सेवनीय थे और कहां आज वे ही दूसरों की चाकरी बजा रहे है। कर्म वैचित्र्यके लिये क्या कहा जाय, इस जीवको यह नाना प्रकारका रंग दिखलाता है।

चूलिका नामकी एक नगरी थी, उसका राजा चूलिक था। उसकी भार्याका नाम विकचा था। उसके नेत्र फूले हुये कमलके समान सुशोभित थे उसके कीचक आदि सौ पुत्र थे। वे सभी पुत्र गुणवान और रूप रंगमें सुन्दर थे और विराट राजाके साले थे। एक समयकी बात है कि कीचक अपने बहनोईके यहां आया और वह वहां आनन्दसे रहने लगा। वहां उसने रूप सौन्दर्यकी प्रतिमा इन्द्राणी सरीखी शोभावाली द्रोपदीको देखा। उसे देखते ही वह उस पर पूर्ण रूपसे आसक्त हो गया। उसकी उस समय खाने पीने सोने उठने बैठने आदि कार्यों परसे एकदम रुचि हट गई। उसको सब जगह द्रोपदी ही द्रोपदी दीखने लगी। द्रोपदी जहां जहां पैर रखती वह भी उसके पीछे पीछे ही चलता था, उस के मनमोहक आलापोको सुनना चाहता था, उसके रूपको देखना चाहता था।

मतलब यह है कि कीचकको उस समय सिवाय द्रोपदीके कोई नजर ही नहीं आता था। वह उससे मौका पाकर खुशामदके वचन कहता, हाव भाव दिखाता आदि क्रियायें करता। उसका यह हाल देखकर एक बार द्रोपदीने उसको बड़ी जोरकी लताड़ बताई और क्रोधके भरे शब्दोंमें यह कहा कि रे दुष्ट लम्पट कीचक! यह बात तेरे लिये योग्य नहीं। तू समझ और सोच और थोड़ा ज्ञानसे काम ले। यदि तेरी इस कुचेष्टाको मेरे मालिक सुन पायेंगे तो तू निश्चय समझ ले तुझे यमपुर भेज देंगे। उसकी यह बात सुनकर कीचकने मुस्कराकर कहा कि हे मालिन, मैं तुझ पर पूर्ण आसक्त हूं और तुझसे प्रेम करता हूं। इसलिये सुन्दरी तू मुझ पर प्रसन्न हो और मरते हुये मुझको जिला ले। द्रोपदी उसकी इस नीचताका कुछ भी उत्तर न देकर अपने घर गई। एक समयकी बात है कि उस दुष्टने एकान्त पाकर शून्य गृहमे द्रोपदी का हाथ पकड़ लिया और उससे बोला कि देवी! मै कामके तीव्र बाणोंसे मरा जा रहा हूं, मुझे तेरे सिवाय और कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा है इसलिये अब तू मुझे सुखी कर। यह अवस्था देख द्रोपदी बहुत चिंतित हुई परन्तु उसमें हिम्मत थी, इसलिये उसने हिम्मतसे उस दुष्टसे अपना हाथ छुड़ाकर रुदन करती हुई युधिष्ठिर के पास गई और वहां जाकर सारा किस्सा उनको कह दिया और कहा कि देव! मैं अपना शील बड़ी मुश्किलसे उस दुष्ट पापीसे बचाकर यहां आ गई हूं। द्रोपदी की यह बात सुन कर युधिष्ठिरकी मारे क्रोधके भौंहे चढ़ गई, नेत्र लाल हो गये। उन्होने कहा कि हा, जहांका राजा ऐसा दुराचारी नीच है वहांकी प्रजा क्यों न दुराचारी नीच बने। नीतिकारोंने ठीक ही कहा है :—

"राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापा समे समाः, राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः"।

जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है। राजा यदि धर्मिष्ठ नीतिज्ञ है तो उसकी प्रजा भी धर्मनिष्ठ न्याय नीतिके अनुसार चलने वाली होगी और राजा पापी है तो प्रजा भी निश्चयसे पापी है। इसमे थोड़ा भी सन्देह नहीं है। जैसा राजा वैसी प्रजा होती है। इसके बाद युधिष्ठिरने व्याकुलित द्रोपदीको धैर्य बँधाया और उसकी प्रशंसा की कि हे सुशीले; तुम बड़ी वीर नारी हो, जो तुम ने आज अपने पवित्र शीलकी रक्षा की। तुम अब थोड़ीसी भी चिन्ताको हृदयमें

स्थान नहीं दो तुम स्मरण करो कि इस पवित्र शीलके प्रतापसे ही सती सीता की देवोंने पूजाकी थी, सती मन्दोदरी और रयनमंजुषा आदिकी प्रसिद्धि भी इसी के प्रभावसे हुई। इस शीलके बराबर संसारमें स्त्रियोंके लिये और कोई दूसरी उत्तम चीज नहीं है इस गुणके होते हुये ही दूसरे गुणों की शोभा है। बिना इसके और गुणोंका होना कोई कीमत नहीं रखता है, शीलके बराबर संसारमें न कोई दूसरा गुण है, न हुआ और न होगा।

द्रोपदीकी यह दुःख भरी कहानी उस समय वहां खड़ा हुआ अर्जुन भी सुन रहा था। उसको सुनकर उससे फिर काबूमें न रहा गया, वह सिंहकी तरह गर्जता हुआ कीचकको नष्ट करनेके लिये उठ खड़ा हुआ किन्तु उसे युधिष्ठिरने यह कहकर वारण कर दिया कि वत्स, अभी तुम दश दिन किसीप्रकार भी युद्ध मत करो, पीछे तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करना। इसके बाद द्रोपदी रोती-रोती भीम के पास गई और सलज्ज खेद-खिन्न हो कहने लगी कि आप जैसे महा बलीके रहते हुये यह दुष्ट कीचक मेरी लज्जा उतारनेकी हिमाकत करे इससे बढ़कर मेरे लिये और क्या दुःख हो सकता है? द्रोपदी की यह बात सुनकर हाथीकी सुण्डादण्ड के समान बाहुबल वाले भीम ने कहा कि भाभी, कहो उस दुष्ट पापीने तुम्हें क्या दुःख दिया है? मै उस नीच का अभी अपमान कर यम-लोक भेज देता हूं। इसके लिये मुझे यदि बड़े भाई वारण भी करें तो भी मैं उसको जीता नहीं छोडूंगा। तुम जल्दी बताओ, उस पापीने तुम्हारे साथमे कौन कौनसी हरकते की है। मुझमे तुम्हारे अपमानको सहन करने की क्षमता नहीं है। यह सुनकर द्रोपदी ने कहा कि महाभाग! आप सिंह जैसे पराक्रमी योद्धाके रहते हुये फिर किस व्यक्तिमे क्षमता है कि जो मुझे कष्ट दे सके। किन्तु मुझे भारी दुःख इस बातका है कि मुझे अकेली पाकर इस नीच दुष्ट कीचकने जबर-दस्ती मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझसे नीच वासना प्रगट की। हे वीर, आप मेरे इस अपमानका बदला चुकाइये। उस नीच प्रकृतिके कर स्पर्श से मेरा शरीर अब तक भी थर-थर कांप रहा है। द्रोपदीके इस प्रकार वचन सुनते ही दावा-नलके समान क्रोधित हो भीम कीचक को मार डालनेके लिये तुरन्त तैयार हो गया। उसने द्रोपदीसे कहा कि सती, तुम एक काम करो वह यह कि आज तुम वहां जाकर उस दुष्टको ऐसा कहो कि तुम दूसरे दिन रातमे किसी सांकेतिक

स्थानमें आकर मिलो। वह स्थान एकान्तका हो इतना ध्यान रखना। प्रभात होते ही भीमके कहे अनुसार द्रोपदी उस दुष्ट कीचकके पास गई और उससे कपट कर यह कहती हुई कि कीचक, यदि तू मुझे चाहता है तो संकेतका स्थान बता, मैं आजकी रात्रिमें तेरे पास स्वतः ही आजाऊंगी। द्रोपदीकी यह बात सुन कर वह मनमे बहुत ही प्रसन्न हुआ और कहा कि हे कृशोदरि ! मै इसके लिये नाटचशालाका स्थान नियत करता हूं। तू आज संध्या समय नाटचशालामे आ जाना। वहां मै तेरी खूब इच्छा पूर्ति कर दूंगा।

उससे यह बात निश्चित कर वह द्रोपदी झट भीमके पास पहुंची और वहां उसने उसको सब बात कहदी। जब समय नजदीक आया तो भीमने अपने पैरों में नूपुर पहिने, कमरमें करधनी पहिनी, हाथोंमे कंकन, गलेमें गुलबन्द, कानोमे कुण्डल और बाहूमे भुजबन्द पहिने, नेत्रोमे अंजन आंजा, माथेमें बिन्दी लगाई और मस्तकमे चूड़ामणिकेसमान चमकसाला बोरला बांधा, मनोहर वस्त्र पहिने बालोंको बांधा और मुंहमे पानका बीड़ा चबाया। मतलब यह है कि एक सुंदरी सौभाग्यवती स्त्री सरीखा बनगया। वह सजधजके साथ कीचकके निर्दिष्ट स्थान में पहुंच गया। वह वहां पहुंचा ही था कि इतनेमें द्रोपदीकी रूप-राशि पर निछा-वर होनेवाला, कामके बाणोंसे जर्जरित कीचक वहां पहुंच गया। वह उस समय कामसे इतना अन्धा हो रहा था कि उसे यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि यह द्रोपदी है अथवा और कोई है। उसने उसे मोहान्धतासे द्रोपदी ही समझ लिया। इसी समझके अनुसार उसने ज्यों ही उसकी तरफ आलिंगन करनेको हाथ बढ़ाया कि चटसे उसका हाथ भीमने पकड़ लिया। हाथकी कठोरता से उसको अनुभव होने लगा कि यह तो द्रोपदी नहीं है, यह तो कोई धूर्ततासे भेष बदलकर यहां आया है। उसको उसी समय उस ज्योतिषीकी कही हुई बात भी याद आ गई कि तेरी मृत्यु बली भीमके हाथसे होगी। सो कहीं यह बात इस रूपमे सच्ची तो नहीं हो रही है ? उसने उस समय उस बलीसे अपना हाथ छुड़ानेका बहुत प्रत्यन किया, किन्तु वह हाथ छुड़ा नहीं सका फिर किसे क्षमता थी। वे अपने हाथ-पैरोंके प्रहारोंसे युद्ध करने लगे, उन दोनोमे भारी युद्ध हुआ। अन्तमे हुंकार शब्द करते हुए भीम ने कीचककी छातीमे वज्रके जैसा कठोर हाथका प्रहार किया, जिससे कि वह धड़ामसे जमीन पर कटे वृक्षके समान गिर पड़ा और भीम चटसे उस

की छाती पर चढ़ बैठा तथा ऊपरसे एक और लात लगाई जिससे उसका कण्ठ रुद्ध होगया। वह कहने लगा कि रे दुष्ट, नराधम पापी प्रत्यक्षमें देख, यह पर स्त्री लम्पटता का ही फल है। रे नीच अब तू बचकर कहां जायेगा—ऐसा कहकर भीम ने उसे एक जोरकी लात और लगाई जिससे उसका सारा काम खतम हो यम लोक चला गया।

इसके बाद राजा विराटको यह समाचार मालूम हुआ कि गन्धर्वोंने कीचक को मार डाला है। वह इस बातको सुनकर बड़ा भयभीत हुआ। यह समाचार कीचकके योद्धाओंको भी ज्ञात हुआ तो वे धूल धूसरित अंगको लेकर ही वे वहां नाट्यशाला में दौड़े गये जहां कि कीचक मरा हुआ पड़ा था। वहां पहुंच कर उन्हें यह बात मालूम हुई कि इसको गन्धर्वने ही मारा है, जिससे उनको बड़ी भारी लज्जा अपनी वीरता पर आई। उन्होंने परस्परमें यह सलाह की कि इस नट और द्रोपदी को भी इसीके साथ दग्ध कर देना चाहिए। यह काम तो अभी कर देना चाहिए, नहीं तो सबेरा होते ही बड़ी भारी हंसी होगी। वे लोग अपने निश्चयके अनुसार अपना काम करनेके लिए वहां पहुंचे जहां द्रोपदी बैठी हुई थी। उन्होंने बलात् द्रोपदी का हाथ पकड़ कर उसे बाहर निकाल दिया, जिससे द्रोपदी रोती चिल्लाती आंसू नाखती भीम के पास पहुंची।

द्रोपदीके करुणाजनक हाहाकाररूप वचनोंको सुनकर भीम को भारी क्रोध आया। वह उसी समय कोटकी दीवार लांघकर एक पेड़ को उखाड़ लाया और उसके द्वारा वहां जितने भी उसके विपक्षी थे उन सबोंको मारने लगा। जिस समय भीम इस काममें लगा था उसके बाल बिखरे हुये थे जिससे ऐसा मालूम देता था कि यह कोई दानव है या राक्षस जो इस प्रकार लोगों को धराशायी कर रहा है। कीचक के भटोंने उस गन्धर्वका हाल देखा तो वे उस मृतकको वहीं छोड़कर अपनी अपनी जान बचाकर भागने लगे। तब भीमने उनका पीछा करना वहां तक नहीं छोड़ा जहां तक उनको यमपुरी नहीं पहुंचाया।

इसके बाद कीचकके सौ भाइयों को जब यह समाचार मालूम हुआ कि कीचककी मृत्यु इस द्रोपदीके निमित्तसे ही हुई है, इसलिये अब इसे ही जलाकर खाक कर देना चाहिये, इसके लिये उन्होंने एक बड़ी भारी चिता भी बनवा ली। यह समाचार जब भीम के कानों तक पहुंचा तो वह बली शीघ्र ही वहां

पहुंचा जहां कि वे सब खड़े हुए थे। उसने उन सौ ही भाइयों को जबरदस्ती चिता पर डालकर उसमे आग लगा दी जिससे वे जल कर खाक हो गये। जिस प्रकार कि कोई कांटेको उठा कर अग्निमे फेक दे तो वह तुरन्त भस्म हो जाता है। इस प्रकार भीमने द्रोपदीकी रक्षा कर उसे स्नानादिसे पवित्र किया।

प्रातःकाल हुआ, द्रोपदी को नगरमें प्रवेश करते हुये सभी नर-नारियों ने देखा। वह उस समय किसीको तो प्रलयश्री और किसीको सुख देने वाली लक्ष्मी सरीखी दीख पड़ती थी। इधर कीचक के सब सुभट मारे लज्जा के सिर पर कलंकका टीका लगाये अपना-सा मुंह लिये अपने घर चले गये।

पश्चात् भीमने युधिष्ठिरके पास जाकर उनसे बीती हुई रात्रिके कीचक के सम्बन्धको लेकर जो समाचार गुजरे थे वे सब उनको सुना दिये। इस पर युधिष्ठिर ने कहा कि हम लोगोको अभी और तेरह दिन चुप-चाप रहना चाहिये। इस प्रकार वे सब अपने बड़े भाईके वर्जन करने पर बिलकुल मौन रहने लगे।

इधर अपमानित दुर्योधन पांडवोंकी खोज मे अपने सेवकों को इधर उधर भेजता हुआ। वे लोग भी वन, पहाड़, गुफा, दुर्ग आदि स्थानोको देखकर जब अनुसंधान करनेमे थक गये तब वापिस आ गये और दुर्योधनको नमस्कार कर कहने लगे कि महाराज, हमने तो ढूंढनेके सभी स्थान ढूंढ डाले हमे तो कहीं भी इस पृथ्वी पर पांडव मिले नहीं इससे जाना जाता है कि वे अब जिन्दा नहीं हैं वे किसी अटवी मे मर गये है। वह वचन सुनकर दुर्योधन बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने अनुसंधान ढूंढने वाले सुभटोंको बहुत-सा धन दिया और वे खुशी खुशी अपने घर चले गए।

यह अवस्था देखकर भीष्म पितामहने कौरवोंसे कहा कि राजन्! मेरी सत्य बात सुनो। वह यह है कि पांचों पांडव बहुत प्रचण्ड—तेजस्वी पुण्यवान् है। वे बिना मौत के मारे नहीं मर सकते है। वे पांचों भाई मेरुके समान अचल है। चर्म शरीरी—इसी भवसे मोक्ष जाने वाले है, सर्व श्रेष्ठ महानुभाव है, बड़े भारी पराक्रम वाले है। एक मुनिश्वरने तो यह कहा था कि यह युधिष्ठिर राजपद पाकर पीछे तपस्या कर शत्रुंजय पहाड़से मोक्षगामी होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे महापुरुष-गुणोंके भण्डार अब तक जीते है इसमे जरा भी सन्देह नहीं है।

वे गुण-गरिष्ठ पांडव तुम्हारा हित करें जिन्होंने कि विघ्न बाधाओं को हटाकर स्थान-स्थान पर प्रतिष्ठा पाई, जो महज्जनों द्वारा पूजा किये गये, जिनकी सभी क्रियायें दूसरोंके उपकारके लिये हुई। जिनको कोई कष्ट न दे सका, प्रत्युत देव सहाई हुये। ऐसे वे सहामना पांडव जीवों को कल्याण प्रदान करें।

उस सती द्रोपदीके शील की जय हो जो शीलकी नदी थी, जो परम पवित्र शरीरको धारण करने वाली पतिव्रता सतियोंमें आदर्श मिष्ट भाषिणी, गम्भीर और धैर्यवान् थी। जिसके शीलके प्रभावसे महा पापी कीचक कालके गालमें पहुंच गया और लोक में हास्यास्पद हुआ।

ग्रन्थकार कहते हैं कि हे भव्य जीवों! तुम भी शील धर्मका सदा ही पालन करो जिससे तुम्हारी संसारमें कीर्तिका प्रहार हो।

॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

अथ उन्नीसवां अध्याय।

मैं उन विमलनाथ भगवानका स्तवन करता हूं कि जिनका आत्मा अत्यन्त निर्मल है, शरीरकी कान्ति विमल है एवं जिनका ज्ञान स्फटिकके समान विगत मल है। पवित्र पुरुष जिन महान आत्माके चरण कमलोंमें भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं और जो धर्म-तीर्थके प्रवर्तक हैं वे जिन मेरे कर्म कलंक को दूर कर मुझे विमल बनावें।

इसके बाद भीष्म पितामहने प्रपंचके साथ द्रोणाचार्यसे कहा कि आजसे चार पांच दिनके अन्दरमें ही श्रेष्ठ पांडव यहां आजायेगे और वे महा सुभट प्रगट होकर दुर्घट कामोंको कर दिखायेगे। मुझे तो ऐसा निश्चय जान पड़ता है कि वे हस्तिनापुर को अपने अधीन कर लेवेंगे। यह बात सुन कर दुष्ट जालन्धर राजा बोला कि मै अभी विराट देशको जाता हूं। सुननेमे आता है कि महाभट कौरवोंके पक्षपाती प्रख्यातकीर्ति कीचकको किसी गन्धर्वने मार दिया है और इसी कारण विराट देशका राजा इस समय निःसहाय हो गया है। उसके यहां बहुत-सा गोधन-गाय भैस वगैरह है। मै इस समय जाकर उसका वह सब गोधन हरण कर लाऊंगा, ऐसा समय फिर मुझे मिलना बहुत ही कठिन है। गो-

धन हरण करते समय वहाँका जो कोई योद्धा मेरा पीछा करेगा अथवा गुप्त भेष धारी पांडव भी यदि मेरे साथ युद्ध करनेके लिये तैयार होंगे तो मै उन सबोंको यमालयका अतिथि बना दूगां। जालन्धर राजा की इस बातसे दुर्योधन राजाको भारी प्रसन्नता हुई और उसने जालन्धर राजाको विराटका विशाल गौ-धन हरण करनेके लिये भेज दिया। वह अपने साथमें घोड़े आदि बहुत-सी सेना को लेकर वहां से रवाना हुआ। वहां पहुंचकर उसने ग्वालोंसे रक्षित विराट देशके सारे गोकुलको हरण कर लिया। ऐसी अवस्था हो जाने पर वे सब ग्वाले भयसे भयभीत हो रोते चिल्लाते हुये अपने राजा की शरण में गये और उनसे अपनी यह पुकार की कि स्वामिन्! जालन्धर अपनी सेना सहित हमारा सारा गौधन हरण कर अपने देशको लेजा रहा है। दयासागर, दया कर हमें इस दुःख से छुड़ाइये। हमारे तो गौधन ही प्राण है अतः वह हमारा गौधन ही नहीं ले जा रहा किन्तु हमारे प्राणोंको ही ले जा रहा है। ग्वालाओंकी इस प्रकार कातर पुकार को सुनकर राजाको बड़ा भारी गुस्सा आया सो ठीक ही है आश्रितों को कोई बिना अपराध सतावे और योग्य मालिक चुपचाप बैठा रहे यह नहीं हो सकता है। उस राजाने उसी समय युद्धकी घोषणा करा दी। घोषणा सुनते ही वीरोंकी भुजाये फड़क उठीं, उन्होंने अपने कवच पहिने, अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हुये और हाथों मे धनुष बाण ले-लेकर जोरकी ध्वनि की जिससे आकाश गूंज गया। इस समय विराट नरेशपुरकी उचित रक्षा कर अपनी अनेक चतुरंग सेना सहित जालन्धरके साथ युद्ध करनेके लिये वहांसे निकल चल दिया।

उसके पीछे पर्वतके समान दृढ़ और उन्नत गुप्तभेषी पांडव भी रथ में बैठ-कर चल दिये। उधर धनुषोंके शब्दोंसे मिश्रित रण भेरियोंका शब्द होने लगा, जिसको सुनकर कायर लोग तो डर गए और सुभटोके शरीरमे युद्ध करनेके लिये रोमांच खड़े हो गए। इस प्रकार गौधन छुड़ानेके लिये विराट नरेशने महा भयंकर युद्ध रोप दिया, सो यह बात एक न्यायी प्रजा रक्षक क्षत्री राजाके लिये उचित ही है। ऐसे क्षत्री राजाके दो ही काम होते है या तो वे राज्यको छोड़-कर दीक्षा धारण कर जांय या युद्धमें प्राणोत्सर्ग कर दे। जो राजा ऐसे अवसर और स्थान पर आई-गई कर जाते है, वे वास्तव मे क्षत्री नहीं है, उन्हे तो दोनो तरफसे जगत और मोक्ष से भ्रष्ट समझना चाहिए। इस प्रकार विराट और

जालन्धरके बीच भीषण युद्ध होने लगा। दोनों तरफके योद्धा धनुषोंको कर्ण पर्यन्त खींचकर एक दूसरे पर बाण छोड़ते थे, तलवारोंका प्रहार करते थे। मतलब यह है कि उन दोनोंमें दिनरात बड़ा भीषण युद्ध हुआ। उस समय इनकी लड़ाईको देखकर ऐसा कोई भी जीव दिखाई नहीं देता था जो कि भय-भीत नहीं हुआ हो। आखिरमें जालन्धर अपने तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा योद्धाओंके शिरच्छेद करता हुआ विराटकी तरफ झपटा और उसको ऐसी जोरकी ललकार बताई कि जिससे उसके होश बिगड़ गए। उसने थोड़ी ही देर में अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विराटको सारथी सहित बेध दिया और उसके रथमें जा कूदा। पश्चात् विराटको बन्धनबद्ध कर अपने रथमें बिठा वह वहाँ से चलता बना।

यह बात जब वीर युधिष्ठिर को ज्ञात हुई कि दुष्ट जालन्धर विराट नरेशको बाँधकर लिए जा रहा है तो उन्होंने अपने शूरवीर भाई भीमसे कहा कि भीम, तुम जल्दी रथमें सवार हो इस महायुद्धमें पकड़े हुए विराटको बन्धनसे मुक्त करो और जालन्धरसे गोधनको छुड़ाकर अपने बलकी परीक्षा दिखाओ। हे महाबाहु, तुम संकटमें फँसे हुए विराटको आपत्तिसे छुड़ाकर मेरे मनोरथ को पूर्ण करो। अपने पूज्य बड़े भाईके ऐसे वचन सुनकर वह विपुलोदर भाईको नमस्कार कर लड़नेके लिए तैयार हो गया। उसने उस समय एक वृक्षको जड़से उखाड़ डाला और उसको लेकर वह महासमरमें घुस गया और शब्द करता हुआ इधर उधर घूमने लगा। उस समय वह ऐसा मालूम पड़ने लगा कि मानो कलकलाहट शब्द करता हुआ यम ही हो। भाईकी प्रेरणासे हाथमें गांडीव धनुष ले अर्जुन, नकुल और सहदेव भी लड़ने के लिये तैयार हो गये।

इस समय भीमने जालन्धर राजाके ग्यारहसौ रथोंको चकनाचूर कर डाला और पार्थने अपने बाणोंकी कुशलतासे साढ़े नौसौ घोड़ोंको बेकाम कर दिया। इधर नकुल और सहदेवने भी शत्रुओं पर बड़ी भारी शूरवीरताके साथ आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया, जिससे जालन्धरकी सेनामें खलबली मच गई। सब जगह अशान्ति-अशान्ति ही दीखने लगी। अपनी सेनाकी यह हालत देखकर जालन्धरने भीमके ऊपर अविरल बाणोंकी वर्षा करना शुरू कर दी जिससे वह ढक गया। उधर भीमने बाण बरसाना शुरू किया और थोड़ी ही देरमें उसके सारथीको मार गिराया। पीछे बड़ी फुरतीके साथ भीम जालन्धरके

रथ पर जा झपटा और बड़ी दृढ़ताके साथ उसको बाँधकर विराट राजाको बन्धन रहित कर दिया। यह अवस्था होने पर जालन्धरकी सेना सब तितर बितर हो गई और अपने प्राणोंको लेकर वहाँसे भाग निकली। इस प्रकार विराट और गोधनको मुक्त कर भीमने युधिष्ठिरके चरणोंमें नमस्कार किया। उन्होंने भी उसे आशीर्वाद देकर प्रसन्नता प्राप्त की।

उधर जालन्धरके पकड़े जानेका समाचार जब दुर्योधनको मालूम हुआ, तो वह क्रोधित हो अपनी सेना सहित विराट देशको चल दिया। वहाँ आकर उसने नगरके बाहर उत्तर दिशावाले द्वार पर डेरा लगा दिया, तथा वहाँ जो विराटका गौधन चर रहा था उसको अपने आधीन कर लिया। यह देखकर उत्तर दिशाकी तरफ रहनेवाली प्रजामें भारी खलबली मच गई। वह चिन्ता और भयसे अत्यन्त व्याकुलित हो विचार करने लगी कि अब हम लोग किसके पास जाँय। कोई हमारा सहायक नजर नहीं आता है। इसलिये आज हमारा सारा गोकुल छीन लिया गया है। इस प्रकार उन लोगों को व्यथित देखकर द्रोपदीने अर्जुनकी तरफ इशारा करके कहा कि देखो ये बड़े भारी बलवान योद्धा हैं, युद्ध-कलाके पूर्व ज्ञाता हैं इन्होंने कितनी ही बार पार्थका सारथीपना किया है इसलिए तुम लोग इनकी ही शरण लो, ये लोग तुम्हारी अवश्य रक्षा करेंगे।

द्रोपदीके इन वचनोंको सुनकर विराटके पुत्रने उस नटवरको एक महा रथ दिया और खुद भी बहुत-सी सेना लेकर नगरसे बाहर निकला। उसने बाहर निकल कर ज्यों ही दुर्योधनकी अपार सेनाको देखा तो वह भयके मारे भाग जानेका इधर उधर रास्ता देखने लगा। वह अर्जुन से बोला कि मैं तो इस रण से सन्तुष्ट हो गया, मेरी यहां एक मिनट भी ठहरने की क्षमता नहीं है। यह रण तो प्राणोंका लेवा है, यह कहकर वह वहांसे भाग खड़ा हुआ। उसको भागता हुआ देखकर अर्जुनने उससे कहा कि हे राजपुत्र! तुम अर्जुनका सारथी पा करके भी रणमें पीठ दिखाकर भाग रहे हो सो अपने कुलमें कलंकका टीका लगा रहे हो, यह तुम सरीखे क्षत्रियोंको उचित नहीं है। कायर होना क्षत्रियोंका काम नहीं है। तुम निर्भय होकर मेरे साथ-साथ युद्धमें लड़ो। अर्जुनने सब तरह से समझाया किन्तु उसने एक न मानी और युद्धस्थल छोड़नेके लिये उसने अपने रथको वापिस फेर लिया। यह देख अर्जुनने फिर कहा कि राजकुमार!

कायरोंकी तरह भागो मत, रणमें मरना वीरोंका काम है गीदड़ोंका नहीं। मरने से क्यों डरते हो, एक ही बार तो मरना है किन्तु रणसे पीठ दिखाकर भागना मरनेसे भी बुरा है। इसलिये युवराज! तुम दृढ़तापूर्वक संग्राम करो। सुनो, मैं वही प्रसिद्ध अर्जुन हूं जिसका कि नाम सुनकर शत्रु कांप उठते हैं। तुम अब भय मत करो और निडर हो धनुष बाण लेकर संग्राम करो। मेरे पराक्रमको भी तो देखो कि मैं किस प्रकार इस दुर्योधनकी सेनाको क्षण भरमें शैवाल (काई) की तरह तितर बितर किये देता हूँ। इसप्रकार उसको धैर्य देकर अर्जुनने उसे अपना सारथी बना लिया और कहा कि युवराज, तुम युद्धांगण में शीघ्रता पूर्वक रथको हांको और मैं बाणोंके तीव्र प्रहारसे अभी शत्रु समूहको धराशायी किये देता हूँ। मैं शत्रुओंका विनाश कर जय-लक्ष्मीको प्राप्त कर ही अपने नगरको वापिस लौटूंगा।

इसके पश्चात् अर्जुनने शत्रुओंको ललकारते हुये कहा कि ठहरो, अब तुम कहाँ जाते हो? यह कहकर उसने रथको शत्रु पक्षकी तरफ बढ़ाया। पार्थके इस अदम्य साहसको देखकर एक अग्निकुमार नामका देव वहाँ आया और उसने प्रसन्न होकर नन्दघोष नामका सुरपुनीत रथ पार्थको भेटमें दिया। पार्थ उस रथमें बैठकर और विराटके पुत्र उत्तरको सारथी बनाकर युद्ध करनेके प्रति अग्रसर हुआ। उसको इसप्रकार निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ते हुए देखकर द्रोणाचार्य बड़े आश्चर्यमें पड़ गये और क्रूर स्वभाववाले कौरवोंसे कहने लगे कि देखो, अब भी कुछ बना-बिगड़ा नहीं है, तुम लोग आपसमें सन्धि करलो, इसीमें तुम्हारा हित है। नहीं तो बतलाओ कि कौन ऐसा समर्थ राजा है, जो कि पार्थके तीक्ष्ण बाणोंको सहन कर सकेगा? क्या कहीं तीव्र दावानलके जलने पर कोई काष्ठ जलनेसे बाकी रह सकता है? इसलिये आप लोग कपट छोड़-कर गोधनको वापस दे दीजिये, युद्धकी प्रतिज्ञाको छोड़कर वापिस अपने घर चले चलिये। क्या तुम्हे मालूम नहीं है कि घरसे निकलते हुए अपशकुन हुए थे जिसकी वजहसे अनिष्ट ही नजर आते थे इसलिये मेरी यही राय है कि आप लोग आपसमें सन्धि कर लीजिये और वापस अपने घर चलिये। द्रोणाचार्यके इन वचनों को सुनकर दुर्योधनके नेत्र क्रोधमें आकर जलने लगे और अपने वीर भटोंकी तरफ दृष्टि देकर बोला कि हे द्रोण, तुम ये क्या कायरताके वचन कहते

हो ? यह क्या शत्रुओं की प्रशंसाका समय है ? मालूम पड़ता है कि अभी तक आप क्षत्रियोंके स्वाभाविक मार्गसे परिचित नहीं हैं। आपको मालूम होना चाहिये कि मेरे क्रोधके सामने अर्जुन क्या चीज है ? और तुम सरीखे दुर्बल दीन हीन भिक्षुकोंसे हो ही क्या सकता है ?

इधर रथमें बैठे कर्णने भीष्म पितामहसे कहा कि गुरुदेव कहीं आपने मुझे रणमें हारता हुआ देखा है ? मैने जहाँ-जहाँ भी युद्ध किया है उसमें मेरी विजय ही हुई है। महानुभाव इस समय भी मेरे पराक्रमको देखिये कि मै किस प्रकार उत्तर सहित अर्जुनको थोड़ी ही देर में इस तरह छिन्न-भिन्न किये देता हूँ कि मानों वह जमीन पर ही नहीं था। कर्णके इन वचनोंको सुनकर पितामहने रोष भरे शब्दोमें कहा कि पहले तुम यह तो बतलाओ कि इतना बड़ा युद्ध तुमने कहीं देखा भी है या नहीं ? यह निश्चय समझो कि युद्धमें अर्जुनके सामने लड़नेको कोई योद्धा समर्थ नहीं है। कोई भी उस वीरका बाल बाँका नहीं क सकता है। यदि उस वीरको क्रोध आ गया तो निश्चय समझो कि वह तुम स को जमीन पर सुला देगा।

इधर यह बात हो रही थी कि इतनेमें शल्य बीचमे ही बोल उठा कि तात यह जो हम लोगोंमें भयंकर रण हो रहा है वह आपकी करामात है और किस का भी इसमें हाथ नहीं है। द्रोणाचार्यने देखा कि दुर्योधनने उनकी बात नह मानी है तब वे और भीष्म पितामह सेना सहित पार्थसे युद्ध करनेके लिये आ बढ़े। उधर अर्जुनने शीघ्रतापूर्वक गांगेयके पास दो बाण ऐसे छोड़े जिन प उनका नाम लिखा हुआ था। बाण गांगेयके पास जाकर पड़ गये। गांगेयने उ बाणो पर अक्षर लिखे हुये देखे तो उनको उठा लिया और पढ़ने लगा। उसम लिखा था कि "धनंजय पितामहसे यह विनती करता है कि मेरा आपके चरण कमलों मे नमस्कार हो, मैंने सदा आपकी आज्ञा का पूर्ण पालन किया है हमारे आज तेरह वर्ष पूर्ण हो गये, आज शुभ भाग्योदयसे आपका पुनीत दर्शन हुआ है। अब मै शत्रुओ का विनाश कर अपने पराक्रमसे इस पृथ्वीको भोगूँगा।" पितामहने उस बाणको ले जाकर कौरवो को दिखलाया, उसको देखते ही कौरवोंके होश हवाश उड़ गये और वे भयभीत होने लगे।

इतनेमे अर्जुनने शत्रुदलको अपना लक्ष्य बनाया और वह उसी लक्ष्यके

अनुसार अपने रथको चलाता हुआ। उसने बड़े जोरके साथ दुर्योधनको एक ललकार बताई और कहा कि रे दुष्ट, अब तू मुझसे बचकर कहाँ जायगा ? तुझे अब मैं अति शीघ्र ही यमपुरका अतिथि बनाये देता हूँ। यह कहनेके साथ ही पार्थका रथ अपने सम्मुख आता देखकर दुर्योधन भयसे काँप उठा।

इतने समयमें ही पार्थके सामने कौरवोंकी सेना आ डटी और उसने असंख्य बाण वर्षासे विराटके पुत्रको जर्जरित कर दिया। यह देखकर धनंजय अग्निकी तरह जलने लगा। उसने उस समय एक ऐसा बाण छोड़ा जिससे कौरवोंकी सेना जलने लगी। इसके बाद धनंजय गांडीव धनुष उठाकर गर्जना करता हुआ बोला कि यदि तुममेंसे कोई सुभट ताकत रखता हो तो मेरे आगेसे दुर्योधनको जीता बचाकर ले जाय। अर्जुनकी यह बातें सुनकर कर्ण अत्यन्त क्रोधित हो अग्निकी तरह जलने लगा और वह संग्राम करनेको तैयार हो पहिला वार अर्जुन पर किया। अर्जुनने भी अपना प्रहार किया इस प्रकार दोनोंका आपसमें संग्राम होने लगा। वे दोनों अपने-अपने पदाघातसे पृथ्वीको कम्पाने लगे, साथ मे वे एक दूसरेकी व्यंग भरे शब्दोंमें हँसी भी करने लगे तथा एक दूसरे पर बाणों की वर्षा करते हुये। वे आपसमें लड़ते हुये हुंकार शब्द करते थे जिससे ऐसा मालूम पड़ता था कि घोड़े ही हींस रहे हों वे अपनी मारकाटसे पृथ्वीको चकना चूर करते हुए हाथी सरीखे मालूम देते थे। वे लड़ते हुए सिंहकी तरह प्रतीत होते थे, उन दोनोंकी बाणों द्वारा ऐसी लड़ाई हुई जिससे कि आकाशमण्डल व्याप्त हो गया।

इसके बाद अर्जुनने बाणोंकी वर्षा जारी रक्खी, जिससे घबड़ा कर शत्रुदल की सेनामें खलबली मच गई और वह रणको छोड़कर इधर-उधर भागने लगी। इसके पश्चात् धनंजयने अपने शर-कुशलता से कर्णके धनुषकी डोरीको काट दिया और बातकी बातमें उसके सारथी सहित रथको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। यह देख दुर्योधनका छोटा भाई शत्रुंजय युद्ध करनेकी इच्छासे युद्धांगणमें उतरा और अर्जुन पर जा झपटा। उसको रणमे उतरा हुआ देखकर अर्जुनने कहा कि शिशु, जाओ और रणसे वापिस घर लौट जाओ, तुम व्यर्थ ही अपने प्राणोंको क्यों खोते हो ? क्या अभी हिरणका बच्चा सिंहके पदाघातको सहन कर सकता है ? यह बड़ा सर्प भी कभी गरुड़के प्रहारसे जीता बच सकता है ? कभी नहीं।

बालक, तुम अभी बालक ही हो, शक्तिहीन हो, इसलिये तुम पर बाण छोड़ने का मेरा जी नहीं चाहता है। अर्जुनकी इस बातको सुनकर उसे भारी गुस्सा आया और उसने गुस्सेमें आकर अर्जुनके ऊपर एक साथ पाँच बाण चलाए जो कि पार्थकी छातीसे टकराकर बेकाम होकर नीचे गिर गये। तब पार्थने भी उस पर एक साथ दश बाण चला दिए जिसके लगते ही उसके प्राणपखेरू उड़ गए। शत्रुंजयको मरा हुआ देखकर कर्णका छोटा भाई विकर्ण अर्जुनके साथ रण करनेके लिए तैयार हुआ और वह क्रोधयुक्त होकर रण करने लगा। फल यह हुआ कि अर्जुनने उसके सारथी को गतप्राण कर उसका रथ नष्ट कर दिया, पश्चात् जब वह असमर्थ हो गया तब अर्जुनने उसे भी बाणोंसे पूरित कर दिया।

इसी बीचमें धनुष बाण चढ़ाये हुए कालके समान भयंकर एक वीभत्स नामका योद्धा कौरवोंकी सेनाको हटाता हुआ अपने तीक्ष्ण बाणो से विकर्णका मस्तक धड़से जुदा करता हुआ। विकर्ण को मरा हुआ देखकर कौरवोंकी सारी सेना पार्थ पर एकदम टूट पड़ी परन्तु वह उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकी। पार्थने उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। यह देख कर्णने अपनी भागती हुई सेना को रोका और अर्जुनको ललकारा तथा उन दोनोंमें परस्पर संग्राम होने लगा। अर्जुनने उस पर बाण वर्षा करना शुरू कर दिया और कर्ण उनको विफल करने लगा। आखिरमें कर्णने एक साथ तीन बाण चलाए जिसने धनंजय को, उसके सारथीको और ध्वजा सहित रथको भेद दिया। यह देखकर अर्जुन को भारी क्रोध आया और उसने बाणोंकी वर्षा द्वारा कर्णको धराशायी कर दिया और उसे मूर्च्छा आगई। उसको पड़ा हुआ देखकर कौरव झटसे उसे रथ मे बैठाकर युद्धांगणसे बाहर करके उसका उपचार करनेमें लग गये। इधर दुःशासन लड़नेके लिये यह कहते हुए आगे बढ़ा कि अर्जुन, यदि तुझमें शक्ति है तो मेरे एक बाणको सम्भाल। यह कहकर उसने अर्जुनके ऊपर बाण छोड़ दिया। अर्जुन को उस बाणके लगते ही बहुत क्रोध आया और उसने उसी समय एक साथ पच्चीस बाण चलाए जिसकी वजहसे वह अर्धमृतक के समान हो गया। इसके बाद और जो भी पार्थके सामने लड़ने की इच्छासे आए उन सभीको अर्जुनने मार गिराया। अन्तमे इसप्रकार सब शत्रुओ पर विजय प्राप्त

उत्तरमें द्रोणने कहा कि पार्थ, समय बरबाद करने मे कोई लाभ नहीं। तू जल्दी तैयार हो और प्रथम तू ही अपने बाणोंका मेरे ऊपर प्रहार कर। इसमे तुम्हारा कोई दोष नहीं है। द्रोणाचार्यके इन वचनोसे भयभीत हो पार्थने कहा कि गुरुवर्य! जब ऐसा ही है तो पहिले आप अपने बाण छोड़िये पीछे मै भी आपकी सेवा करूंगा और आपके सब बलको हरण करूंगा। इसप्रकार आपसमे कहा सुनी हो जाने के बाद उन दोनों गुरु शिष्यमे युद्ध होने लगा। इस युद्धको ऊपरसे देवगण और नीचेसे सब सैनिक लोग देखकर बड़े आश्चर्यमे पड़ गये। इसके बाद द्रोणने एक साथ बीस बाणोंको छोड़कर आकाश व्याप्त कर दिया। उधर अर्जुनने आते हुये उन बाणोको बीचमें ही अपने बाणोंके द्वारा रोक दिया। यह अवस्था देख द्रोणने क्रोधमे आकर पार्थके ऊपर एक साथ लाख बाण छोड़े उधर अर्जुनने दो लाख बाण छोड़कर उसको निवारण कर दिया। यह देख जय लक्ष्मीने अर्जुनको अपना स्वामी स्वीकार कर लिया अर्थात् द्रोणको युद्ध स्थलसे हटा दिया।

यह अवस्था देखकर युद्धकी प्रतिज्ञा करके द्रोणका पुत्र अश्वत्थामा अर्जुनके सन्मुख आया। फिर क्या था दोनो योद्धाओमे सिंह बच्चोंके समान महायुद्ध होता हुआ। अर्जुनने युद्ध करते-करते अश्वत्थामाके रथके दोनों घोड़ोको छेद दिया जिससे वे घोड़े फड़फड़ाकर जमीन पर गिर पड़े। इधर अश्वत्थामाने भी अपने बाणोंके द्वारा अर्जुनके गांडीव धनुषकी डोरीको छेद दिया किन्तु अर्जुनने धनुष पर दूसरी डोरी चढ़ाकर ऐसा बाणका निशाना लगाया जिससे अश्वत्थामाका हृदय विदीर्ण हो गया और वह उसी समय जमीन पर पड़ गया। इसके बाद विराटके उत्तर सारथीने अर्जुनसे कहा कि पार्थ! अब मै रथको दुर्योधनकी तरफ फेरता हूँ इसलिये आप धनुष पर बाण चढ़ाकर इन उछल कूद करते हुये शत्रुओंको यमपुरका रास्ता दिखलाइये। इस पर अर्जुनने शत्रुओंको अपनी ओर लक्षित करके मर्म छेदन करनेवाले वचनो द्वारा एक धमकी दी और अपने विषम बाणों द्वारा आकाशको छा दिया। यह देखकर राजबिन्दु अर्जुन पर धनुष बाण ले झपटा और न्यायका उल्लंघन करके उसको चारो तरफ से घेर लिया। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था कि मानो हाथियोके बीचमे सिंह ही घिरा हो। किन्तु वह सेना निधड़क खड़े हुए अर्जुनका कुछ भी

न कर सकी। राजबिन्दुकी समस्त सेनाको अकेले अर्जुनने ही तितर-बितर कर दिया, बहुतोंको यमपुर पहुँचा दिया। इसके बाद उस वीरने लक्ष्य बाँधकर एक ऐसा बाण चलाया जिससे राजबिन्दुके हाथी घोड़े रथ ध्वजाओं को छेदकर योद्धाओंको धराशायी कर दिया, कोई भी योद्धा ऐसा नहीं बचा जिसके थोड़ा बहुत घाव नहीं हुआ हो। अन्तसे अर्जुन के मनमे यह विकल्प उठा कि मैं इस युद्धमें किस-किसको मारूं। मारनेसे तो महान हिंसा होगी सो यह तो मुझे उचित नहीं है इसलिये उसने मोहन बाण छोड़ा, उसके छूटते ही समस्त राजा ऐसे बेसुध हो गये मानों उन्होंने धतूरा ही खा लिया हो।

इस प्रकार अर्जुन शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर और उनके छत्र ध्वजा घोड़े हाथी रथ आदिको पाकर बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। अर्जुनकी इस विजयके उपलक्षमें विराट राजाने उसी समय बहुतसे वादित्र बजवाये और अगणित योद्धाओंके साथ पार्थका भारी अभूतपूर्व आदरसत्कार किया। इधर निर्भय युधिष्ठिरने गोकुलको भी छुड़ा दिया जिससे कि इनको बहुत आनन्द हुआ। इसके बाद किसी प्रकार कौरव जब सचेत हुये तब वे बड़े लज्जित हुये और दीनहीनकी तरह अपने नगरको चले गये।

इसप्रकार युद्धमें कौशल देखकर राजा विराटको जब यह निश्चय हो गया कि ये ही वास्तवमें पाँचों पांडव हैं तब हाथ जोड़कर नमस्कार करके युधिष्ठिर से बोला कि महाराज इतने समय तक मैंने नहीं जाना था कि आप ही धर्म-पुत्र हैं, इसलिये मेरे इस महत् अपराधको क्षमा कीजिये। प्रभो, मेरे इस राज्य के आप ही स्वामी हैं, मैं तो आपका नौकर बनकर रहूँगा। मुझे नौकर बनकर रहनेमें ही प्रसन्नता है। इसके पश्चात् विराटने गोकुल को एक बाड़ेमें बन्द करवाकर पांडवों सहित बड़े भारी उत्सव और हर्ष-प्रकर्षके साथ नगर में प्रवेश किया। विराटने युधिष्ठिर आदि से विनय पूर्वक वहीं रहनेकी प्रार्थना की एवं अर्जुन से अपनी सुशीला पुत्रीके पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रगट की और कहा कि पहिले मेरी इस पुत्रीको जरासिन्धने अपने पुत्रके लिये मुझसे कितनी ही बार याचना की थी किन्तु मैंने उसे नहीं दी इसलिये पार्थ तुम उस रूप-गुणयुक्त कन्याका पाणिग्रहण करो। इस पर पार्थने उत्तर दिया कि महा-राज, सुभद्राके गर्भसे पैदा हुआ मेरे एक 'अभिमन्यु' नामका पुत्र है उसके साथ

आप अपनी योग्य कन्याका विवाह कीजिये। विराटने पार्थकी इच्छानुसार शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्तमें मांगलिक कृत्यों द्वारा भारी ठाठ-बाटके साथ अभिमन्युका अपनी कन्याके साथ शुभ विवाह कर दिया।

इसके बाद पांडवोंका सारा समाचार जब द्वारिकामें पहुंचा तो वहांसे बलभद्र नारायण प्रद्युम्न, सुभानुकुमार आदि विराट नगर आये एवं तेजस्वी धृष्टार्जुन और प्रतापशाली शिखन्डी भी आये। इनके सिवाय और भी बहुतसे राजा विराट नगरमें आये। विवाहके अनन्तर भी कई एक दिन वे आये हुये राजा रहे। इसके बाद वे सब वस्त्राभूषण आदि के द्वारा सम्मानित हो अपनी-अपनी नगरीको चले गये। सबके विदा हो जानेके बाद नारायण और बलभद्र तीन अक्षौहिणी सेनाके सहित पांडवोंको साथ लेकर वहां से द्वारिका में आये और वे वहाँ बड़े प्रेमपूर्वक आनन्दसे रहने लगे।

इस समय राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से प्रश्न किया कि भगवन्! अक्षौहिणी का कितना प्रमाण है? तब परम करुणाके धारी गौतम स्वामीने कहा कि जिसमें २१७८० हाथी, २१७८० रथ, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पयादे हों, इन सबको मिलाकर एक अक्षौहिणी सेना कहलाती है।

द्वारिकापुरी में आनन्दपूर्वक रहते हुए एक दिन अर्जुनने नारायण कृष्णसे कहा कि देखिये ये कौरव अघकी खानि है, इसलिये इनका अपयश सारे संसार में फैल रहा है। इन लोगोंने छलसे हमें लाख निर्मित महलमें रखा और बादमें उसमें आग लगाई। पुण्ययोगसे हम लोग उस भारी विपत्तिसे बाल-बाल बच गये। पीछे उन्होंने भारी अपराध यह किया कि दुष्ट दुःशासनने द्रोपदीकी चोटी पकड़कर घसीटा और उसे बलात् घरसे निकाल दिया तथा उसका घोर अपमान किया। अर्जुनकी यह बात सुनकर महामना कृष्ण दांतों से ओठों को दबाकर बोले कि वास्तवमें दुर्योधनने यह भारी नीचता और क्षुद्रता का काम किया है। यह दुष्ट किसी बंधुवर्गको नहीं चाहता है, इसमें कुछ भी बड़प्पन और कुलीनता नहीं है, यह दुष्ट अपने किये हुए का फल अवश्य पावेगा, इसमें सन्देह नहीं है। पांडवोंके साथ इस विषयपर अच्छी तरह ऊहापोह करके नारायणने अपना कर्तव्य निश्चित किया, सो ठीक ही है। जो काम पहले तर्क-वितर्कके द्वारा निश्चित कर लिया जाता है, उसमें फिर असफल होनेकी संभावना

नहीं रहती है। उन्होंने तुरन्त एक चतुर दूतको बुलाया और उसको दुर्योधनके पास भेजा। दूत हस्तिनापुर पहुँचकर दुर्योधन को नमस्कार कर बोला कि महाराज! मेरा आना द्वारिका से हुआ है, मैं एक दूत हूँ। राजन् पृथ्वीपर कोई ऐसा समर्थ योद्धा नहीं है जो पांडवोंको जीत सके, फिर आप क्यों व्यर्थमें ही अपने कुल का उच्छेद करते है। नारायण बलभद्र विराट द्रुपद प्रद्युम्न आदि अनेक बलधारी राजा पांडवोंके पक्ष में है, उनकी सदैव सहायता करनेमें तत्पर है फिर युद्धमें आप उनके सामने एक क्षण भी नहीं ठहर सकते हैं, इसलिये आप मान छोड़ उनके साथ संधि कर लीजिये और आपसमें आधे-आधे राज्य को बांटकर उपभोग कीजिये, इसमें आपकी भलाई है। दूतके इन वचनोंको सुनकर दुर्योधनने विदुरसे कहा कि हे तात्! आप बतलाइये कि इस समय हमारा क्या कर्तव्य है जिससे हम पूरे राज्यके भोक्ता बन सके। दुर्योधनकी यह बात सुनकर विदुरने कहा कि देखो भाई! जीवोंको धर्मसे ही सुख मिलता है, अंकुशरहित राज्य भी इसी धर्मके धारण करनेसे ही प्राप्त होता है। धर्मके प्रभावसे समस्त अरिगण नाशको प्राप्त होते हैं, इसीसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। वह धर्म आत्माकी विशुद्धि-मन वचन काय की सरलता रखनेवालोंके ही होता है अथवा क्रोध, लोभ, मान आदि भावोंके त्याग करनेसे होता है, इसलिये तुम क्रोध और मान को त्यागकर अपनी बुद्धि धर्ममें लगाओ। वत्स, यदि तुम अपना निर्मल यश विस्तार करना चाहते हो तो स्वयं ही पांडवोंको बुलाकर विनयके साथ उनका आधा राज्य दे दो, इसी मे तुम्हारा हित है। विदुरकी यह बात सुनकर दुर्योधन को गुस्सा आया, सो ठीक ही है कि जिसका भवितव्य अच्छा नहीं होता है, उसको धर्मका वचन रुचिकर नहीं होता है, परन्तु उलटा ही जँचता है, यही अवस्था उस समय दुर्योधनकी हो गई, विदुरकी वार्तासे उसका चेहरा लाल हो गया और उसने गर्व-भरे शब्दोंमें विदुरको कहा कि मैं देखता हूँ कि आप सदा ही पांडवों के गुणगान किया करते है एवं उनका ही गौरव और राज्य चाहते है। हमारा राज्य बिलकुल भी आप नहीं चाहते हैं। आपके हृदय मे सदा मायाचार ही भरा रहता है।

इसके पश्चात् दुर्योधनने दूतको अपमान-भरे वचन कहकर सभासे निकाल दिया। अपमानित हुआ दूत पांडव और यादवोंके पास द्वारिका आकर दुर्योधन

का सब हाल कहता हुआ। उसने कहा कि राजन् ! कौरव बड़े दुष्ट और नीच हैं। वे बहुत क्षुद्रविचारके आदमी हैं, आप पर बहुत रुष्ट हैं सन्धि करना नहीं चाहते हैं। यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा कि जो भी हो हम तो अपनी नीतिके अनुसार दूतको भेजकर अपयशसे दूर हो गये। इसके बाद ही पांडव कौरवोंपर चढ़ाई करने की तैयारी मे लग गये।

पहले तो पुण्यशाली पांडव पृथ्वीपर गुप्त वेष बनाये हुये विराट नगरमे आये, वहां जाकर उन्होंने कौरवोसे लड़ाई की और वहां की प्रजाका गो-धन छुड़ाया। यादवोंसे मुलाकात हुई और उनकी सहायता मिली, यह सब क्या है ? धर्मका ही फल है। धर्मके फलसे जीवोंको बन्धु-समागम होता है, सुन्दर शरीरकी प्राप्ति होती है। मनको मोहित करनेवाली सुन्दर-सुन्दर स्त्रियोकी प्राप्ति होती है एवं आज्ञाकारी पुत्र-पौत्रादिकी प्राप्ति होती है, मनचाही सम्पत्ति मिलती है और तो क्या मोक्ष प्राप्ति भी इसी धर्मका फल है, इसलिये ग्रन्थकार का कहना है कि हे भव्य जीवों, ऐसे इस धर्मका मन वचन कायसे यथाशक्ति पालन करो, अपनी एक घड़ी धर्म के बिना मत जाने दो।

अथ बीसवाँ अध्याय।

मै उन अनन्तनाथ स्वामीको नमस्कार करता हूं कि जो अनन्त गुणोंके स्वामी है। जो संसाररूपी समुद्रके पार करने के लिये पुलके समान है। जो अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुखके अधिपति है। वे प्रभु मुझे इन चतुष्टयकी प्राप्तिमें साधक बने।

इसके पश्चात् विदुर संसारसे विरक्त हो उसकी क्षणभंगुरता पर विचारने लगे। उन्होंने सोचा कि संसारमे जितनी भी सम्पत्ति प्रभुता और विषयजन्य सुख है उनमे से भी नित्य नहीं है। दूसरी बात यह है कि इन तीनोंमे से प्रत्येक वस्तु अनर्थको करनेवाली है। यह इन्द्रियजन्य सुख नहीं किन्तु दुःख है तब भी यह मोही जीव उसको प्राप्त करनेके लिये जी जानसे उसमे संलग्न हो जाता है। ऐसे विषयजन्य सुखके लिये धिक्कार है कि जिसके लिये पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, मित्र मित्रको और भाई भाईको जानसे मार डालता है। ये कौरव अधर्मरूपी चाण्डालके मलसे मलीन हो रहे हैं—हेयोपादेयका कुछ भी ज्ञान नहीं

है। ये अपनी अनीतिके कारण लड़ाई में अवश्य जान देंगे, इसलिये मैं अब यह कुछ नहीं देखना चाहता हूँ इस प्रकार विचार और कौरवोंसे कहकर विदुरने वनका रास्ता लिया। वहाँ जा उन्होंने पवित्रात्मा विश्वकीर्ति मुनिको प्रणाम कर उनसे उपदेश सुना। पीछे उन्हींसे दीक्षा धारण कर उग्र तप तपते हुए वे मुनिराज विदुर विहार करते हुये।

एक दिन एक चतुर पुरुष राजगृहीके अधिपति राजा जरासिंधके पास आया और रत्नादि भेंटमें दिये। पश्चात् जरासिंधने पूछा कि तुम कहांसे आये हो? वह बोला कि राजन्! मैं आपके दर्शनके लिये द्वारिकासे आया हूँ। जरासिंधने पूछा कि उस नगरीका राजा कौन है? उसने कहा, नेमिप्रभुके साथ-साथ कृष्ण नारायण उस पुरीके राजा हैं। यह बात सुनते ही कि वहाँ यादवोंका राज्य है, मारे क्रोधके वह आग बबूला हो प्रलयकालकी वायुसे क्षुभित होने वाले समुद्रकी तरह सेना ले युद्ध करने चल दिया।

इधर अकारण ही युद्ध छिड़ता देख नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई उन्होंने तुरन्त ही जरासिंधके क्षोभ होनेका समाचार कृष्णको आकर कह दिया। कृष्ण उस समाचारको सुनकर नेमिप्रभुके पास गये और सामने खड़े होकर प्रभुसे पूछा कि प्रभु! हमारी इस युद्धमें जीत होगी या नहीं? इन्द्रों द्वारा सेवित प्रभु, शब्दोंके द्वारा कुछ जवाब न दे थोड़ेसे मुस्करा दिये। कृष्ण प्रभुकी इस चेष्टाको देख अपनी निश्चित् विजय समझ युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये सो ठीक ही है मुंहकी चेष्टा अंतरंगके भावों को स्पष्ट कर देती है। कृष्णके साथ और भी बहुत यादवोंके वीर राजा शत्रु का विध्वंस करनेके लिए युद्धस्थलमें उतर पड़े। वे राजा ये थे—बलदेव, नारायण, समुद्र विजय, वसुदेव, अनावृष्टि, पाँचों पांडव, प्रद्युम्न, धृष्टद्युम्न, सत्यकी, जय, भूरिश्रव, भूप, सारण, हिरण्यगर्व, शम्ब, अक्षोभ्य, विद्भरथ, भोज, सिंधुपति, वज्र, द्रुपद, पौंड्नारद, वृष्टि कपिल, क्षेम धूर्तक, महानेमि, पद्मरथ अक्रूर, निषध, दुर्मुख, उन्मुख, कृतवर्मा, विराट, चारु, कृष्णक, विजय, यवन, भानु, शिखंडी, सोमदत्तक, वाह्लिक आदि थे।

इतनेमे ही जरासिंधका एक दूत दुर्योधन के पास गया और नमस्कार कर जरासिंधके अभिमतको सुनाया, उसने कहा कि जिसने बली जरासिंधके दामाद

कंसको नष्ट किया, मुष्टिप्रहारसे चाणूरको चकनाचूर कर डाला तथा जिसने गोवर्धन पर्वतको उठा लिया, जो सर्पोका मर्दन करनेवाला है ऐसा बली गोपालकृष्ण संसारमे विख्यात है तथा जो यादव युद्धमें भागकर अग्निमे जल गये थे सुना है वे सब जीते है और पश्चिमी समुद्रमे निवास करते है। यह सब समाचार वहींसे आये हुए एक वैश्यने जरासिंधको रत्न वगैरह भेंटमे देकर कहे है। यह सुन जरासिंधको बहुत गुस्सा आया और उसने उसी समय अपने पक्षके राजाओके पास दूत भेजकर उन्हे एकत्र कर लिया है इसलिये महाराज, आपको भी बुलानेके लिये चक्रवर्तीने मुझे भेजा है अतएव आप चलनेकी शीघ्र तैयारी कीजिये। तथा अपने वीर भाई और पुत्र तथा सब सेनाको साथ लेकर चलिये। दुर्योधन दूतके वचनोंको सुनकर रोमांचित हो गया और मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने दूतको वस्त्राभूषण दे प्रसन्नता पूर्वक विदा किया। वह विचार करने लगा कि जिस कामको मै खुद करना चाहता था उसको चक्रवर्ती स्वतः कर रहा है, पश्चात् दुर्योधनने रणभेरी बजवादी। जिसको सुनकर युद्ध करने की इच्छा करनेवाले वीरोंके हृदयमें वीरताकी उमंगे उठने लगीं और कायर लोगोंके छक्के छूटने लगे। इसतरह हाथी घोड़े रथ पयादे आदि चतुरंगसेना सजाकर दुर्योधन आकाशको घोड़ोंकी टापोंसे उड़ती हुई धूलसे धूसरित करता राजगृहकी ओर चलता हुआ जरासिंधकी सेनामे जाकर मिल गया। जरासिंधने उसका कर्ण सहित बहुत मान सम्मान किया।

इसके बाद जरासिंधने एक चतुर दूतको बुला द्वारिका भेजा। दूत वहां जा यादवोसे कहने लगा कि चक्रवर्ती जरासिंध आप सबोपर यह आज्ञा करता है कि आप लोग अपने देशको छोड़कर यहां क्यों रहते है? मेरी समुद्रविजय और वसुदेवसे बहुत प्रीति है, फिर ये अपने आपको ठगकर क्यो यहां आ छिपे है? खैर अब भी कुछ बना-बिगड़ा नहीं है, वे लोग गर्व छोड़कर मेरे चरणोंकी सेवा करे, इसमे उनकी कुशलता है। दूतके मुखसे जरासिंध की आज्ञा सुन बलभद्र गुस्सेमे आकर बोले कि दूत तुम जाओ और कह दो कि कृष्णको छोड़ संसारमे कोई दूसरा चक्रवर्ती नहीं, जिसके चरणों की सेवा की जाय।

बलभद्रके इन वचनोंको सुनकर ओठोंको दांतो से दबाता हुआ दूत फिर

बोला कि जिस बलीके डरसे आप लोग समुद्रके बीचमें रहने लगे हैं, उस बली के चरणोंकी सेवा करनेमें क्या दोष है ? पीछे आपकी जैसी इच्छा, किन्तु मैं कहे जाता हूँ कि वह वीर चक्रवर्ती आपके इस गर्व को नहीं सहन कर सकता है, वह शीघ्र ही मुकुटबद्ध राजाओं सहित ग्यारह अक्षौहिणी सेना लेकर आप पर चढ़ाई करने आ रहा है, आप होशियार रहिये।

दूतके ऐसे कठोर वचनोंको सुनकर भीम क्रोधित हो बोला कि इस अनर्गल बकनेवाले दूतको यहां से निकाल दो। दूत यह बात सुनकर सरोष वहांसे चल दिया और जरासिंधके पास पहुँचकर बोला कि महाराज, वे लोग अपने गर्वमें आकर आपको कुछ भी नहीं समझते है। दूतकी इस बातको सुनकर उसे बहुत गुस्सा आया। वह उसी समय रणभेरी बजवाता हुआ, जिसको सुनकर वीर योद्धा बड़े भारी प्रसन्न हुये और सब राजाओंके साथ में वह वहांसे चलनेको तैयार हुआ। भूमिगोचरी विद्याधर राजाओंके बीचमें वह उस समय ऐसा शोभता था, जैसे नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा। इनके सिवा और भी राजा उसके साथ हुए, जिनके नाम ये थे—द्रोण, भीष्म पितामह, कर्ण, रुक्मी, शल्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, कृप, चित्र, कृष्णकर्म, रुधिर, इन्द्रसेन, दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मर्षण, कलिंग आदि राजा-महाराजाओं के साथ जरासिंध पगसे भूमिको कँपाता हुआ कुरुक्षेत्र के युद्धस्थलमें जा पहुँचा। उसके वहाँ पहुँचनेके समाचार को सुनकर कईएक राजा तो जीवनकी आशा छोड़कर जिनेन्द्रदेवका पूजन करते हुए, कईएक गुरुके निकट अहिंसादि अणुव्रत धारण करते हुये, कई एक वीर राजा अपने सेवकोंको कहते हुए कि अब क्या विचार करते हो, स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धुसे मोह छोड़कर हाथमें चमचमाती तलवार पकड़ो, धनुषपर बाण चढ़ाओ हाथियोंके ऊपर झूले डालो, रथोंमें घोड़ोंको जोतो और घोड़ो पर कांठी रखो।

इतनेमें कृष्णने अपना दूत राजा कर्णके पास भेजा। वह वहाँ जाकर उसे भक्ति-भावसे प्रणाम कर बोला कि महाराज, मेरा एक निवेदन है और वह मैं नारायण कृष्णके कहे अनुसार कह रहा हूँ। वह यह है कि आपको इस युद्ध में जो उचित जचे सो ही कीजिये, किन्तु कहना यह है कि कुछ ही देर बाद कृष्ण नारायण चक्रवर्ती बनेगे, यह जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ वाक्य है, जिनेन्द्र कभी अन्यथावादी नहीं होते है अतः आप कुरुजांगल देशका राज्य

ग्रहण करो, व्यर्थके इस लड़ाई-झगड़ेमे मत फँसो। तुम महायुद्ध विद्वान् पांडुके पुत्र हो और कुन्तीके उदरसे आपने जन्म ग्रहण किया है, इस कारण पांचों पांडव आपके सहोदर भाई हैं। इस प्रकार दूतके वचनों को सुनकर कर्णने कहा कि दूत! तुम मेरी बात सुनो। न्याय नीतिके अनुसार मेरा अब इधर से उधर जाना उचित नहीं प्रतीत होता है। न्याय तो इस बातको कहता है कि रण छिड़ जाने पर पीछे जाना योद्धाओंका काम नहीं है। जो लोग ऐसा करते हैं वे योद्धा नहीं किन्तु कायर है उनकी संसारमे अपकीर्ति होती है। यह तो प्रसिद्ध बात है कि सुसेवित राजाका युद्धके समयमें भृत्यगण भी साथ नही छोड़ते हैं, तो हम सरीखे प्रबल वीरोके लिये तो यह कहां तक उचित हो सकता है? हां, यह मै जरूर कर सकता हूँ कि युद्ध बन्द हो जाने पर पांडवों को कौरवोंसे आधा राज्य अवश्य दिला दूँगा। इसलिये हे दूत! तुम अपने स्वामीको मेरी यह बात समझाकर कहो। उसकी यह बात सुन कर दूत वहाॅ से चल कर जरासिंध के पास गया। जरासिंध उस समय कौरवोंके साथ सभा मे बैठा विचार कर रहा था। दूतने वहाॅ पहुॅच कर जरासिंध को नमस्कार किया और उससे निवेदन किया कि महाराज, आप यादवोंके साथ सन्धि कर लीजिये इसीमे शांति है, या नहीं तो यह जिनेन्द्रदेवकी सच्ची वाणी भी सुन लीजिये कि "इस महासमरमें कृष्णके हाथो से आपकी मृत्यु होगी और गंगासुत पितामह की मृत्यु शिखण्डी के हाथ से होगी एवं द्रोणाचार्य की मृत्यु धृष्टार्जुनके हाथसे होगी। इसीप्रकार शल्यकी युधिष्ठिरके द्वारा और दुर्योधनकी भीमसे, जयद्रथकी अर्जुनके हाथसे और कौरवपुत्रोंकी कुमार अभिमन्युके हाथसे मृत्यु होगी। इन वचनोंमे तिल-तुषमात्र भी झूठ नहीं है क्योंकि भवितव्य ही ऐसा है उसको कोई रोकनेवाला नहीं है। यह वचन कहकर वह दूत तुरन्त ही वापिस द्वारिका लौट गया। वहाॅ जाकर उसने कृष्ण महाराजको प्रणाम किया और निवेदन किया कि महाराज! जरासिंधकी सेना कुरुक्षेत्रमे पहुॅच चुकी है। कर्ण हर प्रकार से समझाने बुझाने पर भी इधर आनेके लिये प्रस्तुत नहीं है। इसलिये महाराज! अब आपको भी इस महायुद्ध मे कुरुक्षेत्रमे पहुँचकर शत्रुओके साथ लड़ाई करनी ही पड़ेगी। इसके बाद कृष्ण ने रणभेरी बजवादी और अपने पंचजन्य शंखको उठाकर

शब्द करता हुआ जिससे सारा आकाश गुंजायमान हो गया। इसप्रकार रणभेरी बजाकर कृष्ण चतुरंग सेना सहित कुरुक्षेत्रको चलता हुआ। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था कि मानों पृथ्वी मण्डलके साथ-साथ ही नहरें बहती हुई चली जा रही है। इस समय कृष्णकी सेनाके गमनसे सर्वत्र धूल ही धूल दिखाई पड़ने लगी जिससे तमाम आकाश धूलमय हो गया, इसलिये उस समय सूर्यका प्रकाश भी मंद हो गया। इसप्रकार कृष्णकी अपार सेनासे वहाँका पृथ्वी मण्डल परिपूर्ण भर गया। सेनाके हाथी चिंघाड़ने लगे। बाजोंकी तीव्र ध्वनिसे दशों दिशायें गुंजायमान हो गई। वहाँ पहुँचकर कृष्णने अपने डेरे कुरुक्षेत्रके बाहरी भागमे लगा दिये।

इधर जरासिंधकी सेनाको गमन करते हुए अशुभ सूचक कुछ अपशकुन हुये। जैसे इसी समय गमन समयमें भय प्रदान करनेवाले आकाशमें सूर्य ग्रहण का पड़ना, बिना समयमें ही अथाह वर्षाका होना जिससे सेनाका बहना, सेना की ध्वजाओं पर सूर्यकी तरफ मुख करके काकका बोलना एवं छत्रोंके ऊपर दुष्ट गृद्ध पक्षीका बैठना आदि अपशकुन हुये। जिनको देखकर दुर्योधनके मनमें कुछ चिन्ता पैदा हो गई। उसने तुरन्त ही एक चतुर मंत्रीको बुलाकर कहा कि मंत्रीवर, अपशकुन क्यों दिखाई पड़ रहे है? इस प्रश्न पर मंत्रीने कहा कि राजन्, यह कुरुक्षेत्र है, सबको निर्भय हो भक्षण कर जायगा, यह सुन अच्छा कहकर दुर्योधनने फिर मंत्रीसे पूछा कि मंत्री, मुझे यह ठीक २ बताओ कि शत्रु-शैन्य कितना और उनमें लड़ाई करनेवाले कितने योद्धा हैं? इसपर मंत्रीने कहा कि राजन्, बलवान दक्षिणके जितने भी राजा थे वे सब नारायणके चाकर हो गये है। औरोंकी बात तो छोड़ दीजिये उनमेंसे सिर्फ एक अर्जुन ही ऐसा योद्धा है जो सबोंको मार गिरानेमें पर्याप्त होगा। उसने पहली लड़ाई में वीरता का झूठा दम भरने वाले योद्धाओं को मार गिराया था। मतलब यह है नारायणको कोई भी मनुष्य और देवता जीतने में समर्थ नहीं हो सकते है। उनके पक्ष मे बलभद्र भी है जो अपने मूसल और हलोंकी मारसे बैरियों के छक्के छुड़ा देते है वीर प्रद्युम्न भी उसी तरफ सम्मिलित है जिनको शत्रु को विघात करनेवाली प्रज्ञप्ति आदि २ बहुतसी विद्यायें सिद्ध हैं। वह बलशाली भीम योद्धा भी अजेय है जो कि शत्रुओंको बातकी बातमे धराशायी करनेमे

समर्थ है इसके सिवा हरिकी सेनामे और भी बहुतसे बलशाली विद्याधर है जो कि लड़ाईकी इच्छासे इतस्ततः घूम रहे है। राजन्! कृष्णके पास सात अक्षौहिणी सेना है।

मंत्रीके मुखसे सुने हुये सब समाचार दुर्योधनने जरासिंधको कह सुनाये उसने उस समय कुछ भी ध्यान नहीं दिया सो ठीक ही है भवितव्यके अनुसार ही जीवोंके परिणाम और क्रिया हो जाती है। उसने क्रोधके आवेश में आकर कहा क्या गरुड़के आगे सर्प ठहर सकता है? या सूर्यके आगे अंधकार रह सकता है? कभी नहीं। इसप्रकार ये सारे राजागरण क्या मेरे सामने ठहर सकेंगे? यह कहकर जरासिंध हाथ मे प्रचण्ड धनुष-बाण लेकर युद्धस्थलकी तरफ रवाना हुआ। फिर वहां क्या देर थी बाजोके शब्दो से दशों दिशाओको पूरते हुए अन्य राजा भी युद्ध करनेके लिये चल पड़े। सेनाके चलनेसे उठी हुई धूलसे आकाश व्याप्त हो गया सूर्य ढक गया।

इसके बाद युद्धस्थलमे पहुँचकर जरासिंधने अपनी सेनामे चक्रव्यूहकी रचना की तो उधर कृष्णने अपनी सेनामे तार्क्ष्यव्यूहको रचा। उस समय दोनों तरफ की सेनाओंमे धूल ही धूल दीखने लगी जिससे सब जगह घोर अन्धकार छा गया। अन्धकार हो जानेसे कौओंने समझा कि अब रात हो गई है इसलिये वे तो अपने-अपने घोंसलोमे चले गये और उल्लू इतस्ततः अपने घू घू शब्द करते हुए उड़ने लगे। इसके थोड़े ही समय बाद सेनाओमें घन-घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। सुभटगण अपनी अपनी तलवारें निकालकर एक दूसरोंको मारते थे, कोई भालोकी तीक्ष्ण नोकोसे शत्रुओंके शिरच्छेद करते थे कोई सुभट घनघोर गर्जना करते हुए शत्रुओंके हृदयको बेधते थे। कोई हाथियोंके कुम्भ स्थलोको विदीर्णकर उनमें से निकली जो रुधिरकी धारा उससे दिशाओंको लाल करते थे। इस समय अर्धचक्रीकी सेनाने नारायणकी सेनाके बलको कुछ ठण्डा कर दिया। जिस प्रकार कि जलका प्रवाह अग्नि को शांत कर देता है। यह देखकर शंबुकुमार अपनी सेनाको धैर्य बंधाता हुआ युद्ध करनेके लिये तैयार हो गया और उसने लड़ाईमे घुसते ही अपने पराक्रमसे शत्रुकी सेनाको तितर-बितर कर दिया। इतनेमे ही शंबुकुमारके साथ लड़नेके लिये इधरसे क्षेमविद्ध नामका एक विद्याधर उठा। शंबुने उसे बातकी-बातमे रथभ्रष्ट बना दिया। वह तो

इसप्रकार अपनी दुर्दशा देख अपनी जान लेकर वहांसे भाग गया और कोई दूसरा विद्याधर ही युद्ध करनेके लिए पुनः तैयार हुआ और वह तीक्ष्ण तलवारों से युद्ध करने लगा किन्तु इसे भी उसने वहांसे भगा दिया।

इसके बाद शत्रुओंको रणमें पछाड़नेवाला काल—यमके समान भयंकर कालसंबर राजा बहुत ठाठ-बाटके साथ लड़नेके लिये युद्धांगणमें उतरा। उसको इसप्रकार युद्धमे उतरते देख प्रद्युम्नने शंबुको तो वारण कर दिया किन्तु खुद लड़नेके लिये बाणोंकी वर्षा करता हुआ उसके सामने आया और उससे कहने लगा कि पूज्य, आप हमारे पिताके समान हैं, इसलिये आपके साथ मुझे लड़ना उचित नहीं दीखता है, इसलिये कृपाकर आप वापिस लौट जाइये। इसके उत्तरमें कालसंवरने कहा कि प्रद्युम्न! तुम ऐसा मत कहो। हम क्षत्रिय हैं, क्षत्रियोंका यह कर्तव्य नहीं है कि वे पीठ दिखाकर रण से वापिस लौट जांय। तुम्हें मालूम है कि सच्चे सेवक वे ही कहलाते हैं, जो जी-जानसे स्वामी के काम आवें। इसलिये वीर तुम्हें ऐसे वचन संग्राममें कहना उचित नहीं है। इस समय तो तुम निःशंक हो धनुष संधान करो। उसकी यह बात सुनकर प्रद्युम्नने प्रज्ञप्ति बाणको छोड़ा और उससे कालसंवरको बाँधकर अपने रथमें बिठा लिया। यह देख शल्य विद्याधर प्रद्युम्नके साथ लड़नेको उद्यत हुआ। प्रद्युम्नने उसे आते ही उसके रथको छेद दिया, तब दूसरे रथपर सवार होकर वह प्रद्युम्नके साथ लड़ने लगा। इतनेमें शिशुपालका छोटा भाई भी प्रद्युम्न के साथ संग्राम करनेके लिये तैयार हो गया। उसने आते ही प्रद्युम्नको मारने के लिये एक ऐसा बाण छोड़ा जिससे उसको मूर्च्छा आ गई और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। अवसर पाकर उसने उसका रथ भी तोड़ दिया यह अवस्था देखकर प्रद्युम्नका सारथी भयभीत हो वहांसे भागने का रास्ता खोजने लगा। इतने मे प्रद्युम्नकुमार की मूर्च्छा दूर हो गई और वह सारथीको कहने लगा कि तुम कुछ भय मत करो। यदि तुम रणसे भाग गये तो पांडव कृष्ण आदि किसीके सामने मुंह दिखानेके योग्य भी न रहोगे। फिर इस दुःखदायी अशुचि शरीरसे क्या सिद्ध होगा तथा इस शरीरको जो सरस आहार कराया है उससे क्या लाभ होगा? सारथी को यह कहकर वे शीघ्र ही दूसरा रथ ले समर-क्षेत्र में आगये और आपसमें युद्ध शुरू हो गया। उनको युद्ध करते देख कृष्णके

हृदयमे कुछ शल्य पैदा होगई इसलिये वे उन दोनोंके बीचमें आ गये। इतनेमें शल्य नामका विद्याधर यह कहता हुआ कि मैं अभी अपने बाणोंके द्वारा इन योद्धाओं को नष्ट किये देता हूँ, रणांगणमे आया और अपने बाणोके द्वारा आकाश मंडपको ढँक दिया, जिससे वहां अंधेरा ही अंधेरा दीखने लगा। उस अंधेरेमें किसीको न तो नारायण ही दीख पड़ते थे और न उनका सारथी, किन्तु बाणोंके बीच फंसा हुआ-सा कृष्ण उस समय दीख पड़ता था, उसके जीवनमे ही संशय हो रहा था यही अवस्था उसके सारथी की थी।

इसके बीचमे ही एक मायामयी मनुष्य जिसका कि शरीर खूनसे लाल हो रहा था और थरथर कांप रहा था वहां आया और कृष्णसे बोला कि हे कृष्ण! तुम क्यो व्यर्थमें ही संग्राम करते हो। उधर देखो जरासिंध ने तुम्हारे प्रिय पांडव यादव और बलभद्र नष्ट कर दिये है, इतना ही नहीं उसने और भी बड़े-बड़े योद्धाओंको कालके गालमें पहुँचा दिया है और तुम्हारी नगरी द्वारिका पर कब्जा कर लिया है एवं द्वारिकामे आनन्दसे रहनेवाले समुद्रविजय आदि राजाओंको भी पंचत्व गति प्राप्त करा दी है। इसलिए नाथ! अब आप क्यों व्यर्थमे अपने प्राणोंको गंवाते हैं? यदि आपको सुखी होने की इच्छा है तो आप शीघ्र ही रणसे भाग जाइये। उसकी यह बात सुनकर कृष्णको बड़ा क्रोध आ गया। वह बोला कि रे दुष्ट, मेरे जीते-जी किस पुरुषकी यह ताकत है कि वह यादवोको यमपुर पहुँचा सके? कृष्णके इन रोष-भरे वचनोंको सुन कर वह मायामयी पुरुष वहां से शीघ्र ही भाग गया। पश्चात् कृष्ण हाथमें धनुष-बाण लेकर शत्रुओंकी तरफ चल पड़ा। जाते हुए रास्तेमे उसे एक विकराल मूर्ति निशाचर दिखाई पड़ा। वह कृष्णको देखकर बोला कि कृष्ण! तुम ऊपर दृष्टि करके आकाशकी तरफ देखो, तुम तो यहां संग्राम कर रहे हो उधर तुम्हारे वसुदेव लड़ाईमे मारे गये है, जिससे सारे विद्याधर समरभूमिको छोड़कर जानेके लिए प्रस्तुत हैं। यह कहकर छलसे उस दुष्टने कृष्णके ऊपर एक वृक्षबाण छोड़ा, जिसको कृष्णने अग्नि बाणके द्वारा तुरन्त ही जला कर भस्म कर दिया। इसके बाद ही उस निशाचरने पत्थर-पहाड़ गिरानेवाला क्ष्माभृत नामका बाण छोड़ा, जिसको भी हरिने वज्रबाण से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अन्तमें वह निशाचर कृष्णके प्रतापको सह न सका जिससे वह वहांसे

भाग गया। इसप्रकार कृष्णकी अनुपम शक्तिको देखकर ऊपरसे देवोंने तथा मनुष्योंने उसकी हृदयसे बहुत प्रशंसा की। इसीसमय उस विद्याधरने जो निशाचरके रूपमें आया था, कृष्णको नमस्कार कर बोला कि हे नरेन्द्र! जबतक मैं इस विद्याधरके साथ लड़ता हूँ तब तक आप अपने चक्रके द्वारा जरासिंध का शिरच्छेद कर आइये और संसारमें अपनी धवल कीर्तिका प्रसार कीजिये व्यर्थ दूसरोंको मारनेसे क्या प्रयोजन? उस विद्याधर की यह बात सुनकर कृष्णने क्रोधमें आकर यह कहा कि जब तक मैं इसे जीत नहीं लूंगा, तबतक जरासिंध कैसे जीत जायगा? यह कहकर कृष्णने शल्यके साथ ही उस दुष्ट विद्याधरको भी यमालयका रास्ता दिखला दिया। इस तरह कृष्णको विजयलक्ष्मीका स्वामी होते देख हर्षसे प्रफुल्लित हो ऊपरसे देवगण पुष्पों की वर्षा करते हुए।

इसके पश्चात् चक्रव्यूह छेदनकी प्रतिज्ञा करके कृष्ण अपने साथ तीन शूरवीरोंको लेकर जरासिंध के यहां गया और वहां जाकर उसका चक्रव्यूह छेद दिया जिसप्रकार कि वज्र पहाड़को भेद डालता है। यह देखकर जरासिंध को बहुत क्रोध आया। उसने क्रोधके आवेश मे आकर तुरन्त ही शत्रुओंको नाश करनेके लिये दुर्योधनादि तीन योद्धाओंको भेजा। उस समय दुर्योधनके साथ अर्जुन, विरूप्यके साथ रथनेमि और हिरण्यनाभके साथ युधिष्ठिर इन तीन युगलोंका आपसमे संग्राम होने लगा। उन्होंने बहुत देर तक घमासान संग्राम किया, जिसमें बहुतसे हाथी, घोड़े, रथ, पयादे मारे गये और नष्ट-भ्रष्ट हुए। इस भयावह संग्रामको देखकर शूरवीरोंमे वीरताका संचार होने लगा और कायरोंमें कायरताका, इस समय दुर्योधन ने अर्जुनसे कहा कि रे पार्थ! उस वक्त तो तू आगमें जलनेसे बच गया था, रे निर्लज्ज अब तू व्यर्थ ही गर्व क्यों धारण किये हुए है, तुझे मेरे सामने खड़े होते लज्जा नहीं आती है। यह सुनकर अर्जुनने तुरन्त ही अपने हाथमे धनुष-बाण ले प्रलयकालके मेघके समान गर्जना करता हुआ भयावह शब्द किया और बातकी बातमे उसने दुर्योधनको अपने बाणों द्वारा आच्छादित कर दिया और उसका धनुष भी छेद डाला, किन्तु बीचमें ही तब तक वहाँ जालन्धर राजा आ गया और अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा।

इसके बाद रूप्यकुमार युद्धस्थलमें उतरा और उसने अर्जुनसे कहा कि

आप अन्यायका पक्ष क्यों लेते है? यह कृष्ण दूसरोंकी कन्याओको हरण करनेवाला है यह सुनकर पार्थने रोष-भरे शब्दोंमें कहा कि कुमार क्यो तू मंडूककी तरह व्यर्थ टर्रा रहा है, लड़नेको तैयार हो। मैं तुझे न्याय अन्याय का पता बहुत जल्दी ही बताये देता हूँ। यह कहकर अर्जुनने बाणोंको छोड़ना शुरू कर दिया जिससे रूप्य नामका विद्याधर हता गया। इस समय जयशील युधिष्ठिर उन्नतिशील अर्जुन और रथारूढ़ रथनेमि समरभूमि मे अपूर्व शोभा पा रहे थे। ये तीनों ही जरासिंध के चक्रव्यूहको शीघ्र बेध कर यादवोंकी सेना मे आ गये।

इसके बाद युधिष्ठिरने फिरसे संग्राम करना प्रारम्भ किया और उन्होंने जरासिंधके हिरण्य नामक भारी योद्धाको और वीरोंके साथ यमपुर भेज दिया। संध्याका समय हो गया था, सूर्य अस्ताचल को पहुँच गया था और रात्रिका आगमन हो गया था इसलिये राजा लोग मृतक भटोंकी यथायोग्य व्यवस्था करके अपने-अपने डेरे चले गये।

इसके बाद जरासिंधने अपने चतुर मंत्रियोंको बुलाकर उनके साथ परामर्श किया कि अबकी बार कोई ऐसा योग्य शक्तिशाली पुरुष सेनापति बनाना चाहिये जो कि शत्रुओं पर पूर्णरूपेण अपना रौब डाल सके। परामर्श करनेके बाद इस निश्चय पर पहुँचे कि इस पदके योग्य तो गेबक है इसलिये 'सेनापति' का पद गेबकको ही दिया जाना चाहिये और उसको वह पद दे भी दिया गया। उसी समय दुर्योधनने अपना एक दूत पांडवोंके पास भेजकर उससे यह कहलवाया कि तुम लोगोंको मैने बहुत से कष्ट दिये है, उन सबोंको स्मरण करके अपना बदला चुकानेके लिए मेरे साथ क्यों नहीं संग्राम करते हो? मै यह सत्य कह देता हूँ कि अब मै तुमको हरगिज भी जिन्दा नहीं छोडूंगा। यह सुनकर पांडवोने दूतसे कहा कि जाकर तुम अपने स्वामीसे कहो कि वह यमपुर जानेके लिए अपनी शीघ्र तैयारी करले। हम जरासिंधके साथ उसे भी यमपुरका अतिथि बना देगे। यह बात सुनकर दूत तुरन्त ही कौरवोके पास आया और उनसे सब समाचार कह दिये। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि उस समय यह सब काम देखनेके लिये ही मानों सूर्य उदयाचलसे उदित हुआ था। इस प्रातःकाल के समयमे सुभटोको उत्साहित करनेवाले बाजे बजने लगे जिनको सुनकर

योद्धागण अपनी-अपनी तैयारी करके समरभूमिमें पहुंच गये, उन्हें देखकर रथमें बैठे हुए अर्जुनने सारथीसे कहा कि तुम मुझे यह बताओ कि रथमें कौन-कौन बैठे हुये हैं।

पार्थकी यह बात सुनकर सारथीने इशारा करके कहा कि राजन्! देखिये यह काले घोड़ेवाले रथमें जिसकी कि लाल ध्वजा है उसमें पितामह बैठे हुए हैं। यह लाल घोड़ोंवाला रथ द्रोणका है उसकी कलशकी ध्वजा है। नागकी ध्वजा वाला नीले घोड़ोवाला दुर्योधनका रथ है। पीले घोड़ोंवाला जाल की ध्वजा सहित दुःशासनका रथ है। वानरकी ध्वजावाला सफेद घोड़ोंका अश्वत्थामाका रथ है। सीताकी ध्वजावाला लाल घोड़ोंका शल्य का रथ है और कोलकी ध्वजा वाला लाल घोड़े जिसमें लगे हुये है वह रथ जयद्रथका है। इस प्रकार वहाँ आये हुए सब राजाओंका परिचय पाकर धनंजय लड़ाई करनेके लिये उठा, साथमें उसके योद्धा भी संग्रामके साजबाजसे लैस होकर समरभूमिमें आ गये। उधर अभिमानके मदसे भरे हुये पितामह भी वहां आ गये। आते ही वे अपने धनुष पर डोरी चढ़ाकर अभिमन्युके ऊपर टूट पड़े। अभिमन्युने भी उस समय अपने बाण प्रहारसे पितामहकी ध्वजा छेद दी इसके बाद गांगेयने भी उसकी ध्वजा छेद दी। तब अभिमन्युको क्रोध आया और उसने अपने बाण के द्वारा उनके सारथीको एवं उनके रथकी ध्वजाको भी छेद दिया। उस समय वहां सब लोग अभिमन्यु की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह साक्षात् पार्थ ही है। देखो न इस एक बालकने सैकड़ों योद्धा नष्ट कर दिये, यह बहुत बलवान है इतनेमे ही पार्थके सारथी उत्तरकुमारने भाला तलवार आदि हथियारोको लिये हुए शल्यको ललकारा। यह देखकर शल्यको भारी गुस्सा आया और उसने एक ही बाणसे उत्तरका काम तमाम कर दिया। अपने भाईको भूमि पर पड़ा हुआ देख विराटका दूसरा पुत्र श्वेतकुमार वहां दौड़ा आया और उसने उसी वक्त शल्यके ध्वजा शस्त्र आदिको छेदकर उन्हे जमीनपर गिरा दिया। इसी समय क्रोधसे जाज्वल्यमान हुए पितामह दौड़े, श्वेतने अपने वीर्यसे उन्हे आगे बढ़नेसे बहुत रोका पर जब वे किसी प्रकार न रुके तब उसने उन्हे बाणों द्वारा एकदम आच्छादित कर दिया, जिसप्रकार कि सघन मेघो द्वारा सूर्य आच्छादित कर दिया जाता है। यह देखकर इसको मारो काटो आदिकी

आवाज करता हुआ दुर्योधन वहां दौड़ा आया। किन्तु जिसप्रकार अग्नि जल से शान्त हो जाती है ठीक उसीप्रकार पार्थने दुर्योधनको वहीं का वहीं रोक दिया। एक कदम भी आगे नहीं बढ़ने दिया और गाण्डीव धनुष उठाकर उसने दुर्योधनपर सैंकड़ों बाणोंकी वर्षा की किन्तु उससे दुर्योधनकी कुछ भी क्षति नहीं हुई। तब वे दोनों वीर हाथ में तलवार भाला आदि लेकर परस्पर में भयानक युद्ध करने लगे। उधर विराटके पुत्र श्वेतकुमारने पितामहके धनुष ध्वजा छत्र आदि छेद डाले और वक्षःस्थलमें तलवारका एक ऐसा प्रहार किया जिससे कि कौरवोंकी सेनामें भारी कोलाहल मच गया। इतनेमे ऊपरसे आकाशवाणी हुई कि हे पितामह ! कायर मत हो, धैर्य धारण करो। घबड़ाओ नहीं इस समरमे तुम वीरोंका संहार करो।

आकाशवाणी सुनकर पितामह सावधान हुये और हाथमें अस्त्र उठा लक्ष्य बांधकर श्वेतकुमारके ऊपर एक ऐसा बाण छोड़ा जिसके लगते ही वह धराशायी हो गया और हृदय में पंचपरमेष्ठीका स्मरण करते हुये शरीर त्याग किया जिससे मरकर वह स्वर्गमें देव हुआ।

इस समय संध्या हो गई थी, सूर्य अस्ताचलमें पहुँच गया था और यामिनी-रात्रिका अधिपत्य आगया था सो ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों रण बन्द करनेके लिये एवं क्षत हुये वीरोंकी मलहमपट्टीकी व्यवस्था करनेके लिये दया देवी रात्रिका रूप धारण करके ही आ गई हो। उभय पक्षके वीरगण उस समय अपने-अपने डेरोंमें चले गये। रण बन्द हो गया, घायल हुये वीरोंका पता लगाया तो मालूम हुआ कि विराटका पुत्र श्वेतकुमार देवलोकमें पहुँच चुका है। यह जानकर उस समय विराट को भारी दुःख हुआ। वह पुत्र वियोग से भारी विलाप करने लगा। वह कहने लगा कि युद्धमे धर्मपुत्र, भीम, अर्जुन आदिके रहते हुए भी किसीने मेरे पुत्रकी सहायता नहीं की। उसके इस प्रकार करुण विलापको सुनकर धर्मनिष्ट धर्मपुत्रका चित्त दयासे एक दम आर्द्र हो गया। उन्होने उसी समय यह दृढ़ प्रतिज्ञाकी कि 'मै आजसे सत्रहवे दिन तक शल्य को अवश्य ही मार डालूंगा। यदि नहीं मार सका तो आप सब लोगोंके देखते-देखते ही अग्निमें कूदकर अपनेको भस्म कर दूंगा।' उनकी प्रतिज्ञाको सुनकर शिखंडीने भी यह प्रतिज्ञा की कि 'मै आजसे नौवे दिन भीष्मपितामहको

अवश्य ही खंड-खंड कर दूंगा। यदि नहीं कर सका तो अपनेको अग्निमें होम दूंगा।' इसीप्रकार धृष्टद्युम्न भी प्रतिज्ञाबद्ध हो गया कि मैं भी हिरण्य-नाभ सेनापतिको यमलोक पहुँचा दूंगा।

रात्रिके बाद अंधेरा नष्ट हो गया और सूर्यका उदय हुआ। उदय होते ही उभय पक्षके योद्धाओं ने भयंकर युद्ध करना आरम्भ कर दिया। घोड़ेवाले, घोड़ेवालोंसे और पयादे पयादोंसे भिड़ गये। इधर धनंजय भी भूखे सिंहकी तरह सुभटोंपर टूट पड़ा, जिससे वे लोग इधर उधर भागने लगे। धनंजय की विजय हुई। यह देख पितामहने उसे असंख्य बाणोंके द्वारा आच्छादित कर दिया और उसे आगे बढ़ने से रोक दिया, जैसे कि नदीके किनारे नदीके जलको रोक देते हैं। इधर धनंजयने भी अपनेबाण छोड़े और उन बाणोंसे पितामहके बाणों को विफल कर दिया। उसने अपनी अविरल बाण-वर्षासे हाथियोंकी सुण्डोंको, घोड़ोंके पांवोंको और रथोंके पहियोंको एकदम छेद दिया और अपने गाण्डीव धनुष द्वारा शूरवीरोंके कवचको छेद दिया। यह देखकर पितामहकी निन्दा करता हुआ दुर्योधन बोला कि तात! आपने पराजयकारी युद्ध शुरू क्यों कर रखा है? आप तो इस तरीकेसे युद्ध कीजिये कि जिससे अर्जुन युद्धमें ठहर ही न सके। भला आप सोचो तो ऐसा कौन बुद्धिमान सुभट होगा कि जो अपने घर विपत्ति आ पड़नेपर शान्तिका अवलम्बन लेकर बैठा रहे। दुर्योधनकी यह बात सुनकर गांगेय पार्थके साथ बड़ी वीरता पूर्वक लड़नेको उद्यत हुये। यह देखकर अर्जुनने कहा कि पितामह! आपका मेरे साथ युद्ध करना एकदम व्यर्थ है क्योंकि मैं आपको यमपुर भेजकर इस लड़ाई को समाप्त किये देता हूँ।

इसके बाद वे दोनों योद्धा बड़ी वीरताके साथ युद्ध करने लगे, इसी बीच में द्रोण वहाँ आकर धृष्टद्युम्न पर झपटे और उन्होंने थोड़ी देरमें ही महायुद्ध करके धृष्टद्युम्नके रथकी ध्वजाको छेद दिया। यह देख धृष्टार्जुनने द्रोणके छत्र ध्वजा आदिको भेद दिया तब द्रोणने उस पर शक्ति बाण छोड़ा जिसको कि उसने उसे भी विफल बना दिया। उनकी इस कृतिको देखकर धृष्टार्जुनने गुरुपर दौड़कर लोहकी यष्टि अर्थात् गदाकी मार मारी किन्तु उन्होंने उसको बीच में ही रोक दिया।

इसके बाद वे बायें हाथमें ढाल और दाहिने हाथमें तलवार लेकर आये।

इधर भीम हाथमें गदा लेकर दौड़ा और उसने कलिंग पुत्रको मार गिराया। पश्चात् वह कौरवोंको त्रास देता, वैरियोंके समूह को दलता हुआ क्रीड़ा करने लगा। उसने अपनी गदाके द्वारा सात सौ रथोंको भी चूर-चूर कर दिया एवं एक हजार हाथियोंको भी नष्ट कर दिया जिससे कि उसे जयलक्ष्मी प्राप्त हुई।

इसी बीच द्रोणाचार्य ने धृष्टार्जुनकी तलवारको छेद दिया। उधर अभिमन्युने द्रोणका रथ छिन्न-भिन्न कर दिया। इतनेमें दुर्योधनका पुत्र लक्ष्मण वहाँ आ धमका और उसने अभिमन्युके धनुष को तोड़ डाला, तब वह दूसरा धनुष ले शत्रुओंको हटाने लगा। उसे इस प्रकार अजेय देखकर एक साथ हजारों ही शत्रुओंने आकर उसे चारों तरफ से घेर लिया। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था कि मानों मदमत्त हाथियोंने पराक्रमी सिंह के शावक—बच्चेको ही घेर लिया हो। यह देखकर हाथमे गाण्डीव धनुष ले अर्जुन वहाँ आया और उसने सब शत्रुओको बातकी बातमें तितर-बितर कर दिया और अपने पुत्र अभिमन्युको स्वतन्त्र बना दिया। इस प्रकार युद्ध करते हुए जब नौवां दिन आया तब शिखंडी ने लड़ाई के लिए गांगेय को ललकारा।

उस समय पार्थने शिखंडीसे कहा कि मेरा यह समर्थ बाण लो और इसके द्वारा वैरियोंको ध्वंस करो। इस बाणके द्वारा मैंने खंडवनको जलाया था। यह सुनकर उस वीर शिखंडीने उस बाणको ले लिया। पश्चात् दोनोंमे भीषण युद्ध होने लगा। उन्हें लड़ते हुए बहुत समय हो गया किन्तु उन दोनों में कोई भी योद्धा जीत नहीं पाया। यह देखकर ऊपरसे देवताओं ने उनकी बहुत प्रशंसा की। यह देखकर धृष्टद्युम्नने शिखंडीसे कहा कि हे शिखंडिन्! तुमने संग्राम तो बहुत किया, किन्तु अभी तक गांगेय रणमे डटा हुआ है, उसका रथ और पताका भी वैसी ही है, इसलिये फिर तुम्हारे इस युद्धसे क्या प्रयोजन? इसलिये तुम पूर्ण पराक्रम लगाकर शीघ्र शत्रुओको वशमे करो, तुम अपने को निःसहाय मत समझो। तुम्हारी सहायता करनेको द्रुपद और विराट तैयार है। यह बात सुनकर शिखंडीकी आत्मामें बहुत जोश आ गया, उसने तुरन्त ही धनुष चढ़ाया और एक साथ असंख्य बाणोको छोड़कर धनुर्धर पितामहको बाणोसे पूर दिया। यह देखकर कौरवोंकी सेनाने भी उसपर खूब ही बाणों की वर्षा की किन्तु वे बाण शिखंडीके ऊपर कुछ असर नहीं कर सके। इधर

वज्र जैसे कठोर बाण धृष्टद्युम्न भी शत्रु सैन्यपर छोड़ रहा था। उधर से गांगेयके बाण भी छूट रहे थे, जो शिखंडीके आकर फूल–जैसे लगते थे, दुःख की जगह वे उसको सुखदायी मालूम होते थे। सो ठीक ही है जिन जीवोंके पुण्य कर्मका उदय तीव्र है उनके लिये असाता रूप सामग्री भी साता रूप परिणमन कर जाती है–कष्ट भी सुख रूप हो जाता है। पितामह इस शत्रुको मारनेके लिये जो भी बाण उठाते उधर धृष्टद्युम्न उसे छेदता जाता था। सो ठीक ही है पुण्य क्षीण होनेपर जीवोंकी सारी सम्पत्ति देखते २ ही विलीन हो जाती है, चाहे वह पुत्र हो, रुपया पैसा हो, कुछ भी हो, जैसे हाथीके द्वारा खाया कपित्थ साबूतका साबूत मलद्वारसे निकल जाता है और उसको फोड़ने से भीतरका गूदा न जाने किस रास्ते से निकल जाता है।

इसी समय शिखंडीके तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा गांगेयका कवच छेदा गया। उसने थोड़ी ही देरमें उनके सारथी, रथ और रथकी ध्वजाको भी छेद डाला इतने पर भी पितामह बिना रथके हाथमें तलवार लेकर शिखंडीको नष्ट करने के लिये उसकी तरफ दौड़े। शिखण्डीने भी अपने प्रखर बाणोंके द्वारा उनकी तलवारको भी विफल बना दिया और खुद उनके हृदयको अपने बाणोंके द्वारा छेदनकर दिया। बाण लगनेके साथ ही वे पवित्र वीर भूमिपर गिर पड़े और अपनी आयु पूर्ण होती देखकर उन्होंने सन्यास धारण कर लिया और धर्म-ध्यानमें मनको लगाया। उन्होंने उस समय बारह भावनाओं का चिंतवन किया, पंच परमेष्ठीका आराधन किया एवं शरीर और भोजनसे ममता छोड़ दी। पितामह की यह अवस्था देखकर सब राजा लोग युद्ध छोड़-छोड़कर उनके पास दौड़े आये। पांडवोंको उनकी इस दशापर बड़ा भारी दुःख हुआ। वे उनके चरणोंमें मस्तक रखकर रुदन करने लगे–अश्रुओंकी धारा बहाने लगे। वे बोले हे गुणी! आपने आजन्म ब्रह्मचर्य धारण किया जो कि सब व्रतोंमे उत्तम व्रत है। अहो पूज्य पिता! तुम सब गुणोंकी खानि थे। दुःखसे जर्जरित हुये युधिष्ठिर बोले–हे श्रेष्ठ व्रतपालक वीर! यह मृत्यु हमे क्यों नहीं आई? हम आपके इस वियोगजन्य दुःखको सहन नहीं कर सकते हैं। उस समय उनके रुदनको सुनकर बाणोंसे जर्जरित पितामहने कौरव और पांडवोंसे कहा कि हे बुद्धिमान् वीरों! अन्तमे मेरा तुम लोगोंसे यही कहना है कि तुम पारस्परिक

शत्रुताको छोड़कर सब जीवोंको अभयदान दो, आपसमे मित्रतासे रहो। मुझे इस बातका दुःख है कि मेरे नौ दिन व्यर्थमें ही चले गये किसीको कुछ नहीं प्राप्त हुआ। हां इतना जरूर हुआ कि युद्धमे जो लोग मारे गये वे नीच गतिके पात्र हुये होंगे। खैर अब तो दशलक्षण धर्मको स्वीकार करो जो कि आत्माका स्वरूप है।

इसी समय शुभ कर्मके संयोगसे दो चारण ऋद्धिधारी मुनीश्वर आकाश मार्गसे विहार करते हुये आये। उनके नाम हंस और परमहंस थे। वे मुनिराज परम-दयालु, शुद्ध हृदयी, उत्तम तपोंको तपनेवाले आदि गुणोके भण्डार थे। वे महाभाग पितामहके पास जाकर उनसे बोले कि महापुरुष! तुम वीर योद्धा हो, तुम्हारे बराबर संसारमे कोई दूसरा वीर नहीं है। यह सुनकर गांगेय उन दोनों मुनियोंके चरणोंमें नमस्कार कर बोला कि हे दयालु प्रभो, इस संसार रूप महा बनमे भटकते हुये मैने आज तक भी धर्मको नहीं पाया। अब आप कृपाकर बतलाइये कि स्वामी इस समय मैं क्या करूं? नाथ मैं इस समय आपकी शरण हूँ मेरा जिस तरह भी हो सके उद्धार कीजिये। यह बात सुन कर मुनिराजने कहा कि हे भव्य, तुम सिद्धोंका स्मरण कर चार आराधनाओं को आराधो। वे आराधना ये हैं—तत्वार्थके श्रद्धानको—वस्तुके स्वभाव सहित पदार्थोंके श्रद्धान करनेको दर्शन आराधना कहते हैं इसमे सम्यक्त्वकी आराधना की जाती है। जो नय प्रमाणके द्वारा पदार्थोंका यथार्थज्ञान होना सो ज्ञान आराधना है। इसमें जिन कथित भावनाओंके सम्यग्ज्ञानकी आराधना होती है और चैतन्यरूप आत्मासे ही रमण-प्रवृत्ति करना सो चारित्र आराधना है। इस आराधनामे कर्मोंकी निवृत्ति और आत्मामे सम्यक्प्रवृत्ति होती है तथा जहां अन्तरंग बहिरंगके भेदसे दो प्रकारका तप तपा जाता है उसको तप आराधना कहते है। ये आराधना निश्चय और व्यवहारके भेदसे दो प्रकारकी है। इसप्रकार आराधनाओंके आराधनेकी विधि बतलाकर वे निस्पृही ममत्व-त्यागी मुनिराज तो वहांसे चले गये और इधर पितामहने उन आराधनाओंको आराधन करना प्रारम्भ कर दिया।

इसके पश्चात् उन धीर-वीर पितामहने चार प्रकारके आहार—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेयको तथा शरीरसे ममत्वको छोड़कर रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन

ज्ञान चारित्रमें लीन हो सल्लेखनाकषायोंको कमती करना ग्रहण किया, सब जीवोंसे क्षमा कराई और क्षमा प्रदान की और पंच परमेष्ठीके ध्यानमें चित्त को लगाते हुए शांत परिणामोंसे इस नश्वर शरीरको त्याग दिया। वे वहांसे मर कर ब्रह्म नामक पाँचवें स्वर्गमे देव हुए, वहां वे मनवांछित सुखोंका अनुभव करते हुए, सो ठीक ही है, इस जीवको संसारमें एक धर्म ही सुख देनेवाला है। पितामहके स्वर्गीय हो जानेके बाद जगतकी शून्यताको नित्य मानते हुए वे कौरव और पांडव वहाँ भारी रुदन करते हुए और भी लोगोंने रोते पीटते हुए वह रात व्यतीत की। प्रातःकाल हुआ सूर्य निकल आया। इस तरह यह जीव संसार-चक्रमें नित्य ही भ्रमण करता हुआ कभी इस गति में और कभी इस गतिसे उस गतिमें चला आ रहा है कहीं भी स्थिरता नहीं है। यह लक्ष्मी चपलाकी तरह चपल है, यह स्वजन सुत बन्धु-सुख जलकल्लोलवत् विनश्वर है यह जीवन पानीके फेन समान देखते-देखते नष्ट होनेवाला है। इसप्रकार सांसारिक वस्तुओंकी अनित्यताको समझकर जो सच्चे श्रद्धानी हैं उनको सदा ही धर्ममें बुद्धि लगाना चाहिये।

जो शुभमति, ब्रह्मचारी पितामह लड़ाईमें धर्मकी प्रतिज्ञाकर अपनी आत्मा को शांत रखकर पांचवे स्वर्गमे ऋद्धिधारी देव हुये उनकी जय हो तथा धर्मात्मा, धर्मके ज्ञाता, न्याय नीतिमें कुशल उन युधिष्ठिर महाराजकी भी जयहो जो धर्म के प्रसादसे श्रेष्ठ ज्ञानको प्राप्त हुए।

ग्रन्थकार कहते हैं कि जिन धर्मके समान संसारमें और कोई रत्न नहीं है इसलिये इस धर्म-रत्न को सदा ही पालन करना चाहिये।

अथ इक्कीसवाँ अध्याय।

मैं उन धर्मनाथ प्रभुको नमस्कार करता हूँ जो कि धर्मके प्ररूपक हैं, धर्म के धुरी हैं और जीवोंको धर्मका रास्ता बताते हैं एवं भयंकर कर्मो के छेदनेके लिए तीक्ष्ण कुठारी हैं। अन्धकूपमें फँसे हुए जीवोंकी दुर्मतिको नष्ट करने वाले है। वे प्रभु मुझे धर्म बुद्धि देवें।

जब प्रातः काल हो गया, तब योद्धागण उठे और प्रलयकालकी वायुसे प्रेरित क्षोभयुक्त हुए समुद्र की तरह युद्धस्थलमें जा पहुँचे। वे पृथ्वीके भीतर

रहनेवाले सर्पोको पद दलित करते हुए एवं दिशापतिको क्षुब्ध करते हुए लड़ाई करनेको उद्यत हो गये। अर्जुनने उस समय मृत्युका आलिंगन करते हुए हाथ में धनुषबाण ले लड़ाई के अन्दर हाथी घोड़ोंको तितर-बितर करके समरको और भी विकट बना दिया। इसी समय महान योद्धा वीर अभिमन्यु समर भूमिमे आया और विश्वसेन के साथ लड़ाई करने लगा और थोड़ी ही देरमें अभिमन्युने उसके सारथीको धराशायी कर दिया। सारथीके धराशायी होने पर वह वीर स्वयं रथ चलाता हुआ लड़ाई करने के लिए अभिमन्युके सामने आया। वे दोनों आपसमे एक दूसरे पर बाण-वर्षा करते हुए। अन्तमें अभिमन्युके प्रखर बाणोंकी मारसे वह शल्यपुत्र कालग्रसित हो गया उसको इस अवस्थामें देखकर दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मणने अभिमन्युको बाणोंसे आच्छादित कर दिया तब अभिमन्युने भी अपने बाणोंको चलाना शुरू किया और लक्ष्मणको भी पंचत्व-गति प्राप्त करा दी। इसी प्रकार और भी उसने चौदह हजार कुमारों को यमका अतिथि बना दिया। वह उस समय महान भटोंको मारता हुआ इस प्रकार शोभाको प्राप्त होता था कि मानों हाथियोंके मस्तक को विदीर्ण करता हुआ पराक्रमी सिंह ही हो।

उसकी इस कृतिको देखकर दुर्योधनको बड़ा भारी गुस्सा आया और उसका मन अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा। उस समय उसने अपने वीर योद्धाओंको उत्साह देते हुए प्रेमभरी दृष्टिसे देखा। उसकी इस कृतज्ञतापूर्ण दृष्टिको देख कर योद्धाओंका मन लड़ाई करनेके लिये अत्यन्त चंचलित हो उठा और वे उत्साह पूर्वक हाथी घोड़े रथ आदि पर सवार होकर समर-भूमिको रवाना हो गये। उनके साथ ही द्रोण भी शत्रुओंके हृदयको भयभीत करता हुआ चला, कलिंग और कर्ण भी वहां पहुँच गये। दोनो तरफकी सेना इकट्ठी हो गई और परस्परमे लड़ाई होना शुरू हो गया। वीर अभिमन्युने थोड़ी देरमे ही कलिंगके हाथीको मार गिराया तथा कर्ण और द्रोणके गर्वको नष्ट कर दिया मतलब यह है कि अभिमन्युने जहां-जहां भी लड़ाई की वहां-वहां ही उसने विजय लाभ किया। वहां पर ऐसा सूर नहीं था जो कि अभिमन्यु का सामना करता। यह ठीक है कि हाथी कितना ही मन्दोन्मत्त क्यो न हो तो क्या वह सिंहका सामना कर सकता है? उस समय लड़ाईमे कोई भी ऐसे हाथी घोड़े

रथ पयादे नहीं बचे जो अभिमन्युके बाणोंके लक्ष्य नहीं हुये हों।

लड़ाईकी यह अवस्था देखकर वीर अक्षय कुमारने दश बाणोंको एक साथ छोड़कर अभिमन्यु को घायल बना दिया। वह घायल होते ही पृथ्वीपर गिर पड़ा। पश्चात् जब मूर्च्छा भंग हुई तो वह लड़ाईके लिये फिर खड़ा हो गया और उसने अपने प्रखर बाणोंके द्वारा हाथमें धनुष बाण लेकर दौड़ते आते हुये अश्वत्थामा को क्षणैकमें विमुख कर दिया। यह देखकर कर्णने द्रोणाचार्यसे कहा कि गुरुवर्य! अभिमन्युने लक्ष्मण आदि हजारों योद्धाओंको यमपुर भेज दिया किन्तु वह ज्योंका ज्योंही स्थिर रहा। तब बतलाइये उसकी इस लड़ाई में मृत्यु होगी या नहीं? यह सुनकर द्रोणने कहा कि कर्ण! भला तुम्हीं कहो कि जिस एक अकेले वीर योद्धाने राजाओंको पछाड़ दिया, उसे मारनेकी किसमें क्षमता है? इसके पश्चात् द्रोणने क्रोधित होकर राजा लोगोंको जोरसे पुकारा और कहा कि इसे मारो और इसका धनुष बाण छीनकर तोड़ डालो-सावधान यह भाग न जावे। यह सुनकर राजा लोग जोशमें आकर उठ खड़े हुये और न्याय अन्यायका कुछ भी ख्याल न करके सबके सब उस वीर बालकको मारनेके लिये टूट पड़े किन्तु उस वीर बलीने अकेले ही उन सबोंको समर-भूमिमें पराजित कर दिया। लेकिन थोड़ी ही देरमें वे सब राजा जोशमे आकर उस वीर अभिमन्युके साथ लड़ाई करनेके लिए आ डटे और उन्होंने अपने बाणों द्वारा कुमार का पताका सहित रथ छिन्न-भिन्न कर दिया। यह देखकर अभिमन्युने वज्रका दण्ड हाथमें लेकर सबको बातकी बातमें चकनाचूर कर दिया।

इसी समय जयद्रथने आकर अभिमन्युको अपने बाणों द्वारा बेध दिया परन्तु तो भी वह वीर दृढ़ता पूर्वक उसके सामने स्थिर हो खड़ा रहा, अन्तमे वह घायल हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय देवोंके हाहाकार शब्दोंसे पृथ्वी भर गई, न्यायी राजा हाहाकार करने लगे और कहने लगे कि यह अभिमन्युके साथ भारी अन्याय हुआ है जो कि एक साथ इतने वीर योद्धा उस बालक पर टूट पड़े। उसे पीड़ित देखकर गुस्साको दूरकर अत्यन्त शांतचित्त हो कर्णने कहा कि कुमार! थोड़ा-सा ठण्डा पानी पिओ जिससे तुम्हें कुछ शांति मिले। स्थिरचित्त अभिमन्युने उत्तर दिया राजन्! अब मैं जल न पीकर उपवास धारण करूंगा और तरण-तारण पंचपरमेष्ठीका स्मरण करता हुआ प्राणोंका

उत्सर्ग करूंगा। इस प्रकार कुमारने शांति-युक्त वचन कहे तो द्रोण आदि उसे निर्जन वनमे ले गये। वहाँ वह अपनी आत्माका चिंतवन करता हुआ स्थिर रहा। काय और कषायोंको क्षीणकर सबोंसे क्षमा कराकर और स्वयं क्षमा-प्रदान कर पंचपरमेष्ठिके ध्यान पूर्वक उस वीरात्माने अपना यह अशुचिमय शरीर त्यागकर दिया। निदान रहित प्राण छोड़े इसलिये विक्रियाका धारी गुणोंका आकर स्वर्गमें जाकर देव हुआ। उधर दुर्योधनको जब अभिमन्यु के हरणके समाचार पहुँचे तो उनके हर्षका पारावार नहीं रहा, उन्होंने इस खुशीमें अनेक प्रकारके वादित्र बजवाये। इतनेमे रात्रिका प्रवेश हुआ, सूर्य अस्ताचलमें पहुँच गया सो ऐसा मालूम पड़ता था कि अभिमन्युका मरण सूर्य को सहन नहीं हुआ इसलिए वह भी उसी वीरके साथ विलीन हो गया। रात्रि का आगमन लड़ाईका वर्णन करने और कौरवोंकी सेनामें नया उत्साह प्रदान करने को बतलाता था।

वीर अभिमन्युकी मृत्यु के समाचारोंसे कृष्णकी सेनामें बड़ा भारी शोक छाया हुआ था। सब राजाओं की आंखों से अविरल अश्रुधारा पड़ रही थी वे बहुत दुःखी हो रहे थे अभिमन्युकी मृत्यु को सुनते ही युधिष्ठिर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा, वह पड़ा हुआ ऐसा मालूम देता था जैसा कि प्रलयकाल की प्रबल वायुसे उन्नत कुलाचल—पहाड़ ही उड़कर जमीन पर गिर पड़ा हो। इसके बाद जैसे-जैसे उसे चेतना आती गई, तैसे-तैसे ही वे दुःखपूर्ण स्वरमे रुदन करने लगे कि हा पुत्र, तू कहां गया? तेरे बिना यहां कौन ऐसा पराक्रमी योद्धा है, जो अकेला ही हजारों शत्रुओको एक साथ यमका घर दिखा सके। हा पुत्र, तूने ही जालन्धर राजा की बारह हजार सेनाको मारकर उस पर विजय पाई थी। हा, किस पापी दुष्टने तुम जैसे शूरवीर योद्धाको धराशायी बना दिया?

उनको इस प्रकार रुदन करता देखकर शोकसे तीव्र संतप्त हुआ अर्जुन भी वहां आ गया और भाईसे कहने लगा कि पूज्य! सब योद्धा समरभूमिसे वापिस आगये किन्तु अभी तक अभिमन्यु नहीं आया है यह क्यों? क्या चक्रव्यूहमे शत्रुओंने उसे मार तो नहीं दिया है या स्वयं ही तो नहीं मर गया? अर्जुनके ऐसे वचन सुन युधिष्ठिरने बड़े भारी कष्टसे अर्जुनके प्रति कहा कि

भाई, तुम उस समाचारको सुनकर कैसे धैर्य धारण करोगे ? मेरी वह समाचार कहते छाती फटती है, देखो इस अन्याय को कि एक बालक पर हजारों नीच राजाओंने एक साथ प्रहार कर अभिमन्युको मार दिया, बस यह सुनते ही पार्थ मूर्छित हो धड़ामसे जमीन पर गिर पड़ा। पश्चात् जब उसे चेतना हुई तो वह शोकपूर्ण हो करुण रुदन करने लगा कि जिसको सुन २ कर छाती टूक टूक हो जाती थी। वह कहने लगा कि हा पुत्र, अब तुम्हारे बिना पृथ्वीका पालन कौन करेगा ? अब कौन वैरियोंको जीतेगा ? इसी समय वहां कृष्ण भी आगये एवं शांतिदायक वचनोंमें बोले कि पार्थ आज तुम्हारा प्यारा पुत्र नहीं गया है, किन्तु हमारी सेनाको एक बिधवा स्त्रीके समान कर गया है, वह मुझे अत्यन्त प्यारा था, वह मुझे आज दुर्लभ हो गया है इसलिये भाई अब शोक न करो, हृदयमें धैर्य और सन्तोष धारण करो। तुम्हारा यह समय यहां बैठकर कायरोंकी तरह रुदन करनेका नहीं है। यदि इससमय तुम कायरोंकी तरह शोक करोगे तो शत्रुओंके मनमें प्रसन्नता होगी इसलिए शोक को छोड़कर शत्रुओंका ध्वंस करो। अभिमन्यु को मारनेवाले नराधमको इस अपराधका फल चखा देना ही तुम्हारा कार्य है। तुम समझते हो कि बुद्धिमान पुरुष समय देखकर ही काम करते हैं। इधर समझा-बुझाकर कृष्णने अर्जुनको ठीक किया तो उधर सुभद्रा विलाप करती हुई वहां आ गई और इन समाचारों को सुनते ही मूर्छित हो गई। इसके बाद जब उसे चेतना हुई तो वह भी जोरोंसे चिल्लाती हुई हा हा पुत्र कहती रुदन करने लगी। हा पुत्र, तुम सहाय बिना लड़ाईमे मारे गये। हा पुत्र, तुम इस दुस्तर बिछौनेपर कैसे चुपचाप पड़े सो रहे हो ? क्या तुम्हारी उस समय किसीने भी सहायता नहीं की, हा महाभाग युधिष्ठिर क्या तुमने भी मेरे पुत्रकी रक्षा नहीं की ? हा प्रभो, आपके इस वंशमें कुल दीपक पुत्र दूसरा फिर कौन अवतार लेगा। हा पराक्रमी भीम, आप भी क्या मेरे लाडले पुत्रकी सहायता करने नहीं पहुँचे, हा स्वामी वीर अर्जुन तुम्हें तो अपने प्यारे पुत्रकी रक्षा करनी थी ? हा भाई कृष्ण, तुमने भी मेरे पुत्रकी खबर नहीं ली, सबके सब ही बेसुध हो गये। हा, मै अब कैसे इस दुःख मे धैर्य धारण करूं। हा पुत्र, तेरे वियोगसे आज पुरवासी लोग बेतरह दुःखी हो रहे हैं। हा, मेरे कृष्णके जैसा नारायण बलि पृथ्वीका रक्षक भाई है, प्रख्यात कीर्ति

युधिष्ठिर और भीम जैसे भयंकर बली जेठ है तथा स्वार्थ साधक और परमार्थ साधक पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले वीर धनुर्विशारद अर्जुन जैसे पति है, फिर भी मुझे आज पुत्र वियोग के दुःखसे रोना पड़ रहा है! मैं अपने दुःखकी कथा क्या कहूँ, मै शोकसागरमे डूब रही हूँ। इसप्रकार अपनी प्रियेको शोकसागर में डूबता देखकर दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ पार्थ सुभद्रासे बोला कि प्रिये, सुनो! मेरे पुत्रको जिस दुष्टने मारकर हमारी यह दशा की है मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि उस दुष्ट जयद्रथ का शिर धड़से जुदा नहीं कर दूंगा तो अग्निमें जलकर भस्म हो जाऊँगा। इसलिये प्रिये, तुम उठो और शोकको कम करो तथा पानी लेकर अपना मुंह धो डालो। इतनेमे वहां कृष्ण आगये और बहिनको इस प्रकार समझाने लगे प्रिय बहिन! तुम क्षत्रिय राजाकी पुत्री हो और क्षत्रिय ही तुम्हारा स्वामी है फिर तुम रुदन क्यों करती हो? अब शोक करनेसे क्या लाभ? विधिको तो कोई टाल नहीं सकता है। संसारकी यह दशा बड़ी विचित्र है। कभी इस जीवको सुख और कभी दुःख लगा ही रहता है। यह जीव सदा इस पर्यायसे उस पर्यायमे और उस पर्यायसे इस पर्यायमे भ्रमण किया करता है और दुःख सुख भोगता रहता है।

प्रिय बहिन! यह संसार अरहटके समान है, इसमें एकसी हालत कभी किसीकी नहीं रहती है। जिसको तुम अभी देखती हो वही कल उत्तर समयमे नाश हो जाता है। तुम जानती हो कि आयु क्षयसे कोई भी किसीकी रक्षा नहीं कर सकता है। कितना ही स्वयं बलवान हो, कितने ही उसके सहायक हों परन्तु अन्त समयमे कोई कुछ काम नहीं आते। यह जीव कर्मके चक्करमे फँसा हुआ नाना प्रकारके स्वांग रचता है यह तुम अच्छी तरह जानती हो अतः हे बहन शोक न करो। इसप्रकार कृष्णने अपनी बहन को सम्बोधित किया।

उधर किसी गुप्तचरने जयद्रथको यह संवाद दिया कि पार्थने तुम्हे मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा की है अन्यथा स्वयं ही जल मरनेका संकल्प किया है। इसलिये तुम अपनी रक्षा चाहते हो तो उनकी शरण में जाओ, नहीं तो आज प्रभात होते ही निश्चय से तुम यमपुर भेज दिये जाओगे। मरणको नजदीक देखकर भी निश्चिन्त हुए बैठे हो, यह कैसे आश्चर्यकी बात है? यह सुनते ही जयद्रथ भारी चिंतामे पड़ गया, सो ठीक ही है अपने जीवनकी चिंता मनुष्यकी सब

चिंताओंसे बलवती चिन्ता होती है। वह सोच-विचार कर दुर्योधनके पास गया और कहने लगा कि राजन्! मैं इस समय बड़ा भयभीत हूँ, मुझपर इस समय विकट संकट आनेवाला है, इसलिये मैं तो वन जाकर निर्दोष तप तपूंगा, जहां मैं अर्जुनका नाम भी अपने कानों से नहीं सुनूंगा। अर्जुन महान बली है वह जिस समय धनुष-बाण लेकर समर-भूमि में उतरता है उस समय उसका सामना करने के लिये कोई भी वीर समर्थ नहीं हो सकता है।

यह बात सुनकर दुर्योधनने कहा कि हे जयद्रथ! तुम भय मत करो, धैर्य धारण करो। इस संसार मे कोई भी पुरुष अजर-अमर नहीं है। जो उपजा है, वह अवश्य नाशको प्राप्त होगा इसमे जरा भी सन्देह नहीं है। इसलिये क्षत्रियों को रणमें पीठ दिखाकर हट जाना शोभा नहीं देता है, इससे संसारमें अपकीर्ति होती है। यह क्षत्रियोंका धर्म नहीं है। क्षत्रियों का धर्म यही है कि रण में मरो या मारो। इसलिये वीर, तुम भय छोड़कर शत्रुओं से लड़ो। मरनेका डर क्यों? एक दिन मरना तो है ही, और यदि विजय हो गई तो जयलक्ष्मी अपने हाथ आ जायगी। दूसरी बात यह है कि प्रतिज्ञानुसार आज सूर्यास्तके समय ही अर्जुन अग्नि में भस्म हो जायगा फिर तुमको मारनेवाला कौन रहेगा? इसलिये तुम एकदम निश्चिंत रहो।

रात बीत गई, सवेरा हुआ। प्रतापी सूर्यका उदय हुआ, उजाला चारों तरफ फैल गया। अर्जुन का एक गुप्तचर यह समाचार मालूम करने निकला कि जयद्रथ कहाँ है? रास्तेमे उसे एक आदमीसे भेंट हुई। उसने उससे पूछा कि रणमें जयद्रथका रथ कैसे जाना जायगा? उत्तरमे उस आदमीने कहा कि उसकी रक्षाके लिये कौरवोंने एक बड़े भारी चक्रव्यूहकी रचना की है, उसमें उसको ढूंढना मनुष्यकी शक्तिसे तो बाहर की बात है ही, देवता भी नहीं ढूंढ सकते है। अर्जुनने जब यह समाचार सुना तो उससे कहा कि चाहे स्वयं देव ही उसकी आकर क्यों न रक्षा करे मैं आज उसे बिना मारे हरगिज नहीं छोड़ूंगा। यह कहकर वह एक यक्षके चबूतरे पर कुशासन डालकर स्थिर चित्त हो बैठ गया और जिन शासनकी रक्षा करनेवाली शासनदेवीका आराधन शांतचित्त और स्थिरता पूर्वक करने लगा। उसी समय शासन देवी प्रगट हुई और वह कृष्ण और अर्जुनसे सुखकर वाणी बोली कि जहां प्रतापी नारायण कृष्ण

और महामना तीर्थङ्कर जैसे पुण्यशाली नेमिप्रभु होंगे मैं उनकी सदा सेवा करूंगी। आप जो आज्ञा हो सो कीजिये। यह सुनकर अर्जुनने अपने वैरीके सम्बन्धका सारा हाल उसको कह दिया जिसे सुनकर शासन-देवी बोली कि आप मेरे साथ चलिये, आपके मनवांछित कार्य सभी सिद्ध होंगे। देवीके कहे अनुसार अर्जुन और कृष्ण उसके साथ गये। वे सब एक कुबेरके स्नान करनेकी बावड़ी पर पहुँचे। वह बावड़ी सुखकी खानि थी अत्यंत सुन्दर थी। कमलोंसे परिपूर्ण थी और हंस आदि जलचर जीवोंके क्रीड़ा करनेका स्थान थी। वहां पहुँच जानेके बाद उस शासन देवीने अर्जुनसे कहा कि अर्जुन! इस बावड़ीमें दो भयंकर सर्प रहते हैं सो तुम निःशंक होकर उनको बावड़ी में घुसकर पकड़ो। वे दोनों तुम्हे शत्रुओंको नाश करने में कालका काम देवेंगे। यह सुनकर अर्जुन उसी समय निधड़क बावड़ी में घुस गया और सर्वसिद्धि देने वाले उस युगल नागको पकड़ लिया। इसके बाद शासन देवीने अर्जुनसे कहा कि देखो इन दोनों में से एक तो बाणका काम देगा और एक शंखका काम देगा। देवीकी यह बात सुनकर अर्जुनको भारी प्रसन्नता हुई। इसके पश्चात् देवीने आशीर्वाद रूपमे कहा कि पार्थ! तुम इनके द्वारा वैरियोंको पराजय करो और जयद्रथ का मस्तक छिन्नकर प्रसन्न हो परन्तु यह ख्याल रखना कि जयद्रथ का पिता वनमें विद्या प्राप्तिके निमित्त ध्यानकर रहा है इसलिये तुम जयद्रथको मार कर उसके शिरको उसकी गोदमें डाल देना। तुम ज्योंही उसके मस्तक को गोदमें डालोगे वह उसे देखते ही मर जावेगा। इस प्रक्रियासे तुम शत्रु रहित हो जाओगे, इसके सिवा और तुम्हे कोई उपाय शत्रु विनाशके लिये करनेकी आवश्यकता नहीं है। देवी के इन वचनों से अर्जुनको बहुत संतोष हुआ और वह धनुष बाण लेकर कृष्ण के साथ अपनी सेनामे आया।

इधर सबेरा हो ही गया था, सूर्य निकल आया था। उभय पक्षके योद्धा युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये थे। इस समय द्रोणने जयद्रथको धैर्य बँधाया और कहा कि तुम निर्भय रहो, मै तुम्हारी रक्षा करनेमे सावधान रहूँगा। इसके बाद द्रोणने चौदह हजार हाथियोके घेरेके बीचमे उसे रक्खा और उन हाथियोंके चारों तरफ तीन घेरे और बनवाये जिनमे पहला घेरा लाख घोड़ो का, दूसरा साठ हजार रथोंका और तीसरा बीस लाख पयादो का था। इसप्रकार

द्रोणने जयद्रथ की रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध कर दिया और और अपने पक्षके राजाओंसे कहा कि तुम लोग जयद्रथ की रक्षा में रहो मैं इधर शत्रुओंका नाश करने के लिये जाता हूँ।

इसके पश्चात् युधिष्ठिरने कृष्णसे कहा कि हम लोग इस समय कर्तव्यहीन बन रहे हैं मालूम होता है कि अब शत्रु पर विजय पाना हम लोगोंकी शक्ति के बाहर हो रहा है। पार्थ की प्रतिज्ञा आज व्यर्थ हो रही है। लोग मुखसे तो चाहे जैसे शब्द निकाल देते हैं किन्तु उसका पीछे निर्वाह होना बड़ा ही कठिन हो जाता है। युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर केशवने कहा कि महाराज ! आप किसी प्रकारकी चिंता न करे, आपके मनचीते सभी कार्य सिद्ध होंगे। आप एकछत्र होकर कुरुजांगल देशका राज करेंगे और पार्थकी भी प्रतिज्ञा अवश्य पूरा होगी। इसी समय पार्थ वहां आया और उसने युधिष्ठिर को प्रणाम कर कहा कि पूज्य ! आप आज्ञा दीजिये जिससे मैं आपको अपना बाहुबल दिखाऊं। यह सुनकर युधिष्ठिरने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद दिया कि वत्स ! जैन धर्मके प्रसादसे तेरे सारे कार्य सिद्ध हों। युधिष्ठिरका पवित्र आशीर्वाद ग्रहण कर अर्जुन रथपर सवार होकर कृष्ण के साथ वहांसे चल दिया। उस समय लड़ाईके बाजे बजने लगे, हाथी चिंघाड़ते हुये, घोड़े हिनहिनाते हुये, योद्धा लोग हुँकार शब्द करते हुये चल पड़े और समरभूमिमे पहुँचकर वे वैरियोंके मस्तकोंको छेदते हुए, उनको लहूलुहान करते हुये लड़ाई करने लगे। वीर पार्थने शत्रुओंके रथको तोड़ दिया, मदोन्मत्त हस्तियोंके सुण्डादण्डको छिन्न-भिन्न कर उन्हें धाराशायी कर दिया, वीरोंके मस्तकों को धड़से अलहदा कर दिया। इस प्रकार वहां की सारी पृथ्वी लहू-लुहान दिखने लगी। ऐसा कोई भी योद्धा नहीं बचा जो लहूसे लथपथ न हुआ हो। इस प्रकार अपनी सेनाको पार्थकी मारके मारे भागती हुई देखकर द्रोणने उनको धैर्य बंधाते हुये कहा कि वीरों ! भागो नहीं, भय मत करो। ऐसा करनेसे हम लोगोंको भारी लज्जित होना पड़ेगा जब मैं यहां हूँ तो तुम लोग भय किस बातका करते हो ? यहां निर्भय होकर रहो। द्रोणके इन वचनोंको सुनकर वीरगण भागने से रुक गये और हाथोंमें लड़ने के लिये फिरसे हथियार ले लिये। इसी बीचमें कृष्ण और अर्जुनने द्रोणको नमस्कार कर कहा कि पूज्य ! आपसे हमारी एक विनती-

प्रार्थना है और वह यह कि आप इस रणमें योगदान न देकर रणक्षेत्रसे चले जाइये क्योंकि आप हमारे गुरु हैं। हम अपने गुरुको लांघते हुए कैसे शत्रु सैन्यका ध्वंस करें।

यह बात सुनकर द्रोणने उत्तर दिया कि मैं भला अब रणसे किस माफिक वापिस जा सकता हूँ। मुझे तुम लोगोंके साथ संग्राम करना ही होगा। मैं तुम्हें यह बात पहिले बता देता हूँ कि मैंने जिसकी आज तक रक्षा की है वही संसार मे जीता है और जिसे मारा है वह सदाके लिये ही मर गया है। इसलिये तुम लोग यह बात ध्यान में लाकर मेरे साथ युद्ध करना। द्रोणकी यह बात सुनकर अर्जुन को भारी क्रोध आया और वह उसी समय रथ में सवार होकर अपना धनुष बाण हाथमे ले युद्ध करने के लिये चल पड़ा, रणके बाजे बजे। युद्ध प्रारम्भ हो गया। प्रथम ही पार्थने द्रोणको लक्ष्यकर नौ बाण छोड़े, जिसको उन्होंने छेद दिया। इसके बाद पार्थने दूने बाण छोड़े और जब तक लाख बाणों की संख्या पूरी नहीं हुई तब तक वह छोड़ता गया। इधर द्रोणने उन्हें ही निवारण कर दिया। यह देखकर कृष्णने कहा कि पार्थ! यह क्या है? क्या तुम्हें शत्रुओंके साथ भी गुरु शिष्य सरीखी लड़ाई करना उचित है? क्यों विलम्ब कर रखा है? कृष्णकी यह बात सुनकर अर्जुन हाथमे तलवार लेकर शत्रु दलको चीरता-मार्ग करता हुआ आगे बढ़ा। यह देखकर द्रोण हाथमे लौह यष्टिको लेकर पार्थके सन्मुख आया और उसने कहा कि पार्थ ठहरो, कहां निःशंक हुए जा रहे हो? यह सुनकर पार्थने कहा कि हे गुणोंके राशि! मै फिर कहता हूँ कि आप मुझसे न लड़िये यह आपके लिये युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि हम सब आपके पुत्र है। आपके लिये तो जैसे अश्वत्थामा, जैसे ही मैं और जैसे ही ये विष्णु हैं। अरिसे रण करना युक्त है। इसलिये गुरुदेव आप कृपाकर युद्ध करनेके संकल्प को छोड़ दीजिये। पाण्डवों की इस प्रार्थनासे लज्जित हुये द्रोण वापिस लौट गये तब अर्जुन अकेला ही अपने बलसे शत्रु-सैन्यको ध्वंस करने लगा। उसने उस समय गाण्डीव धनुषकी भयङ्कर टङ्कारसे कौरवोंकी सेनाको भेदन कर दिया।

इस समय पार्थको अपनी ओर बढ़ते हुये देखकर बहुतसे राजा लोग यो कहने लगे कि देखो द्रोणने जान-बूझकर पार्थको यहां भेजा है। अब यह आकर

भारी उपद्रव मचावेगा। इसे यदि द्रोणका सहारा नहीं होता तो यह कदापि इधरको नहीं बढ़ सकता था। यह देखकर शतायुधको भारी गुस्सा आया उसने उसी समय कृष्ण अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब उन दोनोंने क्रोधमें आकर शतायुधके रथ, घोड़े, हाथी वगैरह छेद डाले। इसके बाद शतायुधने मन ही मन गदाका स्मरण किया स्मरण करते ही वह गदा दासीकी तरह हाथमें आगई। बिजलीकी तरह चमकती हुई उस गदाको देखकर कृष्णने अर्जुन से कहा कि पार्थ! अब कार्य सिद्ध होना कठिन मालूम देता है तब भी मैं अपने ज्ञान बलसे वैरीका नाश कर दूंगा, तुम चिंता न करो। इसके बाद कृष्णने शतायुधको ललकार कर कहा कि रे शतायुध! तुम अपनी गदाका मुझपर प्रहार करो, क्यों विलम्ब कर रक्खा है। कृष्णके इसप्रकार कहने पर उसने निश्चय किया कि वास्तवमें अर्जुन और कृष्ण ही इस लड़ाईके मूल कारण हैं। इस-लिये इन दोनोंको ही गदाके प्रहारसे काल-ग्रसित बनानेसे ही काम सिद्ध होता है और इसीसे मुझे विजय लक्ष्मी प्राप्त होती है। यह सोचकर उसने प्रथम तो कृष्णके वक्षः स्थलको विदीर्ण करनेके लिए उस गदाका प्रहार किया। किन्तु उनके पुण्यप्रतापसे वह गदा सुगन्धित फूलोंकी माला बन गलेका हार बन गई। सो ठीक ही है कि पुण्यशाली जीवोंके लिये दुःख की सामग्री भी सुखदायी बन जाती है। इसके बाद उस गदाने पुण्यमयी कृष्णकी पूजा की और फिर वापिस लौटकर उसी पापी शतायुधके मस्तकपर जा पड़ी जिससे उसका मस्तक छिन्न-भिन्न हो यमालयका अतिथि बन गया। यह देख कौरवोंकी सेनामें भारी सन-सनी फैल गई और वह लड़ाईको तैयार हो गई, किन्तु अर्जुन व कृष्णके बाणों की मारसे क्षणभरमें काईकी तरह इधर-उधर फट गई। इसके बाद कृष्णने अर्जुनसे कहा कि हम लोगोंके घोड़े बहुत प्याससे व्याकुलित हो रहे हैं और वे चलनेमें एकदम असमर्थ हैं। इसलिये अब हमें पैदल चलकर ही शत्रुके साथ लड़ाई करना चाहिये। इस बातको सुनकर अर्जुनने कहा कि देव! मुझे खण्ड-वनमें एक देवताने यह बाण दिया था उसका फल यह बतलाया कि जहाँ तुम को पानी की आवश्यकता होगी उसकी पूर्ति करेगा। इसलिये माधव मैं अभी इस बाणके प्रभावसे यहीं गंगाके जलका प्रवाह प्रगट किये देता हूँ। ऐसा कहकर उसने सुरोपनीत बाणको चलाया जिससे एक क्षणमें ही वहाँ गंगाके प्रवाहके

समान पानी बहने लगा। उसमें उन्होंने अच्छी तरह घोड़ोंको नहलाया, उन्हें जल पिलाया। जल पीकर वे घोड़े फिर चलनेके लिये समर्थ हो गये। यह कृत्य देखकर आकाशसे देवगण साधुवाद देने लगे और कहने लगे कि देखो जो महा पुरुष पातालसे जमीन पर पानी काढ़ लाया फिर वे लोग कितने असंज्ञी है कि उनके साथ लड़ाई ठानी है, भला वे कभी इन पुण्यशालियोंसे विजय प्राप्त कर सकेंगे ?

इसके बाद कृष्ण और अर्जुन दोनों ही लड़नेके लिये रथमें बैठकर चले। समरक्षेत्रमे पहुँचते ही कृष्णने शत्रुओंको विध्वंस करनेके लिए एक लाख बाण छोड़े जिससे कौरवोकी सेनाके हाथी, घोड़े, पयादे आदि सब छेदे गये, रथ भी नष्ट हो गये और मारे भयके सैनिक इधर-उधर भागने लगे। उनको भागते हुए देखकर दुर्योधनने उनको ललकारकर कहा कि ऐ वीरों! तुम कहाँ भागे जा रहे हो, क्या तुम्हारी यही शूरता और वीरता है ? यह सुनकर सयंत बोला कि राजन् क्या तुम्हे कृष्ण और अर्जुनकी शूर-वीरताका पता नहीं है, उन्होंने तुम्हारी सारी सेना भेद डाली, बली दुर्मर्षणको परास्त करके भगा दिया। आपका भाई दुःशासन मारे भयके उनके पास ही नहीं फटका, द्रोणको गुरु समझकर उनको छोड़ दिया, कृतवर्मा आदिको यमपुर भेज दिया, शतायुध, वृन्द और विदके प्राणोको नष्टकर दिया। अर्जुन पातालसे परम पावन गंगाको यहां खींच लाया फिर भी आप सेनाके भगनेका कारण पूछ रहे है ? महाराज पार्थ और कृष्ण ये दोनों ही महाबलवान है तेजस्वी हैं। उनकी वीरताका कोई पार नहीं पा सकता है।

यह सुनकर दुर्योधनके गुस्सेका पारावार नहीं रहा। वह उस समय द्रोण की निंदा करने लगा। वह कहने लगा कि द्रोण! तुमने यह अच्छा नहीं किया जो वैरीको घुसनेका रास्ता दिया। तुम्हे पांडवोका पक्ष करते हुए संकोच नहीं हुआ, क्या तुम्हारी ऐसी ही धर्म-बुद्धि है, बलिहारी है तुम्हारी इस निंद्य बुद्धि की ? दुर्योधनकी मर्म भेदी वाणीको सुनकर विषादचित्त हो द्रोणने कहा कि देखो! मै पार्थके बाणों से भेदा गया हूँ। मै उसकी बराबरी करनेमें समर्थ नहीं हुआ और न हो ही सकूंगा क्योंकि वह तरुण और मैं वृद्ध। दोनोंकी समानता कैसे हो सकती है ? तुम तरुण हो बलवान हो इसलिए तुम्हीं उसके साथ

लड़ने में उपयुक्त हो सकते हो। यह सुनकर दुर्योधन बोला कि अच्छा, आप चुप हो देखते रहिये, मैं पार्थको अपने पुरुषार्थ द्वारा क्षणभरमें ही कालके गाल में भेज देता हूँ। यह कहकर उसने हाथमें धनुष उठाया और अर्जुनके साथ संग्राम करने लगा। उनके साथ-साथ और भी योद्धागण आपससे लड़ने लगे। लड़ाई करते हुये दुर्योधनने पार्थके बाणोंको छेद दिया और गर्वमें आकर हास्य रूपमें पार्थसे कहने लगा कि तुम्हें तो गांडीव धनुषका बल था सो अब वह कहां चला गया? यह देखकर कृष्णने अर्जुनसे कहा कि पार्थ! तुम थक तो नहीं गये हो? उत्तरमें पार्थने कहा कि नहीं मैं तो इन शत्रुओं को मारकर कुछ शांति लेनेके लिये बैठ गया हूँ। मै अभी बाकी इन सबोंको धराशायी किये देता हूँ। आप विश्वास रखिये कि मै अभी इन सब कौरवोंको जीतकर उज्जवल यश प्राप्त करूंगा। यह कहकर जोशमें आकर पार्थने बाणोंकी प्रबल मारसे दुर्योधनको बेध दिया। उसको देखकर कौरवोंकी सेनामें हाहाकार मच गया और वह इतस्ततः भागने लगी। इसी समय कृष्णने अपने पांचजन्य शंखके शब्द द्वारा आकाशको गुंजायमान कर दिया। जिसके शब्दको सुनकर जयद्रथको बड़ा भारी भय हो आया और वह भयभीत हो कांपने लगा। इस समय इतना भयंकर संग्राम हुआ कि चारों तरफ पृथ्वी पर रुंड-मुंड ही दीखने लगे, सारी पृथ्वी लहूलुहान हो गई। जिधर देखो उधर मुर्दा ही मुर्दा दीखने लगे।

इसके बाद अर्जुनने ज्योंही जयद्रथको देखा त्योंही उसका क्रोध और भी प्रबल हो उठा और उसने मर्म-भेदी शब्दों द्वारा यह कहते हुये कि नीच चांडाल तूने ही लड़ाईमें अन्याय से अभिमन्युका वध किया है अब मेरे सामने आ और मुझे अपना पराक्रम और अपनी विद्या दिखा। मैं भी तो देखूं कि तुझमें कितना बल है और कितनी विद्या है? नीच, मैंने तुझे बड़ी कठिनतासे देख पाया है। यदि तुझमें कुछ भी शक्ति हो तो शस्त्र उठाकर रणांगणमें मेरे सामने आकर मुझसे लड़ाई कर और कौरवोंकी सेनाको बचा। पार्थके इन वचनोंको सुनकर देवताओंको बड़ा संतोष हुआ और वे उसकी प्रशंसा करने लगे। इसी समय धनंजयने जयद्रथके धनुष घोड़े और ध्वजाको छेद दिया, उधर कृष्णने उसके कवचको बेध दिया और अर्जुनसे कहा कि पार्थ! तुम सूर्य छिपने के पहिले-पहिले इसका मस्तक धड़से जुदा करदो इसीमें तुम्हारी वीरता

है । कृष्णके यह वचन सुनकर पार्थने शासनदेवीका दिया हुआ नागबाण हाथ मे लिया और उसको धनुषपर चढ़ाकर छोड़ दिया जिसके लगते ही जयद्रथक मस्तक धड़से जुदा हो गया और उस मस्तकको आकाश मार्गसे वहां भेज जहां उसका पिता वनमे बैठा तपस्या कर रहा था । वह मस्तक उसकी गोदमे जाकर पड़ गया । जिस प्रकार तालाबमें उगा हुआ कमल काट देनेपर गिर जाता है ठीक उसी प्रकार ही उस मस्तकको देखकर उसका पिता चैतन्य रहित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा । इधर जयद्रथके मारे जानेसे पांडवोंकी सेनामें जय जय के शब्द होने लगे, जिससे पार्थकी कीर्ति दिगन्तव्यापी हो गई । उधर कौरवों की सेनामें हाहाकार मच गया और दुर्योधनके नेत्रोमे अश्रुओं की धारा बह निकली और वे उसके लिये बहुत विलाप करने लगे ।

पश्चात् अश्वत्थामाने दुर्योधनको धैर्य बंधाकर कहा कि राजन् ! तुम क्यों दुःख करते हो ? मैं अभी आपके इस दुःखके कारणको हटाये देता हूँ । यह कह वह धनुष बाण ले अर्जुन पर टूट पड़ा और युद्ध करते करते अर्जुनके धनुषकी प्रत्यंचा-डोरी छेद दी । यह देख अर्जुनको बहुत गुस्सा आया और उसने दूसरा धनुष बाण ले दांतोंको मिसमिसाते हुये और भौहोंको चढ़ाकर उसपर वार किया जिससे वह दब गया, जिस प्रकार कि सिंह मत्त हस्तीको दबा देता है । इसके पश्चात् पार्थने अपने छह बाणोंके द्वारा अश्वत्थामाके सारथी को पृथ्वी पर गिरा दिया और उसको भी घायल कर दिया जिससे उसे मूर्छा आ गई । अर्जुनने अश्वत्थामाको गुरुपुत्र भाई समझकर छोड़ दिया और न कुछ कहा ही । इसी तरह अर्जुनने वहां और भी बहुत से योद्धाओंको गत प्राणकर दिया । इधर लड़ाई करते हुये रात हो गई और सब सेना अपने-अपने स्थान पर चली गई ।

अपनी यह दुरावस्था देख दुर्योधनने दुःखित हो द्रोणसे कहा कि यह सब तुम्हारा ही किया हुआ काम है । तुम यदि पार्थको रास्ता न देते तो वह न तो किसी हाथी घोड़ा और न किसी योद्धाको मार सकता था, बल्कि वह आसानी से अपनी प्रतिज्ञा हार जाता । दुर्योधनके इन वचनोंको सुनकर द्रोणने क्रोधयुक्त हो कहा कि आपका यह कहना नितान्त अनुचित है अर्जुनने मुझे ब्राह्मण जानकर जीता छोड़ दिया । तुम क्षत्रिय हो इसलिये क्षत्री

के साथ लड़ाई करो। मैं आपसे ही पूछता हूँ कि आपने लड़ाई करते समय उसे क्यों छोड़ दिया। अपने दोषको तो देखते नहीं और दुराग्रहसे दूसरेके शिर पर दोष मढ़ते हो। मैंने कितनी ही बार अर्जुनका बल देखा है, मैं उसकी समानता नहीं कर सकता हूँ। अब आपको जो रुचिकर हो सो करो। यह बात सुन कर दुर्योधन विनम्र भाव हो बोला कि प्रभो! आप पूज्य हैं, हमारे और हमारे पूज्य पुरुषोंके गुरु है इसलिये आप मेरे अपराधों को क्षमा करें और कोई ऐसा उपाय करें जिससे शत्रु आज रात्रिको ही नष्ट हो जाय। बादमें सबोंने निश्चय किया कि अपनी सैन्य सहित पांडवों की सोती हुई सेना पर चढ़ाई कर दी जाय। कर्णको भी सूचना दे दी गई। बस फिर क्या था कौरवोंकी सेना रातोंरात ही रणस्थलकी तरफ चली और उसने निद्राभिभूत पांडवोंकी सेना पर चढ़ाई करदी। इसके बाद कौरवों ने बाणों की वर्षा करना शुरू कर दिया जिससे पांडवों की सेना छिन्न-भिन्न हो गई, पांडव पक्षके राजा इधर-उधर भागने लगे। इसके बाद कौरवोंने एक साथ दश बाणोंके द्वारा भीमको और तीन बाणोंसे नकुल और सहदेव को बेध दिया तथा दश बाणोके द्वारा भीमके पुत्र घटुकको, पाँच बाणोंसे अर्जुन को, छह बाणोंसे शिखंडी को बेध दिया एवं सात बाणोसे धृष्टद्युम्न और पांच बाणोंसे कृष्णको बेध दिया। इसी समय क्रोधयुक्त युधिष्ठिर लड़ाई करने को उठ खड़ा हुआ और उसने अपने प्रखर बाणोकी मारसे दुर्योधनको बुरी तरह घायल कर दिया। जिससे वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा और उसको मूर्छा आ गई। यह देखकर द्रोण युधिष्ठिरके सामने लड़ाई के लिए आये और पांडवोंकी सेना में घुस गये। उस समय वे ऐसे शोभायमान होने लगे जैसे आकाशमें सूर्य ही उगा हो। इसी समय सबेरा हो गया, सूर्यका उदय होते ही पांडवोंकी सेनाने क्षणमात्र में द्रोण को पीछे हटा दिया। यह देखकर पार्थने ब्रह्म-बाण छोड़ा जिसने द्रोण को बेधकर विवश कर दिया। गुरु जानकर उसने उनको छोड़ दिया और उनकी भक्ति-भावसे पूजा की एवं अपना अपराध क्षमा कराया। द्रोण अर्जुन के इस कार्यसे लज्जित हुये और वे युद्धसे उदासीन हो बैठ गये।

इसके पश्चात् अर्जुनने सारथी से कहा कि अब तुम रथको कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामा की ओर चलाओ। उस समय दुर्योधन अर्जुनके पराक्रमसे

भयभीत हो कर्णके रथको हाथसे पकड़कर कहने लगा कि कर्ण ! हमारी सब सेना तो नष्ट हो गई अब तुम बतलाओ कि क्या करें ? कर्णने कहा कि भाई तुम चिंता न करो। पहिले मैं पार्थको ही नष्ट किये देता हूँ पीछे बाकी और योद्धाओंको देखूंगा। यह कहकर कर्णने अर्जुनके साथ युद्ध करना शुरूकर दिया। उधर कौरवोंकी सेना युधिष्ठिर के साथ भिड़ गई। इन सबोंमें घनघोर लड़ाई हुई, मारे बाणोंकी वर्षासे आकाश-मंडल व्याप्त हो गया, रणके शब्दोंसे दिशायें गूंज उठी। यह देखकर पार्थने अपने बाणोंकी मारसे कर्णके रथको छिन्न-भिन्न कर दिया और मय डोरीके धनुषको तोड़ दिया। उधर द्रोण धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध कर रहा था और एक दूसरे पर बाण वर्षा कर रहे थे। द्रोणने उसके रथ और ध्वजाको नष्ट कर दिया साथमें बीस हजार योद्धाओं को भी यमपुर भेज दिया। बहुत से हाथी, घोड़े, रथ पयादे जिनकी कि संख्या नहीं कही जा सकती उनको नष्ट कर दिया। मतलब यह है कि उसने अक्षोहिणी सेनाको नष्टकर जीवन आशासे रहित कर दिया। इतनेमें ऊपरसे आकाशवाणी हुई कि 'द्रोण तुम व्यर्थसे ही क्यों इन सज्जन राजाओंके साथ विरोध कर पाप उपार्जन करते हो, तुम्हें इन सब पापोंके कार्यो मे पड़नेकी आवश्यकता नहीं है। हे भव्य ! तुम तो मनको पवित्र बनाकर आत्म-पदमें स्थिर रहो और इन हिंसाके कामोंको छोड़ो' यह। सुनकर भीम बोला कि हे श्रेष्ठ विप्र ! आपको क्यों हिंसाके कार्योको करके पाप उपार्जन करना चाहिये ? इससे कुछ लाभ नहीं है। आप तो पांडवोको कुरुजांगल देशका राज्य देकर सुखसे रहे। भीमके यह वचन सुनकर द्रोण ने कहा कि यह कभी नहीं हो सकता है। मैंने आज अपने मनमे प्रतिज्ञा की है कि मैं सब राज्य कौरवोंको दूंगा। इसके बाद द्रोण और धृष्टार्जुन फिर लड़ाईको प्रवृत्त हुये।

इधर अश्वत्थामाने भीमके पुत्र घटुकको ललकार बताई और उसके सामने आते ही उसे बाणोंकी मारसे गत प्राण कर दिया, जिससे पांडवोको बड़ा भारी कष्ट हुआ और वे सबके सब विलाप करने लगे यह देखकर कृष्णने उन को समझाया कि यह क्या आप लोगोंके विलाप करनेका समय है ? मौका देखकर कौरवोकी सेना लड़ाई करने के लिये उद्यत हो गई। यह देखकर भीमने अश्वत्थामाको ललकार बताकर कहा कि पहले मैंने तुझे गुरु पुत्र समझ

कर लड़ाईमे जीवनदान देकर छोड़ दिया था परन्तु अब तुझे किसी तरह भी जीता नहीं छोड़ूंगा, तू सावधान हो, यह कह भीमने उसपर गदाका एक ऐसा प्रहार किया जिससे वह मूर्छित हो गिर पड़ा। पश्चात् भीमने उसके हाथीको भी मार गिराया। इसी समय पांडवोंकी सेना युधिष्ठिरको नमस्कार कर कहती हुई कि प्रभो! द्रोणने लड़ाईमें आपकी सेनाको तहस-नहस कर दिया है। हममें से किसी योद्धाकी शक्ति नहीं है कि उस बलीको परास्त कर देवें। इसके लिए एक ही उपाय है और वह आपके करने से हो सकता है। द्रोणका अपने पुत्रपर भारी प्रेम है इसलिये आप अपनी जबानसे कह दीजिये कि "अश्वत्थामा लड़ाईमे मर गया" बस पुत्र-बधको सुनते ही वे लड़ाईसे विमुख हो जायेंगे। यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा कि भाई! तुम मुझसे क्यों झूठ बुलवाते हो? नहीं जानते हो कि झूठ अनर्थका करनेवाला है और बहुत दुःखदायी है। इसपर पांडुसेनाने फिर कहा कि महाराज हमने इस लड़ाईमें अश्वत्थामा हस्तीको मार दिया है इसलिये झूठ तो नहीं है। अन्तमे उनके आग्रहसे युधिष्ठिरने जोरसे ये शब्द कहे कि "लड़ाईमें अश्वत्थामा मारा गया" धर्मराजके जोरसे कहे हुये शब्द द्रोणके कानों में ज्योंही पड़े कि वे पुत्र-बध सुनकर हाहाकार करने लगे, उनके हाथसे उसी दम धनुष-बाण छूट गया और आँसुओंकी अविरल धारासे पृथ्वीको सींचते हुए। उनकी यह अवस्था देखकर दुर्योधनने थोड़ी देर बाद यह कहा कि मनुष्य नहीं किन्तु हाथी मारा गया है। यह सुनकर द्रोणका शोक शांत हुआ और धैर्य बंधा किन्तु इतनेमें उधरसे धृष्टार्जुन हाथमें तलवार लिये हुए आ गया और उसने तलवारका एक प्रहार कर द्रोणको सदाके लिए धराशायी बना दिया। यह देखकर कौरव और पांडव दोनोंको ही भारी दुःख हुआ। वे गुरु वियोगमें भारी विलाप करने लगे। कहने लगे कि हे गुरुदेव! आपके वियोग होनेसे हमारी आज छत्र-छाया चली गई। हमारी संसारमे अपकीर्ति फैल गई। यह सब दुर्योधन जैसे पुरुषकी संगतिका ही परिणाम है उस समय गुरुके वियोगसे दुःखी हो अर्जुन क्रुद्ध हो युधिष्ठिरसे कहने लगा कि पूज्य! धृष्टार्जुन हमारा कोई सगा नहीं है फिर इसने हमारे गुरु द्रोणाचार्यको क्यों मारा? यह सुनकर धृष्टार्जुन विनयपूर्वक अर्जुनको बोला कि प्रभो! इसमे मेरा थोड़ा भी अपराध नहीं है सच तो यह है कि

जिस समय लड़ाई होती है उस समय एक योद्धा दूसरे योद्धा पर प्रहार करता ही है फिर उसमे चाहे किसीका नाश ही क्यों न हो, कुछ विचार नहीं रहता। यह बात सुनकर अर्जुन शांत तो हुआ परन्तु उसका अन्तर्दाह गुरु-वियोगसे जलता ही रहा।

इसके बाद फिर कौरवोंकी सेना लड़ाई करनेके लिये प्रस्तुत हो गई और उसने रणभेरी बजवाकर आकाश को गुंजा दिया। इसी बीचमें युधिष्ठिरने शल्यके मस्तकको धड़से जुदा कर दिया। जो शल्य विराटके सन्मुख अपना असीम पराक्रम दिखा चुका था। पार्थने भी उस वक्त हजारों राजाओंको अपने दिव्यास्त्रों द्वारा धराशायी बना दिया। वह युद्ध दिन-रात चलता था। जब किसीको निद्रा आती तो वह वहां ही जमीन पर लेट जाता था। वहां उस समय मार-काटके सिवा दूसरा कोई शब्द ही सुनाई नहीं पड़ता था। इस प्रकार महायुद्ध होते हुए सत्रह दिन समाप्त हो गये। इसके बाद अठारहवां दिन आया और फिर वही घमासान युद्ध होना प्रारम्भ हो गया। उस समय दोनों सेनाओंमे मकरव्यूह की रचना हुई। दोनों सेनाओमें मारकाट जोरोसे होने लगी। उस वक्त कौरवोंकी सेना समुद्र सरीखी जान पड़ती थी। यह देख भीम उसे नष्ट करनेके लिये रथमें चढ़कर उसके बीचमें घुस गया। इधर कर्ण और अर्जुन का आपसमे फिर युद्ध होना शुरू हो गया। थोड़ी देरमें अर्जुनने अपने बाणोंसे कर्णका धनुष छेद दिया। उधर कर्णने भी पार्थके छत्रको भेद दिया। इसी समय कर्णने लाख बाण छोड़े जिससे पार्थ का दूसरा धनुष भी छेदा गया। तब फिर पार्थने तीसरा धनुष उठाया और कर्णसे बोला कि कर्ण! तुम कुन्ती माताके पुत्र और मेरे भाई हो यह संसार-प्रसिद्ध बात है हमारा आपका युद्ध भाई-भाईका युद्ध है इसलिये आप धैर्यके साथ मेरे घन जैसे आघातों को सहन करो। देखो पीठ दिखाकर रणसे भाग न जाना। मैने तुम्हे कितनी ही बार लड़ाईमे अधीनस्थ करके छोड़ दिया है परन्तु अबके नहीं छोड़ूंगा। इसलिए या तो लड़ाईके लिये तैयार हो जाओ अन्यथा अपने घरका रास्ता लो इसी में तुम्हारी भलाई है।

अर्जुनकी यह बात सुनकर कर्णने कहा कि रे मूर्ख पार्थ! तू क्या व्यर्थमें बकवाद कर रहा है। देख मै तुझे देखते-देखते ही धराशायी बनाये देता हूँ। तू

यह अच्छी तरह जानता है कि मैने तेरे ही सामने हजारों राजाओंको धराशायी बना दिया है। इसलिये तू अपने आप अपनी बड़ाई न कर, व्यर्थ ही दुर्वचन न निकाल और मेरे प्रहारोंको सहन कर। इसी बीच में कृष्णने कर्णको विश्वसेनके मरनेका समाचार दिया। अपने पुत्रके वियोगका समाचार पाकर कर्ण उसी समय विह्वल होगया और विचार करने लगा कि देखो इस तुच्छ राज्यके लिए भाई-भाईको मार देता है यह कैसा घोर अन्याय है? इस प्रकार शोकसे अधीर हुए कर्णको देखकर दुर्योधनने सम्बोधित करते हुए कहा कि कर्ण! यह समय शोक करनेका नहीं है। इसलिये तुम शोकको तिलांजलि दे अर्जुनका शीघ्र वध करो। यह सुनकर कर्ण फिर लड़ाई करनेके लिए उठ खड़ा हुआ और अर्जुनके ऊपर अविरल बाणोंकी वर्षा करने लगा। इसी समय अर्जुनको कृष्णने प्रोत्साहन दिया कि पार्थ! अब तुम शीघ्रतासे बाण चलाओ। दोनों तरफसे बाण-वर्षा जोरोंसे होने लगी। अर्जुनने थोड़ी ही देरमें कर्णके धनुष बाणको छेद दिया; पीछे कर्णने भी अपना जोर लगाया और पार्थके धनुषको बेकाम कर दिया। बाद में पार्थने दिव्यास्त्रों को हाथमें लेकर उनके रक्षक देवोंसे कहा कि हे दिव्यास्त्र और दिव्य शरीरके धारक देवो! यदि तुम में कुछ सत्य है, हम सच्चे कुलके रक्षक है या युधिष्ठिर महाराजमें कुछ धर्म है तो मेरे इस शत्रुको शीघ्र नष्ट करो। यह कह उसने अपने दिव्यास्त्रको छोड़ा जिससे कर्णका मस्तक धड़से जुदा होकर जमीनपर गिर पड़ा।

इस प्रकार चम्पापुरी नगरीके प्रतापी राजा कर्णको धराशायी देखकर कौरवगण भारी विलाप करने लगे। वे कहने लगे कि हा कर्ण! आज तुम्हारे विना यह संग्राम सूना हो गया। हे तात! तुम्हारे विना अब कौन वीर अर्जुन का सामना करेगा? इधर कौरव सेना इसप्रकार रुदन कर रही थी, उधर भीम अकेला योद्धाओंको यमपुर पहुँचा रहा था। इतनेमें हाथ में अस्त्र लिये दुःशासन आदि राजा समर भूमिसे आये। उनको भी अकेले भीमने यमराजके घर पहुँचा दिया। जैसे कि अग्निका एक कण अगणित वृक्षोंको खाक कर देता है। यह देखकर वहाँ बहुतसे राजा यों कहने लगे कि जिस प्रकार अकेला सिह सैकड़ो गजोंको धराशायी बना देता है वैसे यह भीम कौरवोंको धराशायी करता जारहा है।

इसी समय किसीने दुर्योधनको उसके भाइयोंके मरनेका समाचार कह सुनाया, जिसको सुनकर वह बहुत दुःखी हुआ। वह शीघ्र ही वहाँ पहुँचा जहाँ उसके भाईयोंके शव पड़े हुये थे। उन्हे देख सारथीने कहा कि राजन्! देखिये ये इतने शूरवीर होते हुये भी कैसे मरे पड़े है। दुर्योधनने उनको देख कहा कि कहाँ तो ये ऐसे विकराल थे कि जो ग्रह भूत पिशाच आदि को तृप्त करते थे और कहां आज पृथ्वीके ग्रास बने हुए हैं? यह अवस्था देख सारथी ने दुर्योधनसे कहा कि महाराज! अब युद्ध करनेका समय नहीं है, इस समय युद्धकी इच्छा छोड़कर आप घर चले चलिये। सारथीकी यह बात सुनकर दुर्योधनको गुस्सा आया और वह एकदम बेकाबू हो गया। यह देखकर सारथी फिर गरजकर बोला कि राजन्! अद्यावधि आप अपनी हठ नहीं छोड़ते है। आधा राज्य जो उनके हकका था सो भी आपने पांडवोंको नहीं दिया, किन्तु अपने सौ भाईयोंकी युद्धमे आहुति करदी। इसके सिवा सेनाका तो इतना संहार हुआ कि जो कहनेमे नहीं आता, इसलिये स्वामी! अब तो सुबुद्धि धारण करो जिससे आगे कोई नया उपद्रव खड़ा तो न हो। उसकी यह बात सुनकर दुर्योधनने कहा कि रे सारथी! तू क्या मेरे सामने यह कायर सरीखी बात बोलता है। मै कहता हूँ देख पांडवोंको मारकर ही मैं पीछे मरूंगा और तरह से मैं नहीं मर सकूंगा। यह कहकर वह फिर पांडवों की सेनाके साथ युद्ध करने लगा। दोनों ओरकी सेनाये आपसमें भिड़ गई, वे एक दूसरेको मारो-मारो, काटो-काटो आदि शब्द कहते प्रहार करने लगे। बाणोंकी वर्षा होने लगी, हथियारोंके खनाखन शब्द होने लगे। इसी समय युधिष्ठिर मद्राधिपके साथ और भीम दुर्योधनके साथ संग्राम करने लगे। उधर कर्णके तीन पुत्र नकुलके साथ भिड़ गये। वीर नकुलने रण करनेके थोड़ी देर बाद ही अपनी तीक्ष्ण तलवारोंसे आठ वीरोंके साथ उन्हे भी धराशायी कर दिया। इधर दुर्योधन ने भीमके धनुषको छेद दिया। तब भीमने हाथमें शक्तिको उठाया और क्रोधमे आ दुर्योधनके वक्षःस्थलमें जोरका प्रहार किया जिससे वह मूर्च्छा खाकर जमीनपर गिर पड़ा। इसके बाद जब वह सचेत हुआ तो उसे बड़ा क्रोध आया और वह उसके आवेशमे आकर भीमके ऊपर दांत मिसमिसाकर टूट पड़ा। उसने उस समय भीमको जलचर नभचर और थलचर बाणों के

द्वारा पूरित कर दिया और उसका कवच छेद दिया। अपनी यह अवस्था देखकर भीमको भी बहुत गुस्सा आया और उसने अपनी गदा हाथमें लेकर कई बीस हजार वीरोंको कालका ग्रास बना दिया। आठ हजार रथोंको चकनाचूर कर दिया। बहुतसे हाथी और घोड़ोंको प्राण रहित कर दिया और जहाँ भी वह गया वहां के वीरोंको नष्ट करता चला गया। यह देख वहां जितने भी राजा थे वे सब भीमसे डरने लगे। भीम जिसे भी टेढ़ी निगाहसे देख लेता बस वह यमका अतिथि बनता था। इसप्रकार भीमकी मारके डरके मारे कौरवोंकी सारी सेना इधर-उधर भाग गई जिस प्रकार सिंह के भयसे मृगगण भाग जाते हैं।

इसी समय रणोद्यत दुर्योधनसे युधिष्ठिरने कहा कि देखो तुम मेरी अधीनता स्वीकार कर जहां तुम्हारा जी चाहे सुखसे रहो। इसके सिवा तुम्हें जो भी हाथी-घोड़ा रथ पालकी धन सम्पत्ति चाहिये सो भी मुझसे ले लो। अब भी मेरे साथ दुष्टताको छोड़कर मित्रता धारण करो इसीमे तुम्हारा हित है, तुम जो चाहोगे उसीकी तुम्हे प्राप्ति होगी। यह बात सुनकर दुर्योधन अभिमानसे बोला कि मेरा आपका जन्मसे ही विरोध है, वह आज कैसे मिट सकता है? मैं आपकी अधीनता स्वीकार करूँ यह सम्भव नहीं। मैं अकेला ही आप लोगोंकी सत्ता को मिटानेमें समर्थ हूँ। मै कदाचित् राज्य नहीं भी कर सकूंगा तो आप लोगोंको भी नहीं भोगने दूंगा। हमारा आपका इस विषयका फैसला रणमें ही होगा इसलिये आप लड़ाई करनेके लिए उतरिये। यह कह दुर्योधनने क्रोधके आवेशमें आकर युधिष्ठिरके ऊपर तलवार का प्रहार किया। जिसे युधिष्ठिरने अपनी तलवार पर रोक लिया, इसी बीचमें भृकुटि चढ़ाये हुये भीम वहां आगया और कौरवीय सेनाको ललकारता हुआ कहने लगा कि ठहरो जरा! कहां भागे जाते हो?

पश्चात् वह गदा लेकर लड़ाई करने लगा। उस समय भीमके हाथकी गदा ऐसी शोभित होती थी कि मानों बिजली ही हो, नागकन्या अथवा यमकी जीभ ही हो। पश्चात् भीमने दुर्योधनके ऊपर गदाका एक जोरसे प्रहार किया जिससे उसका मस्तक फट गया और वह धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय वह अपने जीवनकी आशासे निराश होकर धीमे स्वरमे कहने लगा कि

क्या कौरवोंकी सेनामें कोई ऐसा वीर नहीं बचा है कि जो इन पांडवों का सर्वनाश करदे ? यह सुनकर पासमें खड़ा हुआ एक आदमी बोला कि हां ! अभी गुरु पुत्र अश्वत्थामा है जो कि इन सबको पराजित कर सकता है। उसकी शक्ति अजेय है। उधर अश्वत्थामाने दुर्योधनके मरनेका समाचार सुना तो क्रुद्ध हो जरासिंधके पास गया और वहां जाकर बोला कि प्रभो ! आज दस हजार राजाओंके साथ दुर्योधन भी धराशयी होगया यह बड़े दुःखकी बात है। यह समाचार सुन जरासिंधको भारी शोक हुआ और वह इस शोकसे व्याकुलित होगया। उसने तुरन्त ही अपने सेनापति आदिके साथ अश्वत्थामा को लड़ाई करनेका आदेश दिया। पश्चात् अश्वत्थामा वहांसे चलकर दुर्योधन के पास आया और उसकी यह दशा देखकर शोकाकुलित हो इसप्रकार कहने लगा कि राजन् ! आपके बिना यहां आज शून्य दिखाई पड़ रहा है। प्रभो ! हम आपके ही प्रसादसे राज्यको भोगते थे परन्तु अब आपके बिना हम क्या कर सकेंगे ? इतने मे जरासिंधने राजा मधुके शिरपर वीर पट्टक बांधकर और उसे बहुतसी सेना साथमें दे पाँडवोंके साथ लड़ाई करने भेजा। उसने युद्धके लिए चलते हुए संकल्प किया कि मैं अभी पहुँचते २ पांडवो का ध्वंस किये देता हूँ और साथ ही कृष्णको भी गतप्राण कर दूंगा। इस संकल्पको उसने और लोगोंको जोर से सुना भी दिया।

इसके पश्चात् अश्वत्थामाको देखकर कंठगत प्राण दुर्योधनने कहा कि वीरवर ! तुम अच्छे मौकेपर आगये, लो मैं तुम्हारे मस्तक पर 'वीर पट्टक' बांधता हूँ। तुम अभी निःशंक होकर रण-भूमिमे जाओ और वहां जाकर शत्रुका ध्वंस करो। यह सुनकर अश्वत्थामा अपनी सेना ले वहांसे चल पड़ा और उसने वहां पहुँच पांडवोंकी सेनाको चारों तरफसे घेर लिया। उस समय उसने माहेश्वरी नामकी विद्याका स्मरण किया। वह हाथमे त्रिशूल लिये हुए उसी समय उसके सामने आ खड़ी होगई। उस विद्याके मस्तकपर चन्द्रका चिन्ह था, जिससे वह बहुत शोभित होती थी। उसके प्रभावको कृष्ण और पांडवोंकी सेना नहीं सह सकी। इसलिये सेना रण-स्थल छोड़कर भागने लगी, जो कुछ शेष रही उसका अश्वत्थामाने काम तमाम कर दिया। उसने उस समय बहुतसे हाथी, घोड़े, रथ आदिको नष्टकर बली पांचाल राजाके मस्तक

को छेद दिया और मस्तक लेकर दुर्योधनके सामने रख दिया। दुर्योधनको वह मस्तक देखकर कुछ शान्ति प्राप्त हुई। पीछे उसने कहा कि क्या पृथ्वीतलमें ऐसा भी कोई आदमी है जो कि पांडवोंको नष्ट कर देवे, जिन्होंने सुर-असुर और नरोंको परास्त कर प्रसिद्ध द्रोण और बली कर्णको यमराजके घर पहुँचा दिया है, उनमेंसे एक अकेले भीमने ही हजारों बली राजों महाराजोंको रण-भूमिमे परास्त कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं। जबतक संसारमें ये पांचों पांडव जीवित हैं तबतक इन तुच्छ पांचाल आदि राजाओंको मारनेसे कुछ लाभ नहीं है।

इधर पांडव और बलभद्र आदिको यह समाचार जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि अश्वत्थामाने पांचाल राजाको मार दिया है। यह अवस्था देखकर कृष्णने सबोंको सम्बोधित किया कि यह समय शोक करने का नहीं है। यह तो ऐसा होना ही था, भवितव्यको कौन रोक सकता है? अरे एक पांचाल मारा गया तो इससे क्या हुआ। अभी हम सब लोग तो जीवित बैठे हैं। यह कहकर कृष्णने अपने साथ पांडव और बलभद्रको लेकर अश्वत्थामा और उसकी सेना का शिरच्छेद किया। कौरवोंकी यह दुरावस्था देखकर जरासिंध क्रोधसे प्रलय कालके समुद्रकी तरह उमड़ा हुआ आया। अवसर देखकर असुर देवोंने कृष्ण से कहा कि हे केशव! अब विलम्ब क्यों कर रक्खा है? शीघ्र ही मगधेशका काम तमाम करो। यही आपके लिए उपयुक्त समय है। यह सुनकर कृष्णने अपनी सेनाको तैयार कर लिया। सन्नद्ध हुई तैयार सेनाको देखकर जरा-सिंधने सोमक नामके दूतसे सब राजाओंका परिचय जानना चाहा। दूत बोला कि देखिये महाराज! यह समुद्र-विजयका रथ है जिसमें सोनेके समान रङ्ग के घोड़े लगे हुये है और सिंहकी ध्वजा है। यह रथ अर्जुन नेमिजिनका है जिनमें हरे रंगके घोड़े जुते हुये है एवं सिंह और बैलकी ध्वजा है। सब सेनाके आगे कमलापति–कृष्णका रथ है जिसमे सफेद घोड़े है और गरुड़ चिन्हकी ध्वजा है। यह रामका रथ है जिसमें नील वर्णके घोड़े और तालकी ध्वजा है। यह युधिष्ठिरका रथ है जिसमें नीले घोड़े जुते हुए हैं। यह विचित्र रथ अद्भुत पराक्रमी भीमका है। यह सफेद घोड़ोंवाला और बानरके चिन्हकी ध्वजाका अर्जुनका रथ है और लाल घोड़ेवाला उग्रसेनका रथ है। पीले घोड़े और

हिरणकी ध्वजावाला जरत्कुमारका रथ है। शिशुमारकी ध्वजावाला और लाल पीले घोड़ोंका मेरुका रथ है। देखिये महाराज! जिसमें काम्बोजके घोड़े हैं और सिंहकी ध्वजा है वह सूक्ष्मरायका रथ है। कमल जैसे रंगके घोड़ेका पद्मरथका रथ है। पंचपुंड्रके देशके घोड़ोंवाला और कुम्भकी ध्वजाका रथ विदूरथका रथ है। जिसमे कबूतरके रंगके घोड़े जुते हैं और पद्म चिन्हकी जिनके ध्वजा है वह शारणका रथ है और यह अनावृष्टि सेनापतिका रथ है जिसमे हाथीके चिन्हवाली ध्वजा है और काले घोड़े जुते हैं।

इस प्रकार समस्त राजाओंका परिचय दूतने जरासिंध को कराया। जरासिंध-पांडवोंकी अपार सेना देखकर बड़ा भारी क्रोधित हुआ और वह क्रोधके आवेगमें आकर कृष्णके साथ युद्ध करने लगा। वे दोनों योद्धा परस्पर युद्ध करते हुए सिंहके समान प्रतीत होते थे। इसी समय अवसर पाकर कृष्णने एक अग्निबाण छोड़ा जिसे छोड़ते ही जरासिंध की सेना जलने लगी। इधर चक्री ने उनको शांत करने के लिये एक जलबाण छोड़ा जिससे उसकी सेनामें शांति दिखाई पड़ने लगी। पश्चात् उसने नागपाशबाण चलाया जिसे नारायण ने गरुड़ बाणसे रोक दिया। तब जरासिंधने बहुरूपिणी, स्तंभिनी, चक्रिणी, शूला आदि विद्याओंके बलसे केशवकी सारी सेना को अचेत कर दिया। किन्तु महामन्त्रके प्रतापसे कृष्णने उन सारी विद्याओंकी शक्ति नष्टकर दी। यह देखकर जरासिंधको बहुत ही खेद हुआ। इसके बाद जरासिंधने चक्ररत्नको स्मरण किया। वह स्मरण करते ही उसके हाथमे आगया। चक्रवर्तीने उसको कृष्ण पर चलाया। वह चमचमाता हुआ आकाशमार्गसे चलकर यादवोंकी सेनाको त्रसित करता हुआ सेनाके भीतर घुस गया। वह ऐसा मालूम पड़ने लगा जैसे अपनी प्रचण्ड किरणोंसे सुशोभित सूर्य ही आकाश मंडलमे घुसा हो। इससमय चक्ररत्नके तेजके प्रभावसे किसीमे भी इतनी शक्ति सिवाय निर्भय कृष्ण बलदेव और पांडवोंके नहीं रही जो उसके सामने वहां ठहर सके। वह चक्र कृष्णके पास आ गया और उनकी तीन प्रदक्षिणा द उनके दाहिने हाथमें आगया। उसको देखते ही यादवों की सेना मे जय-जय शब्द होने लगे।

इस समय कृष्णने मीठे वचनोंसे जरासिंधसे कहा कि देखो अब भी समय

है। मेरे चरणों मे नमस्कार कर भृत्य होकर राज्यसुख भोगो। अभी तुम्हारा कुछ बिगड़ा नहीं है, इसीमें तुम्हारी भलाई है। जरासिंध कृष्णकी यह बात सुनकर बहुत क्रुद्ध हुआ और विषादयुक्त हो बोला कि कृष्ण तू भूल गया कि तू तो एक ग्वाला है और मैं मगधका राजा हूँ, मैं तुझे क्योंकर नमस्कार कर सकता हूँ? यह कभी सम्भव नहीं। यदि तुझे चक्रका गर्व है तो इससे क्या हुआ, चक्र तो कुम्हारके पास भी होता है, तू अब यहांसे शीघ्रही भाग जा, व्यर्थमें क्यों मेरी भुजाओं द्वारा बलिवेदी पर चढ़ना चाहता है। तुझे स्मरण नहीं कि समुद्रविजय सदासे ही हमारा भृत्य रहा है। तेरा पिता वसुदेव भी मेरी अगवानीमें रहता था। तू तो एक दीन ग्वालाका पुत्र है। ढीठ! तुझे ये शब्द कहते हुए लाज नहीं आती है। इसप्रकार जरासिंधके अमर्यादित वचन सुनकर कृष्णके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और उन्होंने उसीसमय जरासिंध पर चक्र चलाया। चक्रसे उसका मस्तक धड़से जुदा कर दिया और फिर वापिस कृष्णके पास आगया। यह देखकर यादव लोग जय-जय शब्द करने लगे। देवता गण ऊपरसे कुसुम-वृष्टि करने लगे और दिव्यवाणी बोलते हुए कि कृष्ण! तुम तीन खण्डके अधिपति और नौवें नारायण संसारमें प्रसिद्ध हुए हो। इस-लिये पूर्व पुण्यसे उपार्जित इस पृथ्वीका अब तुम रक्षण करो और इसका शासन करो क्योंकि एक पुण्यसे ही जीवोंको सब सुख मिलता है।

इसके बाद कृष्ण रण-भूमिकी तरफ थोड़ा चले तो वहां उन्होंने शस्त्रोंसे घायल जरासिंध को देखा, जिसको देखते ही उन्हें विषाद हो आया। पांडव भी उसे देखकर खेद-खिन्न हुए। उसी जगह सिसकता हुआ दुर्योधन भी पड़ा हुआ था। जिसे देखकर युधिष्ठिर समता भावसे कहने लगे कि भाई! अब तुम इस समय क्रोध भावको छोड़कर धर्मका स्मरण करो और हृदयसे द्वेषकी भावनाको एकदम निकाल दो जिससे कि तुम भव-भवमें सुखी होवो। युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर निर्लज्ज दुर्योधन उस अवस्थामें भी उनके प्रति बोला कि तुम घबराओ नहीं, मैं निश्चयसे जीऊँगा और तुमको आज ही यमपुर पहुँचा दूंगा। तुम मुझे क्या शिक्षा देने चले हो? उसके इसप्रकार उत्तरको सुनकर युधिष्ठिर कृष्ण आदिने समझा कि बहुत अधर्मी है। इसलिये इसको धर्मके वचन उल्टे ही प्रतीत होते है। इसके बाद सिसकता हुआ वह

दुर्योधन दुरलेश्याके परिणामोंको लेकर मरा और मरकर पाप कर्म के उदयसे दुर्गतिमें पड़ा। इसके पश्चात् समस्त सेना द्रोण और कर्णको वहां मृतक अवस्थामें पड़ा हुआ देखकर कृष्ण, पांडव और बलदेव आदिको बहुत ही शोक हुआ और उन्होंने उसी समय जरासिंध आदि मृतक राजाओंकी अगुरु चन्दन आदिकी लड़कीसे अन्त्येष्टि क्रिया की। इसी समय जरासिंधके चतुर मन्त्रियोंने प्रतिहरके सहदेव नामके पुत्रको कृष्णकी गोदमे लाकर रख दिया। कृष्णने उसे बड़े प्रेम से उसके पिताकी राजगद्दीपर बैठा दिया—मगध देशका राजा बना दिया। सो ठीक ही है सजन पुरुषोंका क्रोध शत्रुके बीच तब तक रहता है जब तक कि वह अधीनता स्वीकार नहीं करता। शत्रुके विनम्र होने पर वे भी नम्र हो जाते हैं और ऐसे स्वभाव वाले हो जाते है कि मानो कभी उनके प्रति क्रोध के भाव हुये ही नहीं हैं।

इसके बाद तीन खण्डके अधिपति कृष्णने बलभद्र सहित नाना प्रकारके उत्सव और वादित्रोंके साथ द्वारिकामे प्रवेश किया। उधर पांडव भी अपनी राजधानी हस्तिनापुर में आ गये। वहाँ वे आनन्द पूर्वक धर्म-साधन करते हुये सुखसे अपना समय व्यतीत करने लगे।

जो जिन-धर्मके प्रतापसे वैरियोंको नाशकर इन्द्रके तुल्य हुये और जिन्होंने पुण्योदयसे फिरसे हस्तिनापुर का राज्य प्राप्त किया और अपूर्व सुखोंके भोक्ता हुये; जो युधिष्ठिर शत्रुओं के भयको हरनेवाले हैं, भीम अपनी अप्रतिहत शक्तिसे संसारमें प्रसिद्ध है, पार्थ अपने गुणों के नामवाले है, इसी प्रकार माद्री के सुपुत्र नकुल और सहदेव अपनी शूर-वीरताके कारण जगतमें विख्यात हैं जिन्होने अपने पराक्रमसे अरिकुलको निकुल बना दिया और सदाही जिन-सेवा में लीन रहते है। ये पांचों ही पांडव असाधारण गुणोंके अक्षय-भण्डार चिर-काल तक पृथ्वीका पालन करे, सदा ही उनकी जय हो। ग्रन्थकार कहते हैं कि यह सब धर्मका ही फल है इसलिये हे भाई! सदा ही धर्मका पालन करो।

अथ बाईसवाँ अध्याय।

मै उन मल्लिनाथप्रभुको नमस्कार करता हूँ कि जिन्होने मोहरूपी महा-मल्लको पछाड़कर केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीको प्राप्त किया है। जिनके दर्शनमात्र

से ही शोक दूर हो जाता है, जो तीनलोक के जीवोंके लिये सुखदायी हैं, जिनका शरीर मल्लिका पुष्प-सा सुगन्धि है, वे प्रभु मुझे उन्नतमार्ग पर लगावें।

एक समय भीम आदि भाईयोंसे पूजित राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर में सिंहासनारूढ़ थे। उनके ऊपर छत्र चमर ढोरे जा रहे थे। उनकी शोभा उस समय इन्द्रके समान दिखाई पड़ रही थी। इसी समय उनकी सभामें आकाश मार्गसे नारद आये। वे महाभाग पांडव उन महर्षि नारदको देखते ही उठ खड़े हुये और उनका यथोचित आदर किया। नारद उनको इधर-उधरकी बहुत सी कथायें सुनाकर पांडवों के साथ रनवासमें गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सुन्दर द्रोपदीका महल देखा। उस समय द्रोपदी अपने श्रृंगारमें लीन थी इसलिये वह अपने घर आये हुये नारदजीको नहीं देख पाई इसलिये वह उनके आनेपर न तो उठकर खड़ी हुई और न उनको नमस्कार ही किया। नारदने इसको अपना अपमान समझा इसलिये वे उल्टे पैर ही वहांसे मस्तक धुनते हुये और क्रोध से दीर्घ निश्वास छोड़ते हुये घर से बाहर हो गये।

वे आकाश मार्गसे इतस्ततः घूमने लगे परन्तु उन्हें कहीं शांति नहीं मिली। तब वे एकान्त जहां कोई भी मनुष्य नहीं, ऐसे एक बनमे गये। वहां पहुँचकर वह मन ही मन विचार करने लगे कि मैं वही नारद हूँ जो कि बिना बाजेके ही हर्षके मारे पुलकित अंग हो नाचा करता हूँ और जब बाजे मिल जाते हैं तो मेरे हर्षका पारावार नहीं रहता। देखो, इस द्रोपदीने मेरा कितना बड़ा भारी अपमान कर मुझे दुःखी किया है। अच्छा, मैं जबतक उससे इसका बदला न चुका लूंगा तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। यह अपने बली पांडवों का समागम पाकर ही इतनी उद्धत हो गई है। जबतक मैं इसका दूसरोंके द्वारा अपहरण करा कर इसे शोक-सागरमें नहीं डाल दूंगा तब तक मुझे शांति नहीं मिलेगी। मैं इसे मारकर भी अपना बदला चुकाना चाहूँ तो अभी चुका सकता हूँ किन्तु ऐसा करना महान् पापका कारण है और नरक-निगोद में लेजाने वाला है। इसलिये ऐसा करना तो मुझे जंचता नहीं, हाँ यह उपाय ठीक हो सकता है कि इसको किसी पर स्त्री लम्पट पुरुषके द्वारा अपहरण करा दी जाये। देखो नारायण बलभद्र तथा और सब राजा महाराजा तो मुझे नमस्कार करें। सभी मुझको गुरु मानें और खासकर मैं स्त्री जाति का गुरु,

तिसपर भी मेरा इतना तिरस्कार किया। इतनी निंदा की कि मेरे घर जाने पर भी नहीं उठना और बड़े आनन्दके साथ बैठकर दर्पणमें मुख देखना। अतः अब मैं ऐसा ही उपाय करूं कि जिस श्रृंगारसे इतनी विशेष रुचि है वही उसका छुड़ा दूं। मैं निश्चयसे इसका सौभाग्य छुड़ा दूंगा तभी मेरा मनोरथ सफल होगा। जबतक मैं अपनी आंखों से इसका आकाश-मार्ग द्वारा अपहरण हुआ नहीं देख लूंगा तबतक मेरे अपमानका बदला नहीं चूकनेका। इसप्रकार निश्चयकर नारद पर—स्त्री लम्पट राजाकी खोजमें आकाश-मार्गसे चले। उन्होंने घूमते हुये जम्बूद्वीपकी सारी पृथ्वी घूम डाली किन्तु कोई उन्हें उनके मन के माफिक—पर स्त्री लम्पट राजा नहीं मिला। तब वे हताश हो धात की खण्ड द्वीप में गये।

यह धातकी खंड अत्यन्त शोभायुक्त था, चार लाख योजन जिसका विस्तार था। उसकी पूर्व दिशामे मन्दर नामक एक पहाड़ है, जोकि अत्यन्त मनोहर है और चौरासी हजार योजन ऊँचा है, जिसपर चार विशाल वन है। इसकी दाहिनी तरफ छहों खण्डों द्वारा मंडित भरत नामका क्षेत्र है। इस भरत क्षेत्रके बीचमें अमरकंका नामकी पुरी है जोकि अत्यन्त सुहावनी बनी हुई है। इस पुरीका राजा पद्मनाभ है, जोकि अत्यन्त बलवान और सुन्दरतामे कामदेव से भी बढ़ चढ़कर है, बहुत से राजा इसकी सेवा करते हैं।

वहाँ पहुँचकर नारदने एक चित्रपट पर अपनी सुन्दरताके द्वारा विश्वकी नारियोंको जीतने वाला द्रोपदीका एक सुन्दर चित्र खींचा और उस चित्रको ले जाकर उसने पद्मनाभ राजाको भेटमे दे दिया। उस चित्रपट को देखते ही राजा मनमें विचार करने लगा कि यह चित्र किसका है? क्या स्वर्गसे आई हुई इन्द्राणी है, लक्ष्मी है या रोहिणी है, क्या है? कहीं किन्नर या विद्याधरी तो यहां नहीं आई हुई है या कामकी पत्नि साक्षात् रति तो नहीं आ गई है? इस प्रकार नाना विकल्प उसके मनमे स्थान पाने लगे। वह इस बातको निश्चय नहीं कर पाया कि यह किस मनमोहिनी का चित्र है? वह इस चित्रपर इतना मुग्ध होगया कि उसे मूर्छा आगई। उसकी यह अवस्था देखकर महलके सब लोग हाहाकार करते हुये वहां दौड़े आये। उन्होंने शीघ्र ही राजाका शीतोपचार किया जिससे उसको कुछ संज्ञा हुई। होश मे आते ही उसने

नारदजी को नमस्कार किया और विनयपूर्वक पूछा कि प्रभो ! यह किस सौभाग्यशालिनी का चित्र है ? कृपाकर मुझे ठीक २ बतलाइये। उत्तरमें नारदने कहा कि राजन् ! यदि तुम्हें इस चित्रके सम्बन्धमें जानकारी करनी है तो मैं इसका सब समाचार कहे देता हूँ। तुम ध्यान से सुनो।

द्वीपोंके मध्यमें जम्बूद्वीप नामका गोलाकार एक द्वीप है। इसके ठीक बीच में सुदर्शन नामका एक पहाड़ है जो कि एक लाख योजन ऊंचा है। इसके दक्षिणकी तरफ चढ़े हुये धनुषकी तरह छहों खण्डोंमें विभक्त भरत क्षेत्र है। उसमें कुरुजांगल नामका एक अति सुन्दर देश है। इसमें अत्यन्त सुन्दर हाथियों के समूहोंसे भरा हुआ हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँका राजा युधिष्ठिर है। उसके संसार—प्रसिद्ध सार्थक पार्थ नामवाला एक छोटा भाई है, उसकी भार्याका नाम द्रोपदी है। यह उसी सौभाग्यवती द्रोपदी का चित्र है। यदि आपको सुख भोगनेकी इच्छा है तो आप इस स्त्री-रत्नको अपने अधीनस्थ कीजिये। बिना इसके प्राप्त किये आप अपने जीवनको भाररूप ही समझिये। अब आपको जो रुचिकर हो सो कीजिये। ऐसा कहकर वे नारदजी तो आकाश-मार्गसे चले गये। इधर राजा पद्मनाभ चित्रांकित द्रोपदी के रूप—राशिपर इतना मुग्ध होगया था कि उसे उसके स्मरणके सिवा और कुछ सूझता ही नहीं था किन्तु उसकी प्राप्तिका उपाय जब उसे कुछ नहीं दीखा तो वनमें गया और वहां उसने मन्त्राराधन करके एक गदाधारी संगम नाम के सुरको सिद्ध कर लिया। उस सुरने तुरन्त ही प्रगट होकर उसे नमस्कार किया और कहा कि स्वामिन् ! आज्ञा दीजिये जिसके लिये मुझे आपने सिद्ध किया है। तब राजाने सन्तुष्ट होकर उस देवसे कहा कि तुम रूपकी खानि द्रोपदीको मुझसे मिलाओ। यह सुनकर वह असुर दो लाख योजनके समुद्रको उलंघकर आकाश—मार्गसे शीघ्र ही हस्तिनापुर पहुँच गया और वह रात्रिमे ही सोती हुई द्रोपदीको हरण कर पद्मनाभ राजाके उद्यानके एक सुन्दर महलमें छोड़ दिया। निद्राभिभूत द्रोपदीको उस समय हेयोपादेयका कुछ भी ज्ञान नहीं था। वह वहां शय्यापर पड़ी हुई जिस अवस्था मे वहाँ सो रही थी उसीप्रकार प्रातःकाल तक बराबर सोती रही। इसके बाद उस असुरने द्रोपदीको हरण कर लानेका समाचार पद्मनाभको भेज दिया। पद्मनाभ शीघ्र ही जागकर उमंगमें भरा हुआ वहाँ

आया और वहाँ वह कनकवर्ण शशिवदनी मृगनयनी द्रोपदीको सोते हुए देखकर मन ही मन बड़ा भारी प्रसन्न होने लगा। वह प्रेमके वश हो बोला कि हे भद्रे ! अब रात्रि समाप्त हो चली, प्रातःकाल हो चला है। इसलिये हे भामिनी ! अब निद्राको छोड़कर उठो। पद्मनाभके इस अमृततुल्य वचनोंके द्वारा वह द्रोपदी जगाई गई। जगते ही भयभीत हिरणी की तरह इधर-उधर आँख फाड़ती हुई देखने लगी। उस समय वह बड़ी भारी चिंता में पड़ गई। वह विचार करने लगी कि यह देश कौनसा है ? और मुझसे जो बात-चीत कर रहा है वह कौन है, किसका यह उद्यान है और यह महल किसका है ? मालूम पड़ता है कि मै यह सब स्वप्न देख रही हूँ। यह कहकर वह आंखें मीचकर फिर सो गई। उसकी यह अवस्था देखकर और उसके मनकी बात जानकर राजाने कहा कि हे कमललोचनी देवी ! यह स्वप्न नहीं है किन्तु वास्तवमें साक्षात् दृश्य है। उसकी यह बात सुनकर द्रोपदीको निश्चय हुआ कि वास्तवमे मेरा यह स्वप्न नहीं है। उस वक्त उसने अपनी दृष्टि चारों तरफ फैलाई तो उसे ऊपर लटकता हुआ छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त एक सुन्दर विमान दिखाई पड़ा।

इसके बाद वह विषयलंपटी, कपटी राजा पद्मनाभ द्रोपदीसे बोला कि हे भामिनी ! जिस देशमे इस समय तुम हो वह चार लाख योजनका धातकी खण्ड है। इस धातकी खण्डको चारों तरफसे कालोदधि समुद्र घेरे हुए है, यह अमरकंका नामकी नगरी है और इसका स्वामी मैं राजा पद्मनाभ हूँ, जो कि इन्द्रतुल्य हूँ। भामिनी ! मैंने तुम्हे प्राप्त करनेके लिये बड़ा भारी कष्ट पाकर असुर सिद्ध किया था और उसके द्वारा तुम्हे यहां लाया गया है, अब तुम्हारे बिना न मुझे खाना अच्छा लगता है और न पीना ही। ये सब चीजे विषके समान लगती है, तेरे बिना मेरी अवस्था मृततुल्य हो रही है। यह तो उस देवताने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की जो तुम्हे यहाँ ले आया। अयि कृशोदरि ! अब तुम यहां किसी प्रकारका भय मत करो और प्रसन्नचित्त रहो। यहाँ तुझे यह विभूति हाथी, घोड़ा, रत्न, महल, खजाना जो भी कुछ दीख रहा है वह सब तुम्हारा ही है। तुम्हारा जिससे चित्त बहले उससे अपने चित्तको बहलाओ, आनन्दसे रहो। भामिनी ! मेरे हृदयमे विरहकी अग्नि दहक रही है, इसलिये

मानको छोड़कर भोगरूपी जलसे उसका सिंचन करो, मेरी तरफ प्रेमभरी दृष्टि करो और मेरी राज-रानी बन जाओ। पद्मनाभकी इसप्रकार बातें सुनकर वह सती थरथर कांपने लगी और छाती पीटकर रुदन करने लगी। उसकी आँखोंसे उस समय आंसुओंकी अविरल धारा बहने लगी। वह उस समय पांडवोंको एक-एक करके याद करके रोने लगी। हा पूज्य युधिष्ठिर, हा बली भीम, तुम संसारमें प्रसिद्ध योद्धा हो, हा स्वामी अर्जुन, तुम देखते नहीं कि तुम्हारे रहते हुये भी मेरे ऊपर यह कैसा दुःखका पहाड़ टूट पड़ा है। बतलाओ कि यहां मेरी रक्षा कौन करेगा? क्या तुम्हारी यही वीरता है? परन्तु इसमें दोष तुम्हारा नहीं है। तुम्हें तो मेरे हरे जानेका समाचार ही जब नहीं मालूम है तब तुम कर ही क्या सकते हो? हा देवता! तुमने यह अच्छा काम नहीं किया कि जो मुझ अकेली को यहां छोड़ दिया। इधर कष्ट भरी द्रोपदी रुदन कर रही थी, उधर वह पद्मनाभ अपने मनोरथ सफल होने की बात सोच रहा था। उसने फिर उससे कहा कि हे शुभानने! तुम शोक मत करो, यहाँ तुम्हें किस बातकी तकलीफ है? आनन्दपूर्वक मुझे अपना बनाकर रहो।

सती द्रोपदी राजाके शील भंगके वचनोंको सुनकर विचारने लगी कि देखो यह शीलरत्न ही सज्जन पुरुषोंका सबसे बेशकीमती गहना है। इसी महा मन्त्रके प्रभावसे सुर असुर विद्याधर राजा आदि वशमें हो जाते है और किंकर होकर काम करते है। इस शीलके प्रभावसे ही उज्ज्वल सुन्दर शरीरकी प्राप्ति होती है, इसीसे पूज्य कुलमें जन्म मिलता है। इस शीलके प्रभावसे ही स्वर्ग सुख मिलते हैं, इसीसे चक्रवर्तीपद प्राप्त होता है। इस शीलके माहात्म्यसे ही धधकती हुई अग्नि सती सीता के लिये शीतल जल होगई थी। सती सुलोचनाके लिये गंगा जैसी महानदी थल होगई, यह क्या था? शीलका ही महत्व था। सेठ सुदर्शन को शूलीका सिंहासन बना सो किससे? इसी शीलसे। शीलका माहात्म्य अचिंत्य है। जो भी स्त्री पुरुष इस शील धर्मका पालन करते हैं वे वास्तवमें सच्चा सुख प्राप्त करते हैं। शील रहित जीवन जीवन नहीं, ऐसा जीवन अपकीर्ति का जीवन है। शील रहित मनुष्य मरकर दुर्गति में पड़कर नरक-निगोदादिके दुःख सहन करते हैं किन्तु शीलको धारणकर मरनेसे इस

जीवको भव-भवमें सुख मिलता है। इसलिये मेरे प्राण भले ही जांय किन्तु शील-धर्मको नहीं छोडूंगी, मैं उसे अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा समझूंगी।

यह बात विचारकर द्रोपदी पद्मनाभसे बोली कि—तुम्हे मालूम नहीं कि तुम किससे बातचीत कर रहे हो? जानते हो संसार में प्रसिद्ध पांच पांडव मेरे रक्षक है, जिनके बाहुबलसे शत्रु-समूह थर-थर कांपता है तथा तीन खण्डके अधिपति सुर असुरों एवं नरपति द्वारा पूजित जिनके कृष्ण और बलभद्र सरीखे भाई हैं, उन्हीं की द्रोपदीके साथ तुम यह नीच व्यवहार कर रहे हो? तुम्हे स्मरण हो कि एक बार दुष्ट कीचकने मेरे शील बिगाड़ने के निमित्त दुश्चेष्टा की थी किन्तु बली भीमने उसे उसके सौ भाईयों सहित मृत्युलोकमें पहुँचा दिया। इसलिये मैं फिर कहती हूँ कि तुमने अपने घरमे नागिनको पाल रक्खा है या यों समझो कि विष बेलको बढ़ाया है। इसका परिणाम क्या होगा सो तुम समझ लो। तुम्हे मेरे वचनों पर कदाचित् विश्वास न हो तो धैर्य धारण करके एक मास देखलो वे बली पांडव यहां ही आ जायेंगे और यदि कदाचित् एक माससे पांडव नहीं आये तो पीछे तुम्हें जो रुचिकर हो सो करना। द्रोपदीके इन वचनोंको सुनकर पद्मनाभ अपने मनमें सोचने लगा कि इतने विशाल लवण समुद्रको पारकर वे पांडव यहां आवेंगे कैसे? ऐसा विचारकर राजा स्थिर मन हो अपने घरमे बैठा रहा और इधर सती द्रोपदी ने शिरकी चोटी बांधकर उसी दिनसे प्रतिज्ञा की कि जबतक मेरे पर आया संकट दूर न होगा तब तक मेरे आहार पानी वेशभूषा आदिका त्याग है।

हस्तिनापुरमे उधर प्रातःकाल हुआ, पांडवोंको ज्ञात हुआ कि द्रोपदी महल मे शय्या सहित नहीं है, वह किसी शत्रु द्वारा अपहरण की गई है। उन्होने द्रोपदीका बहुत कुछ अनुसंधान किया किन्तु वह कहीं भी नहीं मिली। इतनेमें किसी एक अपरिचित व्यक्तिने द्वारिका जाकर कृष्णको द्रोपदीके हरे जानेके समाचार कह सुनाये। जिसे सुनकर कृष्णको बहुत दुःख हुआ। पश्चात् उन्होने क्रुद्ध हो युद्धकी घोषणा करदी। घोषणा को सुनते ही कृष्णकी सेनाके घोड़े हिनहिनाने लगे, हाथी चिंघाड़ने लगे, पयादे हाथमें नंगी तलवार लेकर घुमाने लगे, कोई भालेको घुमाने लगा, किसीने धनुष-बाण लिया। इस प्रकार इधर चतुरंग सेना युद्धके लिये तैयार होने लगी, उधर तब तक नारदजी अमरकंका-

पुरी पहुंचे। वहाँ उन्होंने द्रोपदीको बाल बिखरे हुए आंसुओंकी अविरल धारासे मुंह भीगे हुए देखा। वह मारे शोकसे ठोड़ीपर हाथ रखे हुये उदासचित्त बैठी हुई थी। उसकी यह दशा देखकर मालूम होता था कि मानों क्रियारहित काठकी पुतली है अथवा इन्द्रसे रहित हतप्रभ इन्द्राणी ही है। उसकी इस अवस्था पर नारदजी को भी बहुत दुःख हुआ वे विचार करने लगे कि देखो मुझ पापीने मानके वश होकर इस सतीको व्यर्थ ही दुःख दिया, यह काम मेरा अच्छा नहीं हुआ।

इसके पश्चात् वे नारद ऋषि, युद्धके लिए प्रस्तुत कृष्णके पास शीघ्र पहुँचे और उनसे कहा कि हे नारायण! आपने यह सेना किसलिये इकट्ठी की है। यदि द्रोपदीके निमित्त की है तो उसे तो धातकीखण्डकी अमरकका-पुरी के राजा पद्मनाभने एक असुरकी आराधना करके हरा है। यहां का मनुष्य कितना ही बलशाली क्यों न हो उसका वहां पहुँचना शक्तिके बाहरकी बात है इसलिये तुम्हारा यह प्रयत्न एकदम निष्फल है। नारदजीके यह वचन सुनकर कृष्णने अपनी सेनाको तो उसी जगह छोड़ दिया और आप अकेले ही रथारूढ़ होकर हस्तिनापुर पहुँच गये। वहां पांडवोंने द्रोपदीके हरे जानेके सारे समाचार कृष्णको कह सुनाये, जिसको सुनकर सबों को दुःख हुआ।

पश्चात् सबोंने मिलकर यह विचार किया कि लवणसमुद्रका पार करना नितांत कठिन है, इसलिये कोई दूसरा ही उपाय करना चाहिये। यह विचार कर वे सब लवणसमुद्रके किनारेपर गय और वहाँ कृष्ण ने तीन दिनका उपवास करके समुद्रके स्वामी स्वस्तिक नामक देवको सिद्ध किया। उसने प्रसन्न होकर उनको छह रथ दिये जिनमें बैठकर के छहोंही थोड़ी देरमें अमरकंकापुरीमें पहुँच गये। वहाँ पहुंचते ही उन्होंने सिंहनाद किया। पश्चात् कृष्णने धनुष पर बाण चढ़ाकर भीषण टंकार शब्द किया। भीमने गदा घुमाई, नकुलने भाला हाथमें लिया, सहदेवने तलवार ली और वीर युधिष्ठिरने तीक्ष्ण शक्ति को धारण किया। इस प्रकार अपने भाईयोंको युद्धके लिये प्रस्तुत देखकर अर्जुन युधिष्ठिरको प्रणामकर बोला कि आप सब आनन्द से विश्राम कीजिये मैं अकेला ही जाकर शत्रुका विध्वंस कर दूंगा। यह कहकर पार्थने देवदत्त नामक शंखको बजाया और स्वयं हाथमें धनुष बाण ले उत्तम रथमें बैठकर

शत्रु पर चढ़ाई करनेके लिये चल पड़ा। कृष्णने भी उस समय भयावह अपना पंचजन्य शंख पूरा, जिसके शब्दको सुनकर पद्मनाभ नगरसे बाहर निकला और उसने भी रण-भेरी बजाकर दिशाओंको शब्दायमान कर दिया एवं पार्थके साथ खूबही युद्ध किया किन्तु पार्थने उसे अपने तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा बहुत बुरी तरह से घायल कर दिया जिससे वह रणस्थलसे भागकर नगरीका फाटक बन्द कर भीतर घुस गया। इधर कृष्णने अपने चरणोंके प्रहारोंसे उस फाटकको तोड़ दिया और वे सब नगरीके भीतर घुस गये और वहांके अधिवासियोंको भयभीत कर दिया। बली भीमने अपनी गदाके प्रहारोंसे वहाँ बहुतसे महल ढाह दिये और उनके अन्दरकी लक्ष्मी लूट ली। यह देखकर लोग भयभीत हो वहांसे भागने लगे। राजा भी उनके साथ भागने लगा और वह भागकर जहां सती द्रोपदीदेवी थी वहाँ आया और बोला कि देवी मैंने तुम्हें हरणकर जो अन्याय किया उसका फल मुझे मिल गया। अब तुम मेरी रक्षा करो। तब द्रोपदी बोली कि रे मूढ़! मैंने तुझसे पहले ही कहा था कि पांडव यहां शीघ्र ही आवेंगे और तुझे नष्ट कर देंगे। उनके बलका क्या कहना है, जबकि उन्होंने दुर्योधन सरीखे योद्धा रणमें जीत लिये तब तुम तो उनके लिये कौनसे खेतकी मूली हो? राजा पद्मनाभ द्रोपदीसे प्रार्थना कर ही रहा था कि इतनेमे निरंकुश पांडव वहां घुस आये। उन्हें देखते ही राजा नम्रीभूत होकर रक्ष २ शब्दों द्वारा प्राणोंकी भीख मांगने लगा। वह द्रोपदीके शरणापन्न होकर कहने लगा कि हे देवी! तुम अखण्ड शीलको पालने वाली सती सुशीला हो इसलिये तुम मुझको अभयदान—जीवनदान दो। यह सुनकर दयार्द्रचित्त द्रोपदी ने उसे अभयदान देकर निर्भय कर दिया। पश्चात् उसने कृष्ण और पांडवोंको नमस्कार किया और उनका भोजन वस्त्र आभूषण आदिसे बड़ा भारी सत्कार किया। इसके बाद पांडवोने द्रोपदीके साथ सब विघ्नों को दूर करनेवाले जिनदेवके चरणोंमे नमस्कार किया और भक्ति-भावसे उनका पूजन किया। और बादमें द्रोपदी को पारणा कराया। इसप्रकार पांडव और कृष्ण द्रुपद सुताको प्राप्तकर बहुतही प्रसन्न हो वहां सुखसे ठहरे।

जिस जैनधर्मके प्रभावसे पांडव और कृष्ण लवण समुद्र तकको पारकर धातकीखण्ड पहुँचे, वहांके बली पद्मनाभ राजाको जीतकर लब्धकीर्ति हुये

एवं पार्थ-पत्नी द्रोपदीको प्राप्त किया। ग्रन्थकार कहते हैं कि ऐसे जिनधर्मको तीनों काल विशुद्ध मन होकर सेवन करो, जिससे कि आत्माका कल्याण हो।

अथ तेईसवाँ अध्याय।

पापोंको नष्ट करनेवाले, दुःखनाशक, सुखको करनेवाले शिवपुरगामी, उत्तम व्रतोंको देने वाले ऐसे मुनिसुव्रतनाथ स्वामी का मै ध्यान करता हूँ। जिनका ध्यान करनेसे अन्तरंगका अन्धकार नाश होकर ज्ञान ज्योति प्रगट होती है, जो भगवान अत्यन्त धीर अनन्तबलके धारी हैं, वे प्रभु मुझे सहायक हों।

इसके बाद पांडवोंने कृष्णके चरणोंमें नमस्कार कर हर्षयुक्त शब्दोंमें कहा कि हमें वैरी द्वारा हरण हुई द्रोपदीकी प्राप्ति आपके ही प्रतापसे हुई है। पश्चात् वे द्रोपदीको रथमें बैठाकर वहांसे चलते हुये। जाते हुये कृष्णने मेघके समान गर्जना करनेवाले पंचजन्य शंखको पूरा। उसकी आवाज सुनकर धातकीखण्ड की चम्पापुरीका त्रिखण्डी कपिल नारायण जो कि वहाँ जिनभगवानकी वन्दना करनेके लिए आया था आश्चर्यमे पड़ गया। उसने वहीं भगवान मुनिसुव्रत-नाथ स्वामीसे प्रश्न किया कि प्रभो! यह शंख ध्वनि किसकी है? उत्तरमें भगवानने कहा कि यह ध्वनि जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र खण्डमें द्वारिका नगरीके राजा तीन खण्डके स्वामी प्रतापी नारायण कृष्ण की है। यह पार्थकी प्रिया द्रोपदी को लेनेके लिये यहां आया है क्योंकि द्रोपदी को अमरकंका पुरी नामकी नगरीके राजाने अपहरण कराके यहां मंगा लिया था, उसी कृष्णकी यह शंख ध्वनि है।

यह बात सुनकर कपिल चक्री कृष्णको देखनेके लिये प्रयत्न करने लगा। उसको देखकर भगवान ने कहा कि देखो चक्री! यह नियम है कि एक चक्रीको दूसरा चक्री, एक नारायण को दूसरा नारायण, एक तीर्थङ्कर को दूसरा तीर्थकर, एक बलभद्रको दूसरा बलभद्र देख नहीं सकता है। हां यदि तुम चाहो तो उनकी ध्वजाका दर्शनमात्र कर सकते हो। कपिल भगवान के वचन सुनकर भी नहीं माना और कृष्णको देखनेके लिये वहांसे चला किन्तु उसको भगवान के कहे अनुसार उनकी ध्वजाका ही दर्शन हुआ, बहुत प्रयत्न करने पर भी उनका साक्षात् नहीं हो सका। तब उन दोनोने अपने-अपने शंख बजाये

जिनकी ध्वनि एक दूसरेने ही सुनी। पीछे कृष्ण समुद्रमें प्रवेश कर गये यह समाचार जान कपिल वापिस लौट आया और चम्पापुरी नगरीमे पहुँचा। परस्त्री लम्पट पद्मनाभको एक जोरकी लताड़ बताई। पश्चात् वह वहां आनन्दसे रहने लगा।

इधर पांडव और कृष्ण पहिलेकी तरह समुद्रको पारकर किनारे आ लगे। वहां पहुँचकर कृष्णने पांडवोंसे कहा कि अच्छा आप लोग जबतक जमुनाको पारकर मेरे लिये नौका भेजिये तबतक मै अभी स्वस्तिकदेव को विसर्जन करके आता हूँ। कृष्णके कहे अनुसार पांडव द्रोपदी सहित जमुना पारकर एक किनारे बैठ गये। इतनेमे भीमने कृष्णका बाहुबल देखनेके लिये छलसे नौकाको एक तरफ रख दिया। उधर कृष्ण देवताको विसर्जन करके वहाँ आये और नौकाको नहीं देखा तब पांडवोंसे पूछा कि तुम लोगोंने जमुना किस प्रकार पार की। उत्तरमें पांडवोंने कहा कि हमने तो अपने अबाहुबलसे पार की है। यह सुनते ही कृष्ण यमुनासे कूद पड़े और अपने बाहुबलसे यमुनाको पार किया। तटपर पहुँच कृष्ण ने पांडवोंको देख बहुत हर्ष प्रगट किया। इस समय कृष्णको देख पांडव बड़े जोरसे हँसे। उनको हँसते देख कृष्णने कहा कि आप लोग क्यों हँस रहे हो, क्या कारण है? उत्तरमें पांडवोंने कहा कि हमसब लोगोंने तो यमुना नौकासे पार की थी किन्तु आपका बाहुबल देखनेके लिये हमने नौका छिपादी थी। भो नरेंद्र! आपने यह अघटित काम किया है इसलिये आप वास्तवमें हरि–सिंहके समान पराक्रमी हो। पांडवोंकी यह छल भरी बात सुन कृष्ण क्रुद्ध होते हुये होठोंको कँपाते हुये बोले कि वास्तवमें तुम लोग बड़े छली हो, स्वजनके स्नेहकर रहित हो, सदा ही अनिष्ट और कलह किया करते हो। तुमने मेरा नदी पार करनेमे कौनसा ऐसा महत्व देखा जिसको कि तुमने गोवर्धन पहाड़के उठानेमे, कालिंदी नागके मर्दन करने में, चाणूर मल्लको निर्मद करनेमे एवं कंसका वध करनेमे, जरासिंधके भाईको मारनेमे, गौतम अमरके संस्तव–आराधनमें, रुक्मिणीके हरणमें, शिशुपाल जरासिंधके वधके समय एवं चक्ररत्नकी प्राप्ति, तीन खण्डके स्वामी बनते समय नहीं देखा था? तो नदी पार करना क्या कोई बड़ा काम था? परन्तु बात यह है कि अबतक भी तुम्हारी दुष्टता एवं जड़ता नहीं गई इसलिये अब

तुम यहांसे सौ योजन दूर जाकर दक्षिण मथुरामें बहुत समय तक रहो। कृष्णके इन वचनोंको सुनकर पांडवोंके मनको बहुत दुःख हुआ। वे वहांसे हस्तिनापुर चले आये। कृष्णने वहांका राज्य विराट की पुत्री उत्तराके गर्भ से पैदा हुये अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको दे दिया पश्चात् वे द्वारिका चले गये। इधर पांडव भी सब कुटुम्बको लेकर दक्षिण मथुरा चले गये।

एक समय द्वारिकामें भगवान नेमिनाथ और कृष्ण राजसभामें विराजे हुये थे, तब यह चर्चा चल पड़ी कि दोनोंमें कौन अधिक बलवान है ? बहुतसे लोगोंने उस समय नेमिनाथ स्वामीके बलको कृष्णके बलसे कम बताया। यह सुन नेमिप्रभुने अपना बल बतलानेके लिये अपनी सिर्फ कनिष्ठा उँगलीके बलसे हरिको झुला दिया। यह देख कृष्णने मनमें सोचा कि मेरा एकछत्र राज्य इनके रहते हुये नहीं हो सकता है। पश्चात् एक दिन जल क्रीड़ाके समय नेमिनाथ प्रभुने कृष्णकी रानी जांबुवतीसे अपना चीर–कपड़ा निचोड़ने के लिये कहा, तो अभिमान में आ जांबुवतीने उनकी बातपर कुछ लक्ष्य नहीं दिया। वहांसे नेमिप्रभु कृष्णकी अस्त्रशालामें गये। वहां जा भगवान नाग-शय्यापर चढ़ गये और वहां उन्होंने धनुषपर बाण चढ़ाया और नाकके स्वरसे पांचजन्य शंखको बजाया। शंखके शब्द सुनते ही कृष्ण वहाँ दौड़े आये और उन्होंने नेमिप्रभुके चरणोंको नमस्कार किया एवं उनके बलकी बहुत प्रशंसा की और समयदेखकर प्रभुसे विवाह करनेकी प्रार्थना भी की।

पश्चात् नेमिप्रभुके विवाहके लिए उग्रसेनसे जायावती रानीकी पुत्री राजीमती की याचना की। राज्यके लोभसे कृष्णने मायाजाल रचा कि भगवान किसी तरह इस राज्यसे विरक्त हो जांय। बारात आनेके एक दिन पहले कृष्णने रास्तेमें बहुतसे पशु इकट्ठे करके बँधवा दिये। विवाहको जाते हुए उन बंधे हुए पशुओंको देखकर भगवानने उनके रक्षकोंसे पूछा कि यह पशु क्यों इकट्ठे किये गये है ? उन्होने कहा कि महाराज ! बारातमें जो मांसभक्षी राजा आयेंगे उनके लिए ये कल वध किये जायेंगे। बस, इस बातको सुनते ही भगवान विषय भोगोंसे विरक्त होगये और वे उसीसमय अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करने लगे। यह बात जान अपना नियोग पूरा करनेके लिए पांचवें स्वर्गसे लोकान्तिक देव आये और वहाँ उन्होंने वैराग्यकी भारी प्रशंसा की।

इसके पश्चात् देवकुरु नामकी पालकी पर चढ़ भगवान बनको चले गये और वहाँ उन्होंने सहस्राम्र वृक्षके नीचे बैठ श्रावण सुदी षष्ठमीके दिन हजार राजाओंके साथ दीक्षा धारण की। थोड़े समयके बाद ही भगवानको मनः पर्यय ज्ञान होगया। भगवान षष्ठोपवास करनेके बाद पारणाके लिये द्वारावती मे आये। वहाँ उनको आते देखकर कनकाभ नामके राजाने नवधाभक्ति पूर्वक पड़गाहा, उच्च आसनपर बैठा कर पाद प्रक्षालन किया और उनके चरणोंकी पूजा की। मन शुद्धि, वचन शुद्धि और काय शुद्धि करके नमस्कार कर आहार-शुद्धि पूर्वक राजाने उन्हें आहार दान दिया। उससमय राजा कनकाभके घर पर पंचाश्चर्य हुये। देवताओंने ऊपरसे साढ़े बारह करोड़ रत्नों की वृष्टि की, पुष्प वर्षाये, मन्द सुगन्ध पवन चलने लगी; गन्धोदककी वृष्टि हुई और दुंदुभि बाजे बजने लगे। पश्चात् भगवान आहार करके वनको चले गये वहाँ चिदानन्दरूप आत्माका ध्यान करने लगे।

ऐसे ध्यान करते हुए प्रभुने ५६ दिन छद्मस्थ अवस्था में निकाल दिये। वहांसे गमनकर प्रभु रैवतक गिरिपर स्थिर हो बैठे। वहाँ उन्होंने षष्ठोपवास धारण किया। वे प्रभु महाव्रतों सहित तीन गुप्तिसे अलंकृत, समितिके पालक, परीषहोंके विजेता होनेसे अत्यन्त शोभित हुए। भगवानने आत्मध्यानके बलसे आयु कर्मको छोड़ तीन कर्मको नष्टकर दिया और फिर दर्शन—मोहनीय कर्म की तीन प्रकृति—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व तथा चारित्रमोहनीय कर्मकी चार प्रकृति—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन सात सम्यक्त्व-घाती प्रकृतियों को आत्मासे हटा दिया। इसके बाद शुक्लध्यानके द्वारा भगवानने घातिया कर्मोकी बाकी चालीस प्रकृतियोंको एवं नामकर्मकी तेरह प्रकृतियोंको नाश किया जिससे प्रभो को दैदीप्यमान केवलज्ञान हुआ, वह दिन आश्विन सुदी १ का था। उसदिन सुर असुर सभीने केवलज्ञानकी पूजा की। भगवानके वरदत्त आदि ग्यारह गणधर हुए। इसके बाद परमपावन भगवानके समवशरणकी रचना कुबेरने की जिसकी कि शोभा अत्यन्त अद्भुत थी। समव-शरणकी प्रासाद परिखा उद्यानादिसे एवं ध्वजापंक्ति, मानस्तम्भ, सिंहासन, धूपघर, तालाब आदिसे उसकी शोभा अपूर्व हो रही थी। सभाके ठीक बीचमें भगवान अष्टप्रातिहार्य, चौतीस अतिशयोंसे अलंकृत हो रहे थे। समवशरणमें

बारह सभाओंकी रचना की गई थी, जिनमें निम्न प्रकार सभ्य बैठे हुए थे।

प्रथम सभामें निर्ग्रन्थ मुनिराज, दूसरी सभामें स्वर्गकी देवियाँ, तीसरीमें अर्जिका, चौथी में ज्योतिषी देवोंकी देवियाँ, पांचवींमें व्यन्तर देवोंकी देवियाँ, छठीमे भवनवासी देवोंकी देवियाँ, सातवींमें भवनवासी देव, आठवीं सभामें व्यन्तर देव, नौवीं सभामें ज्योतिषी देव, दशवीं सभा में कल्पवासी देव, ग्यारहवीं में मनुष्य और बारहवीं सभामें पशु। इसप्रकार समवशरण बारह सभाओंसे शोभित था। उस समय भगवानने दिव्यध्वनि द्वारा गणधरके लिए धर्मका उत्तम उपदेश किया। उपदेशमें प्रभुने जीवादिक सात तत्त्व, छह द्रव्य, पंचास्तिकायोंका व्याख्यान किया तथा ऊर्ध्व, मध्य, पाताललोकका वर्णन करते हुये, शरीरकी ऊँचाई, स्वर्ग नरकोंकी रचना, द्वीप उदधिका प्रमाण बतलाया एवं चार गति, पांच इन्द्रिय, षट्काय, पन्द्रह योग, तीन वेद, २५ कषाय, ८ मद, ७ संजम, ४ दर्शन, ६ लेश्या, भव्य अभव्य भेद, ६ सम्यक्त्व, ४ संज्ञा, २ उपयोग, १४ गुणस्थान, १४ मार्गणा, १४ जीवसमास, ६ पर्याप्ति, १० प्राणका व्याख्यान दिया। साथ ही प्रभुने मुनिधर्म, श्रावकधर्मके कर्तव्य बताये। भगवानकी परमपुनीत वाणीको सुनकर कितने ही भव्यजीवोंने सम्यक्त्व धारण किया, कितनोंने ११ प्रतिमारूप श्रावकके व्रत धारण किये। कितनोंने मुनि-व्रत धारण करके महाव्रतोंको अंगीकार किया। इसप्रकार भगवान धर्मामृत की वर्षा करते हुए देशविदेशोंमे विहार करने लगे। पश्चात् विहार करते हुए भगवान समवशरण सहित उर्जयन्त—गिरनार पहाड़पर आये। प्रभुको आया जान यादवलोग बलदेव को आगे कर बन्दनाके लिये प्रमोदसहित वहाँ आये और भगवानकी स्तुति, नमस्कार कर यथायोग्य स्थानमें बैठ गये और स्थिर-मन हो धर्मका उपदेश सुनने लगे। बादमे भगवानको नमस्कार कर बलदेवने पूछा कि भगवन! यह बतलाइये कि कृष्णका यह विशाल राज्य कबतक रहेगा व द्वारिकाकी कितने काल तक स्थिति रहेगी? इस प्रश्न पर भगवानने दिव्यध्वनि द्वारा कहा कि राजन्! द्वारिका आजसे १२ वर्ष बाद मदिराके हेतुसे द्वीपायन मुनिका निमित्त पा जलकर भस्म हो जायेगी और जरतकुमार के बाण द्वारा कृष्णकी मृत्यु भी होगी। भगवानकी यह वाणी सुनकर द्वीपायन मुनि संयम धारणकर दूर चले गये एवं जरतकुमार भी द्वारिका छोड़

कौशांबी के बनमें रहने लगा। बाद भगवान भी वहांसे विहार कर गये।

तीन लोकके नाथ परमपावन भगवानकी वाणी कभी भी झूंठी नहीं होती। जब समय पूरा हुआ, भाग्यवश द्वीपायन मुनि वहाँ आ गये। उनको मदोन्मत्त यादवोंने बहुत तंग किया, जिससे उनको क्रोध उत्पन्न होते ही उनके शरीरसे अंगारके माफिक एक तैजस पुतला निकला और उसने क्षणभरमें सारी द्वारिका को जलाकर भस्म कर दिया, सबके सब उसमें जल गये पीछेसे उस तैजसने उन मुनिको भी भस्म कर दिया। इस महाप्रलयमें कृष्ण, बलदेव ये दो भाई ही बचे। सो वे दोनों भाई कौशाम्बी नगरीके बनमें पहुँचे। वहाँ पहुँच कर कृष्णको बड़े जोरकी प्यास लगी। बलदेव उनके लिये पानी खोजनेके लिए इधर-उधर गये। वहाँ अकेले कृष्ण रह गये। इसी बीचमें दैवयोगसे वहाँ जरतकुमार आगया और उसने कृष्णको अपने बाणोंका निशाना बना परलोक गमन करा दिया। बलदेव जब जल लेकर लौटे तो देखते है कि कृष्ण गतप्राण हुये पड़े हैं, किन्तु मोहकी तीव्रता वश बलदेव कृष्णके शरीरको ६ महिने तक छातीसे चिपटाये हुए विक्षिप्त चित्तकी तरह घूमते फिरे। सिद्धार्थदेवने उन्हें बहुत समझाया किन्तु वे मोहसे कृष्णको मरा हुआ नहीं मानते थे और वे इसी तरह कृष्णको लिये फिरते रहे।

इसके बाद जरतकुमार तुरन्त ही पांडवोंके पास जाकर अपने द्वारा हुई कृष्णकी मृत्युके सब समाचार कहता हुआ। कृष्णका मरण सुन पांडव अत्यन्त दुःखी हुए। माता कुन्तीने भी बहुत विलाप किया। इसके बाद पांडव मय कुटुम्बके बलदेवको देखनेकी इच्छासे जरतकुमार के साथ चलते बने। वे कुछ दिनोंमें वहां पहुँचे जहां कि बलदेव थे। उनको इस दुःखी अवस्थामें देख वे सब बड़े दुःखी हुए और विलाप करने लगे। इन्हे देख बलदेव को कुछ ज्ञान हुआ। उसने उठकर कुन्तीको नमस्कार किया और सबसे मिला-भेंट की। पश्चात् पांडवोंने बलदेवको समझाया कि आप कृष्णके लिये शोक न करें। संसारकी ऐसी ही विचित्रदशा है, इस कालसे कोई भी बाकी नहीं बचा। आप जिसको लिए फिर रहे है वह तो मृतक शरीर है, इसका तो जल्दी ही दाह-संस्कार करना चाहिये। यह सुन बलदेव मोह के वशसे क्रोधित हो बोले कि तुम्हीं अपने मित्र पुत्र भाई बन्धुओंको चिता बनाकर उसमें जलादो, जाओ

मुझे तुम्हारी शिक्षा नहीं चाहिये। इसप्रकार पांडवोंने बलदेवको समझाते हुए वर्षाकाल चौमासा बिता दिया। एक दिन उसी सिद्धार्थ नामके देवने पुनः बलदेव को समझाया तो वे बोले कि आप लोग अच्छे आये। पश्चात् बलदेवने पांडवोंके साथ तुंगीगिरि पर जा कृष्णके शवकी दग्ध-क्रिया की और स्वयं पिहितास्रव मुनिके पास जा संयम धारण कर लिया। इस प्रकार बलदेव दो प्रकारके परिग्रहोंको त्याग दिगम्बर मुनि बन गये।

जिन नेमिनाथ भगवानने प्राज्य राज्यको तथा अनुपम सुन्दरी राजीमती को त्याग दीक्षा ली, जो इन्द्र, नरेन्द्र चक्रवर्ती आदिसे पूज्य हैं, जिन्होंने काम-देव सरीखे महामल्लको पछाड़ कर मुक्ति-वधूसे स्नेह लगा घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा जिन्होंने देश विदेशोंमें विहार कर भव्य जीवों को धर्मामृतका पान कराया और अन्तमें गिरनार पर्वतके शिखर पर स्थित हो मोक्ष-लाभ किया। ऐसे परम पावन भगवानको मेरा पुनः पुनः नमस्कार हो। वे प्रभु मुझे सम्यग्ज्ञान प्रदान करें।

अथ चौबीसवाँ अध्याय।

मैं नेमिजिनको नमस्कार करता हूँ जो ज्ञानके भण्डार हैं, जिन्होंने सुध्यान के प्रभावसे कुज्ञानको नष्ट किया है, जो मोक्षके कारण हैं, आप संसाररूपी समुद्रसे पार हुये और दूसरों को पार करने वाले है, जो अनाथोंके नाथ और जितेन्द्रिय है।

पश्चात् पांडव जरापुत्रको आगे करके द्वारिका आये और उन्होंने द्वारिका को नवीन घर महल आदि बनवाकर फिरसे बसाया और वहांके राज्य-सिंहा-सन पर जरतकुमार को बैठाया। उस समय कुन्ती सहित पाँचों पांडव कृष्ण और बलभद्रके पुरातन राज्यका स्मरण करके शोकाकुलित होते हुए। वे विचार करने लगे कि देखो! जिस द्वारिकाकी देवों द्वारा रचना हुई थी वही आज जल कर भस्म हो गई। जहाँ नित नये मंगल और उत्सव होते थे वहाँ आज शून्यता प्रतीत हो रही है। हा, वे रुक्मिणी आदि रानियों के सुन्दर भवन, जिनमें कि वे हास-विलास करती थीं, कहाँ गये। उनके वे पुत्र कहां गये जो सदा ही हर्षसे भरे रहते थे। वास्तव मे यह कुटुम्ब-समागम बिजली की तरह नश्वर

है, मेघपटलकी तरह देखते २ विनाशीक है अथवा नदीके प्रवाहके समान या अजुलिजलके समान है जोकि यत्न करने पर भी विलीन हो जाते हैं। यही वजह है कि जो पुरुष स्त्री-रागसे रगे हुए है वे भी संसार की नश्वर अवस्था देख स्त्रियोंके पैरमें लगे माभर अलकाकी तरह उदासीन हो जाते हैं अर्थात् अलकाता रंग जिस तरह थोड़ी ही देरमें छूट जाता है उसी तरह वे विवेकी भी स्त्री-रागसे विरक्त हो जाते हैं। वास्तव में विचार किया जाये तो जिन पुत्र-पुत्रादिकों को यह जीव अपना समझता है वे अपने नहीं हैं। जब शरीर ही अपना नहीं है, तो फिर पर-द्रव्यकी तो बात ही क्या! बाह्य वस्तुओंमें सुख-दुःख मानना तो मात्र कल्पना है। सिर्फ अपना आत्मा ही है। यह विषय भोग तो जीवको भोगते ही सुहावने प्रतीत होते हैं किन्तु उत्तरकालमे नीरस प्रतीत होने लगते हैं। परन्तु खेद है कि यह मूढ़ पुरुष उन्हें सेवन कर अपने को सुखी मानता है ऐसे पुरुष जान बूझकर भी अन्धकूपमें पड़ नियमसे दुर्गति पाते हैं। लोग अंगनाके सुखको सबसे बड़ा सुख मानते हैं, परन्तु वह किसी काम की नहीं। वह सुख तो दादके खुजानेके सुखकी तरह है जिसके कि उत्तर-कालमे दुःख है। दूसरी बात यह है कि विषय-भोग को जितना भी भोगा जाये उनसे कभी तृप्ति नहीं होती। उसीसे यह जीव पंच परिवर्तनरूप संसारमें अरहट की तरह चक्कर लगाता है और अनादिकालीन मिथ्यात्व की वासनासे हेयोपादेयसे दूर हो जाता है। धर्मकी तरफ अभिरुचि नहीं रहती तथा धर्मको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगता है। फलस्वरूप वह विषयलम्पटी पुरुष १२ प्रकारकी अविरतिको सेवन करने लगता है और कषायोंके चक्करमें पड़ दुर्गति को प्राप्तकर घोर विपदामे पड़ जाता है। इसलिये मोक्ष-सुखकी लालसासे भव्य जीवोंको पच्चीस कषाय, पन्द्रह प्रमाद, शुभ अशुभ भोगोंका सदा ही त्याग करना योग्य है। इसप्रकार चिंतवन करते हुए वे पांडव वहांसे चलकर पल्लव देशमे आये, जहाँ कि भगवान विराजमान थे।

वहां उन्होंने सुर असुरों द्वारा प्रभु की वन्दना की। भगवान नेमिप्रभु अशोक वृक्षके नीचे तीन छत्रयुक्त सिंहासनपर सुशोभित हो रहे थे, जिनके ऊपर देवो द्वारा चौसठ चमर ढोरे जारहे थे, आकाश से सुमनवृष्टि हो रही थी, देवोंके जय-जय शब्द हो रहे थे, देवो द्वारा दुंदुभि बज रहे थे, अठारह

महाभाषारूप दिव्य ध्वनि खिर रही थी, जिनके पीछे करोड़ों सूर्यकी कांतिसे भी अधिक कांतिवाला भामण्डल सुशोभित हो रहा था। ऐसे परम पावन प्रभु को देखकर पांडवोंने उनकी भक्ति भावसे पूजा की और इस प्रकार स्तुति करने लगे—

हे नाथ ! तुम्हीं इस संसाररूपी अगाध समुद्रसे पार करनेके लिये नौकाके समान हो। हे जिनदेव तुम्हीं संसारके स्वामी, जगतके रक्षक और परमेश्वर हो। नाथ तुम्हीं केवलज्ञानी और परम गुरु हो, गुणवन्त हो, अव्यय रूप हो, भव्योंको निर्भय करने वाले एवं दीप्तिवान हो। भगवन् ! आप ही जगतमें धन्य हो क्योंकि आपने विपुल सम्पत्ति को त्यागकर राजीमती सरीखी रूपगुण-युक्ता सतीको त्यागा है। प्रभो आप अनन्त गुणोंके स्वामी हैं, अनन्त बुद्धिके धारक हैं। भगवान हम आपका कहां तक स्तवन करे, हममें उतनी शक्ति नहीं, हममें उतना ज्ञान नहीं जो आपकी सर्वांगरूपसे स्तुति कर सकें। प्रभो आपको बारम्बार नमस्कार है, ऐसे स्तुति करके पांडव पुरुषोंकी सभामें धर्म पिपासु हो बैठ गये।

पश्चात् भगवानने दिव्यध्वनि द्वारा धर्मामृतकी वर्षा करना प्रारम्भ की। वे कहने लगे राजन् धर्म जीवदयाको कहते हैं, वह दया षट्कायके जीवोंकी रक्षा करनेसे होती है। वह धर्म दो प्रकार का है, यतिधर्म और श्रावकधर्म। यतिधर्म उसे कहते हैं जिसमें पांच आचारों का पालन किया जाये अर्थात् शुद्ध सम्यग्दर्शनको दर्शनाचार, जिनभाषित शास्त्रोंका अध्ययन सो ज्ञानाचार, तेरह प्रकारके चारित्रका पालन करना सो चारित्राचार, बारह प्रकारके तपों को तपना सो तपाचार और वीर्य प्रगटकर उत्तम आचरण करना सो वीर्याचार ये पांच आचार कहलाते है। इसके बाद भगवानने कहा कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन भेदसे भी धर्मके तीन भेद हैं। शंका कांक्षादि आठ दोषोंसे रहित अष्ट अंग सहित वस्तुके स्वरूपसहित पदार्थोंका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन कहलाता है, संशय विपर्यय और अनध्यवसायसे रहित पदार्थोंका यथार्थ जानना सो सम्यग्ज्ञान कहलाता है, वह सम्यग्ज्ञान शब्द और अर्थके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। कर्मादानके निमित्त क्रियाओंका दूर होना सो सम्यक्चारित्र है, उसके तेरह भेद है। अथवा उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव

शौच सत्य संयम तप त्याग आकिंचन और ब्रह्मचर्यके भेदसे भी धर्मके दश भेद कहे जाते हैं, क्रोधका नहीं होना सो क्षमा है। मान नहीं करना सो मार्दव धर्म है। छल कपटका त्याग करना सो आर्जव धर्म है। लोभका परित्याग करना सो शौच है। सत्य बोलना सो सत्य है। जीवों की रक्षा करना एवं इन्द्रिय और मनको वशमें करना सो संयम धर्म है। अनशनादि बारह प्रकारके तप तपनेको तप कहते है। धनका त्याग करना सो त्याग है। शरीरतकसे ममत्व नहीं रखना और यह भावना रखना कि मेरा कुछ नहीं है सो आकिंचन धर्म है। स्त्रियोंसे ममत्व परिणाम हटाकर सिर्फ आत्मा में लीन होना सो ब्रह्मचर्य है। उत्तम शब्द सबके साथ लगा हुआ है उसका मतलब यह है कि उत्तमतासे-पूर्णरूपसे पालन करना, अथवा सब माया जालोंसे हटकर आत्मस्वरूपमें तल्लीन होना वह भी धर्म कहलाता है। ये धर्मके जितनेभी भेद किये गये हैं वे सब व्यवहारनयकी अपेक्षासे है, निश्चयमे तो आत्म-स्वरूपमें लीन होना-शुद्ध शांत चिद्रूप केवलज्ञान तथा उपयोगमय आत्मा ही वास्तविक धर्म है। धर्म शब्द का अर्थ ही यह है कि जो जीवों को संसारके दुःखोंसे छुड़ाकर सच्चे सुख-मोक्ष में स्थापन करे, उसको धर्म कहते हैं।

इस प्रकार धर्मका स्वरूप पूर्ण रूपसे सुनकर पांडवोंने अपनी आत्म शुद्धिके निमित्त भगवानसे अपने पूर्वभव पूछे। उन्होंने कहा कि प्रभो! हमने पहले क्या ऐसा पुण्यकर्म किया था कि जिसकी वजह से हमसब स्नेहसहित महाबली निर्मल चित्तवाले भाई हुये हैं, और इस द्रोपदीने कौनसा ऐसा पुण्य किया, जिससे कि यह इतनी सुन्दरी हुई और कौनसा इसके पाप कर्मका उदय आया जिससे कि यह पंच भर्तारी कही गई? उत्तरमे परम पावन प्रभुने कहा कि इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक सुन्दर अंग देश है, उसमें चम्पा नामकी एक नगरी है, जो कि प्राकार और खाई आदिके द्वारा परिवेष्टित्त होनेसे अत्यन्त सुन्दर है। उस नगरीमें मेघवाहन नामका कौरववंशी एक प्रतापी राजा राज्य करता था। उसीके राजत्वकाल में एक सोमदेव नामका गुणाढ्य ब्राह्मण रहता था, उसके सोमिला नाम की कृष्ण वर्ण की एक स्त्री थी। उनके सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति नामक तीन पुत्र थे। सोमिलाके भाई का नाम अग्निभूति था और उसकी स्त्रीका नाम अग्निला था। इनके चन्द्रमाके

समान रूपवाली धनश्री, मित्रश्री और नागश्री नामकी तीन पुत्रियां थी। इन तीन पुत्रियोंका सोमदत्त आदि उन तीनों पुत्रोंसे विवाह हो गया।

एक समयकी बात है कि सोमदेव ब्राह्मण किसी निमित्तको पाकर संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त हो गया और उसने गुरुके पास जा जिन दीक्षा धारण करली। इधर सोमदत्त आदि तीनों भाई श्रावक धर्मका अध्ययन करने लगे। सम्यग्दर्शनको धारण करने वाली सोमिला भी धर्मको धारण, सिद्धांत सुनने को उद्यत हुई। वह अपने पुत्र वधुओंको यह शिक्षा दिया करती थी कि देखो, तुम जो भी गृहस्थीके काम घरकी चूलीबुहारी रसोई बनाना, पानी छानना आदि करो वे सब अच्छी तरह देख-भालकर करो, जिससे किसी जीव को बाधा न हो। सोमिलाके पुनीत उपदेशको सुनकर दो वधु तो सुधर गईं और उसी मुआफिक आचरण करने लगी किन्तु नागश्री को वे बाते रुचिकर नहीं हुई। वह अत्यन्त दुष्ट कलह प्रिय थी। उसके विचार मिथ्यात्व सेवनमें रहते थे। सोमिला उसको फिर भी सुधारनेके निमित्त उप-देश दिया कि पुत्री देखो! मिथ्यात्व के सेवन करते हुये इस जीवका अनादि काल बीत गया इसलिये अब तो इसे छोड़ो और धर्मको धारण करो जिससे तेरा आत्म-कल्याण हो। देख, यह मिथ्यात्वके नशे में मोहित हुआ जीव धर्ममें रुचि नहीं करता जैसे कि पित्तज्वर वाले रोगीको मीठा दूध रुचिकर नहीं होता। जो पापी जीव हैं उन्हें धर्म का उपदेश कितना ही क्यों न दिया जाये उनको कभी भी नहीं रुचता जैसे कि उल्लूके बच्चे को सूर्यका प्रकाश अच्छा नहीं लगता है। मतलब यह है कि मिथ्यात्वके वशवर्ती हुआ यह जीव सदा ही संसारमें भटकता है। अतः जो अपना आत्म-कल्याण चाहते हैं उन्हें मिथ्यात्वको तिलांजलि दे सम्यक्त्वको ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार सोमिलाने अनेक प्रकार से धर्मका स्वरूप नागश्री को समझाया परन्तु उसके मनमे जरा भी प्रवेशस्थान नहीं पाया जैसे कि कमलिनीके पत्ते पर पानीकी बून्द नहीं ठहरती है।

पश्चात् एक समय धर्मरुचि नामके एक मुनिराज आहारके निमित्त वहाँ आये हुये थे, सोमदत्तने उन्हे भक्ति पूर्वक पड़गाहा और नमस्कार कर उन्हे उच्चासन दिया, प्रासुक जलसे पाद-प्रक्षालन किया और वह नागश्रीको आहार

की विधि बतलाकर स्वयं किसी कार्यवश बाहर चला गया। नागश्रीकी मुनिराजको आहारदान देनेमें आनाकानी देखी तो उसकी सास सोमिलाने उससे कहा कि बहू ! तुम इन मुनिराजको नवधाभक्ति पूर्वक मन लगाकर आहार कराओ। यह वचन सुन मिथ्यात्वरूपी मदसे मत्त हुई उस नागश्री को बहुत क्रोध हुआ और वह मनमें खोटे विचार करने लगी कि ये नग्न मुनि कौन है ? इनको दान देनेसे क्या फायदा है ? मुझे तो इस नंगेको जिमाने में लाज आती है। इस प्रकार घृणित विचार होनेसे वह क्रोधके मारे थर-थर कांपने लगी। उसने उसीसमय भोजनमें विष मिला दिया, जिस प्रकार कि कोई नागिन विष उगल देती है। उसकी सासको यह बात ज्ञात नहीं थी कि दुष्टाने भोजन में विष मिला दिया है। उसने वही भोजन भक्तिपूर्वक मुनिराजको आहारमें देकर पुण्य उपार्जन किया। भोजन करते ही मुनिराजके शरीरमे विष फैल गया और उन्होंने जान भी लिया कि हमें विषयुक्त आहार दिया गया है। वे मुनिराज सावधान होकर सन्यास पूर्वक तपको तपने लगे। निर्मल परिणामों से आराधनाओंको भाते हुए उन्होने अपने प्राण छोड़े और वे सर्वार्थसिद्धि गये।

इधर सोमदत्त आदिको जब नागश्रीकी यह दुष्टता ज्ञात हुई तो उनके मनको बहुत ही खेद हुआ और उनको उसी समय संसार शरीर और भोगोसे विरक्ति होगई। बस फिर क्या था, उन तीनों भाइयोने वरुण नामके गुरुके पास जाकर जिनदीक्षा ग्रहण करली। नागश्रीकी इस दुष्कृतिसे धनश्री और मित्रश्रीको भी संसारसे उदासीनता आ गई और उन्होने भी गुणवती नामकी अर्जिकासे दीक्षा ले ली। तीनों ही मुनि धर्मध्यानमे लीन हो पांचों आचारों को पालने लगे, उग्र तपोको तपते हुये अन्तमें सन्यास धारणकर कषायोको जीत शांतिपूर्वक प्राणोत्सर्ग किया और वे आरण और अच्युत स्वर्गमें पैदा हुए जहां कि बावीस सागरकी आयु है। इधर धनश्री और मित्र श्री भी सम्यग्दर्शनको धारणकर उत्तम आचरणोंका पालन करती हुई। शील रक्षाके निमित्त एक सफेद साड़ी धारण किये बहुत शोभित होती थी। अन्तमें उन्होने सन्यास धारणकर प्राणोत्सर्ग किया जिससे वे आरण अच्युत स्वर्गमें स्त्रीलिंगको छेद कर सामानिक जातिके देव हुए। पुण्य कर्मके उदयसे वे पांचों ही जीव आरण अच्युत स्वर्ग के सुख भोगते हुए समय बिताने लगे। उन्होंने

अवधिज्ञान के बलके द्वारा अपने पूर्वभव जान लिये वे वहां आनन्द पूर्वक नृत्य देखते, गान सुनते थे, किसी प्रकार का शोक शंका आदि नहीं थी। वे शुद्ध जलसे स्नानकर जिनदेवकी पूजन करते थे। वे बाईस हजार वर्ष बीत जाने पर मानसिक आहार लेते थे, बाईस पक्षके बाद श्वासोच्छ्वास लेते थे। उनकी हजारों देव सेवा करते थे, वे तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दना करते थे। हजारों सुन्दर देवांगनायें जिनकी सेवा करती थीं।

जो बुद्धिमान मनुष्य-भवके सुखोंको भोगकर अन्तमें परिग्रहसे मोह परिणामको हटाकर तपोंको तपकर आरण अच्युत नामके स्वर्गमें पैदा हुये, जिन्होंने स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गके दिव्यसुख प्राप्त किये यह सब एक मात्र धर्मका ही प्रभाव है। ऐसा जान बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि वे सदा ही सर्व अर्थ सिद्धिके दाता धर्मका सेवन करें। यही संसारमें सार है और मनुष्य पर्यायकी सार्थकता भी इसी में है।

अथ पच्चीसवाँ अध्याय।

उन अरिष्टनेमिको मेरा नमस्कार है, जो इन्द्र नरेन्द्र आदिके द्वारा पूज्य है, धर्म-रथकी धुरा है। जिनके पवित्र उपदेशको सुनकर बहुतसे प्राणियोंने अपना हित किया, जिनका शासन परम-पुनीत है।

इसके पश्चात् वह नागश्री जिसने कि मुनि निन्दा करके मुनिके आहारमें विष मिलाया था उसका पाप प्रगट हो गया, लोग उसकी बहुत निन्दा करने लगे और उसको नाना प्रकारकी पीड़ा देने लगे। किसीने उसे ईंट से, किसी ने उसे पत्थरसे मारा। लोगोंने उसका शिर मुण्डवाकर और काला मुंहकर गधेपर चढ़ाकर सारे नगरमें घुमाया और उसको अपने नगरसे बाहर निकाल दिया जिससे वह बहुत दुःखी हुई और कोढ़जनित व्यथासे मरी। मरते समय परिणाम बहुत संक्लेशमय रहे इससे वह पांचवें नरकमें गई। वहां उसने छेदन-भेदन ताड़न आदि नाना प्रकारके दुःख सहन करते हुए सत्रह सागरकी आयु को बिताया। आयुको पूर्णकर वहांसे निकल स्वयंप्रभ नामके द्वीपमें दृष्टिविष जातिका सर्प हुई। वह देखनेमें बड़ा भयङ्कर चंचल रसना वाला क्रोधकी मूर्ति सरीखा मालूम पड़ता था। वह सर्प भी आयुको पूर्ण कर मरा और मरकर

पापोदयसे दूसरे नरकमे गया वहाँ उसने तीन सागरकी आयु पाई। पीछे वहांसे निकलकर कुछ कम दो सागर समय तक त्रस और स्थावर पर्यायमें बिताया, इतने कालमें उसने नाना योनिमें जन्म धारण किया और नाना दुःख सहन किये। पश्चात् उस पापिनी नागश्रीका जीव चम्पापुरीमें चांडालिन हुआ। दैवयोगसे एकदिन वह विभुक्षिता हुई उदम्बर फलके खानेकी इच्छासे जङ्गलमे गई थी, वहाँ उसे समाधिगुप्त नामके योगीन्द्र दिखाई पड़े, उन्हें देख कर सुखकी इच्छासे वह वहाँ पहुँची जहां कि मुनीन्द्र विराजे हुये थे। मुनिराज उस समय मौनावस्था धारण किये हुए ध्यानस्थ बैठे थे। वहाँ पहुँचकर उस चांडालिनने पूछा कि महाराज! यह आप क्या कर रहे हैं? उसके इस प्रकार भोले-भाले प्रश्नको सुनकर मुनिराजका ध्यान उसकी तरफ आकृष्ट हुआ और वे कहने लगे कि—हे भव्ये! भयसे आकुलित हुये जीव संसारमें भ्रमण कर रहे हैं। और पापोदयसे दुर्गतिमे पड़कर जन्म मरण रोग आदि दुःखोंको भोग रहे हैं। आश्चर्य यह है कि बहुत से जीव बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुये इस मनुष्य पर्यायको पाकर भी धर्म नहीं करते और व्यर्थ ही इसे खो देते हैं, उनको फिर भी वे ही दुःख भोगने पड़ते है। इसलिये मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि वह मद्य, मांस, मधु और उदम्बर फलोंको खाना छोड़ दे, जिन चीजोंके खाने में त्रसादि जीवोंका घात हो वह न खाये, रात्रिको न खाये, बीधा हुआ अनाज न खाये, साधारण वनस्पति कन्दमूलादि न खाये। असत्य न बोले, चोरी न करे, शीलधर्मका पालन करे, परिग्रहका परिमाण लेकर रक्खे। जिनप्रणीत धर्मका श्रद्धान करे, नमस्कार मन्त्र-णमोकार मन्त्रको ध्यान पूर्वक जपे जिससे कि पाप नाश हो जाये। यही सच्चा धर्म है। इसी धर्मको धारण करने से प्राणियोंको सुख मिलता है। इस प्रकार व्याख्यान करके मुनिराजने कहा कि भव्ये! ऊपर जो धर्मका स्वरूप कहा गया है, उसको तू सविधि पालन कर जिससे तेरा यह भव और परभव संभल जावे। चांडालिनने दयालु मुनिराजके कहे अनुसार पंचमन्त्र—णमोकार मन्त्रको स्वीकार किया तथा मद्य मांस मधुका त्यागकर यथाशक्ति अणुव्रतोंको धारण करके पापोंसे रहित हो पवित्र बन गई। धर्मका पालन करते हुए उसने आयु पूर्ण की इसलिये वह चम्पापुरीके धनाढच सुबन्धु वैश्यके यहाँ उसकी धनदेवी भार्याके यहां दुर्गधा नामकी पुत्री

हुई, इसके शरीर से बहुत दुर्गंध निकलती थी।

इसी नगरीमें एक दूसरा वैश्य धनदेव नाम का रहता था, वह बहुत दरिद्र था। उसकी स्त्रीका नाम अशोकदत्ता था। अशोकदत्ताके जिनदेव और जिनदत्त नामक दो पुत्र थे। एक दिन सुबन्धुने धनदेवसे यह प्रार्थनाकी कि आप हमारी पुत्रीका धर्मात्मा जिनदेव के साथ पाणिग्रहण करना स्वीकार कर लीजिये। सुबन्धुकी यह बात सुनकर धनदेव चुप रह गया और वह विचार करने लगा कि होनहार कौन मेट सकता है? इसके बाद दुबारा सुबन्धुने याचना की तब उसने तथास्तु कहकर स्वीकारता दे दी। उससे राजमान्य धनाढ्य सुबन्धुका कहा न टाला गया। सो ठीक ही है धनवान पुरुषोंकी बातको संसारमें कौन ऐसा है जो टाल सकता है? धनी ही आजकल बड़ा आदमी समझा जाता है, वही चतुर गिना जाता है। इस सम्बन्धकी बात जब जिनदेवने सुनी तो उसका चेहरा एकदम उदास हो गया। वह विचार करने लगा कि कहां तो मेरा यह सुन्दर यौवनवन्त शरीर और कहाँ उसका दुर्गंधयुक्त शरीर? यदि दुर्गंधाका मेरे साथ विवाह हो गया तो मेरे बराबर संसार में दूसरा पापी कोई नहीं है। मेरा यह यौवन ही व्यर्थ गया, जिसप्रकार कि बकरीके गलेमें लटकते हुए थन बेकाम हैं, उससे दूध नहीं निकलता, खाली दिखावटी हैं, ऐसा ही यह मेरा यौवन निःसार है। दुर्गंधा का पिता एक तो धनाढ्य है, राजमान्य है, राजाके साथ उसकी मन्त्रणा है, इसलिये उसकी बातको मेरा पिता कभी उल्लंघन नहीं कर सकता है। यदि दुष्टा अभागिनी और दुःखिनी दुर्गंधा मेरी भार्या बनेगी तो भोग भोगना तो बहुत दूर है, ऐसी स्त्रीकी प्राप्तिसे तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। जबतक वह जीवेगी तबतक वह मेरे शरीरको जलावेगी। इस प्रकार विचार करते ही उसकी मति विह्वल हो गई, न आखोंमें नींद थी न भूख थी और न प्यास, दिन रात सिर्फ वही चिंता सिरपर सवार थी।

इसके बाद उसने उस बलासे छुटकारा पानेका कोई रास्ता जब नहीं देखा तो वह एक दिन बिना कहे ही घरसे निकल बनमें चला गया। वहां उसने समाधिगुप्त मुनिराजको देखा और देखकर उन्हें नमस्कार किया और मुनिराज से धर्म सुननेकी जिज्ञासा प्रगट की। मुनिराजने दयाकर उसको जिनधर्मका स्वरूप समझाया और अन्तमें कहा कि देखो इस जीवको जो अच्छा संयोग

मिलता है वह धर्मका ही फल है। धर्मके बिना कोई यह चाहे कि हमे मन-माफिक भोग्य वस्तु की प्राप्ति हो तो मिलना नितांत असम्भव है, इसलिये हे भव्य ! धर्म को धारण करो। परमोपकारी मुनिराजके ये वचन सुनकर जिन-देव को वैराग्य हो गया और उसने उसी समय मुनिराजसे मुनिके व्रत धारण कर लिये। सो ठीक ही है विवेकी पुरुष योग्य समय प्राप्त होनेपर अपना कार्य साधते ही है।

इसके पश्चात् सुबन्धुको जिनदेव के यह समाचार ज्ञात हुये तो उसने अपनी पुत्री दुर्गंधाका विवाह हठ पूर्वक धनदेवके द्वितीय पुत्र जिनदत्तके साथ बहुत ठाटबाटके साथ कर दिया। जिनदत्त नवोढ़ा स्त्रीको पाकर उससे आलिंगन करनेकी इच्छासे उसके पास गया और जाकर शय्यापर बैठ गया। वहां बैठते ही उसको दुर्गंधाके शरीरसे निकलती हुई दुर्गंध सह्य नहीं हुई तो वह वहांसे उल्टे पैर ही वापिस चला आया और प्रातः होते ही माता पिताको बहाना बताकर घरसे निकल गया। उसके घरसे निकल जानेपर दुर्गंधाके मनमें बहुत ही दुःख हुआ और वह अपनी निंदा करती हुई रुदन करने लगी कि हा, मैंने पूर्वभवमे कितने खोटे कर्म किये है जिनका फल मुझे यहां यह भुगतना पड़ रहा है। पश्चात् जिनदत्तके बाहर चले जाने के समाचार दुर्गंधाके माता पिताको ज्ञात हुये तो उनको भी बहुत दुःख हुआ और उन्होने अपनी पुत्रीको अपने घर बुला लिया तथा उसको समझाया कि पुत्री ! अब तुम धर्मको धारण करो। धर्मके धारण करनेसे ही तुम्हारा सब संकट दूर होगा। इस प्रकार वह दुर्गन्धा धर्ममें अपने चित्तको लगाती हुई माता पिताके घरपर रहने लगी किन्तु कुटुम्बके लोगोंको उसके शरीरसे निकलती हुई दुर्गन्ध सहन नहीं हुई इसलिय उसके माता पिताने उसके रहनेके लिए एक जुदे मकानका ही प्रबन्ध कर दिया। दुर्गन्धा उस मकानमे अत्यन्त दुःखी हो रहने लगी।

इसके बाद एक समय गुणकी खानि एक अर्जिका उसके पिताके घरपर आई, साथमे दो अर्जिकायें और भी थीं। दुर्गन्धाने उन्हे देखकर नमस्कार किया और उनको पड़गाहन कर सविधि आहार दिया। अर्जिकाने भी ग्लानि रहित पवित्र मन हो आहार लिया और आहार लेनेके बाद समता भावकर वहां थोड़ा विश्राम किया। दुर्गंधाने मौका पाकर बड़ी अर्जिकासे पूछा कि

पूज्ये ! आपके साथ ये दो अर्जिका है वे कौन हैं मै इनका हाल जानना चाहती हूँ। उत्तरमें अर्जिकाजी ने कहा कि ये दोनों पूर्व भवमें सौधर्म स्वर्गमें सौधर्मेंद्र की विमला और सुप्रभा नामकी देवियां थीं। एक समय दोनों देवियां अपने स्वामी सहित पूजा करनेके लिये नन्दीश्वर द्वीप गई। वहां उन्होंने बड़ी भक्ति-भावसे हर्ष-प्रदर्शके साथ जिनेन्द्र देवके चरण कमलोंकी दिव्य सुगन्धित कमलोंके द्वारा पूजा की और गीत नृत्य आदिके द्वारा प्रभुकी भक्ति प्रगट की। पश्चात् उन दोनोंने यह प्रतिज्ञा की कि हम आगेके भवमें मनुष्य-पर्याय धारण कर नियमसे तप करेंगी। इसके पश्चात् वे स्वर्गीय आयुको भोगकर वहांसे चयीं और चयकर अयोध्या के राजा श्रीषेणकी भार्या श्रीकांताके गर्भसे ये दोनों सुन्दर पुत्रियां हुई। इनका नाम हरिषेणा और श्रीषेणा है। समयानुसार ये पुत्रियां वयस्क हुई तब राजाने इनके विवाह के लिए एक सुन्दर स्वयंवर मण्डपकी रचना की, जिसमें बहुतसे सुन्दर गुणाढ्य निमन्त्रित राजा देश-विदेशोंसे आये और अपने २ स्थानों पर बैठ गये। इसके पश्चात् वेश-भूषासे सुसज्जित होकर कमला नामकी सखीके साथ ये कन्याये सभा-मण्डपमें आयीं। वहां आकर इन्होंने समागत राजाओंके ऊपर अपनी दृष्टि डाली त्योंही उन्हें जाति-स्मरण हो गया जिसकी वजह से उन्हें अपने पूर्वके सम्बन्ध मालूम हो गये और देव पर्यायमें की हुई प्रतिज्ञाका भी स्मरण हो आया। उन्होंने अपने पूर्व भवका सब वृत्तांत आये हुए सब राजाओंको कह सुनाया और उनको समझा बुझाकर विदा किया और स्वयं बनका रास्ता लिया। वहां परमतपस्वी ज्ञानसागर मुनिराजको देखा और देखकर उन्हे भक्तिपूर्वक नमस्कार किया पश्चात् उन्होने मुनिराजसे प्रार्थना की कि महाराज ! अब हमें ऐसा धर्मोपदेश दीजिये जिससे फिर यह स्त्रीपर्याय न धारण करना पड़े। बादमें उन्होंने मुनिराजसे जिन-दीक्षा ले ली और अब ये विहार करती हुई यहां आई हैं।

श्री अर्जिकाजीके मुखसे उन दोनों अर्जिकाके सम्बन्ध की बात जानकर दुर्गन्धा विषय भोगोसे विरक्त हो गई। वह मनमें विचार करने लगी कि देखो, इनके—राजपुत्रियोके सुन्दर रूप और सुकोमल शरीरको कि जिन्होंने उत्तम भोगोंको तिलांजलि देकर जिन दीक्षा धारण की। अहा इनको धन्य है, एक बार नहीं हजार बार धन्य है और कहाँ देखो मेरा यह दुर्गन्धयुक्त शरीर कि

कोई पास भी नहीं फटकने देता सो मैं अब तक विषयभोगों में फंसी रही। वह अपनी इस विषय-लम्पटता रूप प्रवृत्तिपर मनमे कुछ लज्जित भी हुई। उसने नतमस्तक हो अर्जिकाजीसे दीक्षा लेनेकी प्रार्थना की और माता-पिता को समझाकर जिन-दीक्षा धारण करली और अनेक प्रकारके उग्र तप तपने लगी, क्रोधको टालकर सब जीवोंपर क्षमा भाव धारण करने लगी, परीषहों को सहन करने लगी। इसप्रकार वह दुर्गन्धा उन अर्जिकाके साथ पृथ्वीपर विहार करने लगी।

एक समय अशुभ कर्मके उदयसे उसने बनमें पांच जार पुरुषोंके साथ बसन्तसेना नाम की वेश्या को देखा। उसे देखकर उसने निदान किया ऐसी सुन्दर शरीर वाली मै आगे भवमें हो जाऊँ। निदान कर चुकनेके बाद जब उसने उस बातपर विचार किया तो वह अपने इन निंदनीय विचारोंको धिक्कार देने लगी। वह कहने लगी हा, मैने यह क्या सुखको तिलांजलि देने वाली बातको हृदयमे स्थान दिया ? वह सोचा हुआ विचार मेरा मिथ्या हो। इसके बाद उसने बहुत घोर तपस्या की, परीषहोंको जीता, अन्तमे सन्यास धारणकर शरीरका त्याग किया और वहांसे मरकर अच्युत नामके सोलहवें स्वर्गमें सोमभूति नामकी देवी हुई। वहां उसने पचपन पल्यकी आयु पाई उस स्वर्गमें मन-प्रवीचार था अर्थात् मनमें विचार होनेसे ही विषय-भोगोंकी इच्छा तृप्त हो जाती थी, उसका सेवन करते हुए उसने बहुत-सा समय स्वर्ग मे निकाला। पश्चात् वे देव वहांसे चयकर हस्तिनापुरके राजा पांडु और उनकी भार्या कुन्ती और माद्री इन दोनोंके गर्भसे उत्तम पुत्र हुए। श्री १००८ भगवान नेमिनाथस्वामी युधिष्ठिर को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि देखो जो पहले ब्राह्मणका पुत्र सोमदत्त था वह तो तुम निर्भय पवित्र विचार वाले युधिष्ठिर हुये हो और सोमिल नामका जो तुम्हारा भाई था सो यह निर्भीक भीम हुआ है एवं तुम्हारा जो सबसे छोटा भाई सोमभूतिका जीव था वह विपक्षियोके पक्षको निपक्ष करनेवाला वीर अर्जुन हुआ है। इस प्रकार तुम तीनो भाई विशाल पुण्य वाले संसारमे लब्धप्रतिष्ठ हुए हो। जो धनश्री व मित्र श्री के जीव थे सो ये दोनो वीर योद्धा माद्री के नकुल और सहदेव—तुम्हारे भाई हुये है एवं पूर्व भवमें जो दुर्गन्धाका जीव था वह पांचाल्य देशके राजा

द्रुपद और उनकी रानी दृढ़रथाके द्रोपदी नामकी पुत्री हुई। इसने पूर्व भवमें व्रत गुप्ति समिति धर्म आदिका सविधि परिपालन किया था, घोर तपस्या तपी थी, परीषह जय की थी—व्रत उपवास किये थे उसीका यह फल है कि इसे इस भवमें उत्तमोत्तम भोगोपभोगकी सामग्री मिली, उत्तम सुन्दर शरीर प्राप्त किया तथा बसन्तसेना नामकी वेश्या को देखकर जो निंद्य निदान किया था उसके फलसे ही द्रोपदी की संसारमें अज्ञानियों द्वारा यह अपकीर्ति हुई कि द्रोपदी पंच भर्तारी थी अर्थात् उसके एक स्वामी नहीं पांच स्वामी थे। यह निश्चित है कि जीव मन वचन कायसे जैसे कर्म करता है वैसे ही फल प्राप्त करता है। पृथ्वीमे बीज जैसा बोया जायेगा फल भी तो वैसा ही मिलेगा। इसलिये जो सुखके इच्छुक है उन्हे भूलकर भी पाप उपार्जन नहीं करना चाहिये। पूर्व भवमें युधिष्ठिरने उत्तम आचरण पाले थे इसलिये संसारमें उनकी कीर्ति सत्यवान कहकर हुई। पूर्वभवमें साधुओं की परम वैयावृत्ति की थी उसका ही फल यह है कि भीम महाबलवान भयहीन योद्धा हुआ। परम शुद्ध चारित्रका पालन मन लगाकर किया था उसकी वजहसे ही धनुर्विद्या मे प्रवीण यह राजा धनंजय हुआ है। नागश्रीके ऊपर इसका अधिक अनुराग था इसीलिये द्रोपदीके ऊपर अब भी इसका अधिक अनुराग है—वह उसकी भार्या है, क्योंकि विशेष अनुरागका होना——स्त्री पुरुषका संयोग मिलना यह पूर्वभवके निमित्तसे ही होता है। धनश्री और मित्रश्री इन दोनों ब्राह्मण कन्याओं ने जो सम्यक्त्व सहित व्रताचरण किया था उसीके प्रभावसे ये दोनों नकुल और सहदेव आपके भाई हुए हैं। इस प्रकार भगवान नेमिनाथकी पवित्र दिव्य ध्वनि द्वारा अपने पूर्व भवोंको सुनकर पांडव बहुत ही प्रसन्न हुये, उनके चित्त में जो भी प्रवंच था वह रंच भी नहीं रहा।

जो शुभ भाव वाले हैं, संसार रूपी बनको जलानेके लिए दावानलके समान हैं, वीतराग प्रभुके भक्त है, विकार भावोंसे रहित हैं, जो शुभाकार और सुखाकर हैं, कर्म दहनको पावक हैं, सम्यक्त्व सहित हैं, जिन्होंने बहुत कालतक ब्राह्मणके भवमे घोर तप तपकर अच्युत स्वर्गमें स्वर्गीय सुख प्राप्त किये है, वहांसे चयकर यहां आ राज्यपद प्राप्त किया है एवं दुर्योधनादि शत्रुओंपर विजय प्राप्तकी है और कृष्णकी सहायता पाकर जो लवण समुद्रको

पारकर द्रौपदी को धातकी खण्डसे लाये और वहांके राजा पर विजय प्राप्त की ऐसे जयशील पांचों पांडव सदा जयवन्त रहें।

अथ छब्बीसवां अध्याय ।

मेरा उन पार्श्वनाथ भगवानको नमस्कार है जो प्रभु प्राणियोंके पालक हैं, जिनके पार्श्व भागमे–निकटमें सदा ही भव्यजीवोंका निवास स्थान रहता है, जो विघ्नोंको दूर करने वाले हैं, लक्ष्मीको देने वाले है। वे प्रभु मुझे भी अपने चरणोंमे आश्रय देवें।

इसके बाद पांडव भगवान नेमिजिनको नमस्कार कर बोले कि हे पतित पावन प्रभो! जिस संसारमे दुःखकी महाज्वाला शरीररूपी वृक्षोको भस्म कर रही है जो विकराल काल द्वारा अत्यन्त गहन है दुःख रूपी मार्गो से व्याप्त है, अनेक दुष्ट कर्म जिसको चारों तरफसे घेर रहे हैं ऐसे महाभयानक इस संसारमे यह प्राणी जन्म मरणके दुःखोंको पा रहा है। प्रभो! यह सब बिना आपके आश्रयके दुःखी हो रहा है। यदि आपका इनको हस्तावलम्बन मिल गया होता तो अब तक कभीका इसका सुधार हो गया होता। हे त्रिलोकी-नाथ! यह जन्म मरणरूपी संसार जिसमें दुःखरूपी लहरे चारों तरफ दिखाई पड़ रही हैं, दुष्कर्मरूपी दावानल जिसमें दहक रहा है, खोटे भाव रूप भ्रमर जिसमें पड़ रहे है ऐसे दुर्जय दुर्गम संसार समुद्रसे पार करनेके लिये आपही एक अनुपम नौका है।

हे नाथ! इन कर्मोने हमें संसाररूपी गाढ़ अन्धकूपमें डाल रक्खा है जहाँ हमें कुछ भी हेयोपादेयका ज्ञान नहीं हो रहा है इसलिये हे प्रभो! कृपाकर आप हमे धर्मरूपी दीपक हाथमे दीजिये जिससे हम अपना मार्ग खोज ले। हे पतित पावन! हम भव-वनमें अनादि कालसे भटक रहे है आज शुभ भाग्योदय से आप हमे मिले है इसलिये नाथ अब जल्दी हमारा निस्तार कीजिये। अब इस नश्वर संसारमे रहते हुए हमारा मन ऊब गया है इसलिये हे अशरणके शरण आप हमे शीघ्र ही मोक्षका रास्ता बतलाइये, हम आपके बतलाये हुए रास्ते पर चलने के लिये पूर्णरूपसे समर्थ हैं। नाथ! अब देरी करनेका समय नहीं है हमें शीघ्र ही दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित कीजिये। इस प्रकार पांडव

भगवानसे प्रार्थना कर दीक्षा लेनेके लिए प्रस्तुत हो गये। उन्होंने राज्यभार अपने पुत्रोंको दिया तथा वास्तु सोना, चांदी, दासी, दास व धनादिसे ममत्व परिणाम हटाकर एवं मिथ्यात्व वेद राग हास्यादि अन्तरङ्ग परिग्रहोंका त्यागकर, दुर्गतिके कारण कषाय आदि भावोंको छोड़कर तेरह प्रकार के चारित्रको धारण कर केशलोंच पूर्वक जिन-दीक्षा धारण की। उनके साथ ही कुन्ती सुभद्रा द्रोपदीने भी राजीमती अर्जिकाके पास जाकर केशलोंच करके परम पवित्र संयम धारण किया। इनके सिवा और भी आत्म-हितेच्छु बहुतसे राजाओंने तथा उनके भाई बन्धुओंने भी ममत्व परिणामोंको हटाकर दीक्षा धारण की। परिणामों की विचित्रता जानी नहीं जाती, क्षणमें कुछ और क्षणमे कुछ हो जाती है।

इसके पश्चात् गुणगरिष्ठ वन्दनीय युधिष्ठिर मुनिराजने अनायास ही निष्ठुर मोहमल्लको जीत लिया एवं भव अरि भंजन निर्भय भीमने भी महा मोहको निमंद कर दिया तथा जयनशील धनंजयने मुक्तिरूपी वधूको अपने मनोमन्दिरमें आश्रय दिया और चार आराधनाओंका आराधन किया एवं महामुनि नकुल और सहदेवने भी द्रव्य पर्याय आदिको जानकर परिग्रह से ममत्व हटाकर नासाग्रदृष्टि लगाई। इस प्रकार जल्दी कर्मोको नष्ट करनेमें प्रयत्नशील पांडवोंने पांच महाव्रत, पांच समिति, पॉच इन्द्रिय—विजय, छह आवश्यक गुणोंका धारण, केशलोंच करना, स्नान नहीं करना, तिलतुष मात्र भी परिग्रह नहीं रखना अर्थात् नग्न रहना, भूमिमें एक करवटसे स्वल्प शयन करना, दंतधावन नहीं करना, एक बार दिनमे खड़े होकर अपने हाथमे निर्दोष आहार लेना इन अट्ठाईस मूल गुणोंको निर्दोष पालन करते हुए उत्तर गुणोंकी भावना करते हुए अपने चित्त कोधर्म ध्यानसे दृढ़ किया। मन वचन काय इन तीनों गुणोंके द्वारा आत्माको गोपन करते हुए द्वादशांगमें मनको लगाया और बलको प्रगटकर भगवान नेमिनाथ प्रभुके पार्श्वमे कठिनतर तप किया जिससे कर्मोकी भले प्रकार निर्जरा हुई। उन धीरवीर योगीराज पांडवोंने षष्ठम-अष्टम उपवास धारण किये एवं पारणाके दिन बत्तीस ग्रास आहार लेकर अवमौदर्य तप किया, घर गली बाजार आदिका नियम लेकर वृत-परिसंख्यान तप आचरण किया, रसों का परित्याग किया। जहां किसी प्रकारका उपद्रव नहीं ऐसे एकान्त स्थान गुफा बन पहाड़

आदिमें शय्यासन लगाया। शरीरसे मोह छोड़कर कठिनतर तपोंके तपनेमे शक्ति लगाई—काय क्लेश किया। इस प्रकार बाह्य तपोंका आचरण करते हुए दश प्रकारके प्रायश्चित्त तपको, ज्ञान दर्शन चारित्र और उपचारके भेदवाले विनय तपको पालते हुये, दश प्रकारका वैयावृत वाचना प्रच्छना, अनुप्रेक्षा आम्नाय और धर्मोपदेश रूप पांच प्रकारके स्वाध्याय तपको एवं शरीरसे ममत्व परिणाम हटाकर व्युत्सर्ग तपको और आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक-विचय, संस्थान विचय इन धर्मध्यानोंको साधते हुए शुक्लध्यानका जो प्रथम भेद पृथक्त्ववितर्क को विचार उसको साधन किया। इस प्रकार अन्तरंग बहिरंगके भेदसे बारह प्रकार के तपों के तपने से उन धीरवीर आत्माओं ने कर्मकी शक्तिको उपक्षीण शक्तिवाला बना दिया। जिस प्रकार कि गुरुके निकट सर्प कमजोर हो जाता है और देखते ही भाग जाता है। उन योगीराज पांडवोने अत्यन्त घोर तप किया जिससे ऋद्धियॉ उनके पास स्वतः आकर खड़ी होगई तपके प्रभावसे ऋद्धि वाले हो गये। सो ठीक ही है तपका प्रभाव ही ऐसा है।

वे धीरवीर पांडव संसारके सभी प्राणियोके बीचमे मैत्रीभाव धारण करते थे, गुणाधिक्य वालोसे विशेष प्रमोद–भाव रखते थे, दीन दुःखी रोगी जीवोंमें करुणाभाव रखते थे और विपरीत चलनेवालो से मध्यस्थ भाव–न राग न द्वेष भाव रखते थे। सदा ही शुद्ध बुद्ध निरंजन रूप आत्मामें लीन रहते थे जिससे उनकी आत्मामे प्रकाशमान रत्नत्रय उदय हो गया और मोहरूपी गाढ़ अन्धकार जड़मूल से किनारा कर गया। उन धीरवीर आत्माओने मनुष्य तिर्यच और देवकृत उपसर्गो को बड़ी वीरताके साथ सहन किया एवं क्षुधा तृषा शीत ऊष्ण आदि बाईस परीषहोको शांति पूर्वक जीता। उन ब्रह्मचर्यव्रतके धारी महा गंभीर निःप्रमादी, निर्भीक और चारित्रधारी पांडवोने मोह और प्रमाद को तो क्षीण कर दिया था तथा बाकी पाप समूहको नष्ट करनेमे प्रयत्नशील थे।

इस प्रकार महामुनि पांडव वहांसे विहार कर सौराष्ट्र देशमें आये। वहां पहुंचकर उन्होंने शत्रुंजय गिरिके शिखरके ऊपर ध्यान लगा दिया। वहां उन्होंने आतापन योग द्वारा सिद्धिके लिये घोरातिघोर तप किये और अपनी आत्माको घोर उपसर्गोके सहने योग्य बना लिया। ये मुनिराज इधर अपनी आत्माका एकाग्र-चित्त हो ध्यान कर रहे थे कि इतनेमें ही दुर्योधन का भानजा क्रूरकर्म

वहां आया और पांचों पांडवोंको देखकर विचार करने लगा कि इन्होंने ही मेरे मामाको मारकर राज्य लिया था, आज मैंने इन्हें देख पाया है, अब यह मेरे से भाग कर कहां जा सकेंगे ? मुझे अपना बदला चुकाने का अच्छा मौका मिला है, क्योंकि इस समय ये लोग योगारूढ़ हो रहे हैं, युद्ध करेंगे ही नहीं इसलिये मैं क्यों नहीं इनसे अपना बदला अच्छी तरह निकालूं। यह विचार कर उस दुष्ट ने लोहेके सोलह आभूषण बनवाये और उन आभूषणोंको अग्निमें डालकर खूब तपाया जिससे वे लाल अंगारे के माफिक हो गये। इसके बाद उस दुष्टने अग्नि से जाज्वल्यमान मुकुटको उनके सिरपर बांधा, गलेमें हार पहनाये, कानोंमें कुंडल पहनाये, हाथोंमें कड़े और कमरमें करधनी पहनाई तथा पैरोंमें नेवर और अंगुलियों में मुंदड़ी पहनाई। उन गहनों का संपर्क होते ही उन योगीराजो का शरीर काष्ठकी तरह जलने लगा। उनके जलते हुए शरीरसे इस प्रकार धूआं निकलने लगा कि जिस प्रकार काठमें आग लगने से निकलने लगता है। उस समय जलते हुए अपने शरीरको देखकर धीरवीर पांडवोंने क्षमारूपी सलिल--जलका आश्रय लिया। वे उस समय मंगलमय अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु और धर्मका चिंतवन करने लगे आत्मध्यानमें और भी दृढ़तर हो गये और इस प्रकार विचार करने लगे कि अग्नि हमारी आत्माको तो जला सकती नहीं क्योंकि आत्मा शुद्ध बुद्ध चैतन्य स्वरूप, निराकार निरंजन स्वरूप है, कर्म मलसे रहित है। हां मूर्तिमान शरीर पर ही इसका जोर है सो जलावे, इसमें हमारा क्या नुकसान है ? इस प्रकार शरीरसे भिन्न आत्माका विचार करते हुए वे महा उपसर्ग विजयी मुनिराज पांडव आत्मध्यानमें दृढ़ करने वाली अनु-प्रेक्षाओंका इधर तो इस प्रकार चिंतवन करने लगे और उधर शरीरको जलाती हुई अग्निने विपुलरूप धारण कर लिया। वे विचार करने लगे कि--

१--संसारमें यह जीवन क्षणनश्वर है, मेघपटलकी तरह देखते देखते विलीन हो जाता है। धन, दौलत, मकान, मंदिर ये जो भी दिखते है वे सब नश्वर है। भोगोपभोग अनित्य है, किसीसे भी प्रीति नहीं करते। पुण्यशाली चक्रवर्तीके भी जब तक पुण्यका उदय रहता है तभी तक रहते है, पुण्य गये पीछे उनके यहांसे ये भी रफूचक्कर हो जाते है। एक आत्मा ही ऐसी चीज है जो सदा शाश्वत है। इसलिये हे आत्मन् ! तू बाह्य वस्तुओंके ममत्वको हटाकर स्वमें स्थित हो,

यही चीज तेरी है। भरत सरीखे चक्रवर्ती जो कि छह खण्डके राजा थे वे भी जब नित्य नहीं रहे तब तू किससे स्नेह करता है, किसको अपना समझता है ? अपना समझना तेरी नितान्त मूर्खता है इसलिये तुझे व्यर्थके विकल्प जालोमे न पड़कर आत्महित में लग जाना चाहिये, यही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

२–जिस प्रकार भूखे सिंहके पासमें आये हुए हिरणके शावक–बच्चेकी कोई रक्षा नहीं कर सकता है, उसी प्रकार मृत्युसे पकड़े हुये प्राणीकी भी कोई रक्षा नहीं कर सकता है। कोई यह कहे कि हम लोहे के मकानमें बन्द कर शस्त्रोंसे योद्धाओंसे, हाथी घोड़े आदि सेनाओसे जीवकी रक्षा कर लेगे अथवा यंत्र मंत्र तंत्र आदिसे जीवको बचा लेगे तो यह कहना होगा कि उसका यह कहना मात्र है। वास्तवमें जिसकी आयु पूरी हो गई है उसकी कोई रक्षा नहीं कर सकते है तो दूसरों की क्या करेगे ? इसलिये आत्मन् ! अविनश्वर चैतन्यरूप आत्मा का ही शरण ले यही तेरे लिये सच्ची शरण है और सबोंकी शरण झूठी है।

३–द्रव्य क्षेत्र काल भव और भावरूप संसारमे मेरा यह आत्मा स्व स्वरूप को बिना समझे चक्कर लगा रहा है कभी इस गतिमे तो कभी उस गतिमें, बहु-रूपिया होकर घूम रहा है। इन परिवर्तनों का समय एक एक का अनंत–बहुत है। बह भी इस जीवनमें एक बार नहीं कई बार पूरे किये है फिर भी इसकी विषय लालसा पूरी नहीं हुई तो अब क्या होगी ? इसलिये आत्मन् ! इस संसार चक्रसे छूटने का तेरा उपाय सिर्फ यही एक है कि तू इससे मोह को हटा कर आत्मध्यान मे लीन हो।

४–यह जीव अकेला ही आता है, अकेला ही जन्म–मरणके दुःख उठाता है, अकेलाही गर्भमें आता है, अकेलाही शरीर ग्रहण करता है, अकेलाही बालक होता है, अकेला ही युवा होता है, अकेला ही बुड्ढा होता है और अकेला ही मरता है। कोई भी इस जीवके सुख दुःख का साथी नहीं है। जिस कुटुम्बादि को अपना समझता है वह तेरा नहीं है, कुटुम्बादि तो दूर रहा जिस शरीरको परिपुष्ट किया, सदा साथमे चौबीसो घण्टे तक रहा जब वह साथ नहीं जाता है तो और साथ जायेगा ही क्या ? इसलिये आत्मन् ! तू क्यो दूसरोके लिये पाप का बोझा सिरपर बाँध रहा है। सबसे मोह हटाकर आत्मध्यान मे लग।

५–जल दूधकी तरह शरीर और आत्माका मेल है परन्तु वास्तवमे तो यह

भिन्न है। इनको अभिन्न समझना हे आत्मन्! भूल है। तेरा तो ज्ञायक भाव है, चारित्र भाव है, रत्नत्रय स्वरूप है।

६–यह शरीर अशुचिका पिटारा है, मांस हड्डी लहू पीवसे बना हुआ है, घृणाको पैदा करने वाले मलके नवद्वार जिससे बहते हैं, इस शरीरके सम्बन्ध मात्रसे उत्तम से उत्तम वस्तु दूषित हो जाती है, फिर क्या कारण है कि हे आत्मन्! तू इस अशुचि के स्थान रूप शरीरसे मोह-प्रेम करता है। यह तेरी बड़ी भूल है। कहाँ तो निर्मल स्वरूप और कहां इसका मलिन स्वभाव? इसलिये शरीरको हेय समझकर शीघ्रही तू इससे काम निकाल, इसीमें तेरी बुद्धिमत्ता है।

७–तालाबमें पड़ी हुई छेदवाली नौकामें जिस प्रकार सतत जल आता रहता है, उसी प्रकार मन वचन काय की चंचलता से आत्मा में कर्मोंका आना जाना होता रहता है। कर्मोंके आनेमें प्रधान कारण पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति भाव, पच्चीस कषाय, और पन्द्रह योग हैं, ये ही आस्रवके भेद हैं। हे आत्मन्! तुझे यह आस्रव ही संसार में चक्कर खिलाने वाला है इसलिये तू आस्रवको छोड़ निरास्रवी बन, तभी तेरा सुधार होगा।

८–आस्रवको रोक देना ही संवर है। वह संवर पांच समिति, तीन गुप्ति, बारह तप और सद्ध्यानके द्वारा होता है। इसके होनेसे फिर यह आत्मा संसार में नहीं भटकता है, इसे फिर सुधारका रास्ता मिल जाता है। इसलिये हे आत्मन्! अब तू सब झंझटको छोड़ इसी पुनीत संवरका आश्रय ग्रहण कर।

९–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके निमित्तसे पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा होती है। जिस प्रकार कि प्रज्ज्वलित अग्निके द्वारा कढ़ाईका सारा जल शोषण कर लिया है उसी तरह निर्जराके सविपाक और अविपाक ऐसे दो भेद हैं। सविपाक निर्जरा सब जीवोंके होती है किन्तु अविपाक निर्जरा व्रतधारी सम्यग्दृष्टि मुनियोंके होती है, इसीसे आत्माका काम सिद्ध होता है। इसलिये हे आत्मन्! तू अविपाक निर्जराका आचरण कर जिससे फिर तुझे केवली होनेमें थोड़ी देर भी नहीं लगे।

१०–यह लोक न किसीका बनाया हुआ है, न इसको कोई नष्टकर सकता है और न कोई इसको धारण ही किये है। यह तो अनादिसिद्ध अकृत्रिम है।

कटिपर हाथ रखकर पांवोंको फैलाकर खड़े हुये पुरुषके समान इसका आकार है। ऐसे इस लोकमे यह जीव बिना ज्ञान और ममता भावके चक्कर लगाता रहता है। इसलिये हे आतमा, इस लोकके उर्ध्व, मध्य और अधः की विचित्रता को देखकर निज ध्यानमें स्थिर रह।

११–इस जीवका भव्यपात्र होना बड़ा ही मुश्किल है, भव्य होकर मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, निरोग शरीर, सत्संगति का मिलना और जिनवाणी का सुनना यह उत्तरोत्तर मिलना और भी कठिन है। भाग्यवश यह सब मिला भी और धर्मबुद्धि नहीं हुई तो सब व्यर्थ है। कदाचित् धर्मबुद्धि भी हुई तो मुनिधर्म का धारण करना और भी कठिन है, मुनिव्रत धारण भी किया तो आत्मबोध का होना तो नितांत ही कठिन है। इसी आतमबोधके होने पर यह आत्मा फिर अचल–स्थिरहो जाता है। इसलिये हे आत्मन्! तू इस आतमबोधके प्राप्त करने के लिये सदा ही प्रयत्नशील हो। यही सच्चा सुख है, यही सच्चा लाभ है और यही सच्चा ज्ञान है। इसी एकके प्राप्त होनेसे तेरा बेड़ा पार है। इसके बिना प्राप्त किये क्रोधरूपी धनुष को धारण किये यह कर्ण योद्धा संसारमे घूम रहा है।

१२—सम्यग्दर्शनादिरूप जो धर्म है उसीसे इस जीवको सुख की प्राप्ति होती है। धर्म नाम तो उसीका है जो प्राणियोंको दुःखकी अवस्थामे छुड़ाकर सुखरूप शिवधाममें पहुंचा दे। इसलिये हे आतमन्! तू भाव मोहसे उत्पन्न हुए विकल्पोंको छोड़कर शुद्ध चैतन्यरूप आतमामें लीन हो, यही धर्म है। संसार मे जो विविध पाखंड रूप धर्म दीख रहा है वह वास्तव मे धर्म नहीं है। समझ ले और निश्चय धारण करले कि जिससे आत्माकी विशुद्धि हो वही धर्म है। ऐसे धर्म के धारण करनेसे ही अचल सुख मिल सकता है। इस प्रकार बारह अनुप्रेक्षाओंका विचार करनेसे उनकी विरक्तता और दृढ़तर हो गई। उन्होंने शरीर और परिग्रहको तृणसे भी गया बीता समझ लिया। सो ठीक ही है, बुद्धिमान् पुरुष अमृत के मिल जाने पर फिर विष को पसन्द नहीं करते। इस प्रकार महामुनि तीन पांडवोंने–युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनने मनोयोगको निरोध कर शुद्ध उपयोग को प्राप्तकर जल्दी क्षपक श्रेणीपर आरोहण किया तथा शुद्ध ध्यानके बलसे अधःकरण आराधन कर अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण पर पहुंचे एवं

उत्तरोत्तर परिणामोंकी विशुद्धताके कारण सातवें गुणस्थान—अप्रमत्तसे बारहवें गुणस्थान क्षीण कषाय तक त्रेसठ कर्मकी प्रकृतियों को नाशकर केवल ज्ञान प्राप्त किया पश्चात् अघातिया कर्मों को भी उसी प्रकार नष्टकर वे तीनों महामुनि पांडव अन्तकृत केवली होकर सिद्धालयमे जा विराजे। जो कि अष्ट कर्मोंके नष्ट होनेसे सम्यक्त्वादि गुणोंसे सुशोभित होते हुये। जिनको फिर संसार की कोई बाधा नहीं रही, निरंजन बन गये, कृत—कृत्य हो गये। जो अनन्त काल तक अविनाशीक आत्म सुख भोगेंगे। इस तरह महान उपसर्ग विजयी उन तीनों पांडव का केवलज्ञान और निर्वाण दोनों एक साथ हुआ जानकर तत्काल देवगण स्वर्ग से आये और उन्होंने भक्ति पूर्वक ज्ञान कल्याणक और निर्वाण—कल्याणक महोत्सव मनाया पश्चात् वे अपने-अपने स्थानको चले गये। इस तरह अक्षय-सुखके भोक्ता वे सिद्ध हुये पांडव हमें भी सिद्धपद प्रदान करें।

इधर मुनिराज नकुल और सहदेवने भी उस महान उपसर्गको दृढ़ता पूर्वक आत्म—चिन्तवन करते हुए सहन किया था किन्तु अन्त समय कुछ परिणामों में अस्थिरता आ गई इसकी वजहसे वे सर्वार्थसिद्धि में अहमेन्द्र हुये और उन्होंने उत्कृष्ट आयु—तेंतीस सागर की बांधी। वहां वे तेतीस सागर सर्वार्थ-सिद्धि के सुख भोगेगे और वहां से चयकर मनुष्य का एक भव धारण करेगे और उसी भवमे शुक्लध्यान कर मोक्ष को प्राप्त करेगे।

इस तरह महा अर्जिका राजीमती, कुन्ती, सुभद्रा और द्रोपदीने भी सम्य-क्त्वके साथ-साथ व्रत धारण किये और उनका अन्त तक निर्दोषता पूर्वक मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक पालन किया, आराधनाओं को आराधा, कठिन कठिन व्रत उपवासादि तप किये और अन्त मे सन्यास धारण कर मरण किया जिससे वे सब सोलहवे स्वर्गमें जाकर स्त्रीलिंग को छेदकर सामानिक जाति की देव हुई। वहाँ वे बाईस सागर की आयु भोगकर वहां से चयकर मनुष्य पर्याय प्राप्तकर तपस्या करेगी और तप तपकर मोक्ष प्राप्त करेगी।

इसके बाद भगवान नेमीनाथ भी अनेक देशों में विहार करते हुये रैवतिक पहाड़ पर आये, उनकी आयु उस समय एक महीने की शेष रह गई थी। वहाँ पहुँचकर उन्होंने योग निरोध किया और पर्यंक आसन मांडकर निष्क्रिय हो गये। पश्चात् अन्तिम गुणस्थान मे बाकी बची पच्चीस प्रकृतियों को नाशकर

शुक्ल पक्षकी सप्तमीके दिन पांच सौ छत्तीस अन्य मुनियों के साथ मोक्षधामको प्राप्त किया। भगवान का निर्वाण-महोत्सव मनाने के लिये स्वर्ग से देवगण आये और भक्ति-भाव से उत्सव मनाकर प्रभु के गुणों की भावना भाते हुये वापिस स्वर्ग चले गये। ग्रन्थकार कहते है कि ऐसे उन प्रभु के लिये मेरा मन वचन काय द्वारा त्रिकाल में नमस्कार हो।

जो भगवान पूर्वभव मे विंध्याचल पर्वतपर भील हुये, पीछे गुणशाली श्रेष्ठ वणिक हुए, शाकेतु देव हुये, वहांसे चयकर चिन्तागति विद्याधर राजा, वहांसे महेन्द्र, पीछे पराजित राजा हुये, अच्युतेन्द्रदेव हुये, सुप्रतिष्ठ राजा हुये और अन्तमे तप तपकर जयन्त नामके विमानमे अहमेन्द्र और वहांसे चयकर तीन लोकके नाथ नेमिप्रभु हुये। वे प्रभु हम सबों की रक्षा करे।

जो पहले उत्तम ब्राह्मण थे, पीछे तप तपकर अच्युत स्वर्गमे देव हुये एवं वहांसे चयकर इस भवमें जयी युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल और सहदेव हुए और पीछे घोर तपकर आदि के तीन मोक्ष पधारे और दोनों भाई सर्वार्थसिद्धि पधारे। ये पांचों पांडव हमे सुख-प्रदान करें।

जो नेमिजिन धर्मरूपी रथके धुरा है, पापरूपी वृक्षको जलाने के लिये दावानलके समान है, काम के खेलनेका जो मंडप उसको खोदनेके लिये कुदालके समान है एवं अखंड शीलके परिपालक है विश्वदर्शी है, मोक्षमार्ग के प्रकाशक है, दोषोंको नष्ट करने वाले है तथा भवकूप मे डूबते हुए प्राणियोको हस्तावलम्बन देनेवाले है वे प्रभु मुझे भवसागर से पारकर मेरा उपकार करे।

कहां तो यह गौतम गणधर स्वामीसे कहा हुआ विशाल पांडव चरित्र और कहां मेरा यह आवरणसे ढका हुआ अल्प ज्ञान! तो भी मैने इस चरित्रको वर्णन करने का जो साहस किया है वह मेरी तरफ से धीठता ही है। वास्तवमे मेरा यह प्रयत्न ऐसा ही है जैसे कोई नन्हा बालक आकाशमे निकले हुये तारों की गणना करने की कोशिश करे अथवा कोई एक मिडुकिया नाल लगाकर समुद्र-जलकी थाह लेनेका प्रयत्न करे। मेरा भी प्रयत्न ऐसा ही है किन्तु उत्तम पुरुष दोष ग्रहण नहीं करते। जो नर असन्त—असज्जन है वे ही पर दोष देखा करते है।

जो साधु सदा ही दूसरों के कार्य में दत्तचित्त रहते है, दूसरों के दोष की

तरफ जिनकी निगाह ही नहीं जाती है, शास्त्रमें कोई दोष हो तो उसको निकाल-कर सार वस्तुओं को ग्रहण करते हैं, जिनका स्वभाव चन्द्रमाकी तरह होता है। संसार में सभी तरहके आदमी हैं अच्छे भी हैं और बुरे भी, क्योंकि उनकी भिन्न-भिन्न वृत्तियां देखने में आती है। यदि समान ही कृति देखनेमें आती तो अच्छे बुरेकी पहिचान होना ही अत्यन्त कठिन था। कांचके रहते ही मणिकी विशेषता मालूम होती है। इसलिये मैं ऐसे साधुजनों से—जो दूसरों के कार्य को करने में सदा ही तत्पर रहते हैं उनसे प्रार्थना करता हूँ, जो सदा दूसरोंके गुणोंको ही सुनते है और कहते हैं जिन्हें दूसरोंके दोषोंसे कुछ मतलब ही नहीं है जिनका स्व-भाव हंस सरीखा है। हंस जिस प्रकार मिले हुये दूध मे से दूधको पी लेता है और असार रूप पानी को छोड़ देता है ठीक वैसे ही वे साधु पुरुष भी उनमें से सार वस्तु को ग्रहण कर लेते है और असार को छोड़ देते हैं।

कोई यह कहे कि दुष्ट पुरुष बहुत बुरे होते हैं सो यह कहना भी भूल है। मैं तो यह कहता हूँ कि दुष्ट पुरुष सज्जनोंका बड़ा उपकार करते हैं क्योंकि उनका लक्ष्य सदा ही दोषों पर रहता है और दोषों को ही निकाल-निकालकर कहा करते हैं इससे यह होता है कि सज्जन पुरुषों की जो कृति—रचना है वह दोष निकल जाने से पवित्र हो जाती इसलिये कहना होगा कि दुष्ट पुरुष भी सज्जनों के बड़े उपकारी है।

ग्रंथकार कहते है कि मै इन पांडवोंके परम-पवित्र पुराणकी रचना करके कोई स्वर्गीय सुख या राजपाट अथवा और कोई वस्तु नहीं चाहता हूँ। सिर्फ इस भक्तिका यही फल चाहता हूँ कि मुझे मुक्ति पदकी प्राप्ति हो जिससे फिर कभी संसार मे भटकना न पड़े।

मेरी इस पुराण रचना मे यदि कोई व्याकरण, न्याय, काव्य, छन्द, अलं-कार, विराम आदि की कोई भूल रह गई हो तो बुद्धिमान् जन उसको सुधार कर पढ़े, क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंका प्रयास सदा ही परोपकार के लिये हुआ करता है। मैंने न तो कोई काव्य-ग्रंथ ही पढ़ा है और न छन्द ग्रंथ ही देखा है और न व्याकरण ही पढ़ा है और न कोई बड़े-बड़े सिद्धांत ग्रंथ ही देखे हैं इसलिये भूल हो जाना सम्भव है अतएव बुद्धिमान् पुरुष उसको देख कर किसी तरह कोप नहीं करें, मेरे पर क्षमाभाव धारण करे।

इस मूल-संघमे पद्मनन्दी आचार्य हुए, पीछे उनके पट्टपर . .
आचार्य हुए, उनके बाद भुवनविख्यात भुवनकीर्ति हुये, उनके बाद
वेत्ता जगत्पूज्य चन्द्रसूरि हुये, उनके बाद राजमान्य सुष्ठुमति के धारी
आत्मा विजयकीर्ति हुये, बादमें उनके पट्टपर गुण-गरिष्ठ, महाव्रती,
श्री शुभचन्द्र आचार्य हुये जिन्होने कि इस परम-पवित्र पांडव-पुराण ग्रं
रचना की है। इस ग्रंथका दूसरा नाम महाभारत भी है। यह ग्रंथ अति
परम-पवित्र उत्तम-उत्तम युक्तियो से परिपूर्ण है। इन्हीं शुभचन्द्र
विद्वान श्रीपाल एक ब्रह्मचारी शिष्य थे उन्होने इस चारित्र को शोधा और
अर्थ संग्रहने मुझे सहायता दी इसलिये वह शिष्य सदा जयनशील हो।

जब तक आकाश मे चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, सुरपतिके विमान, समुद्र, गंगा
नदी है अथवा जब तक कल्पवृक्ष हैं, वीतराग धर्म है तब तक इस भारत वसु
पर कल्याण करने वाला यह पुनीत पांडवों का पुराण भी शाश्वत रहो।

जो शुद्ध मन होकर इस पुनीत पुराण को लिखेगे, पढ़ेगे सुनेगे और
वे संसार के सुखो को भोगकर उत्तम पदको प्राप्त करेंगे-अविनाशी मोक्ष
पावेगे। वे ही धन्यवाद के पात्र है।

इस पुराण के रचे जाने का समय विक्रम सं० १६०८ भादों सुदी ...
है। इसकी रचना बागड़ प्रान्त के सागवाड़ा नगर के श्री ऋषभनाथ भग
मन्दिर में हुई है। यह भगवान की पवित्र वाणी कल्पांतकाल तक जयनशील
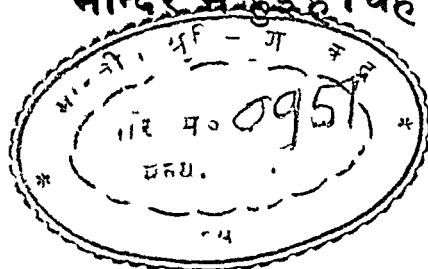
॥ श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित पांडवपुराण समाप्त ॥